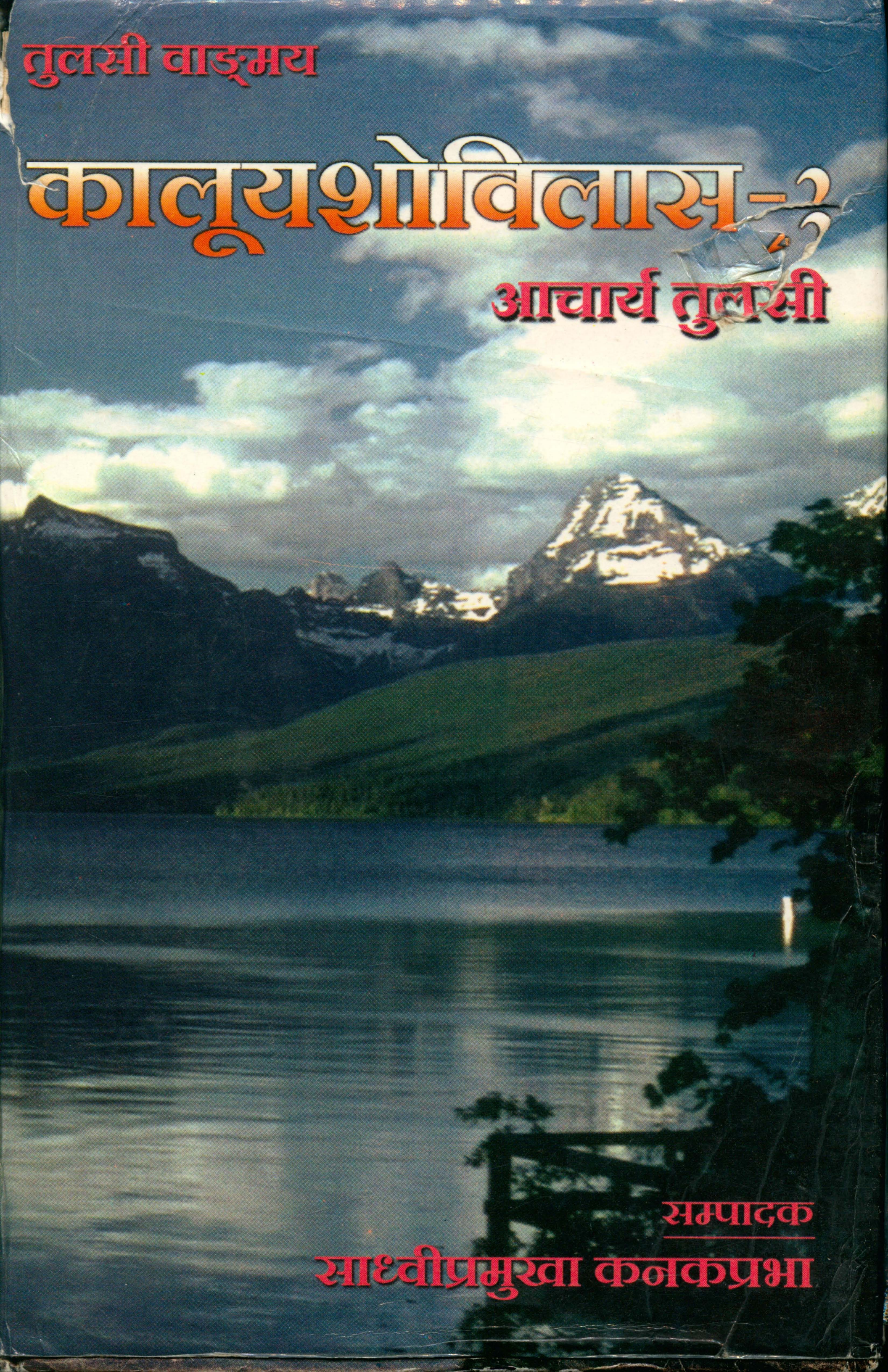

तुलसी वाङ्मय

कालूयशोविलास-२

आचार्य तुलसी

सम्पादक

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

आचार्यश्री तुलसी सृजन की ऊर्जा के सक्षम केंद्र हैं। आपकी प्रतिभा में कथ्य के नये उन्मेष और नव शिल्पन की कला पुरोगमन कर रही है। आपका अनुभवशिल्प शब्दों की तरंगों पर मीनाकारी करता हुआ परिलक्षित होता है। अपनी कल्पनाशील मनीषा के पारदर्शी वातायन पर आप जिस भाव-बोध से साक्षात्कार करते हैं, उसे सजीव अभिव्यक्ति दे देते हैं। छिटपुट रचना-बिंदुओं का संख्यांकन न किया जाए, तो आपकी सृजन-शृंखला में पहली कड़ी है 'कालूयशोविलास'। इस प्रथम कृति में भी अनुभव-शिल्प को जिस प्रौढ़ता से निखार मिला है, वह विलक्षण है। शब्द-शिल्प को सतर्कतापूर्वक गढ़ने का प्रयास न होने पर भी इसके शब्द-विन्यास में आभिजात्य सौन्दर्य का उभार है। साहित्य जगत् की नयी विधाओं से अनुबंधित न होने पर भी इससे आविर्भूत नव्यता एक पराकाष्ठा तक पहुंच रही है। सूर्य-रश्मियों की भांति उज्जवल और गतिशील इस काव्य-चेतना में एक अनिर्वार आकर्षण है। इस अखण्ड और समग्र अस्तित्व को आकार देने वाले जीवन-वृत्त का सृजन अन्तर्लीनता के दुर्लभ क्षणों में ही संभव है।

'कालूयशोविलास' में हर घटना का चित्रण जितना यथार्थ है, उतना ही अभिराम है। इसको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो सब-कुछ साक्षात् घटित हो रहा है। इसके साहित्यिक सौन्दर्य में निमज्जित होने पर ऐसा अनुभव होता है, मानो एक तराशी हुई आवृत प्रतिमा का अनावरण हो रहा है अथवा एक सजीव आकृति शब्दों के आवरण को बेधकर बाहर झांक रही है।

कालूयशोविलास-२

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

तुलसी-वाङ्मय

कालूयशोविलास-२

आचार्य तुलसी

संपादक

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

स्वर्गीय श्री फतेहचन्दजी सुराणा (चूरू)
की पुण्य स्मृति में
तारा - डालमचन्द सुराणा
सुरेन्द्र, नरेन्द्र, देवकृष्ण सुराणा, कोलकाता
के सौजन्य से

© आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली

कालूयशोविलास-२

लेखक : आचार्य तुलसी

संपादक : साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी
प्रबन्धक—आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२

नवीन संस्करण : सन २००४

मूल्य : एक सौ रुपये

मुद्रक : आर-टेक आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

KALUYASHOVILAS
by Aacharya Tulsi **Rs. 100.00**

अनुक्रम

१.	स्वकथ्य	७
२.	सम्पादकीय	१२
३.	कथावस्तु	२४
४.	उल्लास परिचय	२७
५.	नया संस्करण : नया परिवेश	५८
६.	जीवन-झलक	६२
७.	प्रस्तुति	६४
८.	चतुर्थ उल्लास	६५
९.	पंचम उल्लास	१२४
१०.	षष्ठ उल्लास	१७३
११.	शिखा-पंचक	२३२

परिशिष्ट

१.	सांकेतिक घटनाएं	२६६
२.	नामानुक्रम	३६३
३.	ग्रन्थ में प्रयुक्त मूल रागिनियां	३७५
४.	विशेष शब्दकोश	३९७

स्वकथ्य

हर प्राणी का जीवन गमन-आगमन की एक लम्बी शृंखला है। इस शृंखला में बंधे हुए हजारों-लाखों व्यक्तियों में कोई विरल व्यक्तित्व ही ऐसा होता है, जो इतिहास के संपर्क में आकर अपने अस्तित्व को स्थायित्व दे जाता है। मेरे जीवन-निर्माता, शिक्षा और दीक्षा-गुरु आचार्यश्री कालूगणी तेरापन्थ धर्मसंघ के आकाश-पटल पर महासूर्य की भांति उदित हुए।

नए जीवन में प्रवेश के समय कालूगणी ग्यारह वर्ष के सुकुमार बालक थे। मुझे याद है, मैं भी इसी अवस्था में दीक्षित हुआ था। मैं पूज्य गुरुदेव कालूगणी की परम कारुणिक छाया में पला, उसी प्रकार कालूगणी भी मघवागणी के अप्रतिम स्नेह में निमज्जित होकर रहे। पूज्य गुरुदेव ने मेरे साथ उन्हीं व्यवहारों का प्रत्यावर्तन किया, जिन व्यवहारों की परिधि में उन्होंने मघवागणी की वरद अनुकंपा का संस्पर्श किया था। इससे आगे की बात लिखूं तो वह यह होगी कि कालूगणी अपने गुरुदेव से कुछ आगे बढ़ गए। उन्होंने मुझे प्रत्यक्षतः दायित्व सौंपकर आचार्य और युवाचार्य के बीच का मांगलिक संबंध स्थापित कर लिया, जबकि मघवागणी प्रत्यक्ष रूप से ऐसा कुछ नहीं कर पाए। यद्यपि कालूमुनि को सर्दी से ठिठुरते देख उन्हें अपनी चद्दर ओढ़ाकर तथा कुछ अन्य विलक्षणताओं को प्रकट कर मघवागणी ने भी परोक्ष संकेत अवश्य दे दिए थे, किंतु उन्हें साक्षात रूप में उत्तराधिकार सौंपने की दृष्टि से उस समय परिस्थितियां इतनी अनुकूल नहीं थीं। यह संभावना की जा सकती है कि यदि कालूगणी मघवागणी की सन्निधि कुछ वर्ष और पा लेते तो इतिहास में एक विलक्षण घटना घटित होती। वह विलक्षणता नियति को मान्य नहीं थी, अतः पांच वर्ष की सुखद अनुभूतियों पर एक पटाक्षेप हो गया। पांच साल की छोटी-सी अवधि में भी कालूगणी ने मघवागणी से जो स्नेह-संपोषण और आंतरिक नैकट्य पाया, वह उनके भावी जीवन-निर्माण का पुष्ट और अकंप आधार बन गया।

मघवागणी के बाद कालूगणी ने सोलह वर्ष तक आचार्यश्री माणकगणी और डालगणी के नेतृत्व में विकास के अनेक नए आयाम उद्घाटित किए, फिर भी मघवागणी का अभाव उन्हें बराबर खलता रहा। जहां तक मुझे याद है, इस अभाव की अनुभूति गुरुदेव को अंतिम समय (वि. सं. १९९३) तक होती रही। जब कभी आप मघवागणी के जीवन-प्रसंगों में अवगाहन करते, आपकी आंखें नम हो जातीं। उस समय की अंतः-संवेदना को हम लोग स्पष्ट रूप से पढ़ लेते और बहुत बार कालूगणी के जीवन की गहराइयों में उतरकर मघवागणी से साक्षात्कार कर लेते।

पूज्य गुरुदेव कालूगणी मघवागणी के सक्षम प्रतिनिधि ही नहीं, सर्वांगीण प्रतिबिंब थे। उन्होंने अपने जीवन में और किसी का अनुकरण नहीं किया। पर जिनका किया, समग्रता से किया और कई अंशों में तदनुरूप जीवन जिया।

कालूगणी ने अपने जीवन में अनेक आरोहण-अवरोहण देखे, पर अपने विकासशील व्यक्तित्व पर तनिक भी आंच नहीं आने दी। अनुकूल और प्रतिकूल हर स्थिति को अपने अनुकूल ढालते हुए वे आगे बढ़ते रहे। उनकी अर्हता का अंकन कर आचार्यश्री डालगणी ने वि. सं. १९६६ में उनको अपना उत्तराधिकारी निर्णीत कर दिया। भाद्रव शुक्ला पूर्णिमा की पूर्ण चंद्रोदयी संध्या ने पहली बार उनका अभिवादन कर स्वयं को कृतार्थ अनुभव किया।

आचार्यपद पर आसीन होते ही कालूगणी ने अपने उदीयमान धर्मसंघ का एक समीचीन भावी रेखाचित्र तैयार कर लिया। उस रेखाचित्र में उन्होंने धर्मसंघ के संबंध में जो-जो संभावनाएं और कल्पनाएं कीं, लगभग साकार हो गईं। एक सफल अनुशास्ता का व्यक्तित्व निर्मित कर कालूगणी ने अपने युग को स्वर्णिम युग के रूप में प्रस्तुति दी।

जैन-दर्शन के अनुसार परिवर्तन सृष्टि का अवश्यंभावी क्रम है। यह दो प्रकार से घटित होता है—सहज और प्रयत्नपूर्वक। कालूगणी के युग में कुछ परिवर्तन स्वाभाविक रूप में हुए, पर सलक्ष्य प्रयत्नपूर्वक किए गए परिवर्तन धर्मसंघ के लिए वरदान सिद्ध हो गए। एक छोटे-से परिवेश में विकासशील छोटा-सा धर्मसंघ इतना स्फुरणाशील हुआ कि श्रद्धालु और तटस्थ व्यक्तियों के अंतःकरण में विस्मय और प्रसन्नता की धाराएं बहने लगीं। मेरी दृष्टि से ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा, जिसमें नवजीवन भरने के लिए कालूगणी ने अपने वरद चिन्तन का उपयोग न किया हो।

कालूगणी ने अपने समय में साधुचर्या, साधना, शिक्षा, कला, साहित्य, दर्शन, भाषा, प्रचार, यात्रा आदि अनेक क्षेत्रों में नए उन्मेष दिए। इसके साथ उन्होंने अपने धर्मसंघ की मर्यादा-निष्ठा और अनुशासन-बद्धता को कभी क्षीण नहीं होने

दिया। संघ-विकास की मूल नींव को अधिक ठोस बनाते हुए उन्होंने जो नए परिवर्तन किए, उनसे संघ के व्यक्तित्व में नया निखार आता रहा।

जन-जन के अंतःकरण में धर्म की पावन गंगा प्रवाहित करते हुए वे चातुर्मासिक प्रवास के लिए गंगापुर पहुंचे। विगत कुछ समय से समुद्भूत तर्जनी अंगुली की पीड़ा बढ़ती जा रही थी। समुचित साधन-सामग्री के अभाव में वह कण-सी फुंसी असाध्य होती गई। उस असाध्यता ने गुरुदेव के आयुष्य कर्म की उदीरणा कर दी, इस संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। उस समय इस दृष्टि से विशेष ध्यान ही नहीं दिया गया, अन्यथा गुरुदेव को बचाना संभव भी था। पर हमारे अपने ही प्रमाद ने हमें गुरुदेव की दीर्घकालिक सुखद सन्निधि से वंचित कर दिया।

कालूगणी के जीवन का सांध्यकाल मेरे लिए दोहरी दुविधा का समय था। एक ओर गुरुदेव के असह्य वियोग की संभावना, दूसरी ओर अपने कर्तव्य की प्रेरणा। एक ओर मेरे मुनि जीवन के पीछे छूटे हुए ग्यारह वर्ष आंखों के सागर में तैर रहे थे तो दूसरी ओर अनागत की अनिश्चित अवधि उस सागर में तरंगित हो रही थी। एक ओर बाईस वर्ष का युवक, दूसरी ओर एक विशाल धर्मसंघ का गुरुतर दायित्व। मैंने अनुभव किया कि कालूगणी का हृदय वज्र जैसे सुदृढ़ परमाणुओं से निर्मित था, अन्यथा वे एक युवा चेतना पर इतना भरोसा नहीं कर सकते। कालूगणी ने मुझे संघ की जिम्मेवारी के साथ उसे निभा सकने का संबल देकर मृत्यु का आलिंगन कर लिया।

सहस्रों-सहस्रों दीप-शिखाओं से समालोकित आचार्यश्री कालूगणी के जीवन को मैंने बहुत निकटता से देखा था। मुझे सहज प्रेरणा मिली कि मैं उस विलक्षण व्यक्तित्व को साहित्यिक परिवेश देकर अपने जीवन के कुछ क्षणों को सार्थक बनाऊं। मैं शीघ्र ही अपनी लेखनी को सफल करना चाहता था, पर मुनिश्री मगनलालजी स्वामी ने सुझाव दिया—'आपका काम आपको ही करना है। किंतु इसमें जल्दी करना ठीक नहीं रहेगा। अभी आपको कुछ समय अन्य आवश्यक कार्यों में लगाना चाहिए।' मैंने उनके सुझाव को आदर दिया और कुछ वर्षों तक अन्य कार्यों में संलग्न रहा।

वि. सं. १९९६, फाल्गुन शुक्ला तृतीया को मोमासर (चूरू) में मैंने 'कालूयशोविलास' का निर्माण-कार्य प्रारंभ किया और वि. सं. २००० भाद्रव शुक्ला षष्ठी, गंगाशहर में संध्या के समय इसे संपन्न किया। लगभग चार साल के इस समय में **'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'** के अनुसार विघ्न भी उपस्थित हुए। शारीरिक अस्वास्थ्य के कारण साल-डेढ़ साल तक रचना-कार्य स्थगित रहा। इन सबके

बावजूद मैं इस जीवनवृत्त-रूप ग्रन्थ-सिन्धु का पार पाने में सफल हुआ, इसका श्रेय कालूगणी के वर्चस्वी जीवन को ही दिया जाना चाहिए। कालूगणी के सान्निध्य की सुखद स्मृतियां अब भी मेरी आंखों में तैरती रहती हैं, पर उनकी साक्षात अनुभूति कैसे हो? **'ते हि नो दिवसा गताः'**—हमारे वे दिन चले गए, अब तो उन यादों से ही मन को समाधान देना है।

रचना-कार्य की संपन्नता के तत्काल बाद मैंने गंगाशहर की विशाल परिषद में 'कालूयशोविलास' का वाचन शुरू कर दिया, जिसका समापन वि. सं. २००१, फाल्गुन कृष्णा दशमी, लाडनूं में हुआ। 'कालूयशोविलास' की प्रथम हस्तलिखित प्रति इसकी रचना के साथ-साथ मैंने तैयार की। दूसरी प्रति वि. सं. २००३ में मुनि नवरत्न (मोमासर) ने लिखी। उस प्रति से पचासों प्रतियां लिखी गईं और साधु-साध्वियों द्वारा परिषद में कालूयशोविलास का वाचन होता रहा।

वि. सं. २०३२ तक 'कालूयशोविलास' हमारी पुस्तक-मंजूषा में ज्यों का त्यों पड़ा रहा। कई बार इसके पुनर्वीक्षण और संशोधन का प्रसंग चला, पर काम शुरू नहीं हुआ। गत वर्ष जयपुर चातुर्मास में साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा इस कार्य को पुनः हाथ में लेने में निमित्त बनी। वह उत्तर-साधिका के रूप में काम करने के लिए तैयार हुई और मैंने अपना काम प्रारंभ कर दिया।

मेरे सामने बत्तीस वर्ष पूर्व निर्मित एक कृति थी, जिसे अब जी भरकर तराशना था। मैंने भाषा, लय, संदर्भ आदि शिल्पों में खुलकर परिवर्तन किया, किंतु मूलभूत शिल्प-शैली को नहीं बदला। आज यदि 'कालूयशोविलास' की रचना होती तो इसका स्वरूप कुछ दूसरा ही होता। फिर भी बत्तीस वर्ष पूर्व की प्रति के साथ परिवर्तित प्रति की तुलना की जाएगी तो काफी अंतर परिलक्षित होगा।

'कालूयशोविलास' का संशोधन करते समय मुझे जयाचार्य के युग की स्मृति हो आई। 'भगवती सूत्र की जोड़' का निर्माण करते समय जयाचार्य बोलते और साध्वीप्रमुखा गुलाबसती लिखतीं। उनकी स्मरण-शक्ति और ग्रहण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि उन्हें लिखने के लिए दूसरी बार पूछना नहीं पड़ता।

इतिहास स्वयं को दोहराता है, इस जनश्रुति को मैंने साकार होते हुए देखा। 'कालूयशोविलास' के संशोधन एवं परिवर्धन-काल में बहुत स्थलों पर मैं बोलता गया और साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा लिखती गई। 'कालूयशोविलास' ही नहीं, 'माणक-महिमा', 'डालिम-चरित्र' आदि जीवन-चरित्रों के संपादन में भी उसने काफी श्रम किया। इससे मुझे काम करने में सुविधा हो गई और उसको राजस्थानी भाषा पढ़ने-लिखने का अभ्यास हो गया।

परिवर्तित-परिवर्धित 'कालूयशोविलास' की नई प्रतिलिपि तैयार होते ही

'आदर्श साहित्य संघ' ने इसका अधिग्रहण कर लिया। इसके बावजूद परिवर्तन का सिलसिला पूरा नहीं हुआ। क्योंकि उसके बाद साधु-साध्वियों की अंतरंग परिषद में. समालोचनात्मक दृष्टि से 'कालूयशोविलास' का पारायण किया। उस समय तक भी परिवर्तन की नई संभावनाओं के द्वार मैंने बंद नहीं किए, फलतः निर्णायक स्थिति तक पहुंचते-पहुंचते एक साल से अधिक समय लग गया। परिष्कार के बाद इसका जो रूप बना, वह मेरे लिए आह्लाददायक है। इसके कुछ गीत प्राचीन गीतों की रागिनियों में आबद्ध हैं, अतः नए साधु-साध्वियों के लिए थोड़ी कठिनाई हो सकती है। फिर भी पूज्य गुरुदेव का यह जीवन-वृत्त हमारे धर्मसंघ को नित नया शिक्षा-संबल दे सकेगा, ऐसा विश्वास है।

'कालू-जन्म-शताब्दी' के पुण्य प्रसंग पर कालूगणी को समग्रता से जानने-समझने की भावना स्वाभाविक है। अपने अंतस्तोष के लिए किया गया मेरा यह सृजन जन-जन की जिज्ञासा का स्वल्प-सा भी समाधान बना तो मुझे अतिरिक्त आह्लाद की अनुभूति होती रहेगी।

आचार्य तुलसी

गोठी-भवन
सरदारशहर
३० अगस्त, १९७६

संपादकीय

आचार्यश्री कालू अपने बचपन में एक निर्मल निर्झर के रूप में छोटे-से देहात में बह रहे थे। आचार्यश्री मघवा का ध्यान उस ओर केंद्रित हुआ। वे उसकी निर्मलता एवं गतिशीलता से प्रभावित हुए और उसे तेरापंथ की सुरम्य वाटिका में बहा लाए। उस निर्झर के उन्मुक्त बहाव एवं मधुर निनाद ने उसके आसपास चलनेवालों का मन मोह लिया और एक दिन वह उस वाटिका का प्राण बन गया।

निर्बाध गति से प्रवहमान उस जल-प्रपात से तेरापंथ-वाटिका का सौंदर्य उत्तरोत्तर निखरने लगा। बीच-बीच में पतझर के हल्के-भारी झोंके भी आए, किंतु वे स्वयं हतप्रभ होकर अस्तित्व-विहीन हो गए। अनेक आवर्तों-प्रत्यावर्तों के मध्य बहने वाले उस निर्झर की स्थिर चेतना को संगीत की थिरकती लहरों पर अतियात्रित करने का काम किया है युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी ने।

आचार्यश्री तुलसी सृजन की ऊर्जा के सक्षम केंद्र हैं। उनकी प्रतिभा में कथ्य के नए उन्मेष और नव शिल्पन की कला पुरोगमन कर रही है। उनका अनुभव-शिल्प शब्दों की तरंगों पर मीनाकारी करता हुआ परिलक्षित होता है। अपनी कल्पनाशील मनीषा के पारदर्शी वातायन पर वे जिस भाव-बोध से साक्षात्कार करते हैं, उसे सजीव अभिव्यक्ति दे देते हैं। छिटपुट रचना-बिंदुओं का संख्यांकन न किया जाए, तो उनकी सृजन-शृंखला में पहली कड़ी है 'कालूयशोविलास'। इस प्रथम कृति में भी अनुभव-शिल्प को जिस प्रौढ़ता से निखार मिला है, वह विलक्षण है। शब्द-शिल्प को सतर्कतापूर्वक गढ़ने का प्रयास न होने पर भी इसके शब्द-विन्यास में आभिजात्य सौंदर्य का उभार है। साहित्य जगत की नई विधाओं से अनुबंधित न होने पर भी इससे आविर्भूत नव्यता एक पराकाष्ठा तक पहुंच रही है। सूर्य-रश्मियों की भांति उज्ज्वल और गतिशील इस काव्य-चेतना में एक अनिर्वार आकर्षण है। इस अखंड और समग्र अस्तित्व को आकार देने वाले जीवन-वृत्त का सृजन अंतर्लीनता के दुर्लभ क्षणों में ही संभव है।

'कालूयशोविलास' के सृजन-काल में आचार्यश्री तुलसी अपनी दैहिक चेतना को सर्वथा विस्मृत कर आचार्यश्री कालू के व्यक्तित्व में खो गए। यही कारण है कि आचार्य-पद के विविध-आयामी दायित्व का निर्वहन करते हुए भी उन्होंने चार साल की छोटी-सी अवधि में साहित्य के क्षितिज पर एक अभिनव कृति का अवतरण कर दिया।

श्रेष्ठ कार्यों में अनाहूत बाधा की उपस्थिति स्वाभाविक है। आचार्यश्री की सृजनशीलता में भी एक बड़ी बाधा आई और कम-से-कम एक साल का समय उसके साथ जूझने में पूरा हो गया। वह बाधा कहीं बाहर से नहीं, भीतर से उभरी। उसका हेतु था देह के प्रति रहा हुआ गहरा उपेक्षाभाव।

गर्मी का समय, राजस्थान की तपती दुपहरी और तारानगर-प्रवास में रचनाधर्मिता के बहुमूल्य क्षण। आचार्यश्री भोजन के बाद चार-पांच घंटों तक बराबर लेखन-कार्य में व्यस्त रहते। मस्तिष्क के तंतुओं पर दबाव पड़ा। शरीर का एक पार्श्व कुंठित हो गया। फलतः संवत १९९९ के चूरू चातुर्मास में 'कालूयशोविलास' निर्माण-कार्य की तो बात ही क्या, कई महीनों तक प्रवचन तक स्थगित करना पड़ा। इस तीव्र गत्यवरोध के बावजूद आचार्यश्री अपने संकल्प पर दृढ़ थे और स्वास्थ्य में थोड़ा-सा सुधार होते ही पुनः सृजन-चेतना के प्रति समर्पित हो गए।

आचार्यश्री के शारीरिक अस्वास्थ्य में एक और हेतु की संभावना की जा सकती है, वह है कविता में दग्धाक्षरों का प्रयोग। पूज्य कालूगणी ने सृजनशील साहित्यकारों का निर्माण किया, पर साहित्य का सृजन नहीं किया। क्यों? क्या उनकी सृजन-चेतना पर कोई आवरण था? सृजन की संपूर्ण क्षमताओं की समन्विति में भी कालूगणी के मन में यह बात रमी हुई थी कि कविता में समागत दग्धाक्षर बहुत बड़े अहित का निमित्त बन जाता है। संभावित अहित की कल्पना ने कालूगणी की साहित्यिक प्रतिभा को दूसरा मोड़ दे दिया।

आचार्यश्री तुलसी की साहित्यिक प्रतिभा में प्रारंभ से ही स्फुरणा थी। 'कालूयशोविलास' उसी स्फुरणा की एक निष्पत्ति है। स्फुरणा के अनिरुद्ध प्रवाह में एक पद्य लिखा गया—

गुरु-गुण अगणित गगन-सम, मम मति परिमित मान।
अल्प अनेहा बहु विघन, क्यूं कर है अवसान।।

काव्यविदों के अनुसार 'अल्प अनेहा बहु विघन' इस प्रयोग में दग्धाक्षर है। प्रारंभ में इस प्रयोग पर ध्यान केंद्रित नहीं हुआ। पर अस्वास्थ्य की गंभीरता

ने इस तथ्य को उजागर किया। फलतः उक्त पद्य को रूपांतरित कर गत्यवरोध को दूर किया गया।

आचार्यश्री अपने इस सृजन को परिपूर्ण नहीं मानते। उनका चिंतन है कि पूज्य गुरुदेव कालूगणी को उनके व्यक्तित्व की गहराइयों में उतरकर ही समझा जा सकता है। उनकी गतिशील चेतना-तरंगों से निर्मित प्रभामंडल अपने आप में विलक्षण था। उस प्रभामंडल के सामने जाते ही व्यक्ति की अस्मिता पानी-पानी होकर बह जाती और वह एक चुंबकीय आकर्षण में बंध जाता। आचार्यश्री तुलसी स्वयं भी कालूगणी के प्रथम दर्शन में अभिभूत होकर उनके प्रति सर्वात्मना समर्पित हो गए।

आचार्यश्री के अभिमत से ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व को समग्रता से अभिव्यक्ति देने का प्रयास एक पंगु व्यक्ति द्वारा पर्वतारोहण कर वहां शयन करने की दुःसंभव कल्पना जैसा है। एक बौना व्यक्ति आकाश को अपनी भुजा से मापना चाहे, एक अज्ञ मनुष्य ग्रह-नक्षत्रों की गणना करना चाहे और कोई समुद्र के झागों को तोलना चाहे तो सफलता नहीं मिल पाती। इसी प्रकार अनेक-अनेक कवि मिलकर भी कालूगणी के यशस्वी जीवन को विश्लेषित नहीं कर सकते। इस कथन में आचार्यश्री की अपनी विनम्रता और ऋजुता का दर्शन है, तो प्रस्तुत कृति में उभरे हुए सजीव बिम्ब कवयिता के सशक्त लेखन और स्फुरणाशील मनीषा के प्रतीक हैं।

'कालूयशोविलास' में हर घटना का चित्रण जितना यथार्थ है, उतना ही अभिराम है। इसको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो सब कुछ साक्षात घटित हो रहा है। इसके साहित्यिक सौंदर्य में निमज्जित होने पर ऐसा अनुभव होता है, मानो एक तराशी हुई आवृत प्रतिमा का अनावरण हो रहा है अथवा एक सजीव आकृति शब्दों के आवरण को चीर कर बाहर झांक रही है।

रूपांतरण की अनेक प्रक्रियाओं के मध्य से निकलकर 'कालूयशोविलास' अपने इस स्वरूप को उपलब्ध हुआ है। मैंने पहली बार जब इससे साक्षात्कार किया तो अवबोध-अप्रबोध के कई उजालों-अंधेरों में खो गई। सतह पर शब्दों की तूफानी दौड़ और भीतर गहरे में भावना के सुस्थिर महासागर ने मुझे विस्मय-विमुग्ध कर दिया। प्राचीन लिप्यंकन, पुरानी रागिनियों, प्राचीन इतिहास और अतीत के घटना-वृत्तों ने मुझे प्रेरित किया उसके भीतर पैठने के लिए, पर साहस नहीं हुआ। सीमित जानकारी के धरातल पर प्रज्ञा की यात्रा हो भी कैसे सकती है? अरण्यानी में भटकी हुई हरिणी की भांति मैं भी दिग्भ्रांत होकर अपना मार्ग खोज रही थी। आखिर कालूगणी के इस भव्य, सम्मोहक और आदर्श जीवन-वृत्त में एक प्रवेश-द्वार मिल गया, जिसके पथ-दर्शक स्वयं इसके रचयिता

रहे हैं।

मेरी पहली यात्रा एक यंत्रचालित यान की भांति मस्तिष्क की चौखट पर दस्तक दिए बिना ही हो गई। दूसरी यात्रा में आलोक-किरणों का स्पर्श हुआ।

तीसरी और चौथी बार की यात्रा में कुछ आत्मसात जैसा हुआ तो मैंने जिज्ञासा के तटहीन अंतरिक्ष में प्रवेश किया और लेखक द्वारा प्रयुक्त शब्दों की अर्थयात्रा करने का प्रयास किया। किंतु मुझे अनुभव हुआ कि यह भी एक श्रमसाध्य कार्य है।

'कालूयशोविलास' में आचार्यश्री कालूगणी का आभावलय पारिपार्श्विक वृत्त-चित्रों के लिए एक स्वच्छ दर्पण के रूप में आभासित है। आचार्यश्री तुलसी ने जिस दिन इस संबंध में कुछ काम करने का निर्देश दिया, एक अनायास आविर्भूत स्वीकृति ने मुझे इस कर्म के प्रति समर्पित कर दिया। काम शुरू करने से पहले सोचा था कि दो-चार महीनों में इसे निपटा दूंगी। किंतु जब अपनी सीमाओं की ओर झांका, तब अनुभव हुआ कि 'कालूयशोविलास' पर काम करने की चाह विरल पंखों से सीमा-हीन नभ में अवगाहन करने और अथाह क्षीर-सागर को एक सांस में पी जाने की चाह जैसी असंभव कल्पना है। इस दृष्टि से सोचा गया कि समग्रता की अभीप्सा से मुक्त होकर एक बार प्रारंभिक कार्य में संलग्न हो जाना चाहिए, इस निर्णय के साथ ही मैंने आचार्यश्री के आशीर्वाद और मार्गदर्शन, इन दो तटों के बीच बहना शुरू कर दिया।

प्रस्तुत संदर्भ में कृति की समालोचना मेरा उद्देश्य नहीं है, पर जो प्रसंग किसी भी दृष्टि से मन के तारों को झनझना गए, उनकी संक्षिप्त-सी चर्चा करने का लोभ-संवरण मैं नहीं कर सकूंगी।

गुरु-शिष्य का संबंध चेतना के स्तर पर जुड़ता है। इस संबंध की स्वीकृति चेतना-विकास के लिए ही होती है। शिष्य अपने गुरु की प्रत्यक्ष सन्निधि अथवा परोक्ष रूप में उन्हीं से मार्गदर्शन पाकर नई यात्रा शुरू करता है, उस समय उसे सर्वाधिक अपेक्षा रहती है गुरु के वात्सल्य की। वह वात्सल्य कभी-कभी चेतना के स्तर से हटकर देह से अनुबंधित हो जाता है। दैहिक अनुबंध से प्रवाहित स्नेहधारा भी चैतन्य के ऊर्ध्वारोहण में निमित्त बन सकती है। कालूगणी के प्रति मघवागणी के वात्सल्य का एक निदर्शन देखिए—

इक दिन शिशु पड़िलेहण करतो,
दीठो डांफर स्यूं ठंठरतो।
तरुवर-पल्लव ज्यूं थरहरतो।।

शिशु-मुनि के प्रकंपित गात ने आचार्य के मन को प्रकंपित कर दिया। उन्होंने अपनी चद्दर उतारकर मुनि कालू को ओढ़ा दी।

गुरुदेव द्रवित करुणा आणी,
निज गाती शिशु-तन पर ठाणी।
दीन्ही मनु युवपद-सहनाणी।।

शिष्य की प्रज्ञा को स्फुरणा देने के लिए गुरु अपने पुरुषार्थ की सतत-प्रवाही कई धाराएं उस दिशा में मोड़ देते हैं। मघवागणी ने मुनि कालू की वक्तृत्व-कला विकसित करने के लिए जो उपक्रम किए, उसका एक नमूना देखिए—

गुरुदेव स्वयं गाणै री गती सिखाता
बोलण री विध, व्याख्या री कला बताता।
खुद अर्थ करी कालू मुख ढाळ गवाता,
निर्माण शिष्य रो निज कर्तव्य निभाता।।

मुनि कालू ने मघवागणी की सन्निधि में अनिर्वचनीय आत्मीय भाव का अनुभव किया। जिस क्षण क्रूर काल ने आत्मीय अनुबंधों की उस रजत-रज्जु को एक झटके से तोड़ा, उस समय मुनि कालू के कोमल मन पर तीव्र आघात हुआ। उनकी विरह-व्यथित मनःस्थिति के गवाक्ष में झांकिए—

नेहड़लां री क्यारी रो म्हांरी रो के आधार?
सूक्यो सोतो जो इकलोतो सूनो-सो संसार।
आ इकतारी थांरी म्हांरी सारी ही विसार।
कठै क्यूं पधार्‌या म्हांरी हृत्तंत्री रा तार!

'कालूयशोविलास' के चरितनायक अपने आप में एक काव्य, उपन्यास या इतिहास थे। आचार्यश्री तुलसी ने अपनी प्रतिभा-प्रभा से आलोकित कर उस काव्य या इतिहास को अमरत्व दे दिया। कवि की लेखनी का स्पर्श पाए बिना कोई भी व्यक्तित्व निर्बाध रूप से प्रवाहित हो नहीं सकता। आचार्यश्री की लेखनी में एक ओर जहां सुललित शब्द-प्रवाह है, वहां भाव-पक्ष की रस-प्रवणता भी कम लुभावक नहीं है। पूज्य कालूगणी के पदारोहण के समय कवयिता उनके मुखारविन्द को चंद्रमा से उपमित कर नई प्रच्छादनिका में छिटकती हुई धवल-धवल चांदनी की आभा देखते हैं—

सघन सुकृत सम सिततम प्रवर पछेवड़ि एक।
मुनिवर प्रधरावी नवी कीन्हो पद-अभिषेक।।
डीले डपटी दुपटी दीपै धवल प्रकाश।
पूज्य-वदन रयणी-धणी प्रकटी ज्योत्स्नाभास।।

आचार्यश्री तुलसी ने अपने लेखन को शाब्दिक चमत्कार की सीमा से ऊपर उठाकर सैद्धांतिक और सांस्कृतिक परिवेश में प्रस्तुति देने का सलक्ष्य प्रयास किया है। एक निदर्शन देखिए–

अष्ट कर्म अरि-दल दली, हो अष्टम गुणठाण।
अष्ट इला-तल ऊपरे, अष्ट महा-गुण-ठाण।।
गंतुमना सुमना सदा, अष्ट मातृपद-लीन।
महामना मथ अष्ट मद, अष्टम पद आसीन।।
अष्ट सिद्धि आगम-कथित, अष्ट आप्त परिहार्य।
अष्ट रुचक रुचिकर तिणै, अष्ट अंक अविकार्य।।

उक्त पद्यों में तत्त्व-निरूपण के साथ आठ-आठ बातों की जो संयोजना की गई है, वह विलक्षण प्रतिभा की परिचायक है।

तीसरे उल्लास की छठी, सातवीं और आठवीं गीतिका में सैद्धांतिक चर्चा को जिस सहजता और सरलता से प्रस्तुत किया गया है, वह पाठक की सैद्धांतिक मनीषा को स्फुरणा देने वाली है।

कवि की जीवन-यात्रा निरंतर गतिशील यायावर की जीवन-यात्रा है। यात्रा अनुभव-वृद्धि का सशक्त माध्यम है। यात्राकाल में अनेक प्रकार के लोगों से संपर्क होता है। कवि स्वयं संत-परंपरा के संवाहक हैं, अतः वे अपने समय के संत-संन्यासियों का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं–

कइ भस्म-विलेपित गात्रा, शिर जटाजूट बेमात्रा।
मृग-छाल विशाल बिछावै, मुख सींग डींग संभलावै।।
बाबा बाघंबर ओढ़ै, गंगा-जमना-तट पोढ़ै।
कइ न्हा-धो रहै सुचंगा, कइ नंगा अजब अडंगा।।
कइ पंचाग्नी तप तापै, जंगम थावर संतापै।
ऊंचै स्वर धुन आलापै, कइ जाप अहोनिश जापै।।
कइ ऊं हरि-ऊं हरि बोलै, उदरंभरि मौन न खोलै।
कइ डगमग मस्तक डोलै, भव-वारिधि ज्यान झकोलै।।

तीर्थंकरों की वाणी का प्रभाव अनुपमेय होता है। हजारों प्रयत्नों से जो काम संभव नहीं होता, वह तीर्थंकरों के समवसरण में सहज रूप से घटित हो जाता है। जन्मजात शत्रुभाव रखने वाले प्राणी भी वहां मैत्री की धारा में बह जाते हैं। तीर्थंकरों के इस अतिशय को रूपायित करते हुए कवि ने लिखा है—

ईभारी छारी अहो, वारि पिये इक घाट।
मञ्जारी मूषक मिलै, खिलै प्रेम की बाट।।
अश्व-महिष अहि-नकुल किल, हिलमिल करत मिलाप।
जिनवाणी रो ही सकल, अद्‌भुत प्रौढ़ प्रताप।।

कृति में एक ओर कवित्व का उत्कृष्ट निखार है तो दूसरी ओर पात्रों के अनुरूप साधारण बोलचाल की भाषा के प्रयोग अत्यंत मनोहारी हैं। माता-पुत्र का यह संवाद कितना सुरुचिपूर्ण और हृदयग्राही है—

मां! ओ तन सुकुमार, चरण कमल कोमल अतुल।
पय अलवाण विहार, परम पूज्य क्यूंकर करै?
जम्पै जननी जात! पूज्य भाग्यशाली प्रवर।
पग-पग पर प्रख्यात, पुण्यवान रै नौ निधि।।
मैं पूछ्यो ए मां! आं पूजी म्हाराज रै।
चेहरै री आभा, पळपळाट पळपळ करै।।
बोलै मां, बेटा! के बातां आंरी करां।
पुनवानी के ठा कठै किती संचित करी।।

× × ×

कुण होसी पाछै, आं पूजी म्हाराज रै?
उत्सुकता आ छै, मनै बता दै मावड़ी!
बोली तड़ाक दे'र, लाल आंख कर मां मनै।
खबरदार है फेर, इसी बात कब ही करी।।
तपो दिवाली कोड़, आपां रा अै पूज्यजी।
मेटो खलता-खोड़, सारां री शासणपती।।

'कालूयशोविलास' की भाषा संस्कृतनिष्ठ राजस्थानी है। कवि के मस्तिष्क में अपने कार्यक्षेत्र और चिंतन की भांति भाषागत संकीर्णता भी नहीं है। इसलिए जोधपुरी, उदयपुरी, बीकानेरी, हरियाणवी, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओं के प्रयोग भी राजस्थानी भाषा को समृद्धि दे रहे हैं।

छहों उल्लासों के प्रारंभिक पद्य विषयवस्तु और भाषा दोनों दृष्टियों से विलक्षण हैं। इससे रचनाशैली में द्विरूपता परिलक्षित होती है। शैली-भेद की इस समस्या को समाहित करने के लिए ही संभवतः उनको मंगलवचन के रूप में भिन्न प्रस्तुति दी गई है। इससे भाषा, शैली और वर्णनगत द्वैध भी कृति को विशेष सौन्दर्य देता हुआ प्रतीत होता है।

शब्दों की शक्ति सीमित है, फिर भी वे असीम भावबोध का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक शब्द अनेक अर्थों का वहन करता है। लेखक किस शब्द को किस भावबोध के साथ योजित करता है, यह उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। 'कालूयशोविलास' में द्व्यर्थक शब्दों के प्रयोग कवि के समृद्ध शब्दकोश के परिचायक हैं। एक प्रसंग देखिए—

> कोण सुवर्ण सुवर्ण स्वरूपे कुण धत्तूर तरूड़ो?
> कुण आदित्य अर्क अभिधाने अर्कपत्र कुण रूड़ो?
> एक पंचशिख सिंह शार्दूलो गिरि-निकुंज में गूंजै।
> एक भूप रो गुनहगार सिर जूत फड़ाफड़ जूंझै।।
> कुण मातंग इन्द्र ऐरावत और श्वपच इक नामै।
> लोकनाथ तत्पुरुष बहुब्रीहि अंतर भू-नभ सामै।।

शब्दचित्र के माध्यम से एक व्यक्तित्व की वृत्तशृंखला का संयोजन करना कवि का मूलभूत उद्देश्य रहा होगा। पर इस कृति में मानव-स्वभाव और प्राकृतिक सौन्दर्य के जो बिम्ब उभरे हैं, उन्हें पढ़कर न आंखें थकती हैं और न मन भरता है। अरावली पर्वतमाला पर फूलाद की चौकी का जो वर्णन है, वह प्रकृति-चित्रण के साथ भाषा की दृष्टि से भी एक नया प्रयोग है।

ऋतुवर्णन काव्य का एक विशेष अंग है। उसे खींचकर लाया जाए तो वह अप्रासंगिक-सा लगता है। प्रस्तुत कृति में ग्रीष्म, बसन्त, शीत आदि ऋतुओं का जो सहज वर्णन हुआ है, वह इस जीवनवृत्त को काव्य के कमनीय धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है।

कवि प्रकृति के परम उपासक हैं। वे अपने सृजन में तथ्यों की सजीव प्रस्तुति के साथ कल्पक मनीषा की यात्रा को भी सहमति देते रहे हैं। यही कारण है कि उन्होंने मर्यादा-महोत्सव जैसे यथार्थ को छहों ऋतुओं के रूप में परिकल्पित कर अपने शिल्प को मौलिक बना दिया। वर्षाऋतु से रूपायित मर्यादा-महोत्सव का स्वरूप देखिए—

गंगा जमना और सुरसती उछल-उछल कर गळै मिलै,
विरह-ताप-सन्ताप भुलाकर रूं-रूं हर्षांकूर खिलै।
गहरो रंग हृदय में राचै, नाचै मधुकर जिधर निहारो,
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी, म्हामोच्छब लागै प्यारो।।

शारदीया पूर्णिमा की चांदनी में प्रवासी हंस मानसरोवर लौट आते हैं। हंसोपम साधु-साध्वियां शरदोपम मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर गुरुकुलवास में पहुंचकर कैसे अनिर्वचनीय तोष का अनुभव करते हैं—

बण्या प्रवासी श्रमण-सितच्छद गुरुकुल-मानस मौज करै,
परम कारुणिक कालू-वदन-सूक्त मुक्ताफल भोज वरै।
नहिं सरदी-गरमी रो अनुभव, साक्षात शरद वरद वरतारो,
तेरापंथ पंथ रो प्रहरी म्हामोच्छब लागै प्यारो।।

'कालूयशोविलास' के चरितनायक, प्राणहारी व्रण-वेदना को प्रतिहत नहीं कर पाए, फलस्वरूप अंतश्चेतना के सतत जागरण की स्थिति में भी उनकी शरीर-चेतना के ओज पर कुहरा छाने लगा। उस समय कवि की मनःस्थिति को उन्हीं के शब्दों में देखिए—

आज म्हांरै गुरुवर रो लागै अंग अडोळो।
सदा चुस्त-सो रहतो चेहरो सब विध ओळो-दोळो।।
कुण जाणी व्रण-वेदन वेरण दारुण रूप बणासी,
सारै तन में यूं छिन-छिन में अपणो रोब जमासी।
ओ उणिहारो रे जाबक पड़ग्यो धोळो।।

इस प्रसंग का समूचा वर्णन इतना सजीव और द्रावक है कि पढ़ते-पढ़ते आंखें नम हो जाती हैं।

काव्य की किशलय काया अलंकारों से विभूषित होकर अपने सौंदर्य को अतिरिक्त निखार देने में सक्षम हो जाती है। छन्द, रस, अलंकार आदि के समुचित समन्वयन से आबद्ध सुललित और रसीले शब्द जब भाव-भूमि पर अंकित होते हैं तो अपने पाठक को विमुग्ध कर देते हैं। आचार्यश्री की कृतियों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि अलंकार एक-दूसरे से आगे दौड़ रहे हैं, तो अनुप्रास अलंकार एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत है। इस प्रस्तुति के उत्कर्ष में आचार्यश्री का शब्द-शिल्प भावना की लहरों पर अठखेलियां करता हुआ प्रतीत हो रहा है। कुछ निदर्शन देखिए—

कालू शासन-कल्पतरु, कालू कला-निधान।
कालू कोमल कारुणिक, कालू गण की शान।।

मघवागणी का साया उठ जाने पर कालूगणी की मनःस्थिति का चित्रण उत्प्रेक्षा अलंकार में उभर रहा है—

पलक-पलक प्रभु-मुख-वयण-स्मरण-समीरण लाग।
छलक-छलक छलकण लग्यो कालू हृदय-तड़ाग।।

उपमा और उत्प्रेक्षा के मध्य झांकता हुआ स्याद्वाद का निरूपण देखिए—

स्वंगी सतभंगी सुखद सतमत संगी-हेत।
व्यंगी एकांगी कृते झंगी-सो दुख देत।।
इतर दर्शणी कर्षणी नय-वणिज्य-अनभिज्ञ।
विज्ञ वणिग जिन-दर्शणी नय दुर्णय-विपणिज्ञ।।

डिंगल कविता से प्रभावित 'कालूयशोविलास' के एक प्रसंग में अनुप्रास की छटा उल्लेखनीय है—

खिलक्कत कित्त कुरंग सियाल,
मिलक्कत मांजर मोर मुषार।
सिलक्कत सांभर शूर शशार,
ढिलक्कत ढक्कत ढोर ढिचार।।

संघीय-संपदा-वर्णन के प्रसंग में साध्वियों से संबंधित एक पद्य पढ़िए—

संयम-रंगे रंगिणि चंगिणि सज्ज मतंगिणि चाल।
शील सुरंगिणि उज्ज्वल अंगिणि लंघिणि जग-जंबाल।।

आचार्यश्री तुलसी एक बृहत्तर धर्मसंघ के आचार्य हैं, साधक हैं, लेखक हैं, कवि हैं, वक्ता हैं और उससे भी अधिक एक समर्पित व्यक्तित्व हैं। समर्पण का संबंध भाव-प्रवणता से है। भावना स्त्री-हृदय की कोमल उर्वरा में अंकुरित होती है। पुरुष-हृदय की परुषता में समर्पण का बीज-वपन ही कठिन है, अंकुरण की तो बात ही दूर। किंतु आचार्यश्री की अंतश्चेतना पर समर्पण का जो पल्लवन हुआ है, वह एक विशेष घटना है। आचार्यश्री का समर्पण-भाव देखकर यह संदेह सावकाश हो जाता है कि एक स्त्री में भी इतना समर्पण होता है या नहीं?

अपने जीवन-निर्माता आचार्य के प्रति इतनी विनम्रता! इतनी कृतज्ञता! इतनी गुणग्राहकता! पता नहीं, यह वृत्ति साधना की निष्पत्ति है या सहज प्रकृति है? कुछ भी हो, यह वृत्ति पाठक को भी समर्पण का दिशा-संकेत देती है। युवाचार्य पद-प्रदान के उस ऐतिहासिक प्रसंग में आचार्यश्री कालूगणी की निष्कारण करुणा से अभिभूत आचार्यश्री तुलसी की भावनात्मक गहराई में झांकिए—

पद युवराज रिवाज साझ सब मुझनै दीधो स्वामी।
रजकण नै क्षण में मेरू बणवायो अंतर्यामी।।
जल-बिंदू इन्दूज्ज्वल मानो शुक्तिज आज सुहायो।
बो मृत्पिण्ड अखण्ड पलक में कामकुम्भ कहिवायो।।

× × ×

साधारण पाषाण शिल्पि-कर दिव्य देवपद पायो।
किं वा कुसुम सुषमता-योगे महिपति-मुकुट मढायो।।
मृन्मय रत्न प्रयत्न-प्रयोगे शाण-पाण सरसायो।
बिंदु सिंधुता रो जो उपनय साक्षात आकृति पायो।।
लोह-कंचन-करणारो पारस ग्रंथ-ग्रंथ में गायो।
पर पारस-करणारो पारस आज सामनै आयो।।

छठे उल्लास की तेरहवीं गीतिका में धर्मसंघ के आचार्य और उनके अनुयायियों तथा गुरु-शिष्यों के आंतरिक मधुर संबंधों को जो सरस और साहित्यिक अभिव्यक्ति मिली है, वह अपूर्व है। विरह के मंच पर अतीत की सुखद स्मृतियों का मंचन गेय काव्य को श्रव्य से भी अधिक दृश्य जैसी अनुभूति में ढाल देता है।

उल्लासोत्तर पांच शिखाओं में कालूगणी की संक्षिप्त जीवन-झांकी के साथ संस्मरणों की लंबी शृंखला इतिहास के अनेक आवृत रहस्यों को खोल रही है। इसमें अनेक घटनाएं ऐसी हैं, जिनकी जानकारी एकमात्र आचार्यश्री को ही है। साहित्यिक अवतरण के अभाव में उनके लोप की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता था, पर अब उन सबको पूरा संरक्षण उपलब्ध हो गया है।

आचार्यप्रवर की परिपक्व लेखन-चेतना से निष्पन्न 'कालूयशोविलास' हमारे धर्मसंघ की एक अमूल्य थाती है। अतिरंजन-मुक्त मानवीय मूल्यों से अनुबंधित यह सृजन अनेक सृजनशील चेतनाओं को नई स्फुरणा देने में सक्षम है। इसकी अपूर्ण यात्रा में भी मुझे विचित्र संतृप्ति का अनुभव हुआ है। इसके स्वाध्याय में निमज्जित चेतना को अपरिसीम आनन्द की अनुभूति हुई है। इस अनुभूति में भी प्रस्तुत कृति के स्रष्टा आचार्यश्री तुलसी की करुणा ने काम किया है।

२८ संदर्भ में कवि की निम्नोक्त संवेदना यथार्थ प्रतिभासित हो रही है—

सिद्ध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः,
संभावना-गुणमवेहि तमीश्वराणां।
किं वा भविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता,
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत्।।

महान व्यक्तियों द्वारा महत्तर कार्यों में नियुक्त सामान्य व्यक्ति भी सफल हो जाते हैं, वह सारी क्षमता उन विशिष्ट व्यक्तियों की ही होती है। यदि सूर्य अपने सारथि अरुण को आगे नहीं करता तो क्या वह अंधकार को दूर करने में सक्षम हो सकता था?

परमाराध्य आचार्यप्रवर के असीम अनुकंपन ने मुझे गति दी और 'कालूयशोविलास' के उत्तरकार्य में संपृक्त होकर मैंने आत्मतोष का अनुभव किया। परिशिष्ट के घटना-प्रसंगों में मेरी जानकारी के परिपूर्ण स्रोत स्वयं आचार्यश्री हैं। कुछ अन्य विरल स्रोतों से भी मैंने अपनी अनभिज्ञता को कम करने का प्रयास किया है। प्रूफ-निरीक्षण आदि कार्यों में अनेक साध्वियों ने पूरी तन्मयता से अपना योग दिया है। उन सबके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की औपचारिकता को छोड़कर मैं यह शुभाशंसा करती हूं कि आचार्यप्रवर का कर्तृत्व हम सबको अपने संपर्क में लेकर हमारी कर्मशीलता को निरंतर गतिशील करता रहे।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

सरदारशहर
२ सितम्बर, १६७६

कथावस्तु

तेरापंथ धर्मसंघ के आठवें आचार्यश्री कालूगणी का जन्म राजस्थान के छोटे से गांव छापर (चूरू) में हुआ। वे अपने पिता मूलचन्दजी कोठारी और माता छोगांजी के इकलौते पुत्र थे। जन्म के एक साल बाद ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया और पुत्र के लालन-पालन का सारा दायित्व माता छोगांजी पर आ गया। छोगांजी अपने नयनों के तारे पुत्र के साथ पिता के घर रहने लगीं। वहां साधु-साध्वियों के संपर्क से उनके अंतःकरण में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। मां के विचारों का प्रतिबिम्ब पुत्र के जीवन पर पड़ा और वह भी भौतिक परिवेश से दूर हटकर आत्मोदय के स्वप्न देखने लगा।

पूज्य कालूगणी के दो नाम थे—शोभाचंद और कालू। उनकी प्रसिद्धि दूसरे नाम से ही अधिक थी। आठ वर्ष की अवस्था में उन्होंने वि. सं. १९४१, सरदारशहर में तेरापंथ संघ के पांचवें आचार्यश्री मघवागणी के प्रथम बार दर्शन किए। उनका भावुक मन अभिभूत हुआ और वह शीघ्र ही मघवागणी की सन्निधि पाने के लिए उतावला हो उठा। तीन वर्ष तक संस्कारों को विशेष पोषण देने के बाद वे अपनी माता श्री छोगांजी और मासी-दुहिता कानकुमारीजी के साथ बीदासर में पूज्य मघवागणी के कर-कमलों से दीक्षित हो गए।

मघवागणी अपने शैक्ष शिष्य कालू की असाधारण योग्यता और स्थिर प्रज्ञा से प्रभावित हुए। शिष्य को तैयार करने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किया तो कालूगणी ने भी अपने आपको मघवागणी के अनुरूप ढालने का ठोस प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि कालूगणी मघवागणी की प्रतिकृति बन गए।

शिष्य गुरु की मंगलमय छत्रछाया में अपनी क्षमताओं का विकास करने में संलग्न था। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि जिस महान वृक्ष के सहारे उसकी जीवन-लता ऊपर चढ़ रही है, वह असमय में ही गिर पड़ेगा। किंतु किसी का सोचा हुआ कब पूरा होता है? मघवागणी ने माणकगणी को अपना उत्तराधिकार

सौंपकर इस जीवन की यात्रा को संपन्न कर लिया। इस कल्पनातीत आघात को सहने की तैयारी मुनि कालू की नहीं थी। उनका व्यथित होना स्वाभाविक था। फिर भी सोलह वर्षीय किशोर मुनि ने गुरु-वियोग के उन क्षणों में समुद्भूत व्यथा को धैर्य से पी लिया और माणकगणी के संरक्षण में अपने आपको संतुलित कर लिया।

मुनि-जीवन के प्रथम पांच वर्षों में मघवागणी की उपासना कर मुनि कालू माणकगणी को उन्हीं की प्रतिछाया समझकर आगे बढ़ने लगे। पांच वर्ष की अवधि संपन्न हो, उससे पहले ही माणकगणी को काल के क्रूर हाथों ने उठा लिया। मुनि-जीवन के एक दशक में इन दो बड़े आघातों ने मुनि कालू को आत्मनिर्भर बना दिया।

माणकगणी अपने पीछे संघ को कोई व्यवस्था नहीं दे गए। एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नचिह्न को विराम में परिणत करने के लिए धर्मसंघ के सदस्यों ने सर्वसम्मति से डालगणी का नाम प्रस्तावित किया। अनिश्चित भविष्य को एक आलम्बन उपलब्ध हो गया। माणकगणी और डालगणी के अंतरिम काल में मुनि कालू ने जिस सूझबूझ, कर्तव्यनिष्ठा और दक्षता का परिचय दिया, वह तेरापन्थ के इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ है।

डालगणी के बाद तेरापंथ संघ के गरिमापूर्ण आचार्य पद का भार संभाला आचार्यश्री कालूगणी ने। कालूगणी का समय तेरापंथ संघ के लिए अभूतपूर्व प्रगति का समय था। उनके नेतृत्व में प्रगति के बहुमुखी आयामों का उद्घाटन हुआ। साधु-साध्वियों की संख्या में वृद्धि, विहार-क्षेत्र का विस्तार, कार्यक्षेत्र का विस्तार, जन-संपर्क का विस्तार, पुस्तक-भंडार की समृद्धि, हस्तकला का विकास, शिक्षा का विकास आदि अनेक बिंदु संघ-सागर में समर्पित होकर व्यापक रूप से अभिव्यक्ति पाने लगे।

आचार्यश्री कालूगणी एक यशस्वी, वर्चस्वी और ओजस्वी व्यक्तित्व के आधार थे। उनके प्रभाव और पुण्यवत्ता ने विरोधियों को भी अभिभूत कर लिया। उनके शासनकाल में जो सामाजिक और सांप्रदायिक संघर्ष हुए, उनमें भी उनकी सहनशीलता, दूरदर्शिता तथा शान्तिप्रियता को उन्मुक्तभाव से निखरने का अवकाश मिला।

अपने जीवन के सान्ध्यकाल में कालूगणी अरावली की घाटियों में परिव्रजन करते हुए मालवा पहुंचे। वहां से गंगापुर चातुर्मास हेतु लौटते समय उनके बाएं हाथ की अंगुली में एक छोटा-सा व्रण उभरा। व्रण की जटिलता बढ़ी, पर उसकी प्राणहारी वेदना के क्षणों में भी आप खिलते हुए सुमनों की भांति मुसकराते रहे।

व्रण की भयंकरता देखकर डॉक्टर-वैद्यों ने उचित चिकित्सा का परामर्श दिया, पर उनकी दृढ़ संकल्प-शक्ति और अननुमेय मनोबल ने उस परामर्श को ठुकरा दिया। उत्तरोत्तर गिरते हुए स्वास्थ्य ने उनको अपने संघीय दायित्व के प्रति जागरूक कर दिया। चिरकाल से पालित अपनी धारणा को संघीय मुद्रा से अभिमंत्रित करने के लिए उन्होंने अपने उत्तराधिकार-पत्र में मुनि तुलसी का नाम अंकित कर युवाचार्य पद प्रदान के ऐतिहासिक निर्णयक्रम का क्रियान्वयन किया।

अपने अंतिम समय में कालूगणी ने शान्त मन से आत्मा और शरीर की विवेकख्याति का अनुभव किया। ऊर्ध्वारोहित भावधारा के उन क्षणों में उनके मुखारविन्द की दीप्ति उन सबको दीप्त कर रही थी, जो उनके दाएं-बाएं खड़े होकर उस आभामंडल को निहार रहे थे।

वीर माता छोगांजी ने अपने पुत्र के महाप्रयाण का संवाद सुना। एक बार मन आहत हुआ, पर शीघ्र ही जागतिक यथार्थता ने उनको अनित्य और एकत्व भावना से भावित कर दिया। मातुश्री की तत्कालीन मनःस्थिति उनके अपने लिए ही नहीं, हजारों-हजारों श्रद्धालुओं के लिए भी सशक्त आलम्बन बनी।

'कालूयशोविलास' का यह संक्षिप्त रेखाचित्र कालूगणी के जीवन से संबंधित अनेक संस्मरणों, ऐतिहासिक संदर्भों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्यों की सूचना मात्र है। इसके छह उल्लास (विभाग) हैं। प्रत्येक उल्लास में छह कलाओं के अंतर्गत सोलह-सोलह गीतों का आकलन है। उल्लासों की सम्पन्नता पर पांच विशेष गीतों को पांच शिखा के रूप में संयोजित किया गया है। कुल मिलाकर एक सौ एक गीतों से संवलित यह काव्य कालूगणी के जीवन की सजीव अभिव्यक्ति है।

उल्लास-परिचय

चतुर्थ उल्लास

चतुर्थ उल्लास के प्रथम संस्कृत श्लोक में पूज्य कालूगणी की स्तुति की गई है। प्रस्तुत श्लोक की रचना व्याकरण की दृष्टि में विशिष्ट है। एक ही श्लोक, एक ही संदर्भ और संस्कृत की सातों विभक्तियों का प्रयोग रचनाकार की विलक्षण प्रतिभा का सूचक है।

मंगल वचन रूप में रचित दस दोहों में आठ दोहे गणधर गौतम की त्रिपदी—उत्पाद, विनाश एवं ध्रौव्य से सम्बन्धित है। त्रिपदी की अस्वीकृति से वस्तु का अस्तित्व ही अस्वीकृत हो जाता है, इस तथ्य को उपमाओं के माध्यम से बहुत सुन्दर प्रस्तुति दी गई है।

चतुर्थ उल्लास के प्रथम गीत में वि. सं. १९९० के सुजानगढ़-चातुर्मास का वर्णन है। उस वर्ष कालूगणी ने प्रवचन में भगवती सूत्र और चन्द चरित्र का वाचन किया। मुनि तुलसी को षड्दर्शन पढ़ाया, प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार का महत्त्व बताते हुए उसे पढ़ने की प्रेरणा दी तथा मुनि तुलसी द्वारा समस्यापूर्ति के रूप में विरचित 'कालूकल्याणमन्दिर' स्तोत्र का संवत्सरी के दिन परिषद में पाठ कराया।

मुनि तुलसी में छिपी व्यक्तित्व-निर्माण की अर्हता का आभास पाकर पूज्य कालूगणी ने उनको नवदीक्षित बाल मुनियों के अध्ययन का दायित्व सौंपा। अध्ययन के साथ उनके निर्माण की पूरी जिम्मेवारी मुनि तुलसी को सौंपकर कालूगणी निश्चिंत हो गए।

उसी चातुर्मास में मरुधर (मारवाड़) प्रदेश का श्रावक समाज मरुधर-यात्रा की प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुआ। कवि ने मरुधर की धरती के मुंह से जिस रूप में विरह-व्यथा का वर्णन करवाया है, वह इतना हृदयग्राही है कि पाठक उसे पढ़कर अभिभूत हो जाता है।

इधर कालूगणी का चातुर्मासिक प्रवास सुजानगढ़ था, उधर पचपचरा में मुनि रिखिरामजी और लच्छीरामजी अभिमान वश संघ से प्रत्यनीक हो गए। श्रावकों के द्वारा स्थिति की जानकारी मिली। कालूगणी ने श्रावकों के माध्यम से ही उनको संघ से बाहर कर दिया। उस स्थिति में जोधपुर के श्रावकों ने संघीय पुस्तकें अपने अधिकार में लेकर साध्वी सोहनांजी को सौपं दीं। संतों ने हाकम के पास शिकायत की। हाकम ने दो टूक जवाब देकर उनको आगाह कर दिया। यह पूरा विवेचन प्रथम गीत में है।

दूसरे गीत में कालूगणी के छापर-प्रवास और लाडनूं में समायोजित मर्यादा-महोत्सव का वर्णन है। प्रसंगवश मुनि हेमराजजी (आतमा) का गुणगान किया गया है। तत्त्वज्ञ और आगमों की गंभीर धारणावाले मुनि हेमराजजी ने मनोवैज्ञानिक तरीके से मुनि तुलसी को तत्त्वज्ञान सिखाया था।

महोत्सव के अवसर पर मरुधर के लोग पुनः वहां की प्रार्थना करने आए। पूज्य कालूगणी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मरुधर के लोग हर्षविभोर हो उठे।

महोत्सव के दिन पश्चिम रात्रि में पूज्य कालूगणी ने साधुओं की गोष्ठी बुलाई। संतों के बीच मुनि दयारामजी, फतेहचन्दजी और चिरंजीलालजी, इन तीनों का एक साथ संघ से संबंध-विच्छेद कर दिया। क्योंकि उनकी आपस में दलबन्दी थी। वे भीतर-ही-भीतर अन्य व्यक्तियों में मनोभेद की स्थिति पैदा करके उन्हें अपना बनाने का प्रयास कर रहे थे। उनका मुख्य आरोप यह था कि तेरापंथ में पक्षपात चलता है। यहां ओसवालों को ही आचार्य बनाया जाता है, जबकि अग्रवालों को कोई स्थान नहीं है। ओसवालों को महान माना जाता है और अग्रवालों को झगड़ालू बताया जाता है।

अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने उदाहरण के रूप में संघ से बहिष्कृत रिखिरामजी को उपस्थित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने भिक्खू और रिक्खू की तुलना करने का दुस्साहस करके हरियाणा के वैरागी जालीराम को बहकाने की चेष्टा की। जालीराम उनके फंदे में नहीं फंसा तो अपनी करनी का फल उन्हीं को भोगना पड़ा।

आचार्यश्री ने भिक्खू और रिक्खू की तुलना को मूढतापूर्ण कार्य बताते हुए सुवर्ण के सोना और धत्तूरा, अर्क के सूर्य और आकड़ा, पंचशिखा के सिंह और पांच शिखाओं वाला मनुष्य, मातंग शब्द के इन्द्र का ऐरावत हाथी और चण्डाल तथा लोकनाथ शब्द के लोक का नाथ और लोक है जिसका नाथ, ऐसे द्व्यर्थक शब्दों को प्रस्तुत करके आचार्य भिक्षु की महिमा को उजागर किया है।

तीसरे गीत में पूज्य कालूगणी ने शुभ मुहूर्त्त देखकर मरुधर की यात्रा का प्रारंभ किया। उस यात्रा में उनके सहवर्ती साधु-साध्वियों की विशेषताओं का बहुत सुन्दर ढंग से विश्लेषण किया गया है। इससे कालूगणी की व्यक्तित्व-निर्माण-कला, साधु-साध्वियों की गुणवत्ता और आचार्य तुलसी की प्रखर प्रमोद भावना की एक साथ अभिव्यक्ति हो रही है।

चतुर्थ गीत में डीडवाना से पचपदरा तक की यात्रा का वर्णन है। इस यात्रा में कालू नामक गांव में दिगम्बर लोगों के बीच कालूगणी का व्याख्यान हुआ। प्रसंगवश प्रकरण चला कि स्त्री भी मोक्ष की अधिकारिणी है। इस बात पर दिगम्बर लोगों ने आपत्ति उठाई। पूज्य कालूगणी ने दिगम्बरों द्वारा मान्य ग्रंथ गोम्मटसार के आधार पर प्रमाणित कर दिया, फिर भी कुछ मताग्रही लोगों ने उसको सहजता से मान्य नहीं किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त आक्रोश की आग कालूगणी के उपशम रस से स्वतः शांत हो गई।

पचपदरा में संघ से बहिष्कृत पांच साधुओं ने धर्मसंघ की निन्दा कर बहुत लोगों को भ्रान्त बना दिया था। कालूगणी ने सारी स्थिति का आकलन किया और उनके द्वारा फैलाई गई भ्रांतियों का निराकरण कर लोगों को पुनः सन्मार्ग दिखाया। गुरुदेव के थोड़े-से प्रयास से भ्रम का अन्धकार दूर हो गया। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में जुगनू का कोई अस्तित्व नहीं रहता, वैसे ही पूज्य कालूगणी के पदार्पण से टालोकर साधु अस्तित्वविहीन-से हो गए।

पांचवें गीत में बालोतरा, जसोल, असाड़ा, समदड़ी आदि क्षेत्रों में उपकार करते हुए कालूगणी के जोधपुर पधारने का वर्णन है। कालूगणी के स्वागत में श्रावक समाज का उत्साह, स्वागत-जुलूस और उनकी गुणवत्ता सहज साहित्यिक भाषा में अभिव्यक्त हुई है। गुणतीस साधुओं और अट्ठाईस साध्वियों के साथ कालूगणी चातुर्मास करने के लिए जोधपुर के जाटावास मोहल्ले में पहुंच गए।

छठे गीत में जोधपुर-चातुर्मास के प्रथम तीन महीनों की संक्षिप्त झाँकी है। आश्विन महीने में उदयपुर से स्पेशल ट्रेन आई। कालूगणी को मेवाड़ पधारने की प्रार्थना की गई। कार्तिक महीने में दीक्षा का प्रसंग उपस्थित हुआ। दीक्षार्थियों की भीड़ देखकर विरोधी लोग ईर्ष्या से उद्विग्न हो गए। उन्होंने बालदीक्षा के नाम पर भयंकर विरोध करना शुरू कर दिया। उस संदर्भ में कुछ व्यक्ति पूज्य कालूगणी से मिले। उन्होंने बालदीक्षा पर कुछ आपत्तियां उपस्थित कीं। पूज्य कालूगणी ने शान्तभाव से उनके द्वारा प्रस्तुत की गई आपत्तियों का निराकरण किया और संत ज्ञानेश्वर, शंकराचार्य, प्रह्लाद आदि उदाहरणों से बालकों की योग्यता प्रमाणित कर तेरापंथ की दीक्षापद्धति का निरूपण किया।

सातवें गीत में दीक्षा के प्रसंग को ही आगे बढ़ाया गया है। कालूगणी द्वारा स्पष्टीकरण करने के बाद बहुत लोग समाहित हो गए, फिर भी कुछ लोग अपनी पकड़ नहीं छोड़ पाए। उन्होंने राजभवन तक उल्टी-सीधी बातें पहुंचाई और दीक्षा रोकने की धमकी दी। पोखरण के ठाकुर चैनसिंहजी राठौड़ उनमें प्रमुख थे। उस स्थिति में जोधपुर के प्रमुख श्रावक प्रतापमलजी मेहता ने आत्मविश्वास और साहस के साथ घोषणा कर दी—'धर्मनीति-सम्मत तेरापंथ की दीक्षा न कभी रुकी है और न कभी रुकेगी। यदि किसी को आपत्ति हो तो वह मशीनगन भेज दे। हजारों लोग पूरे होश के साथ अपने प्राण देने के लिए सन्नद्ध हैं।' मेहताजी की चुनौती के सामने ठाकुर-साहब का जोश ठंडा हो गया, दीक्षा का विरोध शांत हो गया।

जोधपुर में दीक्षार्थी भाई-बहनों की शोभायात्रा पूरे ठाट-बाट के साथ निकली। लोगों ने विस्मित होकर उसका निरीक्षण किया। सरदार-स्कूल के प्रांगण में पूज्य कालूगणी ने एक साथ बाईस भाई-बहनों का दीक्षा-संस्कार सम्पन्न किया। यह एक विशेष संयोग की बात थी कि जयपुर-नरेश मानसिंहजी और जोधपुर-नरेश उम्मेदसिंहजी ने वायुयान में आसीन होकर दीक्षा का कार्यक्रम देखा।

जयपुर-नरेश और जोधपुर-नरेश दीक्षा का कार्यक्रम देखने आए थे, इस बात की जानकारी किसी को नहीं थी। श्रावक मालमसिंहजी मुरड़िया को पता लगा तो उन्होंने पूज्य कालूगणी के दर्शन कर उक्त घटना की अवगति दी। इस प्रसंग से आठवें गीत का प्रारंभ हुआ है। दीक्षा के बाद कालूगणी ने जालोरी दरवाजे से शहर में प्रवेश किया। उनके साथ नवदीक्षित साधु-साध्वियों का समूह देखकर दर्शकों ने भगवान महावीर के युग का स्मरण कर अपने आप में धन्यता का अनुभव किया।

जोधपुर का चातुर्मासिक प्रवास सानन्द सम्पन्न हुआ। वहां कालूगणी को विशेष प्रसिद्धि मिली। पुण्यवान के पग-पग निधान होते हैं, यह कहावत चरितार्थ हो गई।

जोधपुर से कांठा की ओर विहार हुआ। कांठा एक ऐसा संभाग है, जहां स्थान-स्थान पर बबूल के कांटे बिखरे हुए हैं और अरहट के कुएं चलते रहते हैं। घाटों की धरती वाला मेवाड़ कांठा संभाग का पड़ोसी है। पहाड़ी धरती पर धव, खदिर, पलास आदि वृक्ष खड़े हैं। वहां कुछ विशेष प्रकार के कूप होते हैं, जो सूंडिया कुआं कहलाते हैं। गेहूं और ज्वार की अच्छी फसल होती है तथा नदी एवं नालों-खाळों की भरमार है।

कांठा संभाग में परिभ्रमण करके पूज्य कालूगणी साधु-साध्वियों के परिवार के साथ मर्यादा-महोत्सव करने के लिए सुधरी पहुंचे। वहां के ठाकुर अगवानी

करने आए। उनके अनुरोध पर गढ़ में हाजरी हुई। ठाकुर साहब ने शिकार और शराब छोड़कर त्यागमय अभिनन्दन किया।

नौवें गीत में सुधरी में समायोजित वि. सं. १९९१ के मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर श्रावक समाज द्वारा की गई व्यवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन है। मेवाड़ की भावपूर्ण प्रार्थना और कालूगणी द्वारा दी गई स्वीकृति का उल्लेख है।

सुधरी से विहार कर आसपास के गांवों का स्पर्श करते हुए कालूगणी 'बड़ा गुड़ा' पधारे। वहां फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को सायंकालीन प्रतिक्रमण के बाद कालूगणी और मुनि तुलसी के बीच पद्यमय संवाद हुआ। गुरु के असीम वात्सल्य और शिष्य के समर्पण को अभिव्यक्ति देने वाला वह संवाद इतिहास की एक विरल घटना के रूप में अंकित हुआ है। 'चतराजी का गुड़ा' गांव में उक्त प्रसंग की पुनरावृत्ति हुई। इन दोनों घटनाओं को देखने-सुनने वाले साधु-साध्वियों में मुनि तुलसी पर कालूगणी की असीम कृपा चर्चा का विषय बन गया।

उसी वर्ष चातुर्मास के बाद पूज्य कालूगणी ने मुनि तुलसी को रामचरित्र सीखने का निर्देश दिया। इस निर्देश पर कई साधुओं को आश्चर्य हुआ, पर वह कालूगणी की दूरदर्शिता थी। उस समय यह कल्पना ही नहीं थी कि दो वर्षों में ही मुनि तुलसी को संघ का दायित्व संभालना होगा और उनके लिए रामचरित्र का वाचन अनिवार्य हो जाएगा।

दसवें गीत का प्रारंभ कालूगणी द्वारा कांठा क्षेत्र के कतिपय गांवों की यात्रा से हुआ है। 'रामसिंहजी का गुड़ा' पधारने पर कालूगणी के घुटनों में दर्द हो गया। यात्रा में अवरोध होता देख 'भिलावा' का प्रयोग किया गया। उससे घुटनों पर छाले उभर आए। उनसे पानी निकलने पर वेदना कुछ कम हुई।

अठारह दिन 'रामसिंहजी का गुड़ा' में रहकर कालूगणी ने वहां से विहार किया। जोजावर होते हुए वे सिरियारी पधारे। दोनों ही क्षेत्रों में वहां के ठाकुर साहब ने उपासना कर लाभ उठाया। सिरियारी की हाट में आचार्य भिक्षु ने अनशन किया था। कालूगणी ने उस स्थान का निरीक्षण किया। उनके घुटनों से पानी झरना बन्द नहीं हुआ, फिर भी मेवाड़ की यात्रा के लिए उनका संकल्प पक्का था। फलतः वे वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन 'फूलाद की चौकी' पर पहुंच गए। वहां मरुधर और मेवाड़ से सैकड़ों लोग पहुंच गए।

जहां महापुरुषों का प्रवास होता है, वहां जंगल में मंगल हो जाता है। जहां, राम, वहीं अयोध्या। श्रीकृष्ण बांसुरी बजाते हैं तो सूखा बाग सरसब्ज हो जाता है। ये किंवदंतियां केवल कपोल कल्पनाएँ ही नहीं हैं। इनकी यथार्थता को प्रमाणित कर रहा है जंगल में 'फूलाद की चौकी' पर पूज्य कालूगणी का प्रवास।

अक्षय तृतीया की उस रात का वर्णन एक विशिष्ट शैली में किया गया है। भुजंग-प्रयात और मोतीदाम छन्दों में डिंगल कविता के रूप में जो छब्बीस पद्य लिखे गए हैं, वे सम्पूर्ण कालूयशोविलास में अपने ढंग के पद्य हैं। प्रथम तेरह पद्यों में जंगल की भौगोलिक स्थिति का सजीव चित्रण है और शेष तेरह पद्यों में कवि ने अपनी कल्पना-प्रवणता से एक प्रश्न उपस्थित कर उसे समाहित किया है।

ग्यारहवें गीत में मेवाड़ की यात्रा का वर्णन है। घुटनों की पीड़ा के बावजूद पूज्य कालूगणी अपना वचन पूरा करने के लिए अरावली पहाड़ पर चढ़े। संकल्पबल और मनोबल प्रबल न हो तो उस पहाड़ी मार्ग पर लगातार तीन-चार घंटे चलना बहुत मुश्किल हो जाता है। मेवाड़ के छोटे-बड़े क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए कालूगणी गोगुन्दा (मोटे गांव) पधारे। गर्मी के मौसम में भी वहां कंबल ओढ़कर सोने जैसी सर्दी का अनुभव हुआ। गोगुन्दा-प्रवास में पूज्य कालूगणी के हाथ में फोड़ा हो गया। व्रण-वेदना के बावजूद सारे कार्य व्यवस्थित चलते रहे। चातुर्मास के लिए उदयपुर पहुंचने का दिन आषाढ़ शुक्ला तृतीया निर्णीत किया गया।

बारहवें गीत का प्रारंभ उदयपुर की दिशा में प्रस्थान से हुआ है। गोगुन्दा से उदयपुर की दूरी मात्र सात कोश बताई गई, किंतु पैरों से इक्कीस मील मापा गया तब उदयपुर आया। पूर्व निर्धारित तिथि के अनुसार आषाढ़ शुक्ला तृतीया के दिन मध्य बाजार से होकर कालूगणी फतेहलालजी मेहता की बाड़ी में पधारे।

फतेहलालजी मेहता और हीरालालजी मुरड़िया राजमहल पहुंचकर राणा भोपालसिंहजी से मिले। उन्होंने कालूगणी की संतता का परिचय देते हुए कहा—'हमारे पंचम आचार्य मघवागणी यहां पधारे थे तब आपके पिताश्री राणा फतेहसिंहजी ने उनके दर्शन किए थे। आज मघवागणी के शिष्य कालूगणी यहाँ पधारे हैं। आप राणा फतेहसिंहजी की संतान है। मर्जी हो तो आप भी उसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए कालूगणी के दर्शन करें, राणाजी की स्वीकृति पाकर उन्होंने कालूगणी को निवेदन कर दिया।

आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी के दिन सायंकाल लगभग छह बजे राजलवाजमे के साथ राणा भोपालसिंहजी कालूगणी के दर्शन करने मेहताजी की बाड़ी पहुंच गए।

तेरहवें गीत में पूज्य कालूगणी और राणा भोपालसिंहजी का मिलन-प्रसंग साहित्यिक छटा के साथ वर्णित हुआ है। उस समय आकाश में मेघ मंडरा रहे थे। कालूगणी और राणाजी खुले आकाश के नीचे बातचीत कर रहे थे। लोगों को आशंका थी कि पानी बरसेगा और इस उपक्रम में बाधा उपस्थित हो जाएगी। किंतु जब तक राणाजी रहे, पानी की एक बूंद भी नहीं गिरी।

राणाजी छह बजे से सूर्यास्त होने तक लगभग आधा घंटा पूज्य कालूगणी की सन्निधि में रहे। कालूगणी ने पहले मनुष्य जीवन की दुर्लभता एवं उसे सार्थक बनाने की दृष्टि से उपदेश सुनाया। तेरापंथ धर्मसंघ का इतिहास एवं रीति-नीति बताई। प्रसंगवश सूक्ष्म अक्षरों में लिखित कलात्मक पत्र दिखाया। अन्त में राजा के कर्तव्य के बारे में प्रतिबोध दिया। राणाजी ने प्रसन्नता से सारी बातें सुनीं, आभार ज्ञापित किया और वहां से विदा हो गए।

चौदहवें गीत का प्रारंभ राणाजी के प्रसंग से ही हुआ है। वे उठकर बाहर आए और कालूगणी मकान के भीतर पधारे, उसी समय तेज वर्षा शुरू हो गई। कवि ने कल्पना की है कि मेघ ने कालूगणी का उपदेश सुनकर गर्जन के मिष प्रसन्नता प्रकट की और पानी बरसाकर अपनी कालिमा दूर कर दी।

राणाजी स्वयं कालूगणी के विशिष्ट व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बोले—तेरापंथ के आचार्य महाराज का उपदेश इतना निस्पृहतापूर्ण है कि उसे सुनने से मन का संशय और संक्लेश एक साथ दूर हो जाता है। उनके दर्शन का फिर कभी मौका मिले तो सूचित करना। उससे मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।

राणाजी की विशेष श्रद्धा-भक्ति के कारण उदयपुर शहर में जन-जन के मुंह पर एक ही चर्चा थी कि महाराणा भोपालसिंहजी कालूगणी के दर्शनार्थ गए और एक श्रावक की तरह बद्धाञ्जलि हो आधा घंटा तक उपदेश सुनते रहे।

एक व्यक्ति बोला—'इसमें आश्चर्य की क्या बात है? वि. सं. १९४३ में तेरापंथ के पांचवे आचार्य मघवागणी उदयपुर आए थे। उस समय महाराणा फतेहसिंहजी कविराज की बाड़ी में दर्शन करने गए थे। वे उपदेश सुन रहे थे, पर प्रतिक्रमण का समय हो जाने से आचार्यजी बीच में ही उठ गए। इस प्रसंग में राणाजी कितने प्रभावित हुए थे।'

दूसरा व्यक्ति बोला—'अरे भाई! यह तो अभी की बात हे। इससे पहले आचार्य भारीमालजी के समय महाराणा भीमसिंहजी ने उनकी जो भक्ति की थी, उसे कैसे भुल गए ?'

तीसरा व्यक्ति बोला—'महाराणा भीमसिंहजी से पहले महाराजा सज्जन-सिंहजी की भावना भी बहुत ऊँची थी। पर आयुष्य कम होने के कारण उन्हें ऐसा मौका नहीं मिला।'

चौथा व्यक्ति बोला—'अरे भाई ! कालूगणी की शक्ति का कोई माप नहीं है। आप लोगों ने देखा होगा कि जब तक उन्होंने राणाजी को उपदेश दिया, एक भी बूंद नहीं गिरी। इधर राणाजी उठे, उधर मुसलाधार पानी बरसने लगा।'

इस प्रकार प्रमोद भावना से भावित उदयपुर शहर में चातुर्मासिक प्रवास

करने के लिए आषाढ़ शुक्ला पंचमी के पुण्य प्रभात में कालूगणी का प्रवेश हुआ। पंचायती नोहरे में वि. सं. १९९२ के चातुर्मास की स्थापना हो गई। उस चातुर्मास में बत्तीस साधु और बत्तीस साध्वियां थीं।

चातुर्मास में तपस्या और पर्युषण पर्व की आराधना के साथ प्रस्तुत गीत सम्पन्न हो जाता है।

पन्द्रहवें गीत में मुख्य रूप से चरमोत्सव, पट्टोत्सव और दीक्षा की प्रार्थना का वर्णन है। दीक्षार्थी भाई-बहनों ने समवेत स्वरों में अपनी वैराग्य भावना निवेदित की। कालूगणी ने उनके सामने साधु जीवन के कठिनाइयों की चर्चा की। दीक्षार्थियों ने पूरी दृढ़ता के साथ संयमी जीवन के प्रति आस्था प्रकट की। उनके अभिभावक भी साथ थे। कालूगणी ने दीक्षार्थियों के स्वभाव तथा वैराग्य की परिपक्वता आदि के बारे में उनसे जानकारी चाही। अभिभावकों ने निवेदन किया कि उन्होंने अपनी ओर से इनकी पूरी परीक्षा कर ली है। अब आप कृपा कर इनकी भावना सफल बनाएं।

सोलहवें गीत में वि. सं. १९९० से १९९२ तक हुई दीक्षाओं का वर्णन है। इन दीक्षाओं में जोधपुर चातुर्मास में एक साथ बाईस दीक्षाएं हुईं। तेरापंथ के इतिहास में यह एक नवीन घटना थी। इस अवधि में मुनि रिखिराम, लच्छीराम, दयाराम आदि कुछ साधुओं को अनुशासनहीनता और दलबन्दी के कारण संघ से बहिष्कृत भी किया गया।

पंचम उल्लास

पांचवें उल्लास के प्रारम्भिक संस्कृत श्लोक में पूज्य कालूगणी की महत्ता उद्गीत है। मंगलवचन में धर्माचार्य की गरिमा का संगान किया गया है।

प्रस्तुत उल्लास के प्रथम दो गीतों में उदयपुर के दीक्षा महोत्सव का वर्णन है। कवि ने दीक्षा का महत्त्व प्रकट करते हुए कालूगणी द्वारा स्वीकृत पन्द्रह दीक्षाओं का उल्लेख किया है। पन्द्रह दीक्षाओं की बात सुनते ही विरोधी लोग हरकत में आ गए। उन्होंने पैम्फलेट छपवा कर वितरित किए और राणाजी तक शिकायतें पहुंचाई। राणाजी तेरापंथ की दीक्षापद्धति से परिचित थे। उन्होंने हीरालालजी मुरड़िया के माध्यम से कालूगणी को निवेदन करवाया कि ये सारी हरकतें आदत से लाचार लोगों की है। आप घबराएं नहीं तथा राणाजी के दिल्ली जाने से पहले दीक्षा हो जाए तो ठीक रहेगा। राणाजी के निवेदन पर कार्तिक कृष्णा पंचमी दीक्षा की तिथि निर्णीत कर दी गई।

महाराणा के निर्देश से उदयपुर के प्राइम मिनिस्टर पण्डित सुखदेव सहाय तथा लेफ्टिनेंट कर्नल वीथम ने कालूगणी के दर्शन कर सारी स्थिति की जानकारी प्राप्त की।

दीक्षा का कार्यक्रम महाराणा कालेज में था। वहां पंचमी के दिन जनता की भीड़ उमड़ पड़ी। कालूगणी दीक्षा-स्थल पर पधारे। उधर शहर में एक अफवाह फैलाई गई कि पन्द्रह दीक्षार्थियों में एक बालक मीठालाल उदयपुर का है। उसके माता-पिता सात दिन से बेहाल हो रहे हैं। मीठालाल उन्हें देखकर रोता है, पर अग्रगण्य श्रावक उसे डरा-धमकाकर मोटर में बिठा जुलूस के साथ आ रहे हैं।

आई. जी. पी. लिछमणसिंहजी और सुपरिटेंडेंट रणजीतसिंहजी ने भी यह अफवाह सुनी। वे तत्काल कालूगणी के पास आए। कालूगणी ने उनको तेरापंथ की दीक्षा प्रणाली बताई। उन्होंने यह भी बताया कि आज्ञा के बिना एक तिनका लेने मात्र से तीसरे महाव्रत का भंग हो जाता है। ऐसी स्थिति में माता-पिता की आज्ञा बिना दीक्षा कैसे दी जा सकती है।

दीक्षार्थियों का जुलूस महाराणा कालेज पहुंचा तो आई. जी. पी. ने स्वयं बालक मीठालाल से कुछ प्रश्न पूछे। बालक के उत्तर सुनकर तथा उसके माता-पिता से बातचीत कर आई. जी. पी. पूर्णतः संतुष्ट हो गए।

कालूगणी ने भरी सभा में बिना किसी बाधा के दीक्षा-संस्कार सम्पन्न किया। नवदीक्षित साधु-साध्वियों को साथ ले बाजार के बीच से होकर वे पुनः पंचायती नोहरे में पधार गए। आई. जी. पी. ने महाराणाजी के पास पहुंचकर बताया कि कान और आंख में केवल चार आंगुल का अन्तर है। किन्तु प्रस्तुत दीक्षा के प्रकरण में जो कुछ सुना और जो कुछ देखा, उसके आधार पर कान-आंख की दूरी लाख हाथ की मानी जा सकती है।

तीसरा गीत मालवा की प्रार्थना के साथ शुरू हुआ है। मालवा से स्पेशल ट्रेन आई। मालवा यात्रा के लिए भावपूर्ण अनुरोध किया गया। चातुर्मास सम्पन्न होने के बाद कालूगणी छोटे-बड़े गांवों का स्पर्श करते हुए राजनगर पधारे। वहाँ साधु-साध्वियों की सारणा-वारणा का काम किया। मालवा के लोगों को तब तक कोई संकेत नहीं मिला था। वे पुनः राजनगर आए। उनकी विशेष प्रार्थना पर कानोड़ की ओर विहार फरमाया। राजनगर से प्रस्थान कर कालूगणी पोष कृष्ण नवमी को कानोड़ पहुंच गए। वहां कानोड़-रावजी ने कालूगणी के दर्शन कर उपदेशामृत का पान किया।

चतुर्थ गीत में आचार्यों की यात्रा से होने वाले प्रभाव की चर्चा है। मालवा ऐसा प्रदेश है, जहां आचार्यों का आगमन बहुत कम हुआ है। आचार्य रायचन्दजी

वहां पधारे थे। उनके बाद वि. सं. १९११ में आचार्य जीतमलजी का पादार्पण हुआ। उनके बाद उत्तरवर्ती तीन आचार्यों का इधर आगमन ही नहीं हुआ। मालवावासियों की विशेष प्रार्थना पर वि. सं. १९९२ में पूज्य कालूगणी ने कानोड़ से मालवा की दिशा में विहार किया।

उस यात्रा में कालूगणी सादड़ी पधारे। वहां एक रात प्रवास कर प्रातःकाल विहार कर दिया। सादड़ी के राजरणाजी को सूचना मिली। उन्होंने रास्ते में आकर दर्शन किए। उनके विशेष अनुरोध पर कालूगणी ने वहीं पर लगभग दस मिनट उपदेश दिया। तेरापंथ का परिचय पाकर राजरणाजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने प्रसन्नता के साथ कालूगणी के प्रति आभार प्रकट किया।

पांचवे गीत में पूज्य कालूगणी का मालवा में प्रवेश, मालवा श्रावक संघ की व्यवस्था, मालवा की भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थिति और नीमच के जैन समाज की मनः-स्थिति का संक्षिप्त चित्रण है। नीमच शहर में इस छोर से उस छोर तक घूमने के बाद भी ठहरने के लिए जैन बस्ती में स्थान नहीं मिला। आखिर शहर से बाहर एक राजपूत परिवार के मकान में पड़ाव हुआ। जैन लोगों के इस व्यवहार से जैनेतर लोग चकित हो गए।

छठे गीत में जैनों की सघन बस्ती जावरा शहर के विरोधी वातावरण का वर्णन है। मन्दसौर में दो दिन प्रवास कर जावरा को जागृत करने के लिए कालूगणी ने वहां जाने का निर्णय लिया। उनके पहुंचने से पहले ही वहां प्रतिपक्षी पहुंच गए। उन्होंने सबसे पहले कालूगणी के प्रवास हेतु निर्धारित स्थान का परिवर्तन करवा दिया। इसके बाद लोगों को भ्रान्त बनाने के उपक्रम शुरू किए गए। लक्ष्य था जनता को कालूगणी के सान्निध्य से वंचित रखना। इसके लिए सार्वजनिक स्थलों पर तथा घरों की दीवारों पर विरोधी पोस्टर चिपकाने का काम व्यापक स्तर पर किया गया।

विरोधी लोगों ने पोस्टर चिपकाकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं की। उन्होंने तेरापंथ के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को तोड़-मोड़कर प्रस्तुति देते हुए सब लोगों को बता दिया कि यहां तेरापंथ के आचार्य आने वाले हैं इसलिए सब सावधान रहें।

पूज्य कालूगणी के पास उक्त सारी बातें पहुंची तो सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्होंने कहा—'विरोधी लोगों ने हमारे जावरा पहुंचने से पहले ही हमारा प्रचार कर दिया, इस दृष्टि से वे हमारे उपकारी हैं। तीर्थंकरों के आगमन पर देव दुन्दुभि बजाते हैं, वैसे ही वे हमारा प्रचार कर रहे हैं। प्रचार-सामग्री में कागज, पैसा, समय आदि सब कुछ उनका है। हमारा तो प्रचार हो रहा है, इसलिए

हम तो उन्हें उपकारी मानते हैं।'

सातवें गीत में जावरा-प्रवास का वर्णन है। वहां तेरापंथ के विरोध में जितना अधिक प्रचार किया गया, लोगों में उतनी ही उत्सुकता बढ़ गई। निषेध से आकर्षण बढ़ता है, इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध हुई। कालूगणी ने नगर में प्रवेश किया। बाजार के बीच चौक में व्याख्यान की व्यवस्था की गई। जनता की कल्पनातीत उपस्थिति देखकर कालूगणी ने जैनागम के आधार पर साध्वाचार का वर्णन किया और तेरापंथ के इतिहास, संगठन तथा सिद्धान्तों के बारे में विस्तार से विश्लेषण किया।

लगभग पचास मिनट के प्रवचन में कालूगणी ने सारी स्थितियां साफ कर दीं। श्रोता चकित रह गए। विरोध या निन्दा करनेवालों की पोल खुल गई। लोगों की शंकाओं का समाधान हो गया। जनता के मन में अनायास ही कालूगणी के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत हो गए।

आठवें गीत का प्रारंभ जावरा में उत्पन्न स्थितियों के उपसंहार रूप में हुआ है। कवि ने साहित्यिक उपमाओं के माध्यम से कालूगणी के व्यक्तित्व को उजागर किया है। विरोधी लोगों का पश्चात्ताप और उनके मन में कालूगणी के प्रति अत्यधिक आदर भाव भी तेरापंथ के आकर्षण को बढ़ा गया।

जावरा से कालूगणी रतलाम पधारे। रतलाम में भी विरोध का वातावरण काफी उग्र बना हुआ था। किंतु कालूगणी के प्रथम प्रवचन से ही लोगों के सारे संशय समाप्त हो गए। एक चिकित्सक ने सम्पूर्ण स्थिति का आकलन करने के बाद कहा—हमारे शहर में हाबू या लहतान घुस गई थी। उसी के कारण जनता भ्रान्त हो गई, पर आचार्यजी के एक व्याख्यान से अपने आप सब कुछ बदल गया।

रतलाम में कालूगणी चार दिन रहे। चौथे दिन एक वयोवृद्ध विद्वान ने दर्शन किए। कालूगणी ने पूछा—'पण्डितजी! आने में इतना विलम्ब कैसे हुआ?' पण्डितजी बोले—'महाराज! आपके विरोध में छपे पैम्फलेट, पोस्टर आदि देखकर मैंने सोचा कि जिनके बारे में इतनी उल्टी-सीधी बातें लिखी गई हैं, उनकी ओर से प्रतिकार में कुछ तो लिखा ही जाएगा। मौखिक और लिखित रूप में आरोप-प्रत्यारोप होते रहेंगे। ऐसी स्थिति में वहां जाने से क्या लाभ? आपको यहाँ आए तीन दिन हो गए, फिर भी आपकी ओर से विरोध के प्रत्युत्तर में न तो एक शब्द कहा गया और न लिखा गया। इसी बात से प्रभावित होकर मैं यहां आया हूँ।''

पण्डितजी की बात सुन कालूगणी ने कहा—'जिन लोगों की जठराग्नि कमजोर होती है, वे वमन देखकर वमन करने लगते हैं। जिन्होंने समता की साधना नहीं

की, वे अपने विरोध से बौखला कर प्रतिपक्ष का विरोध करने लगते हैं। हमारे तेरापंथ संघ की यह नीति रही है कि हम निम्नस्तरीय विरोध को कभी उत्तर नहीं देते। प्रतिपक्ष हमारे विरोध में लिखता ही रहा है, पर हमने उसे सहन ही किया है।' कालूगणी की स्पष्टोक्ति सुनकर पण्डितजी बहुत प्रसन्न हुए।

नौवें गीत में बड़नगर में आयोजित मर्यादा-महोत्सव का प्रसंग है। मालवा के पूरे श्रावक समाज की ओर से महोत्सव के लिए बड़नगर का नाम प्रस्तावित किया गया। बड़नगर के केवल तीन परिवारों ने इतना बड़ा दायित्व संभालने का साहस किया। उस अवसर पर वहां देश भर से हजारो-हजारों लोग एकत्रित हुए।

कालूयशोविलास केवल आख्यान या जीवन-चरित्र ही नहीं है, इसे काव्य या महाकाव्य की कोटि में लिया जा सकता है। ऋतुवर्णन महाकाव्य की एक कसौटी है। जीवन-चरित्र में सहजता से ऋतुओं की चर्चा नहीं आती, उसे सायास ही लाना पड़ता है। किंतु आचार्यश्री तुलसी ने मर्यादा-महोत्सव की सब ऋतुओं के साथ यौक्तिक तुलना कर इस उल्लास के प्रस्तुत गीत में काव्य की छटा बिखेर दी।

दसवें गीत में उज्जैन एवं इन्दौर प्रवास की चर्चा है। बड़नगर से उज्जैन के रास्ते में चंबल नदी है। उस समय नदी में पानी इतना अधिक था कि वह सड़क पथ और उसके परिपार्श्व में दोनों ओर बह रहा था। स्थल पथ से जाने का मार्ग न मिलने के कारण कालूगणी ने आगमविधि के अनुसार साधु-साध्वियों के साथ नदी पार की।

उज्जैन में कालूगणी ने नौ दिन प्रवास किया। इस बिन्दु पर सम्पन्न होने वाले गीत के मध्य में उज्जैन की ऐतिहासिकता निरूपित है। वीर विक्रमादित्य, सम्राट सम्प्रति, राजा चंडप्रद्योत, नटपुत्र रोहक आदि के साथ तेरापंथ धर्मसंघ के सातवें आचार्य डालगणी की जन्मभूमि होने का गौरव भी उज्जैन को प्राप्त है।

गीत के अन्तिम चरण में इंदौर-प्रवास का वर्णन है। औद्योगिक और धार्मिक, दोनों दृष्टियों से मालवा में इन्दौर शहर का प्रमुख स्थान है। वहां कालूगणी का प्रवास गेंदालालजी मोदी के बंगले पर और दैनिक प्रवचन वहां के प्रमुख श्रेष्ठी हुकमचन्दजी (हाबली-काबली) के निवास-स्थान पर हुआ। इंदौर में यात्री भी बहुत आए। कलकत्ता से सेठ ईशरचन्दजी चौपड़ा भी आए। उनको ठहराने के लिए सेठ साहब ने अपना शीशमहल खोल दिया।

इन्दौर के प्रमुख श्रावक नेमीचन्दजी मोदी बौद्धिक तो थे ही, योगसाधना में भी पूरा रस लेते थे। बहुत वर्षों तक उन्हें शय्यातर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मोदीजी ने अपने पूरे परिवार के साथ उपासना का लाभ उठाया।

इंदौर में होली चातुर्मासी पक्खी का प्रतिक्रमण कर कालूगणी ने वहां से विहार कर दिया।

ग्यारहवें गीत के प्रारम्भ में बसंत ऋतु का वर्णन है। बसंत के प्रथम दिन इंदौर से प्रस्थान कर कालूगणी केसूर होते हुए बखतगढ़ पधारे। वहां से झकनावद जाना था। बीच में आगमवर्णित पाँच महानदियों में एक मही नदी थी। नदी में बहुत बड़े-बड़े पत्थर थे। पानी के स्पर्श को टालने के लिए पत्थरों पर पैर रखकर कालूगणी ने मही नदी पार की। झकनावद में पांच दिवस-प्रवास हुआ। वहां से पेटलावद पधारे।

पेटलावद में झाबुवा स्टेट के चार बड़े जागीरदारों ने एक साथ कालूगणी के दर्शन किए। गंगापुर एवं ब्यावर के श्रावक वहां चातुर्मास की प्रार्थना करने आए। ब्यावर के श्रावक अपने साथ एक अखबार लाए थे। कालूगणी ने उसके बारे में जिज्ञासा की तो वे बोले—'एक स्थानकवासी साधु ने कुछ वर्ष पहले रतनगढ और सरदारशहर में अनशन किया था। उसकी पुनरावृत्ति ब्यावर में हुई। उनका अभिग्रह यह था—तेरापंथ की जो धर्मविरुद्ध प्ररूपणाएं हैं, उनमें परिवर्तन नहीं किया गया, उन्हें आगमों के आधार पर प्रमाणित नहीं किया गया और इस विषय में सरकार से स्पष्टीकरण नहीं करवाया गया तो मेरे यावज्जीवन अनशन है।'

श्रावकों ने उस अनशन की परिणति के बारे में जानकारी देते हुए आगे कहा—'गुरुदेव! उनकी कोई शर्त पूरी नहीं हुई, फिर भी कुछ दिन बाद उनका अनशन सम्पन्न हो गया।' पता नहीं, उन्होंने क्यों अनशन किया और क्यों पारणा किया।

बारहवें गीत में मालवा की अवशेष यात्रा का संक्षिप्त विवरण तथा समग्र मालवा में उपासना करने वाले श्रावक-श्राविकाओं का उल्लेख हुआ है। साथ ही यह भी बताया गया है कि चार मास की यात्रा के प्रारम्भ और अंत में लोगों की मनः स्थिति में जमीन आसमान जितना अंतर आ गया। रतलाम, जावरा, नीमच आदि क्षेत्रों में जहां विरोधी वातावरण था, वहां यात्रा की वापसी पर श्रद्धा के स्वर मुखर हो उठे।

पेटलावद से पुनः मही नदी को पारकर कालूगणी रतलाम पधारे। वहां से मेवाड़ की ओर प्रस्थान का प्रसंग उपस्थित हुआ। मालवा के लोग उदास हो गए वे बोले—'चार महीनों का समय बहुत जल्दी पूरा हो गया। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है मानो आप कल पधारे और आज विहार कर रहे हैं। हमने कोई स्वप्न देखा है अथवा यह सारा जादू का खेल है, कुछ समझ में नहीं आता।'

तेरहवें गीत का प्रारम्भ मुनि मगनलालजी की चिंता से हुआ है। कुछ समय

पूर्व ही कालूगणी के बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली में एक फुंसी हुई थी। मुनि मगनलालजी ने उसे शूल से कुरेद दिया। इससे फुंसी बढ़ गई। मुनिश्री को फुंसी की भयंकरता का अहसास हो गया। उस अहसास के अनुरूप वेदना बढ़ने लगी।

कालूगणी चित्तौड़ पधारे। वहां गंगापुर के श्रावकों ने आगामी चातुर्मास के लिए बलवती प्रार्थना की। उन्हें चातुर्मास का वरदान मिल गया। गंगापुर का श्रावक समाज पचीस वर्षों से कालूगणी को चातुर्मास की प्रार्थना कर रहा था। उसकी प्रतीक्षा सफल हो गई। पूरे मेवाड़ में हर्ष की लहर छा गई।

इधर चातुर्मास की घोषणा, उधर अंगुली में व्रण की जटिलता। हाथ में शोथ और पीड़ा की प्रबलता से चलना, बैठना और सोना, सब कुछ कठिन हो गया। फिर भी कालूगणी का मनोबल अडिग था। साधु-साध्वियों की विशिष्ट सेवा के बावजूद वेदना कम नहीं हुई। तीव्र वेदना को समभाव से सहन करते हुए कालूगणी हमीरगढ़ पधारे। वहां मदनसिंहजी मुरड़िया (उदयपुर) ने दर्शन किए। उन्होंने शीघ्र ही भीलवाड़ा पधारकर चिकित्सा कराने का अनुरोध किया। हमीरगढ़ से विहार कर कालूगणी 'मंडपिया' पधारे। वहां मुरड़ियाजी के साथ दो डॉक्टर आए। हाथ की स्थिति देख उन्होंने ऑपरेशन की अनिवार्यता बताई। क्योंकि अंगुली से लेकर कलाई तक रस्सी हो गई थी।

चौदहवां गीत पूज्य कालूगणी के साहस की जीवंत कहानी कहता है। डॉक्टरों द्वारा ऑपरेशन का निवेदन करने पर कालूगणी बोले—'मंडपिये जैसे छोटे गांव में गर्म पानी, औजार, औषधि, डॉक्टर आदि का सुयोग मिलना मुश्किल है। भीलवाड़ा यहां से निकट है। हमें भीलवाड़ा आना ही है।' कालूगणी आगे कुछ कहते, उससे पहले ही डॉक्टर बोल उठे—'गुरुदेव! भीलवाड़ा दो दिन बाद जाना होगा। तब तक स्थिति और अधिक जटिल हो जाएगी। अब एक मिनट भी खोना ठीक नहीं है। चिकित्सा के लिए हम आपके चरणों में उपस्थित हैं। औषधि और औजारों के पेटी सहज रूप से हमारे पास है। आप हमें इजाजत दीजिए।'

एक ओर आग्रह एवं विनम्रता से भरा डॉक्टरों का अनुरोध, दूसरी ओर कालूगणी का मजबूत मनोबल। इस संदर्भ में कालूगणी और डॉक्टरों के बीच हुए संवाद को पढ़ने मात्र से रोमाञ्च हो जाता है। प्रबल अनुरोध के बावजूद कालूगणी ने विधि-विधान से हटकर किसी प्रकार की चिकित्सा स्वीकार नहीं की। उस दृढ़ता के सामने डॉक्टर पानी-पानी हो गए।

पन्द्रहवें गीत के प्रारम्भिक पद्यों में उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का विवेचन है। एक समय था, जब साधु किसी प्रकार की चिकित्सा नहीं कराते थे। कालांतर में अविधि से होने वाली चिकित्सा के लिए प्रायश्चित्त का विधान हुआ। ढ़ाई

हजार वर्षों की लंबी अवधि में अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। इसमें क्षेत्र, काल, धैर्य, संहनन और क्षमता का ह्रास एवं विकास प्रमुख निमित्त बना है। इन बदली हुई परिस्थितियों में भी कालूगणी ने जिस दृढ़ता का परिचय दिया, एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

चिकित्सा के बारे में कालूगणी के दृढ संकल्प ने डॉक्टरों को अभिभूत कर दिया। एक प्रकार से निरुपाय होकर वे बोले—'हमारा निवेदन इतना ही है कि अविलम्ब ऑपरेशन हो जाना चाहिए, अन्यथा रस्सी ऊपर चढ़ती जाएगी। इससे शरीर में पोइजन की आशंका बन रही है।'

मुनिश्री मगनलालजी प्रारंभ से ही फुंसी की भयंकरता का अनुभव कर रहे थे। डॉक्टरों के परामर्श पर उन्होंने उसी दिन ऑपरेशन करने का निर्णय ले लिया। डॉक्टर के औजार काम में नहीं लेने का निर्णय भी पक्का था, अतः कलम निकालने वाले चाकू से हथेली के पृष्ठभाग में एक इंच गहरा चीरा लगाया गया। घाव की सफाई कर उसमें गोज भरी गई। डॉक्टरों की उपस्थिति में यह सारा काम मुनिश्री मगनलालजी और मुनिश्री चौथमलजी ने किया।

मंडपिया गांव से विहार कर कालूगणी भीलवाड़ा पधार गए। वहां चिकित्सा का क्रम जारी रहा। प्रतिदिन घाव की सफाई कर पट्टी करने की जिम्मेदारी मुनिद्वय संभालते। शेष कार्यों के संपादन में सभी साधु-साध्वियों ने पूरी तत्परता रखी। नर्सों से भी अधिक स्वच्छता और जागरूकता उल्लेखनीय रही।

सोलहवें गीत में एक बार फिर कालूगणी का प्रखर मनोबल मुखर हुआ है। प्रारंभिक पद्यों में बताया गया है कि सरकारी डॉक्टर नंदलालजी, कलकत्ता से समागत डॉक्टर अश्विनीकुमार, लाडनूं से समागत डॉक्टर विभूतिभूषण और ईडर स्टेट से समागत डॉक्टर मालमसिंह डोसी (उदयपुर) की देखरेख में कालूगणी का उपचार चलने लगा।

कुछ समय बाद डॉक्टर अश्विनीकुमार का ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ कि चिकित्सा की उचित व्यवस्था के बाद भी घाव ज्यों का त्यों है, इसका कोई कारण होना चाहिए। डॉक्टर को शूगर की आशंका थी, जो सही निकली। डॉक्टर के पास दवा थी। उसने दवा लेने का अनुरोध किया। पर कालूगणी एक ही बात पर अडिग थे कि डॉक्टर उनके लिए आया है, इसलिए वे आनीत दवा का उपयोग नहीं करेंगे। मधुमेह की बीमारी को बहुत साधारण रूप में लिया गया, एक दृष्टि से यह बड़ी भूल हो गई। पर संतों की गति विलक्षण होती है। वे सदेह होते हुए भी विदेह बन जाते हैं।

कालूगणी की अस्वस्थता के संवाद जहां-जहां पहुंचे, वहां के प्रमुख-प्रमुख

लोग दर्शन करने आने लगे। गुरु-दर्शन की खुशी के बावजूद कालूगणी की अस्वस्थता देख आगंतुक लोगों के मन खिन्न हो गए।

डॉक्टर अश्विनीकुमार की मनःस्थिति विचित्र थी। एक दिन मुनि श्री मगनलालजी को अकेला देख डॉक्टर द्रवित मन से बोला—'मगनलालजी स्वामी! मैं अपने मुंह से ऐसी बात कहूँ, मुझे अच्छा नहीं लगता। पर लगता है कि अब गुरुदेव का शरीर स्वस्थ होना असंभव नहीं तो दुःसंभव अवश्य है।' मुनि श्री मगनलालजी ने कहा—'बात ठीक है, पर इसकी चर्चा किसी के सामने मत करना। क्योंकि इस आघात को सहना सरल नहीं है।

अत्यधिक सावधानी के बावजूद सेठ ईशरचन्दजी चौपड़ा को उक्त बात की भनक लग गई। वे डॉक्टर पर बहुत नाराज हुए। उनकी नाराजगी इतनी बढ़ी कि दोनों के बीच एक दरार-सी पड़ गई। किंतु जब डॉक्टर का कथन यथार्थ प्रमाणित हो गया तो चौपड़ाजी के मन में डॉक्टर के प्रति विशेष अनुराग बढ़ गया।

कालूगणी को भीलवाड़ा पधारे हुए दो सप्ताह हो गए, पर स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। विहार का प्रसंग उपस्थित होने पर वहां के लोग बोले—'शरीर की स्थिति विहार की अनुकूल नहीं है। आप यहीं चातुर्मास करें। व्यवस्था में किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी।' भीलवाड़ा वासियों की प्रार्थना के उत्तर में कालूगणी ने कहा—'व्यवस्था आदि को लेकर मेरे मन में कोई विचार नहीं हैं मेरा एक ही लक्ष्य है कि जब तक शरीर में थोड़ी भी शक्ति है, मुझे गंगापुर में चातुर्मास करने का वचन पूरा करना है।'

शारीरिक असह्य वेदना की उपेक्षा करके कालूगणी ने आषाढ़ शुक्ला तृतीया को भीलवाड़ा से विहार किया। मेवाड़ का पथरीला रास्ता और चलने की अक्षमता के बावजूद साधुओं के कंधे का सहारा लेकर कालूगणी चले। मार्गवर्ती छोटे-छोटे गांवों में पड़ाव करते हुए वे आषाढ शुक्ला एकादशी के दिन गंगापुर के निकट पहुंच गए। प्रस्तुत उल्लास का यह अंतिम गीत पूज्य कालूगणी के विलक्षण मनोबल की जीवन्त कहानी है।

छठा उल्लास

छठे उल्लास के प्रथम संस्कृत श्लोक में कालूगणी को सूर्य से उपमित किया गया है। वह सूर्य ऐसा है, जो न कभी उदित होता है, न अस्त होता है और न अंधकार का विषय बनता है।

मंगलवचन के आठ दोहों में तेरापंथ धर्मसंघ को कुछ नए प्रतिमानों के माध्यम से रूपायित किया गया है। तेरापंथ को विस्तार देने वाले आचार्य भिक्षु के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई है और कालूगणी की स्मृति के साथ छठे उल्लास की रचना का संकल्प व्यक्त किया गया है।

प्रस्तुत उल्लास के प्रथम गीत में कालूगणी के गंगापुर शहर में प्रवेश का विवेचन है। आषाढ़ शुक्ला द्वादशी के दिन अमृतसिद्धि योग में भव्य जुलूस के साथ पूज्यवर पधारे। हजारों दर्शकों ने उस दृश्य को देखा। कालूगणी के आकर्षक व्यक्तित्व और साधना के तेज ने उनके अस्वस्थ शरीर को भी स्वस्थ जैसा बना दिया। पदयात्रा से क्लांत होने पर भी उन्होंने एक मुहूर्त तक प्रवचन किया। रंगभवन के मालिक रंगलालजी हिरण को शय्यातर का लाभ मिला। चौबीस साधु और सत्ताईस साध्वियां कालूगणी के साथ थीं। उदयपुर से गंगापुर तक लगभग आठ सौ मील की यात्रा हुई। यह सब प्रथम गीत का प्रतिपाद्य है।

कालूगणी के गंगापुर-चातुर्मास के समय उनकी आज्ञा से साधुओं के छत्तीस और साध्वियों के पचास सिंघाड़े (वर्ग) देश में विहार कर रहे थे। साधुओं की कुल संख्या १४१ थी और साध्वियों की ३३४।

दूसरे गीत के प्रारम्भ में दो विरोधी स्थितियों का चित्रण है। एक ओर वर्षा का जोर, तपस्या का रंग और चतुर्विध धर्मसंघ में उत्साह का वातावरण, दूसरी ओर कालूगणी के शरीर की चिंतनीय स्थिति। रास्ते में यथोचित इलाज नहीं होने से व्रण विकराल रूप लेता गया तथा मधुमेह के कारण घाव ज्यों-का-त्यों बना रहा। अन्न के प्रति अरुचि, निरन्तर ज्वर, लीबर की विकृति, खांसी और शोथ के कारण शरीर इतना कमजोर हो गया कि एक ग्रास लेने में भी तकलीफ होने लगी।

शारीरिक दुर्बलता के कारण पंचमी समिति के लिए दूर जाना मुश्किल हो गया। प्रवचन करने में कठिनाई पैदा हो गई। श्रावक-श्राविकाओं के लिए उपासना का अवसर दुर्लभ हो गया। उस स्थिति में एक सुझाव आया कि यदि आयुर्वेदाचार्य पंडित रघुनंदनजी आ जाएं और चिकित्सा का दायित्व संभाल लें तो वांछित लाभ हो सकता है।

इधर उक्त चिंतन चल रहा था, उधर पण्डितजी अचानक गंगापुर पहुंच गए। कालूगणी के शरीर की स्थिति देखकर वे चकित रह गए। मुनि श्री मगनलालजी ने जावद से लेकर गंगापुर तक की सारी स्थिति विस्तार के साथ पण्डितजी को बताकर कहा—'पंडितजी! अब जो कुछ करना है, उसके बारे में आप ही सोचें।' पंडितजी ने नेत्र और नाड़ी देखकर रोग का निदान किया और अपने अनुभव

के आधार पर उपचार शुरू कर दिया।

तीसरे गीत का प्रारंभ लोगों में फैली एक अफवाह के साथ किया गया है। कुछ नासमझ लोगों ने कहा कि यदि कालूगणी हिरणों की हवेली छोड़कर अन्यत्र प्रवास करें तो स्वस्थ हो जाएं। क्योंकि वहां यक्ष, योगिनी आदि का निवास है। यह बात सुन कुछ श्रावक घबरा गए। उन्होंने कालूगणी से स्थान बदलने का निवेदन किया। कालूगणी ने निर्विकल्प भाव से कहा—'हम भूतपिशाच का भय सहन कर लेंगे, पर स्थान बदलकर शय्यातर के मकान को विवादास्पद नहीं बनाएंगे।' साता-असाता मूलतः कर्म-सापेक्ष है। उपचार एक व्यवहार है, उसे पण्डित जी कर ही रहे हैं।

आयुर्वेद विद्या में निष्णात पंडित रघुनंदनजी ने पहले रोग का निदान किया। उनके अनुसार कई रोगों ने एक साथ शरीर पर आक्रमण कर दिया था, उनमें उदर-व्याधि, मंदाग्नि, विषम ज्वर, सूखी खांसी, शोथ, लीबर की विकृति, मधुमेह आदि प्रमुख थे। पंडितजी ने अपने अनुभव के आधार पर चिकित्सा शुरू कर दी। साधु-साध्वियां दिन-रात सेवाकार्य में सजग हो गए। किंतु स्वास्थ्य में किंचित भी सुधार नहीं हुआ। पंडितजी का सारा प्रयत्न राख में घी-सिंचन की तरह व्यर्थ हो गया।

समुचित पेय से प्यास न बुझे, मनोगत भोजन से भूख न मिटे और दीया जलाने पर भी अंधकार न मिटे तो चिंता का होना स्वाभाविक है। सही चिकित्सा के बावजूद स्वास्थ्य-लाभ न होने से पंडितजी चिंतित हो गए। आसपास ऐसे कोई वैद्य नहीं थे, जिनसे परामर्श लिया जा सके। आखिर यह चिंतन हुआ कि जयपुर के राजवैद्य लच्छीरामजी यहां आ सकें तो उनका परामर्श उपयोगी हो सकता है। पंडितजी ने संस्कृत के श्लोकों में बीमारी और चिकित्सा की पूरी बात अंकित कर दी। वृद्धिचंदजी गोठी और पूरणचंदजी चौपड़ा पंडितजी का पत्र लेकर जयपुर पहुंचे।

जयपुर में स्वामी लच्छीरामजी को पंडितजी का पत्र सौंपा गया। उन्होंने पत्र पढ़ा। गंगापुर आने की स्थिति न होने के कारण पंडितजी के नाम से संस्कृत श्लोकों में उत्तर लिखा। गोठीजी और चौपड़ाजी वह पत्र लेकर पहुँचे। पंडितजी ने पत्र खोलकर पढ़ा। वैद्यजी के द्वारा पंडितजी की चिकित्सा का अनुमोदन किया गया था। इससे उत्साहित होकर वे पुनः चिकित्सा में जुट गए।

चौथे गीत में कालूगणी के स्वाथ्य को लेकर निराशा की स्थिति का विवेचन है। सरदारशहर से समागत डॉक्टर श्यामनारायणजी आदि कई डॉक्टरों ने बीमारी की असाध्यता का अनुभव किया और आरोग्य की आशा छोड़ दी। शरीर में दुर्बलता

बढ़ रही थी, फिर भी कालूगणी प्रवचन करने पधारते। संतों ने नहीं पधारने के लिए निवेदन किया तो उन्होंने कहा—'प्रवचन में नहीं जाने से सब जगह बात फैल जाएगी।' पर शरीर के साथ ज्यादती कब तक चलती।

सावन शुक्ला त्रयोदशी से प्रवचन, परिषद में प्रतिक्रमण, उपासना कराना आदि कार्य बंद हो गए। मुनि तुलसी उपदेश देने लगे और मुनिश्री मगनलालजी व्याख्यान देने लगे। इससे कुछ दिन पहले मुनि तुलसी से रात्रि में रामचरित्र शुरू करवाया, पर वह दो-तीन दिन से अधिक चल नहीं पाया।

कालूगणी के रोग की असाध्यता ने पंडित रघुनंदनजी को भी निराश कर दिया। उन्होंने किसी अन्य वैद्य से चिकित्सा कराने का निवेदन किया। इसका कालूगणी ने दृढ़ता से प्रतिवाद कर दिया। उन्हीं दिनों बीमारी के कारण राजलदेसर में स्थिरवासिनी साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी का स्वर्गवास हो गया। कालूगणी ने उनके पण्डित मरण का उल्लेख किया।

कालूगणी के स्वास्थ्य की गंभीर स्थिति ने मुनिश्री मगनलालजी को व्यथित कर दिया। दीक्षा के बाद वे बचपन से ही कालूगणी के साथी बनकर रहे थे। उन्हें संदेह होने लगा कि अब यह जोड़ी कैसे रहेगी ? कालूगणी अब तक आश्वस्त थे कि देर-सबेर इस बीमारी से छुटकारा हो जाएगा। इसलिए वे मुनिश्री मगनलालजी के मन को मजबूत बनाते रहे।

उन्हीं दिनों मुनिश्री मगनलालजी ने सब संतों को सुझाव दिया कि अभी वे अन्य सब कार्यों को गौणकर पूज्य कालूगणी की सेवा के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहें।

भाद्रपद कृष्णा नवमी को एकान्त अवसर देखकर डॉक्टर अश्विनीकुमार ने पूज्य कालूगणी और मुनिश्री मगनलालजी को निवेदन किया कि अब स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार की संभावना क्षीण हो गई है। इसलिए आपको संघीय दृष्टि से जो व्यवस्था करनी है, उसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। डॉक्टर की बात सुन कालूगणी ने पहली बार स्थिति की गंभीरता का अनुभव किया।

पांचवें गीत में पंडितजी रघुनंदनजी ने मुनिश्री मगनलालजी के सामने निराशासूचक बात प्रकट की। इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए मुनिश्री कुन्दनमलजी, मुनिश्री चंपालालजी और मुनिश्री चौथमलजी ने कहा—हम सब लोग निश्चिंत हैं। संघ की भावी व्यवस्था के बारे में चिन्ता करने वाले एकमात्र आप हैं।

उचित अवसर देखकर मुनिश्री मगनलालजी कालूगणी के पास पहुंचे और बोले—'डॉक्टर अश्विनीकुमार और पंडित रघुनन्दनजी की निराशाजनक बातें सुनकर हमारी चिंता बढ़ रही है। हम आपके स्वास्थ्य की मंगल कामना करते हैं, पर

नियति के सामने सब मजबूर हैं। दूध का जला व्यक्ति छाछ को भी फूंक देकर पीता है। हमारे मन में यह आशंका है कि कहीं माणकगणी के इतिहास की पुनरावृत्ति न हो जाए। हमारा निवेदन एक ही है कि संघ की परम्परा अविच्छिन्न रहे।'

मुनिश्री मगनलालजी की प्रार्थना सुनकर कालूगणी ने कहा—'आज तक मैं आपकी बात को यों ही लेता रहा। किंतु अब डॉक्टर, पंडितजी और आप के कथन में संवादिता देखकर मुझे भी विश्वास हो गया कि इस शरीर का कोई भरोसा नहीं है। साठ वर्ष की अवस्था, बीदासर की धरती और मातुश्री छोगांजी के सान्निध्य में मुझे अपने युवाचार्य की नियुक्ति करनी है, यह मेरा एक सपना था। पर अब मैं जल्दी-से-जल्दी सारा काम समेटना चाहता हूं।

इस संदर्भ में मुनिश्री मगनलालजी और कालूगणी के बीच हुआ संवाद बहुत ही रोचक है। कालूगणी ने भाद्रपद कृष्णा दशमी के दिन कहा कि उन्हें कल ही युवाचार्य का अभिषेक करना है। मुनिश्री मगनलालजी बोले—'इतना बड़ा काम शुभ मुहूर्त्त में होना चाहिए।' उन्होंने ज्योतिषी से बात की। भाद्रपद शुक्ला तृतीया का दिन निश्चित हुआ। कालूगणी के लिए इतनी लम्बी प्रतीक्षा असह्य हो रही थी। किंतु मुनिश्री ने जैसे-तैसे उनको आश्वस्त कर अपनी बात स्वीकार करवा दी।

छठे गीत में गुरु-शिष्य के एकांत मिलन और अंतरंग संवाद का भावपूर्ण चित्रण है। युवाचार्य की नियुक्ति का निर्णय लेने के बाद पांच दिनों में ही कालूगणी का शरीर बहुत क्षीण हो गया। इस स्थिति से चिंतित हो उन्होंने मुनिश्री मगनलालजी से कहा—'तृतीया तक इस शरीर का टिकना कठिन प्रतीत हो रहा है। मैं अपने हाथ से अपना दायित्व सौंपकर निश्चिंत होना चाहता हूं।' मुनिश्री मगनलालजी का दृढ विश्वास था कि यह काम तृतीया को ही होगा। इस दृष्टि से उन्होंने निवेदन किया—'आज पूर्व भूमिका के रूप में अपना काम शुरू करें, पर मूल काम निर्धारित तिथि को ही करना है।'

सोमवती अमावस्या का दिन और विजय मुहूर्त। ठीक सवा ग्यारह बजे कालूगणी ने मुनि तुलसी को याद किया। मुनि तुलसी आए। कालूगणी के निर्देश से हाथ के सहारे उन्हें बिठाया। कालूगणी ने अपने स्वास्थ्य का हवाला देते हुए स्पष्ट कह दिया कि वे अब शासन का भार मुनि तुलसी को सौंपना चाहते हैं।

मुनि तुलसी एक अकल्पित बात सुनकर स्तब्ध रह गए। उनकी स्तब्धता को तोड़ते हुए कालूगणी ने पहली सीख दी—'तुलसी ! तुमको विशेष सजगता रखनी है, जिससे किसी को यह अनुभव न हो कि संघ के आचार्य बहुत छोटी अवस्था के हैं। मैं इस सचाई से अवगत हूं कि एक बालक अपनी प्रतिभा के

बल पर प्रौढ़ बन जाता है और प्रतिभा एवं विवेक के अभाव में स्थविर भी बाल बन जाता है।'

प्रस्तुत गीत के अग्रिम भाग में मुनि तुलसी की व्यथा-कथा में आशा की एक पतली-सी रेखा भी उभरी है। जहां उन्होंने कामना की है कि कालूगणी पुनः स्वास्थ्य लाभ कर उन्हें एक बार सेवा का मौका प्रदान करें। कालूगणी ने भी अपने प्रिय शिष्य को आश्वस्त करके भविष्य में करणीय कुछ कार्यों का संकेत देकर गुरु-शिष्य की एकात्मकता का दृश्य उपस्थित कर दिया।

सातवें गीत में पूज्य कालूगणी द्वारा अमावस्या की रात्रि में प्रदत्त शिक्षा का संकलन है। पाक्षिक प्रतिक्रमण और खमत-खामणा का कार्य सम्पन्न होने के बाद मुनिश्री मगनलालजी ने कालूगणी से सामूहिक शिक्षा के लिए अनुरोध किया।

शिक्षा प्रदान करने से पहले कालूगणी ने चतुर्विध धर्मसंघ के सौभाग्य की सराहना की। पूर्ववर्ती आचार्यों के कर्तृत्व का उल्लेख किया और बिना किसी संकेत के भावी आचार्य के लिए शिक्षा दी—

* संघ-सुरक्षा का लक्ष्य सर्वोपरि रखना।
* पक्ष-विपक्ष की भावना से दूर रहकर संघ का विकास करना।
* मर्यादानिष्ठ और आज्ञानिष्ठ साधु-साध्वियों को संयम का आश्वासन देते रहना।
* संघ में विनयी, विज्ञ और विवेकी साधु-साध्वियों की कमी न हो जाए, इस बात का ध्यान रखना।
* स्वच्छन्दाचारी, अविनयी, आग्रही तथा संघ की मर्यादा और व्यवस्था की अवहेलना करनेवालों का प्रतिकार करना।
* प्रमादी व्यक्तियों को प्रायश्चित्त देकर तथा उनका विवेक जगाकर ठीक करना, ऐसा संभव न हो तो उनका संघ से संबंध-विच्छेद कर देना।
* अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक रहना, अभय होकर काम करना तथा संघ-विकास के लिए स्वतंत्र चिंतन करते रहना।

शिक्षा का एक अध्याय सम्पन्न कर कालूगणी ने पूरे संघ को सामने रखकर कहा—

* संघ में आचार्य अवस्था में छोटे हों या बड़े, उनके प्रति श्रद्धा-समर्पण के भाव रखना।
* आचार्य की आज्ञा का अखण्ड रूप में पालन करना, प्राण भले ही जाए, पर आज्ञा का भंग न हो।
* अपनी साधना एवं महाव्रतों की आराधना के प्रति सजग रहना।

* शासन से साधु-साध्वियों की और साधु-साध्वियों से शासन की शोभा होती है।
* संघ की शोभा आचार्य से है, आचार्य की शोभा संघ से है तथा संघ और आचार्य से जिनशासन की शोभा होती है।

पूज्य कालूगणी के अमूल्य शिक्षा-रस का आस्वादन कर तत्रस्थ सभी मुनि धन्य और कृतपुण्य हो गए।

आठवें गीत में मुनिश्री मगनलालजी ने सब संतों के साथ कालूगणी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर निवेदन किया—'प्रबल असाता के बावजूद आपने जो श्रम किया है, वह इतिहास का एक दुर्लभ पृष्ठ बन गया। आपश्री ने हमें पूरा कर्तव्यबोध दे दिया, पर श्रीमुख से किसी का नाम नहीं फरमाया। यदि आप कृपा करें तो हमारी दुविधा समाप्त हो जाए।'

मुनिश्री मगनलालजी की बात सुन कालूगणी बोले—'आपका कथन ठीक है, पर मुझे उपयुक्त समय पर उचित तरीके से जो काम करना हो, उसे मैं आज कैसे कर सकता हूं। वर्तमान के साधु जानते ही नहीं हैं कि युवाचार्य पद कैसे दिया जाता है तथा युवाचार्य-आचार्य एवं युवाचार्य और संघ का पारस्परिक व्यवहार क्या होता है। मैंने सोचा था कि साठ वर्ष पूरे होने पर यात्रा सम्पन्न हर थली में बीदासर पहुंचकर मांजी छोगांजी की उपस्थिति में चतुर्विध संघ के समक्ष युवाचार्य की नियुक्ति करूं और जय-मघवा एवं मघवा-माणक के युग में घटित इतिहास की पुनरावृत्ति सारे संघ को प्रत्यक्ष दिखाऊं। किंतु शरीर की स्थिति देखते हुए मुझे यह सब कठिन प्रतीत हो रहा है। इसलिए अब मुझे सारा काम यहीं करना है।'

अपने कथन को और अधिक स्पष्ट करते हुए कालूगणी ने कहा—'कल तक तो मैं यूं ही बात करता रहा, पर आज आहार के बाद उसे बुलाकर अंतरंग बातचीत शुरू कर दी। जो कुछ शेष रहा, वह भी कहना और लिखना है। मुझसे नहीं लिखा जाएगा तो वह लिखेगा।' इस प्रकार कालूगणी ने एक स्पष्ट संकेत दे दिया। मुनि मगनलालजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए विश्राम करने का निवेदन किया।

नौवें गीत में युवचार्य-नियुक्ति का विस्तृत वर्णन है। अमावस्या और तृतीया के मध्य में दो दिन थे। एकम को मध्याह्न में कालूगणी ने मुनि तुलसी को दो विशेष निर्देश दिए। द्वितीया को मुनि तुलसी का केशलोच हुआ। उसी दिन सायंकाल कालूगणी ने चम्पक मुनि को सूर्योदय होते ही स्याही और लेखन सामग्री लाने का निर्देश दिया।

तृतीया के दिन सूर्योदय के समय कालूगणी ने प्रसन्नता के साथ

युवाचार्य-नियुक्ति-पत्र लिखा। सब संतों को याद किया। साध्वियां पहुंच गईं। श्रावक-श्राविकाओं की भी अच्छी उपस्थिति थी। चतुर्विध संघ के सामने कालूगणी द्वारा लिखित नियुक्ति-पत्र मुनिश्री मगनलालजी ने खड़े होकर पढ़ा। कालूगणी ने अपने हाथ से उसे मुनि तुलसी को सौंपा और कुछ समय पहले ओढ़ी गई नई पछेवड़ी उतार कर अपने हाथों से मुनि तुलसी को ओढ़ा दी। जयनारों से रंग-भवन गूंज उठा। मुनिश्री मगनलालजी ने एक दोहा बोलकर कृतज्ञता ज्ञापित की।

कालूगणी द्वारा मुनि तुलसी को युवाचार्य पद सौंपने के बाद उन्हें जो अनुभूति हुई, उसे प्रस्तुत गीत में कुछ प्रतिमानों में गुंथा गया है, जैसे—एक रजकण को मेरु बनाना, पानी की बूंद को मोती बनाना, मिट्टी के ढेले को कामकुम्भ में रूपायित करना, पाषाणखण्ड को प्रतिमा बना देना, पुष्प को राजा के मुकुट पर लगाना, बूंद को समुद्र बनाना आदि। इसी प्रकार कवि ने कुछ कथानकों के माध्यम से कालूगणी के कर्तृत्व को उजागर किया है।

दसवें गीत में युवाचार्य-नियुक्ति के संवाद का प्रसारण, प्रातःकालीन वन्दना-विधि और युवाचार्य के संदर्भ में संघीय रीति-नीति आदि का निरूपण है। संवाद-प्रसारण का काम गणेशदासजी गधैया ने किया, वन्दना-विधि स्वयं कालूगणी ने बताई और रीति-नीति से संबंधित जानकारी मुनिश्री मगनलालजी ने दी।

युवाचार्य की नियुक्ति के बाद कालूगणी ने आज्ञा आलोयणा, गत दिन वार्ता श्रवण, प्रवचन, हाजरी आदि की पूरी जिम्मेदारी युवाचार्य को सौंप दी। संवत्सरी महापर्व एकदम सामने आ गया तो शारीरिक दृष्टि से विपुल वेदना की स्थिति में भी कालूगणी ने केशलोच करवाकर दृढ मनोबल का परिचय दिया।

कालूगणी के निर्देश से युवाचार्य तुलसी ने जयाचार्य रचित आराधना सुनाई। सायंकालीन प्रतिक्रमण सुनाने के बाद दशवैकालिक सूत्र के आधार पर महाव्रतों का उच्चारण कराया। कालूगणी स्वयं भी नमस्कार महामंत्र का जाप करते रहे। उन दिनों बाहर से हजारों व्यक्ति दर्शन करने आए। उनमें विशिष्ट वैद्य, हकीम और डॉक्टर भी थे। उन्होंने अपनी-अपनी औषधि का उपयोग कर चिकित्सा करने का अनुरोध किया, किंतु कालूगणी ने किसी का अनुरोध स्वीकार नहीं किया। ऐसे दुःसह कष्ट के समय नियमों के प्रति इतनी दृढ़ता देख सब चिकित्सक निर्वाक हो गए।

ग्यारहवें गीत में भाद्रपद शुक्ला तृतीया की रात्रि का वर्णन हे। रात्रि में लगभग एक बजे कालूगणी के श्वास का वेग बढ़ा। उसे देखकर सब घबरा गए। डॉक्टर और वैद्य बोले—अब गुरुदेव का शरीर बचना मुश्किल है। पंडित रघुनन्दनजी

ने कहा—'तीन नाड़ियों में एक नाड़ी पूरी तरह से बंद हो गई है।' उस समय पूज्य कालूगणी ने अपने युवाचार्य को याद किया। युवाचार्य तुलसी तत्काल आए और उनके निकट बैठ गए। कालूगणी ने एक भरपूर नजर से युवाचार्य को देखा और अपनी वेदना को भूलकर कुछ विशेष निर्देश दिए—

'तुलसी ! ये साधु-साध्वियां तुम्हारी शरण में हैं। तू शासन की संभाल में सजग रहना। संघ के छोटे-बड़े सब साधु-साध्वियों के प्रति एक समान नीति का प्रयोग करना। संघ में बालक, वृद्ध और बीमार हैं, उन सबकी सेवा कराना। सब साधु-साध्वियों को संयम-साधना में सहयोग देना। सारणा-वारणा के क्रम में यथोचित साधुवाद और उपालम्भ देना। तुम्हारा सबसे बड़ा दायित्व है संघ की सुरक्षा । इस दायित्व को दृढ़ता के साथ निभाना है। संघीय पुस्तकों में नए-पुराने जितने पन्ने हैं, उन सबको सुरक्षित रखना। दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्ति प्रार्थना करेंगे। उन्हें अवसर हो तो दीक्षा देना, अन्यथा दीक्षा के लिए निषेध कर देना। मूल बात है चारित्र। वह रत्न के समान अनमोल है। शुद्ध चारित्र की पालना में सर्वाधिक सजग रहना है।'

कालूगणी की शिक्षा सुनकर युवाचार्य तुलसी को ऐसा अनुभव हुआ मानो गुरुदेव ने उनको रत्नों की अनमोल राशि सौंपी है। जैसे परदेश जाने वाले पुत्र को पिता सीख देता है, वैसे ही कालूगणी ने उनको शिक्षा दी है। जिस प्रकार जयाचार्य ने युवाचार्य मघवा को और मघवागणी ने युवाचार्य माणक को विविध शिक्षाएं दीं, वैसे ही कालूगणी ने कृपा की है।

कुछ क्षण विश्राम कर कालूगणी साधु-साध्वियों को अनेक प्रकार की बख्शीशें करवाई, उनका विवरण इस प्रकार है—

मुनि मगनलालजी—नेश्राय के उपकरण समुच्चय में रखने की बख्शीश।
कारण से औषधि और उष्ण आहार ले तो विगय बख्शीश।
मुनि चौथमलजी—समुच्चय के बोझ की बख्शीश।
संघीय सब कार्यों की बख्शीश।
मुनि शिवराजजी—दस हजार गाथाओं की बख्शीश।
मुनि हाथीमलजी—चार हजार गाथाओं की बख्शीश।
मुनि कुन्दनमलजी—शीतकाल में तीन वर्ष तक सब कार्यों की बख्शीश।
मुनि सुखलालजी—शीतकाल में तीन वर्ष तक सब कार्यों की बख्शीश।
मुनि चम्पालालजी—शीतकाल में तीन वर्ष तक सब कार्यों की बख्शीश।
मुनि सोहनलालजी—शीतकाल में तीन वर्ष तक सब कार्यों की बख्शीश।
गुरुकुलवासी शेष साधु—नौ बारी की बख्शीश।

साध्वी झमकूजी—समुच्चय के सब कार्यों और बोझ की बख्शीश।

गुरुकुलवासी शेष साध्वियां—शीतकाल में दो वर्ष तक सब कार्यों की बख्शीश।

कालूगणी ने लगभग दो घड़ी तक बाढ़ स्वर से शिक्षा और बख्शीशों की बौछार करके डॉक्टरों एवं वैद्यों को भी चकित कर दिया। भगवान महावीर ने परिनिर्वाण से पहले सोलह प्रहर तक लगातार देशना दी, वैसे ही कालूगणी ने नाड़ी की गति विषम होने पर भी जो परिश्रम किया, वह उनके विलक्षण व्यक्तित्व की निशानी बनकर रह गया।

बारहवें गीत में पूज्य कालूगणी के शरीर की स्थिति में आए उतार-चढ़ावों के साथ अनशनपूर्वक हुए महाप्रयाण का चित्रण है। तृतीया की रात को हुआ श्वास का प्रकोप एक बार शान्त हो गया। डॉक्टर अश्विनीकुमार और पंडित रघुनन्दनजी बोले—'गुरुदेव का शरीर अधिक दिन टिकनेवाला नहीं है। फिर भी इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना मुश्किल है।' डॉक्टर यन्त्र लगा हार्ट की गति का परीक्षण करने लगा तो कालूगणी ने कहा—'डॉक्टर! ऐसे क्या देखता है? मेरा कलेजा यों धड़कने वाला नहीं है।'

चतुर्थी के दिन सुबह से शाम तक हजारों लोगों ने पूज्य कालूगणी के दर्शन कर स्वयं को धन्य अनुभव किया। मेवाड़ के अन्य क्षेत्रों में चातुर्मास करने वाले कुछ साधु-साध्वियों ने भी अवसर का लाभ उठाया। आगम की आज्ञा के आधार पर वे चातुर्मास में विहार कर गंगापुर पहुंच गए। दिन भर जमावट की स्थिति रही।

सायंकाल श्वास का वेग बढ़ा, जिसका असर रात भर रहा। संतों ने निवेदन किया कि आज शरीर की स्थिति नाजुक लग रही है। कालूगणी बोले—'अभी रात का समय है और कल संवत्सरी है। परसों सूर्योदय तक मुझे चारों आहार का त्याग है। बीच में ही आयुष्य पूर्ण होने की स्थिति में यावज्जीवन का त्याग है।' इस प्रकार उन्होंने दृढ़ता के साथ सागारी अनशन स्वीकार कर लिया।

पंचमी के दिन युवाचार्य तुलसी संवत्सरी का प्रवचन करके आए। कालूगणी उठने या बोलने की स्थिति में नहीं थे। वह पूरा दिन बेचैनी में बीता। पश्चिम रात्रि में स्वास्थ्य में कुछ अनुकूलता का अनुभव होते ही कालूगणी बोले—'कल तो मैंने रात-दिन पूरा विश्राम ही किया। युवाचार्य से सुखसाता भी नहीं पूछी। अब उसे शीघ्र बुलाओ।' युवाचार्यश्री उपस्थित हुए तो उनके मस्तक पर अपना वरद हाथ टिका कर बोले—'कल इतना लम्बा प्रवचन किया। प्यास तो नहीं लगी?' युवाचार्य अभिभूत हो गए।

सूर्योदय के बाद उपवास का पारणा हो गया। संघ में प्रसन्नता की लहर आ गई। चौविहार उपवास में कुछ भी घटित हो सकता था, पर पारणा होने के बाद कुछ निश्चिन्तता आ गई। दिन के तीन प्रहर ठीक बीत गए। चतुर्थ प्रहर में पुनः श्वास का वेग और बेचैनी बढ़ गई। लगभग पौने छह बजे कालूगणी ने युवाचार्यश्री से पूछा—'दिन कितना शेष है ?' पैंतीस मिनट दिन की बात सुन वे बोले—'पानी पीने के लिए मुझे बिठाओ।' बैठने की स्थिति नहीं होने से लेटे-लेटे ही पानी लेने का निवेदन करने पर कालूगणी बोले—'तरल वस्तु लेटे-लेटे नहीं लेनी चाहिए।'

पानी पीकर लेटते ही श्वास की गति तेज हो गई। मुनि मगनलालजी स्वामी के बारे में पूछने पर संत उन्हें बुलाने गए। वे बहुत शीघ्रता से चलकर आए। उन्हें देखते ही कालूगणी बोले—'अबै।' मुनिश्री मगनलालजी उनके भाव समझ गए। उन्होंने पूछा—'आपको संथारा कराएं?' कालूगणी की स्वीकृति मिलते ही बिना एक क्षण खोए उन्हें संथारा पचखा कर शरण सूत्र सुनाने लगे। चतुर्विध संघ की उपस्थिति में युवाचार्य तुलसी के देखते-देखते सात मिनट के संथारे में कालूगणी का स्वर्गवास हो गया। छह बजकर दो मिनट पर संथारे का स्वीकार और नौ मिनट पर संपन्नता। शासनपति कालूगणी का स्वर्गगमन देख वासरपति (सूर्य) भी ग्यारह मिनट बाद ही अस्त हो गया।

तेरहवें गीत में आचार्य तुलसी के मस्तिष्क में उभरे स्मृतियों के सैलाब को मार्मिक अभिव्यक्ति दी गई है। सत्ताईस वर्षों तक धर्मशासन की संभालकर कालूगणी सबको छोड़कर चले गए। उस समय संघ में १३९ साधु और ३३३ साध्वियां थीं। लाखों श्रावक-श्राविकाएं गुरु के विरह में बेहाल हो गए। बानवे वर्ष की वृद्ध साध्वी मातुश्री की मनःस्थिति भी एक बार तो विचित्र-सी हो गई। कालूगणी की सन्निधि में जो उनकी मींट निहारते रहते थे, वे सब विरह-व्यथा से व्याकुल हो गए।

प्रस्तुत गीत की नौवीं से बत्तीसवीं तक २४ गाथाओं में आचार्य तुलसी ने अपने मन-मस्तिष्क को जिस रूप में खोलकर रखा है, उस प्रसंग को पढ़ने वाले पाठक भी द्रवित हुए बिना नहीं रह पाते। प्रत्येक गाथा बहुत अधिक भावपूर्ण है। उस पद्यबद्ध संक्षिप्त या अव्यक्त अभिव्यक्ति को पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया जाए तो एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार हो सकता है।

गीत के उपसंहार में संपूर्ण घटना को भवितव्यता मानकर विश्राम लिया गया है। साथ ही यह निरूपण भी किया गया है कि कालूगणी बहुत सौभाग्यशाली थे। उनके जीवन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रही। वे कृतकाम होकर गए।

उनकी स्मृति में होने वाली मानसिक विह्वलता में वैयक्तिक स्वार्थों को ही निमित्त मानना चाहिए।

चौदहवें गीत में पूज्य कालूगणी के अन्त्येष्टि संस्कार का व्यवस्थित वर्णन है। स्वर्गवास के छत्तीस मिनट बाद मुनिश्री मगनलालजी के निवेदन पर आचार्य श्री तुलसी ने कालूगणी के पार्थिव शरीर का व्युत्सर्ग कर चउवीसत्थव किया।

रंग-भवन के नीचे वाले तल पर चौक में पूज्य कालूगणी के पार्थिव शरीर को पट्टासीन किया गया। रात भर श्रावक लोग भजन-कीर्तन करते रहे। कारीगरों ने पूरी रात काम कर पैंसठ खण्डी बैकुण्ठी तैयार की। उदयपुर से सरकारी लवाजमा आया। सप्तमी को मध्याह्न में व्यवस्थित रूप में शवयात्रा निकली। 'ॐ जय कालू गुरुदेव'—इस आरती के समवेत संगान में एक ओर श्रद्धा-भक्ति के स्वर गूंज रहे थे तो दूसरी ओर कालूगणी के जीवन की संक्षिप्त झांकी मिल रही थी।

गंगापुर शहर में परिभ्रमण के बाद सोरती दरवाजे से बाहर रंगलालजी हिरण के खेत में पूज्य कालूगणी का अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। लगभग तीस हजार लोग उस यात्रा में सम्मिलित थे। सूर्य के समान प्रकाशमान पूज्य गुरुदेव का पार्थिव शरीर कैसे विलीन हुआ, इसका पूरा विवरण प्रस्तुत गीत में उपलब्ध है।

पन्द्रहवें गीत में कालूगणी के स्वर्गवास के बाद पूर देश की स्थिति का चित्रण किया गया है। टेलीग्राम से स्वर्गवास के संवाद प्राप्त होते ही एक बार सब लोगों को बड़ा आघात-सा लगा। उन्हें अनुभव हुआ कि जैन जगत का एक तेजस्वी नक्षत्र अस्त हो गया। यत्र-तत्र स्मृति-सभाओं का आयोजन हुआ। बीकानेर रियासत में पूरी बंदी रही। कलकत्ता के अनेक बाज़ार बंद रहे। बम्बई, असम, बंगाल आदि प्रदेशों में भी व्यापक रूप में बंदी रखी गई। दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक समाचार पत्रों में टिप्पणी के साथ संवाद प्रकाशित किए गए। जैन तथा जैनेतर सभी लोगों के मुख पर कालूगणी का यशोगान थिरकने लगा।

मेवाड़ के महाराणा भोपालसिंहजी को कालूगणी के स्वर्गवास तथा देश भर की स्थितियों के संवाद मिले तो उन्होंने सुन्दरलालजी मुरड़िया को उपालम्भ देते हुए कहा—'बीकानेर रियासत में इतनी जबरदस्त बन्दी हुई और आपने मुझे सूचना तक नहीं दी। बीकानेर रियासत में बन्दी हो और मेवाड़ में सर्वालय बंदी न हो तो अपने राज्य की हलकी लगती है। मुझे आज अनुभव हुआ है कि हीरालालजी मुरड़िया नहीं रहे। यदि वे होते तो ऐसी गलती नहीं करते।' सुन्दरलालजी ने अपनी भूल स्वीकार की। छठे उल्लास के सोलहवें गीत में मातुश्री छोगांजी के सामने उत्पन्न नई परिस्थिति, उनकी मनःस्थिति, मनःस्थिति का बदलाव, लोगों द्वारा फैलाई गई अफवाह एवं जन-प्रवाद और मातुश्री के साहस भरे उत्तर मनोवैज्ञानिक परिवेश

में विवेचित हैं।

बीदासर में स्थिरवासिनी मातुश्री ने कालूगणी के स्वर्गवास का संवाद सुना तो उसका तात्कालिक असर होना स्वाभाविक था। उन्होंने स्मृतियों के झरोखे से अतीत में झांककर कहा—मुझे निश्चित विश्वास था कि अपने पुत्र-गुरु कालूगणी के हाथों में मेरी संयम-यात्रा सम्पन्न होगी, किंतु मेरे सामने उनका स्वर्गवास हो गया। स्वप्न में भी जो नहीं सोचा था, वह आज घटित हो गया। लगता है कि मेरे इस लम्बे आयुष्य ने ही मुझे यह दिन दिखलाया है।

कुछ क्षणों की विह्वलता के बाद मातुश्री के चिंतन की धारा ने दिशा बदल ली। उन्होंने सोचा—रे चेतन! तू क्यों घबरा गया। ये सारे सुख-दुःख कल्पित हैं। संयोग के साथ वियोग की अनिवार्यता है। आज मुझे पुत्र का वियोग हुआ है, यह सचाई है। पर मैं ही क्या, सारा संघ इस व्यथा को झेल रहा है। फिर मेरे मन में यह कमजोरी क्यों ? मैं नरसिंहजी की पुत्री हूं और नर-सिंह (कालूगणी) की माता हूं। मन में किंचित भी कमजोरी मेरे लिए त्रपास्पद है। इस प्रकार चिंतन-धारा बदलकर मातुश्री ने अपना मन मजबूत कर लिया।

उधर गांव-गांव में एक अफवाह फैल गई कि भाद्रपद शुक्ला सप्तमी से ही माजी छोगांजी ने भोजन छोड़ दिया है। कुछ लोग कहने लगे कि उन्होंने संथारा स्वीकार कर लिया है अथवा करने वाली हैं। क्योंकि पुत्र के विरह में वे कब तक जीवन धारण कर पाएंगी? अब तक उनके पास वियोगी व्यक्ति या परिवार जाते, उन्हें वे मनोबल मजबूत रखने की प्रेरणा देती थीं, आज उनकी सारी बातें कसौटी पर चढ़ी हुई हैं।

इस प्रकार की अफवाहों ने अनेक लोगों को आशंकित कर दिया। माजी की मनःस्थिति को परखने के लिए वे बीदासर जाने लगे। लोग उन्हें कई प्रकार के प्रश्न पूछते। मातुश्री हर प्रश्न का निर्भीकता के साथ जवाब देतीं। वे कहतीं—'भाई! कालूगणी जैसे पुत्र के वियोग ने एक बार मुझे व्याकुल बना दिया। किंतु मैंने अपने मन को अच्छी तरह समझा लिया। अब मैं गुरुदेव कालूगणी के उत्तराधिकारी तुलसीगणी के नाम का स्मरण करूंगी। आज तुलसीगणी ही मेरे लिए कालूगणी, डालगणी, माणकगणी, मघवागणी, जयाचार्य आदि सब कुछ हैं। इस संघ में कहीं कोई कमी नहीं है। जब तक आयुष्य है, मैं शांति के साथ साधना करूंगी। मेरी इच्छा है कि अन्तिम समय में अनशन कर आराधक पद प्राप्त करूं।'

इधर-उधर की अनर्गल बातें सुन मातुश्री से साक्षात्कार करने के लिए आने वाले लोग उनकी स्पष्टोक्ति सुन चकित रह गए। उन्होंने कहा—'सुना तो कुछ

और ही था, पर यहां की स्थिति देखकर हमारे सारे संदेह दूर हो गए।'

कालूगणी के बाद चार वर्ष तक मातुश्री छोगांजी की संयम-साधना निर्विघ्न रूप से चली। इस बीच आचार्यश्री तुलसी की संसारपक्षीय माता वदनांजी की दीक्षा हो गई। मातुश्री छोगांजी और मातुश्री वदनांजी का मिलन प्रसंग भी ऐतिहासिक रहा। वि. सं. १९९७ में मातुश्री छोगांजी ने आचार्यश्री तुलसी के समक्ष अनशनपूर्वक अपनी संयम-यात्रा सानन्द संपन्न की।

शिखा-परिचय

पूज्य कालूगणी के जीवन वृत्त को पूरे विस्तार के साथ विविध कोणों से प्रस्तुति देने के लिए आचार्यश्री ने राजस्थानी भाषा में कालूयशोविलास का सृजन किया। सोलह-सोलह गीतों वाले छह उल्लासों की रचना करने के बाद भी रचनाकार का मन नहीं भरा। वे उसके जीवन-सिन्धु में पुनः-पुनः अवगाहन करते रहे। उस अभीक्ष्ण-अवगाहना की निष्पत्ति है पांच शिखाएं। छह उल्लासों के गीतों के साथ इनका योग करने से कालूयशोविलास के एक सौ एक गीत हो गए।

कुछ पाठक विस्तार रुचिवाले होते हैं और कुछ संक्षिप्त रुचिवाले। इतिहास, तत्त्वज्ञान, दीक्षा-विवरण तथा अन्य घटना-प्रसंगों में विशेष रुचि नहीं रखनेवाले तथा अति संक्षेप में सरलता से कालूगणी का जीवन पढ़ने के इच्छुक पाठकों के लिए पाँच शिखाओं का अध्ययन बहुत उपयोगी है।

प्रथम शिखा में कालूगणी के जीवन की संक्षिप्त झांकी है। इसमें जन्म, दीक्षा, आचार्यों का सान्निध्य, आचार्य पद की प्राप्ति, अध्ययन, जनता पर प्रभाव, चातुर्मास-विवरण दीक्षा-विवरण, शासनकाल, साधु-साध्वियों की संख्या, महाप्रयाण, कालूगणी की दीर्घकाल तक विशेष सेवा करनेवाले साधु-साध्वियों का नामांकन आदि विशिष्ट तथ्यों का संकलन है।

दूसरी शिखा में कालूगणी के जीवन-वृत्त की कतिपय विशिष्टताओं का आकलन किया गया है।, जैसे—कालूगणी के बारे में भविष्यवाणी एवं स्वामीजी अथवा जयाचार्य का संकेत, दीक्षा का कीर्तिमान, शिक्षा के क्षेत्र में अकल्पित विकास, संस्कृत भाषा में समस्यापूर्तिमय स्तोत्रों की रचना, दीक्षा और संस्कृत शिक्षा के संबंध में कालूगणी के स्वप्न, स्वप्न में भगवती के कठिन स्थलों का अवबोध, लिपि-कला, ग्रन्थभण्डार, विदेशी विद्वानों, राजा-महाराजाओं तथा विशिष्ट राज्याधिकारियों से मिलन, सुदूर प्रदेशों में साधु-साध्वियों की यात्रा, तपस्या, अनशन, धर्मसंघ के सामने उपस्थित कठिन परिस्थितियां एवं उनका समाधान आदि-आदि।

तीसरी शिखा में कालूयुग में हुए संघीय विकास का उल्लेख विविध संस्मरणों के माध्यम से किया गया है। कुछ मधुर संस्मरण प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकार आचार्यश्री तुलसी के जीवन से जुड़े हुए हैं, जिन्हें पढ़ने से कालूगणी के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया का बोध होता है। इसी क्रम में कुछ अन्य साधुओं के प्रसंग भी संगृहीत किए गए हैं। संस्कृत विद्वानों के प्रति कालूगणी का आकर्षण और पंडितमानी विद्वानों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण भी हृदयग्राही है। शिक्षा और कला के क्षेत्र में प्रोत्साहन के साथ-साथ कालूगणी ने साधुओं और श्रावकों को उनके कर्तव्य का बोध भी करवाया है। संघीय विकास में जुड़े हुए कतिपय साधु-साध्वियों का उल्लेख रचनाकार की प्रमोद भावना को अभिव्यक्ति देने वाला है।

चौथी शिखा के प्रारंभिक पद्यों में कालूगणी की प्रशिक्षण कला को रूपायित करने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त कुछ उदाहरणों का उल्लेख किया गया है। छह से पन्द्रह तक दस पद्यों में स्वयं रचनाकार की आपबीती घटनाओं का चित्रण है। ये घटनाएं शिष्य के प्रति गुरु के वात्सल्य और शिष्य की छोटी-बड़ी स्खलना पर दिए गए उपालम्भ का सजीव निदर्शन हैं। अग्रिम तेरह पद्यों में बाल साधुओं के साथ किए गए विनोद, अहिंसा की विजय, समभाव का परिचय, साधुओं पर किए गए अनुशासन, प्रेरणा, मनौवैज्ञानिक प्रयोग तथा सारणा-वारणा से सम्बन्धित अनेक घटनाओं के संकेत हैं।

२९ से ४० तक बारह पद्यों में पूज्य कालूगणी के विश्वास प्राप्त श्रावकों का उनकी कुछ विशेषताओं के साथ नामांकन किया गया है। तीन पद्यों में कालूगणी द्वारा की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही का संकेत है। इतनी घटनाओं का उल्लेख करने के बाद भी रचनाकार की स्मृति में बहुत घटनाएं शेष थीं। सब घटनाओं की प्रस्तुति अशक्य मानकर लेखनी को विराम दिया गया।

पांचवीं शिखा की रचना पूज्य कालूगणी के गुणानुवाद से शुरू हुई है। उनके अनिर्वचनीय गुणों को सीमित शब्दों का विषय बनाने का संकल्प व्यक्त करते हुए रचनाकार ने सबसे पहले उनकी आचारनिष्ठा का वर्णन किया है। कालूगणी गुणों के पक्के पारखी थे। वे गलती का प्रतिकार करते थे। आचार-निष्ठ और विनम्र शिष्यों की पूरी संभाल रखते थे। आगमों में आचार्य के जितने गुण बतलाए गए हैं, वे सब कालूगणी में मूर्तिमान थे। गुरु के गुणों की व्याख्या को असंभव मान कर आचार्य श्री ने उस दिशा में गतिशील लेखनी को विराम देने का चिंतन किया। किंतु लेखनी रुकी नहीं तो रचनाकार ने उसकी दिशा बदल दी।

गुरु के साथ बिताए विशेष क्षणों की स्मृतियों ने उत्प्रेरित किया तो

कालूयशोविलास ग्रन्थ की रचना हो गई, इस तथ्य को प्रकट करते हुए रचनाकार ने तेरापंथ की पूरी आचार्य-परम्परा का स्मरण कर लिया। ग्रन्थ-रचना के आधार का उल्लेख करते हुए कवि ने जिस विनम्रता का परिचय दिया है, उससे ग्रन्थ की गरिमा शत-सहस्रगुणित हो गई।

वि सं. २०००, भाद्रपद शुक्ला षष्ठी के दिन सायंकाल कालूयशोविलास की रचना सम्पन्न हुई। जिस दिन और जिस समय कालूगणी का स्वर्गवास हुआ था, लगभग उसी समय ग्रन्थ की संपन्नता होने से कवि ने उन क्षणों का साक्षात्कार-सा कर लिया। गंगापुर के स्थान पर गंगाशहर को स्थापित कर प्रसंगवश शय्यातर ईशरचन्दजी चौपड़ा तथा क्षेत्र का भी मूल्यांकन किया गया है। उस समय गंगाशहर में उनचालीस साधु और पचपन साध्वियां थीं। तेरापंथ संघ में साधुओं की कुल संख्या एक सौ साठ और साध्वियों की चार सौ तेरह थी। यह कालूयशोविलास की परिपूर्णता का इतिहास हैं।

नया संस्करण : नया परिवेश

आचार्यश्री तुलसी की काव्यकृतियों में शीर्षस्थ कृति है 'कालूयशोविलास'। इसमें पूज्य कालूगणी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व को जिस रूप में उजागर किया गया है, वह कृतज्ञता-ज्ञापन का एक अद्भुत उदाहरण है। इस काव्य का शब्दशिल्पन विशिष्ट है अथवा भावबोध? इस प्रश्न को उत्तरित करना आसान नहीं है। प्रस्तुत काव्य की भाषा, भाव और शैली, तीनों में अपनी वरीयता स्थापित करने की प्रतिस्पर्द्धा-सी प्रतीत हो रही है। आचार्यपद का दायित्व संभालने के बाद प्रथम तीन वर्ष अपनी कार्यक्षमता और अनुभव-सम्पदा की श्रीवृद्धि में नियोजित कर आचार्यश्री ने सृजनयात्रा प्रारंभ की। चार वर्षों के पुरुषार्थ की प्रतिकृति प्रस्तुत काव्यकृति आचार्यश्री की नैसर्गिक सृजनशीलता का जीवन्त साक्ष्य है।

वह युग मुद्रण की सुविधा का नहीं था और हमारे धर्मसंघ में मुद्रण की प्रवृत्ति भी नहीं थी। फलतः तीन दशकों तक कालूयशोविलास संघ के ग्रन्थ-भंडार की शोभा बढ़ाता रहा। पर इसकी हस्तलिखित प्रतियां प्रचुर मात्रा में तैयार हो गईं और काव्य-रसिक साधु-साध्वियों द्वारा प्रवचन में उनका उपयोग भी होता रहा।

कालूयशोविलास की रचना के तीन दशक बाद इसके सम्पादन का प्रसंग उपस्थित हुआ। उस अवसर पर आचार्यश्री ने दिल खोलकर इसका परिष्कार किया और एक प्रकार से इसे नया स्वरूप प्रदान कर दिया। 'कालू-जन्म-शताब्दी' के ऐतिहासिक अवसर पर कालूयशोविलास का प्रकाशन हुआ। काव्यरसिक, इतिहास के अनुसन्धाता और स्वाध्यायप्रेमी पाठकों को एक नया उपहार मिल गया।

कालूयशोविलास एक जीवन-चरित्र है, फिर भी साधारण पाठकों के लिए सहज बोधगम्य नहीं है। इसके कतिपय स्थल तो इतने वैदुष्यपूर्ण हैं कि उन्हें पढ़ते-पढ़ते प्रबुद्ध वर्ग की मति चकरा जाती है। यदि वाचक अध्यवसायी, अनुभवी और रागिनियों का जानकार हो तो श्रोताओं को दीर्घकाल तक बांधकर रख सकता है।

कालूयशोविलास का निर्माण होने के बाद आचार्यश्री ने परिषद में इसका वाचन किया। इसी प्रकार सम्पादन के बाद भी प्रवचन के समय कालूयशोविलास का वाचन हुआ। श्रोता मुग्ध हो गए और इसका स्वाध्याय करने के लिए उतावले हो उठे। ग्रन्थ प्रकाशित होकर आया। प्रथम संस्करण को पाठकों ने सिर-आंखों पर उठा लिया।

काव्यशैली में लिखे गए कालूयशोविलास को ग्रन्थ के स्थान पर महाग्रन्थ कहना अधिक उपयुक्त रहेगा। इसका प्रथम संस्करण बहुत जल्दी पाठकों के हाथों में चला गया। कुछ वर्षों की प्रतीक्षा के बाद द्वितीय संस्करण छपकर आया। प्रतीक्षारत पाठकों को अपनी मनपसंद काव्यकृति उपलब्ध हो गई।

कालूयशोविलास का भाषाशास्त्रीय अध्ययन जितना आवश्यक है, इसकी रागिनियों का अवबोध और अभ्यास उससे भी अधिक जरूरी है। इस अपेक्षा को ध्यान में रखकर स्वयं आचार्यश्री ने अनेक बार साधु-साध्वियों को कालूयशोविलास की रागिनियों का प्रशिक्षण दिया, उनका अभ्यास कराया।

राजस्थानी भाषा में अनुसन्धान करने वाले कुछ छात्रों ने कालूयशोविलास को शोध का विषय बनाया। संभवतः एक-दो छात्रों ने उस पर डॉक्टरेट की उपाधि भी प्राप्त कर ली होगी। किन्तु कालूयशोविलास पर अनुसन्धान की कोई इयत्ता नहीं है। इस एक ही ग्रन्थ पर पचासों व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टि से काम कर सकते हैं।

कुछ वर्ष पहले राजस्थानी भाषा के विशिष्ट विद्वान डॉ. देव कोठारी ने, जो अभी-अभी राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी के अध्यक्ष मनोनीत हुए हैं, एक शोधार्थी को कालूयशोविलास पर काम करने की प्रेरणा दी। शोधार्थी को बुकस्टॉल पर पुस्तक नहीं मिली। भाई देवजी ने किसी अन्य स्रोत से पुस्तक उपलब्ध कर शोधार्थी की समस्या को समाहित कर दिया। पर उन्होंने एक ऐसा प्रश्नचिह्न छोड़ दिया, जो ग्रन्थ के प्रकाशक या सम्पादक के लिए चुनौतीपूर्ण था।

आदर्श साहित्य संघ के बुकस्टॉल पर पिछले बहुत वर्षों से कालूयशोविलास की पुस्तक नहीं थी। पुनर्मुद्रण की अपेक्षा स्पष्ट रूप में परिलक्षित हुई। प्रस्तुत सन्दर्भ में एक चिन्तन आया कि इसके छहों उल्लासों के प्रारंभ में 'मंगलवचन' रूप में कुछ दोहे हैं, वे बहुत क्लिष्ट हैं। उनका हिन्दी अनुवाद अपेक्षित है। इसी प्रकार चतुर्थ उल्लास की दसवीं ढाल के कुछ पद्य डिंगल कविता के रूप में हैं। उन्हें समझना तो और भी कठिन है। उनका भी हिन्दी रूपान्तरण हो जाए तो सुविधा रहेगी।

प्रबुद्ध पाठकों की उक्त अपेक्षा आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सम्मुख रखी गई तो आचार्यश्री ने भी स्वीकार किया कि कुछ पद्यों का हिन्दी अनुवाद आवश्यक है। स्वयं आचार्यश्री ने विशेष अनुग्रह कर उनका अनुवाद लिखवा दिया।

पुस्तक प्रेस में गई और कम्पोज होकर आ गई। पृष्ठ संख्या में वृद्धि स्वाभाविक थी। एक विशालकाय ग्रन्थ को हाथ में लेकर पढ़ना और विशेष रूप से प्रवचन में उसका उपयोग करना दुरूह-सा लगा। समस्या आचार्यश्री को निवेदित की गई। आपने निर्देश दिया कि ग्रन्थ को दो खण्डों में सम्पादित कर दिया जाए। समाधान की दिशा खुल गई।

आचार्यवर के निर्देशानुसार प्रथम तीन उल्लास और उनसे सम्बन्धित परिशिष्ट एक खण्ड में संयोजित कर दिए गए। शेष तीन उल्लास तथा पांच शिखाएं और उनसे संबद्ध परिशिष्ट दूसरे खण्ड में समायोजित हो गए। एक ग्रन्थ को दो खण्डों में विभक्त कर देने से कुछ नया जोड़ने का अवकाश हो गया। फलतः संक्षिप्त उल्लास-परिचय को पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है तथा प्रथम परिशिष्ट (सांकेतिक घटनाएं) का अनुक्रम भी जोड़ दिया गया।

कालूयशोविलास में कुल एक सौ एक गीत हैं तथा कुछ अन्तर्गीत हैं। कई गीतों की रागें अनेक बार काम में ली गई हैं, इस दृष्टि से नए गीतों की संख्या कुछ कम हो सकती हैं। जितने गीत ग्रन्थ में प्रयुक्त हुए हैं, उनकी मूल रागिनियों का एक पद या पदांश गीत के नीचे दिया गया है। इस क्षेत्र में रुचि रखने वाले कुछ व्यक्तियों से सुझाव मिला कि इन रागिनियों के एक-एक पद्य संकलित कर दिए जाएं तो एक महत्त्वपूर्ण काम हो सकता है। आज पुरानी रागों को जानने वाले एवं गाने वाले गायक बहुत कम हैं। भविष्य में उनकी संख्या में वृद्धि की संभावना तो है ही नहीं, यह संख्या दिनोंदिन घटती जा रही है। ऐसी स्थिति में मूल गीतों के एक-एक पद्य भी सुरक्षित रहेंगे तो कभी ऐसा युग आ सकता है, जब इस दिशा में नई चेतना का जागरण हो जाए।

सुझाव अच्छा था, पर काम श्रमसाध्य ही नहीं, असाध्य-सा प्रतीत हुआ। शासनगौरव मुनिश्री मधुकरजी पहले से ही इस कार्य में संलग्न थे। उन्हें आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में पुरानी रागिनियों को सीखने व गाने के अवसर मिलते रहे। इस विषय में आचार्यश्री भी उनके प्रति पूरे विश्वस्त थे। मुनिश्री मधुकरजी के सहयोग से यह कार्य सुगमता से हो सकता है, इस विश्वास के साथ उन्हें निवेदन किया कि वे अपने कार्य को शीघ्र पूरा कर सकें तो कालूयशोविलास के नए संस्करण में एक परिशिष्ट बढ़ा दें। मुनिश्री मधुकरजी ने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया, फिर भी कुछ गीतों के पद्य उपलब्ध नहीं हो पाए। अनुपलब्ध की

उपलब्धि के लिए अब भी उनका प्रयास जारी है। अन्य स्रोतों से भी खोज की जा रही है। किन्तु उसकी प्रतीक्षा में ग्रन्थ के पुनर्मुद्रण को रोकना उचित नहीं लगा। प्रस्तुत परिशिष्ट के लिए मुनिश्री के प्रति आभार ज्ञापन की औपचारिकता न करके ग्रन्थ के सम्पादन में उनकी सहभागिता को समादर देती हूं।

प्रस्तुत संस्करण के प्रूफनिरीक्षण का कार्य साध्वी जिनप्रभाजी और साध्वी कल्पलताजी ने किया। साध्वी चित्रलेखाजी, शारदाश्रीजी अनुशासनश्रीजी और शुभप्रभाजी ने भी इस कार्य में हाथ बटाया। नामानुक्रम वाला परिशिष्ट साध्वी चित्रलेखाजी ने तैयार किया। साध्वी जिनप्रभाजी ने इसे अन्तिम रूप दिया। विशेष शब्दकोश के समाकलन में साध्वी कल्पलताजी और साध्वी विवेकश्रीजी का श्रम लगा। आचार्यवर के आशीर्वाद एवं साधु-साध्वियों के निष्ठापूर्ण परिश्रम से कालूयशोविलास का नया संस्करण नए परिवेश में पाठकों के हाथों में पहुंचेगा। पाठक अपनी परिष्कृत स्वाध्याय-रुचि का भरपूर उपयोग कर इसका रसास्वादन करते रहेंगे, ऐसा विश्वास है।

सिरियारी **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**
५ जुलाई, २००४

जीवन-झलक

कालूगणी के जीवन से संबंधित ज्ञातव्य विवरण

जन्म

छापर (राजस्थान)
विक्रम संवत १९३३, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
(१५ फरवरी, सन १८७७, गुरुवार)

मुनि-दीक्षा

बीदासर (राजस्थान)
विक्रम संवत १९४४, आश्विन शुक्ला तृतीया
(२० सितंबर, सन १८८७, मंगलवार)

युवाचार्य-पद

लाडनूं (राजस्थान)
विक्रम संवत १९६६, प्रथम श्रावण कृष्णा प्रतिपदा
(४ जुलाई, सन १९०९, रविवार)

आचार्य-पदारोहण

लाडनूं (राजस्थान)
विक्रम संवत १९६६, भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा
(२९ सितंबर, सन १९०९, बुधवार)

स्वर्गारोहण

गंगापुर (राजस्थान)
विक्रम संवत १९९३, प्रथम भाद्रपद शुक्ला षष्ठी
(२३ अगस्त, सन १९३६, रविवार)

कालूयशोविलास

प्रस्तुति

१

परम उपास्य परम उपकारी, मानव संस्कृति रा आधार।
भैक्षवगण अष्टम अधिशास्ता, युग-विकास रा सरजणहार।
श्री कालू जीवन-दर्शण री, आ अनन्य अनुभूत कृति।
प्रस्तुत है श्री संघ सामनै, सादर सविनय सप्रणति।।

२

दो हजार संवत री रचना, नव संपादन रो प्रारंभ।
बत्तीसै जयपुर-पावस में, सश्रम काम चल्यो अविलंब।
तेतीसै सरदारशहर में, श्रावण बिद सातम संपन्न।
ई दर्पण में प्रतिबिम्बित, भावी अतीत अरु प्रत्युत्पन्न।।

३

तुलसी-विरचित कनकप्रभा-संपादित कालूयशोविलास।
मूर्तिमान संघीय भावना, आत्म-साधना रो विश्वास।
चातुर्वर्णी श्रमण-संघ, स्वीकार करो अभिनव उपहार।
पढ़ो बढ़ो नित प्रगति पंथ पर, सुमर-सुमर सद्गुरु-उपकार।।

आचार्य तुलसी

चतुर्थ उल्लास

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

यो जैनाध्वधुरीण ईप्सितमणिं ध्यायन्ति यं धीधनाः,
येनैवात्र पवित्रितात्मसरणी यस्मै न कैः स्पृह्यते।
यस्मादाविरभूद् विबोधविततिर्यस्यानुभावो महान्,
यस्मिन् शासति बाढ़मुन्नतिरतस्तं मुलसूनुं श्रये।।

जो जैनशासन की धुरी के वाहक रहे हैं, प्रबुद्ध वर्ग जिनको चिंतामणि रत्न के रूप में जानते हैं, जिनके द्वारा आत्मवाद का पथ पवित्र हुआ, जो सबके लिए स्पृहणीय रह चुके हैं, जिनसे ज्ञान की विविध धाराएं प्रवाहित हुईं, जिनका प्रभाव महान है और जिनकी अनुशासना में बहुत प्रगति हुई, मैं उन कालूगणी की शरण स्वीकार करता हूं।

मंगल वचन

दोहा

१. स्वेष्ट-सिद्धि में श्रेष्ठतम, श्रुत-शतांग-सव्येष्ठ।
परम-प्रेष्ठ यथेष्ट गुण, नमो गणभृतां ज्येष्ठ।।

मैं गणधरों में ज्येष्ठ गणधर गौतम को नमस्कार करता हूं, जो अपने इष्ट की सिद्धि के लिए श्रेष्ठतम हैं, श्रुतरूपी रथ के सारथि हैं, परम आकर्षण के केन्द्र हैं और जिनमें वांछनीय सभी गुण विद्यमान हैं।

२. वीर-वदन-गिरि-गर्भजा, श्रुत-स्रोत शुभवेश।
गौतम-उदर-पयोनिधि, त्रिपदी नदी प्रवेश[1]।।

भगवान महावीर का वदन रूपी पर्वत जिसका उद्गम है, श्रुत जिसका शुभ परिवेश वाला स्रोत है, उस त्रिपदी (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, तीन पदों वाली) नदी ने गणधर गौतम के उदर रूपी समुद्र में प्रवेश किया।

३. प्रवही पुनि तब ही ग्रही, रयणराशि रो रूप।
सायर-कायर-लास्य स्यूं, गोयम-आस्य अनूप।।

वह पुनः गौतम के अनुपम मुख से प्रवाहित हुई, तब उसने रत्नराशि का रूप ले लिया। जैसे समुद्र की कातर तरंगों के नर्तन से समुद्र का पानी बाहर प्रवाहित होता है।

४. त्रिभुवन-अवगाहन करै, त्रिपदे ज्यूं बावन्न।
त्रिकालीन वस्तुस्थिति, समीचीनताऽऽपन्न।।

जैसे वामनावतार ने बलि राजा से तीन पांव जमीन मांगकर तीनों लोकों का अवगाहन कर लिया, वैसे ही उस त्रिपदी ने त्रिकालीन वस्तुस्थिति का समीचीन रूप से अवगाहन कर लिया।

---

१. देखें प. १ सं. १

५. जिण कारण पर-दरसणी, नित्यानित्यैकान्त।
मानै, तिण रो मूल ही, त्रिपदी हरै नितान्त।।

जिस कारण से अन्य दार्शनिक एकांत नित्यवाद और एकांत अनित्यवाद को मानते हैं, त्रिपदी ने उस मूल कारण का ही नितांत उन्मूलन कर दिया।

६. सकल सत्त्व मांही सझै, निज नित्यानित्यत्व।
यतो न विघटै संघटै, वस्तु स्वत्व अपरत्व।।

जो अस्तित्व है, उसमें अपना नित्यानित्यत्व है—वह नित्य भी है और अनित्य भी है। इसलिए वस्तु का स्वत्व विघटित नहीं होता और अन्यत्व संघटित नहीं होता। तात्पर्य की भाषा में—वस्तु का स्व की अपेक्षा से अस्तित्व है और पर की अपेक्षा से नास्तित्व है।

७. बिन त्रिपदी सपदि ग्रहै, वस्तु-व्रात विरंग।
शशक-शृंग वन्ध्या-तनय, गगन-कुसुम रो रंग।।

त्रिपदी के बिना वस्तु समूह शीघ्र ही विरंग हो जाता है—अस्तित्वहीन हो जाता है। उसकी तुलना खरगोश के सींग, वन्ध्यापुत्र और आकाश-कुसुम से की जा सकती है, जिनका कोई अस्तित्व नहीं है।

८. याम-याम निज नाम सम, हृदय-धाम में खाम।
शुभ त्रिपदी गणि-गुणनिधि, समरूं बिन विश्राम।।

मैं इस शुभ त्रिपदी को हृदयमन्दिर में बिठाकर उसका प्रति प्रहर अपने नाम के समान अविराम स्मरण करता हूं। वह गणी (आचार्य) के लिए गुण की निधि है।

९. तुरत तुरीयोल्लास रो, वरणूं वरणन व्यास।
मन-तरंग उत्सृंग नै, मिलै खास आश्वास।।

त्रिपदी की स्मृति के पश्चात मैं अविलम्ब चौथे उल्लास का विस्तार से वर्णन कर रहा हूं, जिससे उछलती हुई मन की तरंग को आश्वासन मिल सके।

१०. गुरु-व्याख्यान महानतम कर्म-निर्जरण-जोग।
श्रोता श्रुतिरसिका हुवै तो सार्थक उद्योग।।

गुरु के चरित्र का व्याख्यान करना महान कर्म-निर्जरण का प्रयोग है। यदि श्रुतिरसिक श्रोता मिल जाए तो उद्योग की सार्थकता बढ़ जाती है।

ढाळः १.

दोहा

१. अब सुजानगढ़ में सुगुरु, ठायो शुभ चउमास।
उगणीसै नवतीवती संवति सुमति विमास।।

२. मुनि छत्तीस सती श्रुती बंयालीस विशाल।
गुरु-इंगित आकार अनु, चाल-ढाल खुशहाल।।

३. सूत्र 'भगवती' भगवती, पूज्य भारती ख्यात।
भाव-विशद परिषद सुखद, मंगल समय प्रभात।।

४. ऊपर चंदचरित्र रो, वर्णन विमल विचित्र।
सँहस किरण करणां मिषे, सविता सुणै सचित्र।।

५. श्रवणोत्सुक श्रोता करै, अहमहमिकया पहल।
जनता स्यूं अविदित नहीं, चतुरदुरग री चहल।।

[1]आनंद आवै रे।
आनंद आवै रे, गुरु-गौरव गातां, रूं-रूं रंग रचावै रे।
आनंद आवै रे,
आनंद आवै रे, लख अद्भुत बातां, रग-रग नृत्य मचावै रे।
आनंद आवै रे।

६. च्यार मास सुखवास, सुजन-मन धार्मिक भाव दृढ़ावै रे।
ओ सुजानगढ़ और लाडनूं, एकमेक बण ज्यावै रे।।

७. छापर चाड़वास बीदासर, पड़िहारो पनपावै रे।
राजलदेसर और रतनगढ़, अधिको लाभ कमावै रे।।

८. दूर-निकट-वासी जन-राशी, प्रतिदिन आवै जावै रे।
एक केंद्र री है आ महिमा, सारै जग महकावै रे।।

९. परम कृपाकर मुझनै गुरु, 'षड्दर्शन' पाठ पढ़ावै रे।
अरु 'प्रमाणनयतत्त्व' ग्रंथ रो, गौरव हृदय बिठावै रे।।

१०. 'श्री कालूकल्याणमन्दिरम्' पादपूर्ति स्तुति-भावै रे।
संवत्सरि-दिन भर परिषद में सुण मुझ मन सहलावै रे[2]।।

---

१. लय : दारू दाखां रो

२. देखें प. १ सं. २

११. करुणामय पीयूष-दृष्टि री, अतिशय वृष्टि करावै रे।
नवदीक्षित लघु-वय संतां नै, बलि-बलि स्वाम सुझावै रे।।
१२. पढ़ो चितारो सोवो बैठो, ज्यूं 'तुलसी' चित चावै रे।
सहज बणी पोशाल, बाल मुनि कठिन परिश्रम ठावै रे।।
१३. परम पोष पूरी स्वतंत्रता, मुझनै नाथ दिरावै रे।
तिण कारण निर्माण स्व-पर रो, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
१४. हजारीमलजी रामपुरिया री, बा हेली मन भावै रे।
ऊपरली मंजिल री मेड़्यां, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
१५. सम्मुख कमरो नई रकम रो, प्रवचन गुरु फरमावै रे।
चहल-पहल रंगरळी गळी में, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
१६. च्यार बज्यां री नींद निराळी, जागो सुगुरु जगावै रे।
योगासन-अभ्यास सवेरै, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
१७. आ'र समय हेली ऊपर स्यूं, प्रतिदिन पूज्य बुलावै रे।
ऊंचै स्तर रो 'शुभ-विनोद' बो, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
१८. नथमलजी बुधमलजी कोडो, दुलीचंद दिल दावै रे।
झूमर नेम प्रेम स्यूं पढ़ता, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
१९. सकल इशारै स्हारै चलता, हुलसित हार्दिक भावै रे।
कड़ी शासना पूर्ण समर्पण, नित स्मृति-पथ सरसावै रे।।
२०. मरुधर देश-निवासी मानव-राशी तिण प्रस्तावै रे।
अति अभिलाषी पावस-हेते, आवत नभ गुंजावै रे।।

[1]गुरु घड़ि-घड़ि पलक-पलक निज हक लख,
खड़ि-खड़ि बाट निहारै हो, अति दुखभारै हो।
गणिवर! विरहवती मरुभूमिका।।

२१. बार-बार मैं कीन्ही हो, घणि हठभीनी हो,
गणिवर! विनती पुर जोधाण री।
पिण अब लों आश न दीन्ही हो, मृदु स्वर झीनी हो,
गणिवर! पावस-हित पधराण री।।

---

१. लय : घड़ि दोय आवतां पलक इक जावतां

२२. मोनै 'मरु' 'मरु' कहि बतळावै हो, कइ दिल-दावै हो,
गणिवर! कहै मरुदेश-मरीचिका।
निरजल थल कहि गावै हो, मन सुख पावै हो,
गणिवर! जदपि बहै जल-वीचिका।।
२३. कइ जंगल कहि-कहि जावै हो, जी घबरावै हो,
गणिवर! नाम निसुण मरुदेश रो।
म्हांरो दिलड़ो खूब दुखावै हो, किलबिललावै हो,
गणिवर! करुण दृश्य लख क्लेश रो।।
२४. पिण सकल विकल-दिल भूलूं हो, मैं घणि फूलूं हो,
गणि! लख तोरो तेरापंथ रो।
कर याद हरष-रस झूलूं हो, सब उन्मूलूं हो,
गणिवर! दुख जग-दंत-उदंत रो।।
२५. अहो! मैं वसुगर्भा बाजी हो, दिलड़ो राजी हो,
गणिवर! जननी जुग-नर-रत्न[1] री।
कोइ जाणो या मत ना जी हो, सम्मति साझी हो,
गणिवर! है नहिं बात प्रयत्न री।
२६. पर बीता वर्ष अठारै हो, बिन धणियां रै हो,
गणिवर! कुण संभारैला अबै?
यूं पुहवी करत पुकारै हो, दिल अवधारै हो,
गणिवर! महर लहर करणी फबै।।
२७. थळियां में ठाट लगाया हो, घन बरसाया हो,
गणिवर! घर-घर दूधां मेहड़ा।
अब मरुधर-नर ललचाया हो, हृदय उम्हाया हो,
गणिवर! मैं पिण देखूं एहड़ा।।

[2]आनंद आवै रे, आनंद आवै रे।

२८. तिण चउमासे रिखीराम-लच्छी सुत-तात विभावै रे।
अहंभाव उच्छृंखलता स्यूं, प्रत्यनीकता पावै रे।।
२९. सुणी श्रावकां स्यूं शासणपति, इचरज नहीं उपावै रे।
भैक्षवगण मर्याद-विराधक, सदा स्वयं सीदावै रे।।

---

१. भिक्षु स्वामी और जयाचार्य
२. लय : दारू दाखां रो

३०. समंदड़ी श्रावक बिरधोजी, गुरु-इंगित अपणावै रे।
जा पचपदरै पिता-पुत्र 'गण-बाहिर' घोष सुणावै रे।।

लावणी छंद

३१. जोधाणै रा श्रावक[1] पचपदरै आया,
पोथी-पानां गण रा कब्जै कर पाया।
सूंप्या जा सती सोहनांजी नै सारा,
अपणै शासण री आ ही है दृढ़ धारा।।
३२. रोषारुण 'लच्छी' हाकम पास पुकारै,
तब हंसराजजी[2] सिंघी स्वयं विचारै।
जो संघ-बहिष्कृत गण-मर्यादा लांघै,
संघीय पुस्तकां किण मूंढ़ै स्यूं मांगै?
३३. बोलै हाकम, झूठो धणियाप करो क्यूं?
संघीय पुस्तकां लेवण आश धरो क्यूं?
म्हांनै सरकार अगर खारिज कर डारै,
म्हांरै अन्याय अनय अनुचित व्यवहारै।।
३४. दफ्तर-फाइल ले साथ चलो बण स्वामी,
तो हुवै जुर्म हथकड़ियां पड़ै न खामी।
दीवानी दावो करो, अगर है लड़णो,
दुनियादारी रै दांवपेच में पड़णो।।

[3]आनंद आवै रे, आनंद आवै रे।

३५. हाकम स्यूं हताश हो हाल्या, संजम सहज गमावै रे।
कल्पवृक्ष संकल्पपूरणो, क्यूं रतिहीण रखावै रे।।
३६. कामदुघा सुरभी करभी-घर क्यूंकर कहो टिकावै रे।
मणि चिंतामणि मूढ़शिरोमणि कर ग्रहि काग उड़ावै रे[4]।।

---

१. प्रतापमलजी महता, माणकचंदजी भंडारी आदि
२. जोधपुर के मुसद्दी बच्छराजजी सिंघी के सुपुत्र
३. लय : दारू दाखां रो
४. देखें प. १ सं. ३

३७. कामकलश तकदीर-विहूणो, पाकर मोद मनावै रे।
सद्य मद्य-मतवालो बालो, सिर धर नाच नचावै रे[1]।।
३८. युत मिष्टान पान पायस रो, श्वा-उदरे न समावै रे।
मधुधूली पयघूली क्यूंकर, गर्दभ-पेट पचावै रे?
३९. टाळोकर रो किसब तात-सुत, लोक-बोक बहकावै रे।
प्रथम ढाळ चौथे उल्लासे, 'तुलसी' थिरता ल्यावै रे।।

ढाळ २.

दोहा

१. मिगसर मास महामना, छापर ताल पधार।
श्रमण सती समुदित उदित, करी सारणा सार।।
२. बहुश्रुती वर हेम मुनि, गुरु-इंगित-गतिमान।
डायमल्ल मुनि पे ग्रह्यो, गहन जिनागम-ज्ञान।।
३. गहरी गुरु-गम-धारणा, दीर्घ-दृष्टि-संपन्न।
हेम हेम की प्रतिकृति, प्रतिवादी प्रच्छन्न।।
४. मुझनै संप्रेरित कर्‍यो, एक नई दी मोड़।
उपन्यास-माधुर्य स्यूं, दीन्हो तत्त्व-निचोड़[2]।।
५. अभिनव सूत्राभ्यास की, शैली मिली सुप्यार।
कालू-कृपया हेम रो, म्हांरै सिर आभार।।
६. पूस-नखत[3] बदखत स्यूं, तज शासन-विश्वास।
विकल-रूप विद्रूप बण, बहुत कियो बकवास।।
७. सन्निपात-आघात में, परवशता रो खेल।
टाळोकर रो हृदय त्यूं, पल-पल मोह-दबेल।।
८. सौ अवगुण मुख स्यूं गणो, बणो जु कुक्कड़धम्म[4]।
पिण भैक्षवगण रो ऋणो, रहसी शिर हरदम्म।।

---

१. देखें प. १ सं. ४
२. देखें प. १ सं. ५
३. पूसराज नामक मुनि, जिनका गोत्र नखत था।
४. देखें प. १ सं. ६

[1]गुरु-पद प्रीतड़ी, रग-रग रंग ज्यूं राची,
सुरंगी रीतड़ी, चंद-चकोर ज्यूं साची।
कहूं के घड़ी-घड़ी, जीवन-प्राण ज्यूं जाची।।

९. माघ महोत्सव शहर लाडणूं, तारक पूज्य पधार्‌या।
स्वयंसुधारी पर-उपकारी, भविजन-भाग उघार्‌या।।
१०. मर्यादोच्छव छवी छबीली, खिली जु आफू-क्यारी।
न्यारी-न्यारी संत-सत्यां री, गुरु-गुण गायन त्यारी।।
११. उच्चासन अधिराजै स्वामी, परिषद सुखद हजारी।
भीखण-लिखित पत्र री महिमा, भावित-भाव उचारी।।
१२. मरुधर-देश-निवासी मानव, विनती पुनरपि कीन्ही।
स्वामी साई अति सुखदाई, सैं-मोच्छब दिन दीन्ही।।
१३. सुणत सुजन जोधाण-हृदय-नभ, हर्ष घटा उमड़ाई।
चक्षु-द्वार निकार नार-नर रोमांचित दिखलाई।।
१४. शान्त रूप सम्पूर्ण महामह, तिण दिन पश्चिम राते।
तीन मुनी गणबाहिर कीन्हा, गणिवर विस्तृत बाते।।

[2]लो नयन निहाळो, सहु चौथै[3] रो चाळो।
मानव मतवाळो, करै निजानन काळो।।

१५. दयाराम इक फत्तो दूजो, तीजो लाल चिरंजी।
जी! भाग्य भंवाळी महिमा आली, जिल्ला में मति रंजी।।
१६. प्रारंभी दिल-दंभी लंबी, जंगी जिल्लाबंधी।
जी! छानै छुप-छुप के टंटोळै, जो अपणा अनुबंधी।।
१७. कानांबाती करै सुहाती, देखो है पखपाती।
जी! अग्रवाल जाती नै नहिं दै, पूज्यपाद री ख्याती।।

---

१. लय : छल्ला
२. लय : धीठां में धीठ मैं कहा बिगाड़ा तेरा
३. मोहनीय कर्म

१८. ओसवाळ भूपाल बतावै, अग्रवाळ झगड़ालू।
जी! हृदयहीनता री आ वृत्ती, बाजो भले दयालू।।
१९. रिखीरामजी पिण इण कारण, तात साथ गण त्यागी।
जी! पक्षपात-आघात असहता, बण्या अचानक बागी।।
२०. समय-रहस्य सुजाण छाण, निज मत महिमाण बढ़ासी।
जी! भिक्खू ज्यूं रिक्खू अभिधाने, क्यूं न सफलता पासी।।
२१. कुण 'भिक्षू' भव-प्रांत-दिदृक्षू, कुण 'ऋषि' ऋष्य-सवर्णी।
जी! तुलना करतां हृदय न तोल्यो, उदय प्रबल आवर्णी।।
२२. कुण है स्वर्ण सुवर्ण स्वरूपे, कुण धत्तूर तरूड़ो।
जी! कुण आदित्य अर्क अभिधाने, अर्कपत्र कुण कूड़ो?
२३. एक पंचशिख सिंह शार्दूलो, गिरि-निकुंज में गूंजै।
जी! एक भूप रो गुनहगार सिर जूत फड़ाफड़ जूंझै[1]।।
२४. कुण मातंग इंद्र ऐरावत, और श्वपच इक नामै।
जी! लोकनाथ तत्पुरुष बहुब्रीहि, अंतर भू-नभ सामै[2]।।
२५. उक्त बात क्यूं सोचै जो नर, अंतर-आंख बिना रो।
जी! भैक्षव खोड़ खुड़ातां किसी क बिगड़ै दशा विचारो।।
२६. जाळीराम मोठ रो जिणरी दीक्षा है जोधाणै।
जी! जाणी जात-भ्रात तिण पासे कर्णेजपता ठाणै।।
२७. रे भोळा! म्है लीन्हा धोळा, अठै न तूं सुख पासी।
जी! रिखीरामजी पे लै दीक्षा, प्रथम शिष्य हो ज्यासी।।
२८. अठै ओसवाळां रो भाया! राजपाट है सारो।
जी! आपां मिल नूतन पथ थापां, मान वचन तूं म्हांरो।।
२९. जाळीराम सजग जालमता जाणी नहीं लुभायो
जी! पूज्यपाद पे सरल साद में, सकल उदंत सुणायो।।

[3]निरखो नाथजी फोड़ो पाप रो फोड़ै।
तड़ाकै साथ जी, तीनां री तणी तोड़ै।।

१. देखें प. १ सं. ७
२. देखें प. १ सं. ८
३. लय छल्ला

३०. ओ विरतंत संतपति सारो, श्रवण सुण्यो चित शांते।
पूरण जांच करण तीनां नै, तेड़्या अब एकांते।।
३१. चुंबक रूप भूप शासण रो, पूछी चर्या सारी।
स्खलित-वचन हलफलित वदन लख, झट दुर्नीति निहारी।।
३२. श्रमण-समूह सैकड़ां श्रावक समुदित समय सवारे।
सम्मुख ऊभा राख सुगुरु, अब तीनां नै फटकारे।।
३३. दगादार है गुनहगार है, कर-कर फाड़ातोड़ी।
गण में भेद डालणो चावै, तीनां री इक जोड़ी।।
३४. लख अजोग संभोग साथ तीनां रो तृण ज्यूं तोडूं।
आं धूतारां स्यूं इण क्षण, मैं च्यार तीरथ मन मोडूं।।
३५. भैक्षव-गण री गजब छटा आ, एक पूज्य हुंकारे।
एक साथ सब गूंज उठे, ज्यूं सुरघंटा इक लारे[1]।।
३६. नयन-नीर अरु वचन-वीरता, अंग अधीरजताई।
जातां-जातां आ ढकोसळा-वृत्ती खूब दिखाई।।
३७. सकल संघ में अंग-अंग में, नूतन जागृति आई।
जो होणै को हुयो काम, बाजी गुरु-जस-सहनाई।।
३८. श्री श्री कालूयशोविलासे, तूर्योल्लासे गाई।
दूजी ढाळ रसाळ, चाल 'छल्ला' की सब मन भाई।।

ढाळः ३.

दोहा

१. मास वास कर लाडनूं, गढ़-सुजान गुरुराज।
एकादश दिवसां सुधी, पावन कीन्हो प्राज।।
२. उगणीसै निब्बै समै, शोभन फाल्गुन मास।
कृष्ण सप्तमी शुभ तिथी, उदिता विमल विकास।।

---

१. स्वर्ग में शक्रेन्द्र की आज्ञा से सौधर्मावतंसक विमान की एक सुघोषा घंटा बजती है, उस समय उसके साथ बत्तीस लाख घंटाएं बजती हैं।

३. मरुधर धरणी सफर-हित, आयो समय स्वमेव।
पूज्यप्रवर धर सफर-हित, सकरुण हृदय सदेव।।
४. शुभ विहार शुभ वार लहि, कीन्हो कृपा-निधान।
बिन तेड़े केड़े रहे, सुकृति-कृते कल्याण।।
५. सझण सेव गुरुदेव री, साधु-साधवी सज्ज।
वर्णन सतत बखाणतां, अपगत हुवै अवज्ज।।

[1]पूज्य पधारे मरुधर देशे,
संग सबल परिवार रे, भवि!

६. एक-एक मुनि गणिवर साथे, विनय-भाव विख्यात रे। भवि!
हेतु खेतु[2] हर[3] टोकर[4] जाणै, समवतर्‌या साख्यात रे।। भवि!
७. गुरु-इंगित-आकार विलोकै, झोंकै मोकै प्राण रे।
आजू आण प्राण इक बाजू, प्राणे काढै काण रे।।
८. एक-एक मुनि गणिवर साथे, विमल विवेक वितान रे।
चक्षु-स्फुरण-मात्र लख गुरु रो, पूरण खेंचै ध्यान रे।।
९. एक-एक मुनि गणिवर साथे, विद्या-भांडागार रे।
अक्षय कोठो भर्‌यो अबोठो, बरतै समय विचार रे।।
१०. कइ मुनि 'हैम' प्रेमयुत पढ़िया, कइ व्याकरण 'नवीन' रे।
सरस 'भिक्षुशब्दानुशासनं', इक्षु-स्वाद विलीन रे।।
११. कालु-कौमुदी 'कालु-कौमुदी', कइ मुनि चतुर चकोर रे।
रटन पठन-मिष प्रेम गठन-दिश, अहनिशि दृग-युग दोर रे।।
१२. नूतन प्राक्तन कठिन कठिनतर, मन्थै ग्रंथ अनेक रे।
कोविद-कुल रो दिल डोलावै, प्रतिवादी-मद छेक रे।।
१३. नामकोश निज नाम होश सम, मेल्यो हृदय मसोस रे।
दोष अदोष शब्द रो समझी, सेवै सुगुरु सजोश रे।।

---

१. लय : वीर पधार्‌या राजगृही में
२. मुनि खेतसीजी
३. मुनि हरनाथजी
४. मुनि टोकरजी

१४. वय बालक व्रत-पालक मुनि रै, मन मालक रो मोद रे।
विद्या-होद प्रमोदे झूलै, नहिं भूलै गुरु-गोद रे।।
१५. कइ वाचंयम है वाचंयम, वर्जित विषय-विकार रे।
कइ अणगार लार गुरुवर कै, उपशम-भाव-अगार रे।।
१६. कइ मुनि चार्चिक कइ मुनि तार्किक, कइ मुनि वार्तिकधार रे।
कइ मुनि शाब्दिक कइ मुनि आर्थिक, हार्दिक भाव सुधार रे।।
१७. कई तपोधन कइ श्रुति-शोभन, थोभन मन-मातंग रे।
कइ कविताकर भाव विशद भर, शासन शेखर संग रे।।
१८. कइ मुनि लेखक इतर उवेखक, प्रेखक समय-रहस्य रे।
कइ मुनि गणनायक गुणगायक, सज्झायक सवयस्य रे।।
१९. जाग विराग त्याग ऐहिक सुख, उन्मुख निर्वृति-माग रे।
चाखै चंचरीकता-साखै, प्रभु-चरणाब्ज-पराग रे।।
२०. श्रमणी गुरु-अनुगमणी खमणी, श्रमणीश्वर संघात रे।
इंद्रिय-दमणी विकथा-वमणी, आक्रमणी भय सात[1] रे।।
२१. तज जग-एश वेष अति बंधुर, सुंदर मंदिर सेज रे।
जननी जनक कनकमय भूषण, दूषण दिल उद्वेज रे।।
२२. अकनकुमारी कन्या वारी, भारी दीपै ओळ रे।
गुरु-चरणां री बण अनुचारी, पाळै चरण अमोल रे।।
२३. परम पवित्रा कर्म-विजित्रा, 'चित्राबेलि'-सहेलि रे।
गुरु-अनुशासन सहज सुखासन, करै सुकृत-शत केलि रे।।
२४. मानो मूर्तिमती स्फूर्ती-सी, हस्तकला-पारीण रे।
श्रमशीला शिक्षा दीक्षा में, विकसित सर्वांगीण रे।।
२५. संयम-रंगे रंगिणि चंगिणि, सज्ज मतंगिणि चाल रे।
शील सुरंगिणि उज्ज्वल अंगिणि, लंघिणि जग-जंबाल रे।।
२६. कितोक वर्णन निज मुख वरणूं, मुनि-अज्जा रो आज रे।
पुण्य-पुंज गुरुवर रो प्रगट्यो, व्रति-व्रतिणी रै ब्याज रे।।
२७. नाथ अलौकिक आथ अलौकिक, साथ अलौकिक साथ रे।
बात अलौकिक ख्यात अलौकिक, लौकिक लोक-व्रात रे।।
२८. नहिं विस्मय गुण-निलय गणीश्वर, नहिं विस्मय गण-भाल रे।
नहिं विस्मय गण-गणप समन्वय, विस्मय पंचम काल रे।।

---

१. इहलोक भय, परलोक भय, आदान भय, अकस्मात भय, आजीविका भय, मरण भय और अपयश भय।

२६. अंतरंग वैभव स्यूं विभु रो, मरुधर प्रति प्रस्थान रे।
तीजी ढाळ रसाल निनाणव, तारानगर सुथान रे।।

ढाळः ४.

दोहा

१. प्रथम डीडवाणै गुरु, सात रात विश्राम[1]।
दो वासर बस कोलियै, खाटू ठाट-हगाम।।
२. करी मधुर-वचने खरी, खाटू-जन अरदास।
होळी चौमासी सुधी, गणपति कर्‌यो निवास।।
३. तब स्यूं यात्रा-दौर में, मध्याह्ने व्याख्यान।
महिमागर सूंप्यो मनैं, करुणा करी महान।।
४. चढ़ी बड़ी खाटू चतुर, चउ दिन चांदारूण।
डेगाणै पथ ईड़वै, पादार्पण शुभ सूण।।
५. पादू में साधूपती, जाणै जादू कीध।
लोक लुभाणा रातदिन, सुगुरु-सेव चित दीध।।
६. मुनिप पधारै मेड़तै, हाकम[2] विनय निभाल।
'कालू'[3] कालू गणपती, पावन कियो कृपाल।।
७. मध्याह्ने व्याख्यान में, लोक दिगंबर जैन।
नारी शिव-अधिकारिणी, सुणत बण्या बेचैन।।
८. गणिवर गोम्मटसार जो, मान्य दिगंबर ग्रन्थ।
साक्षि-रूप रख सामनै, वर्णवियो विरतंत।।
९. जीवकांड सुविचार में, गाथा-त्रयी अबीण।
क्षपक-श्रेणि विवरण-वरण, देखो प्रगट प्रवीण।।
१०. पुरुष-वेद स्त्री-वेद-युत, अरु जो कृत्रिम क्लीव।
एक समय में खपक लै, एता-एता जीव[4]।।

---

१. डीडवाना के तत्कालीन थानेदार नत्थराजजी भंडारी (जोधपुर) पुलिस के साथ कालूगणी की अगवानी में गए और उन्होंने गुरुदेव से वहां कई दिन रहने का निवेदन किया।
२. जोधपुर-निवासी मानमलजी दूगड़
३. कालू नामक ग्राम
४. देखें प. १ सं. ६

११. अप्रतिपाती है सदा, क्षपकश्रेणि री बाट।
तो ललना-जन हित जड़्यो, क्यूं शिव-गमन-कपाट?

१२. [1]सुण गुरु-मुख-वाणी रे, नर कइ अन्नाणी रे,
निज मत-पख ताणी रे, कहै वितथ कहाणी रे।
अब लों नहिं जाणी, गोम्मट ग्रंथ में रे।।
१३. इक मानव धायो रे, मन्दिर जा ल्यायो रे,
बो ग्रंथ बंचायो रे, बिच प्रकरण खायो रे।
झट पूज्य बतायो, ले निज हाथ में रे।।
१४. पुनि पाठ पढ़ायो रे, नहिं छुपै छुपायो रे,
जन इचरज पायो रे, मन मोद न मायो रे।
अति साफ सुणायो, स्त्री शिवगामिनी रे[2]।।
१५. कइ जन परजळिया रे, सुण-सुण हलफळिया रे,
ऊठ्या आफळिया रे, पखपाते पळिया रे।
आकुळिया मानो, कलह करार स्यूं रे।।
१६. गुरु उपशमभावै रे, निज धाम सिधावै रे,
कर एकण दावै रे, किम ताल बजावै रे।
तृणगण अणपावै, आग बुझै सही रे।।
१७. नहिं साच सुहावै रे, जग सहज स्वभावै रे,
जदि साच सुणावै रे, मां मारण धावै रे[3]।
कोविद दरसावै, नहिं कूड़ी कथा रे।।
१८. दिन तीन बळून्दै रे, बरसै वच-बुन्दै रे[4],
जेतारण तारण रे, गुरुदेव-पधारण रे[5]।
है निष्कारण, जग-उद्धारण गुरु रे।।

लावणी छंद

१९. इण समय लाडणूं अनशन कियो सुभावां,
सरदारशहर री श्रमणी स्थविर जड़ावां।
संलेखन दिन चाळी, इकती संथारो,
एकोत्तर दिन स्यूं सीझ्यो सफल जमारो।।

---

१. लय : इक्षु रस हेतो रे ज्यांरा पाका खेतो रे
२. देखें प. १ सं. १०
३. देखें, प. १ सं. ११
४,५. देखें प. १ सं. १२

२०. [1]पीपाड़ पधारै रे, शरणागत तारै रे।
बहि पथ परबारै रे, समदड़ी सिधारै रे।
सहु काज समारै, सुजन समाज रा रे।।
२१. सिवाणची जाणी रे, मळपै मालाणी रे।
महिमा महकाणी रे, जनता उलटाणी रे,
धुर पुर पचपदरै, गुरु करुणा करै रे।।
२२. टाळोकर पांचू[2] रे, मिल ढाळ्यो ढांचूं रे,
दुनियां जो भोळी रे, करणै निज दोळी रे।
गणमौली-बोली, जब लों नां सुणी रे।।
२३. बहुजन बहकाया रे, गुरु-अवगुण गाया रे,
जीवन पथ पाया रे, हुइ पोषित काया रे।
सब गुण विसराया, (ओ) दृश्य दयामणो रे।।

[3]हजार वर स्वीकार रे टाळोकर! शासण रो ऋणो,
अंगीकार रे टाळोकर! शासण रो ऋणो।
पशुता स्यूं तूं मानवता रो म्हातम पायो रे,
मिथ्यादृष्टी रो सम्यगदृष्टी कहिवायो रे।
क्यूं अब बण कृतघ्न गुरु रो गौरव विसरायो रे।।

२४. अब श्रीमुख स्यूं शासन-मणी,
सारी बात सुणाई सब री न्यारी-न्यारी रे। हजार...
घटना चातुरगढ़[4] राजाण[5] री,
अरु बीदाणै[6] दयाराम री नीति दुधारी रे।। हजार...

---

१. लय : इक्षु रस हेतो रे
२. लच्छीराम, रिखीराम, दयाराम, फतेचंद और चिंरजी
३. लय : शहर में शहर में वैरागी संयम आदरै
४. देखें उ. ३, ढाळ १२, गा. १८-२०
५. देखें उ. ३, ढाळ १५, गा. ३३-३६
६. बीदासर में दयाराम ने लच्छीराम और रिखीराम के संबंध में लिखत लिखा, फिर भी उनके साथ दलबंदी करता रहा।

२५. अै तो लिखत सदा लिखता इसो,
म्है तो आठ पाट नै जाणां जिनवर जोड़ै रे।
असली सन्त-सती इण पंथ रा,
इण बावत में कोई मूरख मुंह मचकोड़ै रे।।
२६. लोपै आण दयालु देव! आपरी,
तिणनै संयम-पथ-प्रतिकूल पिछाणां जाणां रे।
बोलै अवगुण गणसमुदाय रा,
तिणनै भाग्यहीण, अन्यायी प्रगट बखाणां रे।।
२७. है पचखाण म्हांरै तो इण काम रा,
बिच में परमेष्ठी-पंचक नै साखी राखां रे।
जब लग सांस रहै इण खोळियै,
तब लग भिक्षूशासण नंदन-वन-फळ चाखां रे।।
२८. हाजर हो-हो कर हर हाजरी,
लोक हजारां बीच-बजारां भर हुंकारो रे।
अब अक-बक बोलै जाणक बावळा,
आंरी बातां नै स्वीकारो वा धिक्कारो रे।।
२९. सागी लिखत बंचायो लच्छीराम रो,
दूजो दयाराम रो स्वाम सबल संभळायो रे।
जिणनै नष्ट-भ्रष्ट मन जाणतो,
तिणरै भेळो जातो जाबक नहिं शरमायो रे।।
३० भांगी भैक्षवगण-मर्याद नै,
अब लों कुण कुण-सो सुख पायो सोच बतावो रे।
'चंदरभाण-तिलोक[1]' विलोक ल्यो,
'छोग-चतुर्भुज[2]' अरु 'लीलाधर[3]' रो बो दावो रे।।

१. आचार्यश्री भिक्षु के समय में तेरापंथ धर्मसंघ के टालोकर।
२. श्रीमद् जयाचार्य के समय में तेरापंथ धर्मसंघ के टालोकर।
३. आचार्यश्री कालूगणी के सम में तेरापंथ धर्मसंघ के टालोकर।

३१. अहाछन्न[1], ओसन्न[2], कुसीलिया[3],
पासत्थां[4] रो परिचय आखिर है दुखदाई रे।
देखो दिल दृढ़ता आनंद[5] री,
पाली पटवाजी[6] खायक-सी समकित पाई रे।।

३२. वर पूज्य वचोऽमृत पान स्यूं,
मानो गत-चेतन-तन चेतनताई आई रे।
सहज्यां कर टाळो टाळोकरां,
शासण-रंग-सुरंगे रग-रग खूब रचाई रे।।

दोहा

३३. पांचां में जो प्रमुखता, पाई निंदा पाण।
फतेचंद पागल हुयो, संचित पाप-प्रमाण।।

३४. भैक्षवगण स्यूं जो टळै, तन-मन त्रपा-विहीन।
उदाहरण हित बो बण्यो, मानो वसन-विहीन।।

३५. भैक्षवगण-निंदक सदा, जड़ निर्जीव निसत्त।
उदाहरण ल्यो देखल्यो, दरसावै उन्मत्त।।

३६. भैक्षवगण स्यूं पतित रो, अनुचित ही आलाप।
परिचय परतख देण हित, प्रतिपल करै प्रलाप।।

३७. भैक्षवगण स्यूं भ्रष्ट रो, तड़फड़णो बेकाम।
प्रगट नमूनो निरखल्यो, पड़-पड़ छोली चाम।।

३८. भैक्षवगण-निंदक लहै, जकड़ कर्म-संबंध।
निपट निदर्शन-रूप है, हुयो शृंखला-बंध।।

३९. अणआलोचे जो तजे, गुरु-शासन संकेत।
दीन दशा दरसाण ही, हृदय धमीड़ा लेत।।

४०. गच्छ-बहिष्कृत रो हुवै, जीवन अर्थ-विहीन।
मृत्यु-प्राप्त दौविध्य में, दिखलावै ओ सीन।।

१-४. देखें प. १ सं. १३
५. देखें प. १ सं. १४
६. देखें प. १ सं. १५

४१. [1]गुरु अल्प प्रयासे रे, भ्रम-तामस नाशे रे,
आदित्य उजासे रे, खद्योत न भासे रे।
चौथे उल्लासे, चौथी गीतिका रे।।

ढाळः ५.

दोहा

१. दिवस एक दस आसरै, पचपदरै गुरु वास।
समवसरै बालोतरै, हरै भविक मन प्यास।।
२. हरे-भरे ज्यूं रूंखरे, झरे वदन-घन-बूंद।
टरे परे ज्यूं उपदरे, फरे भविक सित कूंद।।
३. परे-परे घन रे फिरे, वरे न सो स्व-विकास।
ज्यूं भोंहर घर भीतरे, परे न सूर्य-प्रकाश।।
४. परे चरण गुरुदेव रे, भाल परवरे खास।
रयणराशि रो घर-घरे, कब रे हुवै निवास।।
५. दस वासर वासरपती, ज्यूं भ्रम-तामस नाश।
भैक्षवगण-वासरपती, भास्वर-विभा-विलास।।
६. गण-कल्लोल अलोल-मति, गुण-जलराशि सुबोल।
खमा-खमा गरजार-युत, जंगम-जलधि जसोल।।
७. पान करै व्याख्यान-रस, कइ आभ्यंतर स्नान।
कइ गुण-रयण ग्रहै गिणी, कई करै निध्यान।।
८. कइ आह्वान सुमान-युत, कइ मध्यस्थ महान।
लीलायुत कीला करै, पाप-प्रताप मिटान।।

[2]गुणिजन! गावो रे, दिल ध्यावो गणिवर मरुधर में आया,
मरुधर में आया रे, पुर-पुर पावन करवाया।
मरुधर में आया रे, घर-घर धवल मंगल छाया।।
९. शहर जसोल अमोल त्रयोदश वासर बगसाया।
शासन-भासन विश्व-विकासन विहरत शोभाया।।

---

१. लय : इक्षु रस हेतो रे
२. लय : सहियां! गावो हे बधावो

१०. असाड़ा दिन तीन कोरणे महर लहर ल्याया।
छोटा-मोटा ग्राम फरस गुरुवर कोमल-काया।।
११. समंदड़ी-पथ शहर जोधपुर पावस री छाया।
बिद तेरस आषाढ़ सुमुहुरत जन-मन विकसाया।।

[१]ल्यो जबर झंड स्यूं, पूज्य पधारै पुर जोधाण में।
पौरुष प्रचण्ड स्यूं, विक्रम उगणीसै साल इकाण में।।

१२. जोधाणै रा श्रावक सारा, अब सामेळो साझै।
गुरु-पद-प्रेम घटा उमड़ाई, बिन विद्युत बिन गाजै रे।।
१३. आला-आला बांध दमाला, रूपाळा रंगाळा।
वरदीवाळा झाक-झमाला, हालै पाळा-पाळा रे।।
१४. नान्हा-दाना मन मरदाना, हिलमिल हाल्या जावै।
अहंपूर्विका अहंप्रथमिका स्यूं दरसण-हित धावै रे।।
१५. बीच सचित्र मित्र कोइ पूछै, कीकर आज कठीनै?
अति ताकीद हालिया जावो, हुलसित-चित दृढ़ सीनै रे।।
१६. नहीं दिवाळी ना दसरावो, कीकर आ पोशाग?
मारग में पग रोप बतावो, झांझरकै क्यूं जाग रे?

[२]आज आवै रे भैया! आज आवै,
आंगणियै गुरु महाराज आवै रे, भैया...
म्हांरै शासण रा शिरताज आवै रे, भैया...
म्हांरै तारण-तरण-जिहाज आवै रे।। भैया...

१७. पदयात्रा स्यूं पांगरता, पग-पग जयणां री स्थिति ठावै रे। भैया...
गयवर री गति संचरता, चांदै सूरज-सो तप तावै रे।। भैया...
१८. ऊभा तकता बाट खड़्या, कद बो दिन आसमान छावै रे।
वांछित पासा आज पड़्या, दिल बांसां उछळ-उछळ धावै रे।।

---

१. लय : म्हांरी रस सेलड़ियां
२. लय : घोर तपसी हो मुनि!

१६. आज ही दिवाळी दसरावो, है महापर्व म्हांरै भावै रे।
घर-घर में मंड्यो सावो, केहड़ा तकदीर जोर खावै रे।।
२०. कहण-कहण रा गुरुवर है, परमेश्वर री उपमा पावै रे।
सागी जेहड़ा जिनवर है, कुण-कुण नहिं गुण-गरिमा गावै रे।।
२१. चालो साझां साम्हेळो, चख श्रुति रो अंतर मिट ज्यावै रे।
अहमहमिकया दै ठेलो, गुरु खिदमत खाटै इण खाहै रे।।

[1]ल्यो जबर झंड स्यूं, पूज्य पधारै पुर जोधाण में।

२२. गावत रागिणि गुण-अनुरागिणि नारि सुभागिणि आवै।
सकल सुमागिणि शिवपथ-भागिणी वंदन-विधि विरचावै रे।।
२३. चोक-चोक में ओक-ओक में, लोक थोक मिल सारै।
तेरापंथ-भदंत पूज्य री, ऊभा बाट निहारै रे।।

[2]सोहै स्वाम सलूणो,
तेरापथ-सम्राट दिन-दिन ठाट दूणो।

२४. जोवै जन जोधाण-निवासी, छोगां-सुत छवि छावै रे।
वीर विभू रो विमल नमूनो, इण नगरी में आवै रे।।
२५. गोखै-गोख झरोख-झरोखै, आ मोकै री माया रे।
पेसत 'सोजतियै दरवाजै', निकट निजर गुरु आया रे।।
२६. खमा-खमा क्षमतागर! सागर! जागर! जिन! अवतारी! रे।
शांतसुधागर! विमल-विभागर! बार हजार हि वारी रे।।
२७. दीनानाथ! अबंधव-बंधव! निर्धन-धन! जन-तारी रे।
हे असहाय-सहायक! लायक! त्रिभुवन-नायक! भारी रे।
२८. भैक्षव-भर्ता! भार-विभर्ता! दोहग-हर्ता! दानी! रे।
जग-जरता जर स्यूं उद्धर्ता! जय-दुन्दुभि बजड़ानी रे।।
२६. आज शहर री सेरि सुरंगी, चोक-चोहटा चंगा रे।
गावो बधावो मोद मनावो, घर आई गुरु-गंगा रे।।

---

१. लय : म्हांरी रस सेलड़ियां
२. लय : जोवै विमलपुरी नां वासी रे

[1]ल्यो जबर झंड स्यूं, पूज्य पधारै पुर जोधाण में।

३०. पग-पग ऊपर गुरु-मुख-सम्मुख, जन निज शीष झुकावै।
मुखड़ै रो जीकारो प्यारो, सुण-सुण विरह भुलावै रे।।
३१. नगरी सगरी रा पुन आछा, साचा शंकर आया।
अभयंकर तीर्थंकर-पटधर, चाहे ज्यूं उपमाया रे।।

[2]गुणिजन! गावो रे दिल ध्यावो, गणिवर मरुधर में आया।

३२. जाटावासे अति उल्लासे, गुरुवर पधराया।
भंडारी-भवने[3] मनु गगने, दिनकर दीपाया।।
३३. मुनि गुणतीस अठाइस श्रमणी, गुणसरिता न्हाया।
ढाळ पांचवीं वाचक गायक घूम-घूम गाया।।

ढाळः ६.

दोहा

१. जोधाणै पावस जम्यो, रम्यो धर्म रो रंग।
सारै शिक्षितवर्ग में, बढ़ती रही उमंग।।
२. सूयगडांग प्रवचन चल्यो, प्रातःकाल सटीक।
रामचरित्र विचित्र वर, निशि व्याख्या निर्भीक।।
३. सावण स्यूं आवण लग्या, देश-देश रा लोक।
पुर-दरसण सहज्यां मिलै, गुरुवर पांवांधोक।।
४. पर्यूषण मोच्छब-युगल[4], भर्‌यो भादवो भाल।
आसोजां में उदयपुर-स्पेशल आई चाल।।
५. करै प्रार्थना पूज्य! अब, पधरावो मेवाड़।
खड़्या अडीकै आपनै, ऊंचा-ऊंचा प्हाड़।।

---

१. लयः म्हांरी रस सेलड़ियां
२. लय : सहियां! गावो हे बधावो
३. सोवनमलजी-संपतमलजी भंडारी के मकान में
४. आचार्यश्री भिक्षु का चरमोत्सव और कालूगणी का पट्टोत्सव

६. कार्तिक में वेरागिणी-वेराग्यां री भीड़।
देखी असहन-जन-हृदय, नई ऊपजी पीड़।।

७. जे माटे खाटे नहीं, आयुर्वेद इलाज।
जन्त्र मन्त्र बूंटी जड़ी, निवड़ी सब निष्काज।।

८. नूतन प्राक्तन ग्रन्थ में, नहिं है शमन-उपाय।
पर-सुख-दुर्बलता व्यथा, अद्भुत कथा कहाय।। [युग्म]

९. एक-एक करतां चढ़ी, वर संख्या बाईस।
विद्वेषी मन में बढ़ी, भीतर-भीतर टीस।।

१०. शिशु-दीक्षा पर सामठो, भीषण उठ्यो विरोध।
प्रसर्यो सारै शहर में, घर-घर अप्रतिरोध।।

११. जोर-शोर प्रारंभियो, आंदोलन अविचार।
छापाबाजी में बह्या, पुर-पुर कर्यो प्रचार।।

[1]अयि पन्थपते! नाबालिग दीक्षा नहिं समय सरावै।
अयि विमलमते! अरजी ऊपर कृपया गौर करावै।।

१२. कइ मानव गुरुवर रै पासे, बोलै निज आंतर अभिलाषे।
दिल विह्वल-सो शिशु-संन्यासे, अयि पंथपते!

१३. जो बालक वय में नान्हो है, वैराग्य बणायो ब्हानो है।
अरु पहर लियो मुनि-बानो है, अयि पंथपते!

१४. सारो भविष्य अंधारा में, बहसी कुण-कुण-सी धारा में?
परिवर्तन विविध विचारां में, अयि पंथपते!

१५. जब जोबन री कलियां खिलसी, ललितालक-बालकता ढलसी।
अरु बीज वासना रो फलसी, अयि पंथपते!

१६. तब चितड़ो डांवाडोल हुसी, अभिनव रामत रंगरोळ हुसी।
फिर दीक्षा रो के मोल हुसी? अयि पंथपते!

१७. उमड्यो वेराग दिखावा में, या सतियां-सन्त सिखावा में।
पिण नहिं आभ्यंतर भावां में, अयि पंथपते!

१८. अनुभव स्यूं सब पितवाणी है, आधुनिक युवक री वाणी है।
युग रै छकणै स्यूं छाणी है, अयि पंथपते!

---

१. लय : उभय मेष हिव आहुड़िया

१६. जो भुक्त-भोग वैरागी हो, आंतरिक वृत्तियां जागी हो।
जिणरी शिव स्यूं लिव लागी हो, अयि पंथपते!
२०. बो बणो बणाओ संन्यासी, चौथै आश्रम को अधिवासी।
सारां रो आशीर्वर पासी, अयि पंथपते!

[1]पूज्य अब प्रत्युत्तर फरमावै, नाथ अब प्रत्युत्तर फरमावै।
सुणो पृच्छक! सहज स्वभावै।।

२१. आगम अनुभव तर्क युक्ति स्यूं, सत्य स्वरूप सुझावै।
त्यूं अध्यात्म भाव रो अंकन टंकन प्रयतन ठावै।।
२२. पूर्वाग्रह-अग्रस्त-मना, मध्यस्थ भाव अनुभावै।
जो जिज्ञासू तत्त्व-पिपासू, मन आमोद बढ़ावै।।

२३. [2]संयम रो संबंध सही संस्कारां स्यूं,
नहिं वय रो अनुबंध न बाह्य विचारां स्यूं।
विचारां स्यूं, युगधारा स्यूं, बारां स्यूं धारा-म्हांरां स्यूं,
हो जी! थे तो समझो सुज्ञ! सुजाण! विमुक्त विकारां स्यूं।।
२४. जागै जब संस्कार कहो कुण रोक करे?
भाव-उदधि रो ज्वार स्वयं संसार तरे।
संसार तरे, सब विघन टरे, वय-विद्या-वैभव सकल परे,
हो जी! थे तो समझो सुज्ञ! सुजाण! अनाग्रह वृत्ति अरे।।
२५. सदा अतीत अतीत भविष्य भविष्य रहै,
कांई होणो शेष रेस भगवान लहै।
भगवान लहै, सुख शांत सहै, उत्तम उत्तमता नहीं जहै,
हो जी! थे तो समझो सुज्ञ! सुजाण! विचारां बाढ़ बहै।।
२६. भर-जोबन वार्धक्य आवणो सो आसी,
वातावरण विशुद्ध बणायो ही जासी।
बण जासी, क्यूं फिर गिर पासी, क्यूं खासी विषयां री फांसी?
हो जी! थे तो समझो सुज्ञ! सुजाण! अंत बो पिछतासी।।
२७. देखावटी विराग कहो कब तक टिकसी?
धिंगाणै रो धर्म धिकायो ही धिकसी।
जो धिकसी, बहतो बिकसी, क्यूं संकट-आगी में सिकसी?
हो जी! थे तो समझो सुज्ञ! सुजाण! झुकासी सो झुकसी।।

---

१. लय : आवत मेरी गलियन में गिरधारी
२. लय : धन-धन भिक्षु स्वाम

[1]जिज्ञासा रो, समाधान है श्रीमुख अनुभव वाणी।
मृदु भाषा रो, श्रोतागण पर असर अनश्वर जाणी।।

२८. अनुभव सब अपणो-अपणो है, मुश्किल तो तपणो-खपणो है।
जीवन स्थिर-जोगे थपणो है।।
२९. ज्ञानेश्वर[2] सोलह बरसां रो, गीता रो भाष्य लिख्यो प्यारो।
शंकर[3] प्रह्लाद[4] न विस्मारो।।
३०. पच्चास बरस रो अनुभव है, करणै स्यूं सब कुछ संभव है।
कोइ युग की छाया अभिनव है।।
३१. शिशुवय ही दीक्षा समुचित है (ओ) एकांगी आग्रह अनुचित है।
संतुलित भावना हित मित है।।
३२. वर्णाश्रम री करड़ी कारा, नहिं श्रमण-संस्कृती री धारा।
देखो अै झिलमिलता तारा।।
३३. संयम रा सब अधिकारी है, जदि जीवन घन संस्कारी है।
जो अप्रतिबद्ध विहारी है।।
३४. तेरापथ-दीक्षा री सरणी, दरसाई कठिन-कठिन करणी।
सारी शंकां री संवरणी।।
३५. चौथे उल्लासे आखी है, आ छट्ठी ढाळ सुसाखी है।
क्षण-क्षण गुरुवर स्मृति राखी है।।

ढाळः ७.

दोहा

१. श्री गुरुवर-मुख सांभळी, दीक्षा-रीत-रिवाज।
आत्म-साधना को अमल, ओ निमित्त निर्व्याज।।
२. समाधान अवधान-युत, शंकावां रो सर्व।
सुण श्रोता उल्लासमय, आस्थाशील अगर्व।।
३. विद्वेषी मन में बढ़्यो, अब दुगुणो आक्रोश।
ईर्ष्या मत्सर-भाव में, रहै न अंतर होश।।

---

१. लय : उभय मेष हिव आहुड़िया
२. ज्ञानेश्वरी गीता के लेखक महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत।
३. आदि शंकराचार्य।
४. हिरण्यकश्यप का पुत्र भक्त प्रह्लाद।

४. नहीं तत्त्व-तरलित मती, रती न विरती-हेत।
श्रमण-सती संगति नहीं, नहीं सुमति-संकेत।।
५. सुगति-प्रीति दुर्गति प्रति, नहीं भीति तिलमात।
आभ्यंतर आमय तदा, क्यूं प्रशांत हो भ्रात! (युग्म)
६. बिन स्वारथ पर-हित प्रत्रि, विघ्नकरण सोल्लास।
कविजन तिण रै नाम री, अब लों करै तलाश[1]।।
७. लोकोत्तर लौकिक उभय, सुखमय जीवन हार।
जीवै बण निर्जीव-सो, आदत स्यूं लाचार।।

सोरठा

८. बाधक बण विद्रोह, खूब उठायो क्षुद्र जन।
इत-उत ऊहापोह, राजभवन लग संचर्‌यो।।
६. चैनसिंह राठौड़, वर ठाकुर पोखरण रा।
थिर दिवान री ठोड़, घणां लोक बहकाविया।।
१०. आखिर दीक्षा-रोक करणै की-सी धमकियां,
आती लोक विलोक, महता कियो मुकाबलो।।
११. श्रावक प्रमुख वकील, महता प्रतापमल्लजी।
कानां ठोकी कील, सुण चोकन्ना चैनसिंह।।
१२. धर्मनीति-अविरुद्ध, दीक्षा तेरापंथ री।
रुकी न रुकसी रुद्ध, करै किती करतूत को।।
१३. जदि रोकण रो जोश, तो मशीनगन मेलज्यो।
राख हियै में होश, हाजर प्राण हजार रा।।
१४. तरुण बाल-गोपाल, जब लग जीवित संघ रा।
तब लग दीक्षा-टाल, जोस्यां नहिं जोधाण में।।
१५. सुण प्रताप-वच साफ, ठाकुरसा ठंडा हुआ।
आखिर तो इंसाफ, सच्चाई रो बल प्रबल।।
१६. सारो शांत विरोध, वातावरण बण्यो विशद।
जबर संघ में जोध, समय-समय श्रावक हुया।।

---

१. देखें प. १ सं. १६

[1]ओच्छब छाय रह्यो, आनंद-घन उमड़ाय रह्यो।
जन-मन-मोर उम्हाय रह्यो, नृत्य सजोर रचाय रह्यो।।
हृदय झकोर सुणाय रह्यो, लोचन-वन लहराय रह्यो।
देश-देश रा मानवी, आवै देखण दीक्षा-दृश्य।।

१७. आयो अवसर सामनै कांइ, जन जोधाण पिछाण।
शुभ दीक्षा-संस्कार रो कांइ, मांड्यो अति मंडाण।।
१८. उभय समय आडंबरे कांइ, सझ-सझ जोर जलूस।
सेरी-सेरी संचरै कांइ, सायं पुनि प्रत्यूष।।
१९. विविध हृद्य आतोद्य स्यूं कांइ, भू-नभ एक समान।
प्रतिरव-व्याज दिगंगना कांइ, संग मिलावै तान।
२०. रंगराता माता महा कांइ, ताता तरुण तुषार।
रविरथयातां नै हंसै, करि हणहणता हिंसार।।
२१. होरी-होरी हालती कांइ, लोरी मोटर कार।
ओरी-दोरी है हुई कांइ, मिनखां री भरमार।।
२२. अभ्यंतर-स्थित ओपती कांइ, दीक्षार्थी री ओल।
नव-भूषण-भूषित तनू कांइ, संयम-हित दृढ़ कोल।।
२३. पुलिस जुलुस आगै चलै कांइ, पहिरी नृप-चपरास।
विविध वेष-सुविशेषता कांइ, है जनता सोल्लास।।

[2]थे तो जोवो रे जोवो, जोधाणै दीक्षा-झंड।
मत खोवो रे खोवो, ओ अवसर मिल्यो अखंड।।

२४. मोहलां में मावै नहीं रे, नर-नार्‌यां रो वृन्द।
बिन लाभे आभे चढ़्या मनु, तारक चंद दिनंद।।
२५. है महिला-मेलावड़ो रे, घर-घर गोखै गोख।
छाजां छतां बरामदां रे, ऊभी रूंसां रोक।।
२६. इतरेतर चरचा करै वनितावां रो समवाय।
दिव्य वेषधारी इता रे, अै दीक्षा-हित जाय।।

---

१. लय : वीर विराज रह्या
२. लय : चूरू री चरचा

२७. नेवर लग जेवर जुड़्या रे, ज्यांरै अंग सजोर।
घृत घेवर कुमिणा नहीं रे, भले अरोगो भोर।।
२८. रंग सलूणो अंग को रे, जोबन जंग-प्रसंग।
क्यूं मूकै चूकै रखै रे, अथवा अपर उमंग।।
२९. वा कोइ पंथ-भदंत की रे, भुरकी है भरपूर।
तिण योगे सब एकठा रे, संयम ग्रहै सनूर।।
३०. एक-एक-हित इतर में रे, भरसक उद्यम होय।
बिन उद्यम अनुपम मिलै रे, देखो बीस रु दोय।।
३१. सहियां! तेरापंथ को रे, भाग्य बखाणो आज।
नहिं कोइ तुलना में तुलै रे, तोलो अपर समाज।।

[1]ओच्छब छाय रह्यो।

३२. विस्मय-भरी विमर्शणा कांइ, जण-जण री अणपार।
यश-परिमल श्री पूज्य री कांइ, प्रसरी घर-घर द्वार।।

लावणी छंद

आ अभिनव दीक्षा-मोच्छब-छवि जोधाणै।
जो परतख पेखी अपणो भाग्य बखाणै।।
३३. अब दीक्षा-तिथि निर्णीत प्रीत-युत आई,
तब रश्मिरमण निज रुचिर रोचि प्रसराई।
कल-कल-रव-कूजित विहग बधाई गाई,
मंदिर-मंदिर झणणण झल्लरि झणणाई।
तज शयन सयन जन नयन-अयन उघराणै।।
३४. अब परम पूज्य दीक्षा-मंडप में आया,
'सरदार स्कूल प्रांगण' में घणां सुहाया।
च्यारूं तीरथ ग्रह-गण-नक्षत्र कहाया,
सिंहासन शोभै गणपति उडुपति-छाया।
अन्यान्य मतालंबी मन मोजां माणै।।

---

१. लय : वीर विराज रह्या

[1]ओच्छब छाय रह्यो।

३५. जय-जोधाण-नरेशरू[2] कांइ, बैस हवाई यान।
आया श्री जिन-संसदि, मनु सुरवर साझ विमान।।
३६. गगन मगन-मन म्हालता सहु, झुक-झुक झांकै दृश्य।
मध्य मुनिप महिमागरू, मनु उडुपति ओप अधृष्य।।

[3]आछी छवि छाई,
मनु कुसुमावलि विकसाई रे, आछी छवि छाई।
मनु सुरभित सुरभी आई रे, आछी छवि छाई।।

३७. पूछै जयपुर छितिपति तिण छिन, मरुधर-महिपति आगै रे।
अै कुण उच्चासन अधिराजै, ताजै तप बड़भागै रे।।
३८. नव-नव वेष निवेषे समुदित, प्रमुदित जन किण काजै रे।
जाणक भरियो जोर मगरियो, अम्बरियो सो गाजै रे।।
३९. धवलित वेषे लुंचित केशे, ऊभा क्यूं शुभ घाटे रे।
चिहुं दिशि रंग-राग रस छायो, मंगल बाटे-बाटे रे।।
४०. मरुधर-महिप मुदा तब भाखै, जैनधर्म-अधिकारी रे।
तेरापंथ-पथेश एष, उच्चासन भासनकारी रे।।
४१. इण वर्षे चोमास आपरो, जोधाणै जयकारी रे।
दीक्षा-अनुष्ठान ओच्छब रो, समारोह है भारी रे।।
४२. लोक-मिलावो हर्ष-बधावो, ओ है इण प्रस्तावे रे।
प्रश्न-पडुत्तर उभय नरेश्वर, कर-कर विस्मय पावे रे।।

[4]ओच्छब छाय रह्यो।

४३. क्षण ऊंचो नीचो क्षणे करि गगने वायूयान।
हर्ष हिलोळो हृदय रो मनु प्रकट कियो सह मान।।
४४. आया जिण दिशि संचरै अब जय-जोधाण-नरेश।
'तुलसी' तुर्योल्लास में कहि सप्तमि ढाळ सुवेष।।

---

१. लय : वीर विराज रह्या
२. जयपुर-नरेश मानसिंहजी, जोधपुर-नरेश उम्मेदसिंहजी।
३. लय : दुलजी छोटो-सो
४. लय : वीर विराज रह्या

ढाळः ८.

दोहा

१. मालमसिंहजी मुरड़िया, अजीतसिंहजी पास।
सुणी, सुणाई आय कर आ घटना सव्यास[1]।।

२. एक साथ गणनाथजी, दी दीक्षा बाईस।
इचरज में अति मगन हो, सुजन झुकावै शीष।।

३. अनुगामी आनंद रो, आज नहीं अनुमान।
प्रतिगामी प्रक्षुब्ध-मन, करै सत्य-संधान।।

[2]महिमागर मुनिवर!
थांरै इण उणिहारै शम-रस बरसा बरसै रे।
गुणसागर गुरुवर!
निरख-निरख आस्तिक-नास्तिक सारा जन हरसै रे।।

४. जालोरी दरवाजै जाझै झंड स्यूं रे,
पुर में पूज्य पधारै मध्य बजारै रे। महिमागर...।
च्यारूं ओर हजारूं मानव-मानिनी रे,
ऊंची कंधर कर-कर निजर निहारै रे।। महिमागर...!

५. लड़ालूंब बिन दूषण भूषण लटकता रे,
घड़ि इक पहिलां महिला मनुज निहार्‌या रे।
सिर-मुंडन कर तुंड धरी मुखवस्त्रिका रे,
धवल वसन सज धर्मध्वज कर धार्‌या रे।।

६. भाल विशाल निभालो तेरापंथ को रे,
तिण कारण अै दीक्षा एकण संगे रे।
वर्ष सैकड़ां मांही एहड़ी बातड़ी रे,
नयण निभाळी निसुणी कुण किण संघे रे।।

---

१. देखें प. १ सं. १७
२. लय : डालगणी रै पाट विराज्या भान ज्यूं

७. वीर विभू बरतारै चोथै आर में रे,
होती यूं जैनागम में गुरु गावे रे।
सा रचना प्रत्यक्ष प्रलोकी लोचनां रे,
भैक्षव-शासन तेरापंथ-प्रभावे रे।।

८. सुखे-सुखे सुखकारी पावस पूरियो रे,
पाई प्रवर प्रख्याती देश-प्रदेशां रे।
जोधाणै जस-डंको बंको बाजियो रे,
पुण्यवान रै पग-पग लाछ हमेशां रे।।

९. पावस कर एकम मिगसर मध्याह्न में रे,
पुर-बाहिर परदेशी-प्रवचन ठायो रे।
महामन्दिर दिन दूजै, सायं तीज नै रे,
भंडारीजी[1] रै बंगलै छक छायो रे।।

१०. 'रातानाड़े' चौथ पंचमी पांगर्‌या रे,
'झालामंड' अखंड ग्राम हरसायो रे।
बलि 'रोयट' जय-जन्मभूमि री फरसणा रे,
'पाली' शहर पवित्र चरण-रज पायो रे।।

११. माघ-महोत्सव कारण 'सुधरी' संघ को रे,
हार्दिक विनय सुणी गुरु गोर करावै रे।
श्रीमुख हुकम उचारी टारी तरषणा रे।
मालिक बिन कुण दूजो आश पुरावै रे।।

१२. तेरह दिवस विराज्या तेरापथ-पती रे,
'पाली' में जो श्रमण-सती बहु भेळा रे।
विचराया अब कांठे गामोगाम में रे,
मिलज्यो पाछा 'सुधरी' मोच्छब मेळा रे।।

१३. सात रात 'चाणोद' विराज्या स्वामजी रे,
'गोडवाड़' रो नाको निजर्‌यां ठावै रे।
पाछा बाहुड़ हो 'बीठोड़ै' 'एदला' रे,
गुरु 'गुंदोच' 'खेरवै' वास करावै रे।।

---

१. उम्मेदराजजी भंडारी

दोहा

१४. सात दिवस हो 'खेरवै' सात 'खिंवाड़ै' सार।
फरस्या दो पुर बीच में 'सिवास' नै 'बणदार'।।
१५. 'जाणुंदे' दो दिन रही, 'कारारी' इक रात।
'बड़ै बिठोड़ै' युगल दिन, इक 'चोबार्‌यां' ख्यात।।
१६. खरै मतै गुरु 'खारच्यां', दूजै दिन 'दूधोड़'।
'भैंसाणै' भल भलकता, स्वामी 'सोजतरोड़'।।

[1]खुली किस्मत कांठा री रे।
एकाणूं री साल मिली, गुरु-करुणा भारी रे।।

१७. जठै बिछायत ठाम-ठाम बांवल-कांटा री रे।
रात-विरात विराट खटाखट धुन रांठां री रे।।
१८. मेदपाट पाड़ोस ठोस रचना घाटां री रे।
ठोर-ठोर धव-खदिर-पलाश राश भाटां री रे।।
१९. अल्प ऊंडिया कूप सूंडिया[2] डारी-डारी रे।
खींचै नीर गती विषमी धोरी वृषभां री रे।।
२०. समी जमी कोरा जल-धोरा सींचै वारी रे।।
निपजै नाज धनोधन जौ गेहूं अरु ज्वारी रे।।
२१. जग्यां-जग्यां भरमार नदी नाळां-खाळां री रे।
लंबा-लंबा पड़्या सेरिया एक गडारी रे।।
२२. जन्म[3], निष्क्रमण[4], स्वर्ग-भूमि[5] भिक्षू बाबा री रे।
तेरापंथ तपै कांठा री महिमा सारी रे।।

---

१. लय : मनवा! नांय विचारी रे
२. सूंडिया कुआं वह होता है, जिसकी चरस उलीचने के लिए किसी व्यक्ति की अपेक्षा नहीं होती। कुएं की जगत के पास पहुंचते ही वह स्वयं उल्टी होकर पानी उलीच देती है।
३. कंटालिया
४. सुधरी
५. सिरियारी

[1]महिमागर मुनिवर!

२३. 'सुधरी' पूज्य पधारै 'सोजतरोड़' स्यूं रे,
संग सम्पदा भारी श्रमण-सत्यां री रे।
पुरजन ठाकुर-साहिब सामेळो सझ्यो रे,
बड़ी हाजरी गढ़ में छटा अटारी रे।।

२४. अद्भुत आभा जमी धर्म री जागृति रे,
पुरपति दो दुर्गुण[2] गुरु-चरण चढ़ावै रे।
दीक्षोत्सव मर्यादोत्सव प्रेरक कथा रे,
ढाळ आठवीं 'तुलसी' गणपति गावै रे।।

ढाळः ९.

दोहा

१. सुधरी रै इतिहास में, प्रथम महोत्सव-माघ।
करवायो कालूगणी, बढ्यो क्षेत्र रो आघ।।

२. कुंदनमलजी सेठिया, गभीर[3] हीराचंद[4]।
भंवर-देवड़ा[5] आदि सहु, श्रावक मिल्या अमंद।।

३. करी व्यवस्था सांतरी, साज-बाज शुभ साझ।
बगड़ी अति तगड़ी हुई, सारो खिल्यो समाज[6]।।

४. एक दिवस इण शहर में, श्री भिक्षू गणनाथ।
विकट-विकट संकट सह्या, सुमरत दिल दहलात।।

५. आ'र न मिल्यो अरोगणै, रहणै मिल्यो न ठाण।
जैतसिंह की छतरियां, जाकर जम्या मसाण।।

६. आलीशान इमारतां, हाजर आज अनेक।
खातिरदारी यात्रियां, टीनालय-अतिरेक[7]।।

---

१. लय : डालगणी रै पाट विराज्या भान ज्यूं
२. शिकार और शराब
३. गम्भीरचंदजी धारीवाल
४. हीराचंदजी कातरेला
५. भंवरलालजी देवड़ा
६. बगड़ी के प्रायः परिवार व्यवसाय की दृष्टि से बाहर रहते थे। वहां महोत्सव होने से तेरापंथ समाज के पिचहत्तर घर एक साथ खुल गए। इससे समाज खिला-खिला-सा प्रतीत होने लगा।
७. टीन से बनी हुई अस्थायी कोठरियां

७. सुधरी सगरी बात तब, जचै न बगड़ी नाम।
सुधरी-सुधरी सब कहै, परिणत नाम सुनाम।।

[1]पूज्य परमेश! पधारो देश मेवाड़ां।
तारो अजि तारणहार, थांरो इक मात्र आधार।

८. श्रावक मेवाड़-निवासी, उत्कट अभिलाषी,
विनवै चरणां सिर नात, विनवै चरणां सिर नात। पूज्य...।
जुग का जुग बीता गणिवर! रहग्या म्है रीता,
अब तो ले सबलो साथ, अब तो ले सबलो साथ।। पूज्य...।
९. ऊंचा-ऊंचा शिखरां स्यूं शिखरी सुहाणां,
शिखर्‌यां स्यूं हरित अपार।
झर-झर झरता निर्झरणा उज्ज्वल-वरणां,
किरणां दूधां री धार।।
१०. बागां-बागां बड़भागां क्रोयलियां कूजै,
गूंजै गह्वर-बिच शेर।
लम्बी खोगाळां नाळा बाह्ळा नै खाळा,
नदियां रो नहीं निवेर।।
११. भूमी भल भाखर वाली दृढ़ता विशाली,
भाली भिक्षू बुधवान।
धारी सतितिक्षा दीक्षा शहर केलवै,
मान्यो मेवाड़ सुथान।।
१२. विभव-विलासी गुरुवर! नहिं नर बहुला,
करणो निज उदर गुजार।
मोटो खाणो त्यूं जाणो वेष पुराणो,
भक्ति घर-घर अनपार।।
१३. वारी बिन सींचे वारी सूकै विचारी,
समझो गुरु! आप विचार।
वारी वारिज इकतारी थांरी नै म्हांरी,
म करो अब देर लिगार।।

---

१. लय : पिओ नी परदेशी

१४. ऊंची दृग छोगां-छावो देखी उम्हावो,
दिल रो दरियावो देव।
वचने आश्वासन दीन्हो निमल नगीनो,
सींच्यो रस शांत सुधेव।।
१५. दिवसां उगणीसां आभा सुधरी में पाई,
छाई छवि जिन-अनुहार।
विचरै बलि पुर-पुर गामे विमल विभा में,
करता भारी उपकार।।

दोहा

१६. 'पीपलाद' स्यू पूज्यवर, 'केलवाज' अविवाद।
च्यार गुड़ा[1] पद-फरसणा, 'बड़े गुड़ै' संवाद।।

[2]पहलो मोको मिल्यो अनोखो ओ संवाद सुणाऊं।
गाऊं कालूयशोविलास में, उल्लास में उल्लास में।।

१७. 'बड़े गुड़ै' फाल्गुन सित सातम, एकाणू री साल,
सायं प्रतिक्रमण री बेला, सम शीतोषण काल।
गुरु-चरणां में मुनि सिर नामे, मैं पिण वंदन ठाऊं।।
गाऊं कालूयशोविलास में, उल्लास में उल्लास में।।
१८. सक्कारेमी सम्माणेमी, कल्लाणं मांगल्य,
दैवत चैत्यं पर्युपासना करूं भाग्य-प्राबल्य।
कर सुखपृच्छा ऊठ यदृच्छा, मुनि-वंदन जब जाऊं।।
१९. तुलसी! तुलसी! सम्बोधन कर, पुनि तेड़्यो गुरुदेव,
झट बाहुड़ मैं जोड़ उभय कर, ऊभो सारूं सेव।
लै लै सुण-सुण सद्गुण चुण-चुण, सोरठियो[3] संभळाऊं।।

---

१. रामसिंहजी का गुड़ा, चतराजी का गुड़ा, अजबोजी का गुड़ा और बड़ा गुड़ा।
२. लय : ठुमक-ठुमक पग धरती
३. श्री कालूगणी-विरचित सोरठा—
सीखो विद्या सार, परहो कर परमाद नै।
बधसी बहु विस्तार, धार सीख धीरज मनै।।

२०. अनुप्रास-अखरोट-सुभावित भाव-प्रभावित पूर,
सुण्यो सोरठो चित्त-चोरटो, निखर्यो म्हांरो नूर।
मगन-इशारे मैं बिन भारे, दोहो[1] चरण चढ़ाऊं।।

२१. एक बार सुण सुण्यो दुबारा, दूधां-धारा पोख,
सुधा-स्यन्दिनी दृष्टि दिखाकर, म्हांरो मन संतोख।
देइ विदाई रूं-रूं छाई, खुशियां कभी भुलाऊं।।

२२. 'चतराजी रै गुड़ै' गणाधिप, नवमी दिन मध्याह्न,
पुनरपि सोरठियो[2] गुणगठियो, दियो दयानिधि दान।
मैं पिण ततखिण अक्षर विण-विण[3], चरणां धोक लगाऊं।।

२३. सन्तां में सतियां में फैली, गुरुवर कृपा-सुवास,
वरणां में वरणूं बा करुणा, वरण न म्हांरै पास।
जद-जद याद करूं बै बातां, रातां नहिं सो पाऊं।।

२४. रामचरित्र रटायो मुझनै अद्भुत आगम-दृष्टि,
कुण जाणी दो बरसां में ही होसी अभिनव सृष्टि।
चकित-चकित सारा ही रहग्या, मैं महिमा महकाऊं।।

[4]पूज्य परमेश! पधारो देश मेवाड़ां।

२५. करुणानिधि गाम 'कंटाल्ये' च्यार दिवस ही,
देख्यो गुरु जन्म-मुकाम, देख्यो गुरु जन्म-मुकाम।
त्यूं ही दिन च्यार 'मुसाल्ये' मुनिप विराज्या,
नवमी आ ढाळ निशाम, नवमी आ ढाळ निशाम।।

---

१. श्री तुलसीगणी-विरचित सोरठा—
महर रखो महाराय! लख चाकर पद-कमल नो।
सीख अपो सुखदाय, जिम जलदी शिवगति लहूं।।

२. श्री कालूगणी-विरचित सोरठा—
शिशु मुनिवर! सुविशेख, क्रिया नित्य निर्मल करो।
रंच न चूको रेख, देख-देख पगला धरो।।

३. श्री तुलसीगणी-विरचित सोरठा—
चित में अहोनिशि चैन, भाग्य दिशा जागी भली।
श्रवण करां श्रवणेन, सीख अमोलक स्वाम री।।

४. लय : पिओ नी परदेशी

ढाळः १०.

दोहा

१. 'सीरवादै' अरु 'वासणी', 'धाकड़ि' 'धीनावास'।
'सोजत', 'सोजतरोड़' में, कर होली चउमास।।
२. बलि 'मुसालियै' मोद में, सद्गुरु 'सेखावास'।
कंटालिय-पुर-अधिपति, भेट्या सहज सुवास।।
३. 'मांडै' चरणाम्बुज धर्‌या, पुर ठाकुर दिल हेम।
दरसन कर परसन हुया, मृग-शिकार रो नेम।।
४. निर्मल दिल गुरु 'नीमली', ठाकरवास निवास।
'चिरपटियै' दो दिन रही, राजत 'राणावास'।
५. तत्र विराज्या तीन दिन, 'गाधाणै' दिन दोय।
'आंगदूस' में एक दिन, की करुणा अवलोय।।
६. अबलों समरूं आंगदू बारठजी रो गीत[1]।
कविगोष्ठी-सी हो चली, पूज्य-प्रभाव पुनीत।।
७. 'रामसिंहजी रै गुड़ै', गोडां पीड़ विशेष।
बाधा गमनागमन में, रहणै लगी हमेश।।
८. गुरुवर यूं सोचै तदा, घाटो रह्यो नजीक।
मेदपाट रा मानवी, सारा करै अडीक।।
९. प्रगटी जानू-वेदना, करणो उचित उपाय।
ज्यूं भाखर-भू जाण-हित, सज्ज बणै मुझ पाय।।
१०. सेवितपूर्व सुसंभर्‌यो, भद्रंकरण भिलाव[2]।
सीक भरी जानू परे, लीक करी लघु साव।।
११. प्रातः प्रवचन मगन मुनि, निशा और मध्यान।
मैं प्रवचनकारक बण्यो, गुरुवर कृपा महान।।

[3]मुनिप महान मनोबली,
श्री कालू रे शरणागत-त्राण, मुनिप महान मनोबली।

---

१. देखें प. १ सं. १८
२. वि. सं. १९७८ रतनगढ़ में घुटनों की पीड़ा में एक बार भिलावे का प्रयोग किया था।
३. लय : भवन सुन्दरि जय सुन्दरी

श्री कालू रे उदयाचल-भाण, मुनिप महान मनोबली।
श्री कालू रे म्हांरा जीवन-प्राण, मुनिप महान मनोबली।।

१२. छाला उठ-उठ सांवठा, अति झरिया रे झरणां ज्यूं जाण।
ठाम-ठाम व्रण विस्तर्या, लहि वेदन रे कांइक लघिमाण।।
१३. 'रामसिंहजी रै गुड़े', राज्या राज्या रे गुरु दिवस अठार।
'जोजावर' जनता तरी, आया आया रे करुणा-आगार।।
१४. ठाकुर केसरसिंहजी, पुरवासी रे मिल श्रावक सर्व।
स्हामेळो स्हाज्यो सही, खरी खिदमत रे सरजी तज गर्व।।
१५. गढ़ मांही इक हाजरी, करवाई रे अति आग्रह ठाण।
सुण गुरु-मुख-वचनावली, विरुदावलि रे बोली बहु माण।।
१६. सात दिवस वासो बसी, गुरुराया रे आया भवि भाग।
'सिरियारी' में शोभता, मनु पाया रे कांठा रो थाग।।
१७. नाथूसिंहजी कंवरजी, संग लेई रे निस्साण-नगार।
बाहिर तक हाजिर हुया-गुरु चरणां रे वरणूं अति प्यार।।
१८. गढ़ मांही दरसण दिया, पुरपति नै रे बूढ़ापो जाण।
च्यार-पांच पीढ्यां लसै, तंयासी रे वर्षायू माण।।
१६. श्री आदिम गुरुदेव रो, 'सिरियारी' रे चरमोच्छब ठाण।
पक्की हाट विलोकतां, दिल साल्यो रे सहि आईठाण।।
२०. गोडो तो छोडै नहीं, निज झरणो रे गुरु रो दृढ़ कोल।
मेदपाट है पहुंचणो, इण बरसे रे दीधो धुर बोल।।
२१. तीजै दिन सायं समै, पधराया रे चोकी फूलाद।
खास मास वैशाख री, अख-तृतीया रे आई साह्लाद।।
२२. मानव मरु मेवाड़ रा, शत संख्या रे सहज्यां समवेत।
मधुकर वर मकरंद ज्यूं, गुरु-पदरज रे सेवै समचेत।।
२३. जंगळ में मंगळ भयो, अनु राघव रे साकेत सुजाण।
शुष्क बाग हरियो हुवै[1], हरि-बंसरि रे बाजत सप्राण।।

दोहा

२४. जंगळ में मंगळ किंयां, हुयो विमल विरतंत।
अल्पाक्षर आखूं अखिल, श्रोता! सुणो सतंत[2]।।

---

१. देखें प. १ सं. १६
२. देखें प. १ सं. २०

भुजंगप्रयात छंद

२५. चहूं ओर चंगी जुड़ी झंगि भारी,
कहूं जंगि-जंगी वटां री जटा री।
कहीं निम्ब कादम्ब जम्बाम्ब झारी,
खरी शूल बंबूल जींहा जमां री।।

२६. कहीं खक्खराटी हुवै खक्खरां री,
कहीं घग्घराटी वहै वग्घरां री।
धहूड़ा लहूड़ा महूड़ा मरारी,
कहीं दंड-थूरां वकूरां वरां री।।

२७. किते फेतकारां फरक्कत्त फेरू,
किते फुप्फणारां अरक्कत एरू।
किते घूक-संघाट घुग्घाट घेरू,
किते बुक्कबुक्काट-केरू वनेरू।।

२८. किते गह्वरां गोड़ गुंजां गड़क्के,
किते क्हेर केधों निकुंजां धड़क्के।
किते टोल खंडोल खड्डां खड्क्के,
किते पाय ठड्डां जु रेणू रड़क्के।।

२९. खड़ी एकतों मेदघट्टी निकट्टां,
बड़ी बींखड़ी हेत है ही विकट्टां।
कहीं चाढ़ बाढ़ं कहीं ताढ़ गाढ़ं,
कहीं फ्हाड़-फ्हाड़ं पड़े ठाढ़-ठाढ़ं।।

३०. विचालां खुगालां पड़ी है विशालां,
करालां कमालां जड़ी खाळ जालां।
भणंके भणण्णाट स्यूं भट्टभेड़ा,
झणंके झणण्णाट स्यूं नीर-तेड़ा।।

३१. सणंके सणण्णाट वारी बगद्दां,
रणंके रणं रेलगाड़ी रगद्दां।
कहीं बोझ-बोझा कहीं रोझ-मोजां,
कहीं पान्थ-फोजां बहे खोज-खोजां।।

३२. झणं झंकरावां अटव्वी अटारी,
खणं खंखरावां सकै कोण ठारी।

कहूं कातरां री करारी कटारी,
थवा काल-क्यारी घटारी-मठारी।।

३३. गणिराज राजै बठै बेधड़क्के,
जिणें मान-मातंग मोड़्यो मड़क्के।
सुबुद्धी सुधी शिष्य-संघात संगे,
सझै सेव चंगे अभंगे उमंगे।।

३४. रही ओलि-दोली सही भक्त-टोली,
कहीं तम्बु छोली सतोली टटोली।
कहीं चद्दरी वा दरी वा बिछोली,
कहीं धोलि-धोली समी भूमि जोली।।

३५. किते लोचनालोक स्वामी निभाले,
किते भेल-भाले सिनेरी संभाले।
किते चाल-चाले किते शाल भाले,
किते मींट माल्हे किते घोर घाले।।

३६. फबे फूलचौकी अनोखी अमन्दा,
सहू दोखि-सोखी परे हो समन्दा।
नहीं चांदनी भी चमक्की जु चन्दा,
लही रोचनी रोशनी मूल-नन्दा।।

३७. जच्यो रंग जाचो मच्यो छक्क मातं,
अचक्का उड़ातं तहीं सुक्खसातं।
नहीं भीति-भातं कहीं ईति-आतं,
दया देव ख्यातं भुजंगप्रयातम्।।

दोहा

३८. कड़कड़ाट कर केहरी, धड़हड़ धड़क्यो धींग।
थड़हड़ थड़क्यो कातरां-कालेजो सुण डींग।।

३६. आज दहाड़्यो केहरी क्यूं है कारण ज्ञात?
नहीं अगर तो ल्यो सुणो, कवी कल्पना ख्यात।।

मोतीदाम छंद

४०. विराजनतें जिन शासनछत्र, अलौकिक आब समन्वित सत्र।
खिली विटपावलि यत्र हि तत्र, विकासित है वनराजि विचित्र।।

४१. खिलक्कत कित्त कुरंग सियाल, मिलक्कत मांजर मोर मुषार।
सिलक्कत सांभर सूर शशार, ढिलक्कत ढक्कत ढोर ढिचार।।
४२. विचार करै मन में मृगराज, निजालय में निज आसन साज।
अहो अजबां गजबां गति आज, हुई वन में अति शांति सकाज।।
४३. पराजय पावय है मम प्रान, नहीं भय भावय आरन जान।
भमन्त इतस्तत मोद हि मान, गरूरित गात निजो निज गान।।
४४. नभस्तल अस्त हुयो उडुराज, तथापि न छाजत धान्तधिराज।
बिना पुफदन्त प्रकाशित प्राज, इलातल दिग्गज आज समाज।।
४५. लह्यो नहिं हेत गयो कित धाम, रह्यो नहिं थाम धुजावन धाम।
कहीं अहिं आ उतर्‍यो जिन जाम, अहिंसक में अखिलेश्वर स्वाम।।
४६. बहै जग में जिणरी उपमान, थवा प्रगट्यो गनरान हि आन।
गठ्यो दिल में सुघट्यो अनुमान, उठ्यो झट गह्वर स्यूं मृगरान।।
४७. परक्खन हेत हरी परतक्ख, दरक्खन ओट करी दिल दक्ख।
धरक्खन रो मिष ठाण सताब, हरक्खनतें अब जाचत जाब।।
४८. कहो करुणामय राजत केथ, निराग निरामय संघ समेत।
नहीं प्रतिवाच उवाच जितेत, पुनी हणर्णाहट सिंह सहेत।।
४९. करो करनाल सताल करग्ग, भरी भर वारुद वार उदग्ग।
छरी छणणाहट ते छगमग्ग, मुनीश तटस्थित मानव-वग्ग।।
५०. सुनी मृगराज अवाज सतोल, धुनी सिर ढाब लियो निज बोल।
चुनी शुभ छन्द कहै कर कोल, मुनीपति 'मोतिय दाम' अमोल।।

दोहा

५१. इण कारण अद्‌भुत हुई, पंचानन-आवाज।
इण कारण प्रतिरव हुयो, करनाली रो प्राज।।
५२. वितथ म समझीज्यो सुघड़, मम मन रो अंदाज।
करनाली पर केशरी, मौन रह्यो किण काज।।

[1]मुनिप! महान मनोबली।

५३. अक्षय-तृतीया रात रो, ओ वरणन रे अक्षय सुविशाल।
चौथे उल्लासे कही, गणि 'तुलसी' रे आ दशमी ढाळ।।

---

१. लयः भवन सुन्दरि जय सुन्दरी

ढाळ ११.

दोहा

१. चोथ चानणै पक्ष में, माधव मास उदार।
निषध शिलोच्चय ऊपरे, उदित स्वर्ण दिनकार।।
२. जगतारक जाग्रत लखी, तारक आज अदृश्य।
रविकिरणां चरणां पड़ी, शरणागतवत दृश्य।।
३. सज्ज होण घोषित हुयो, शासनपति निर्देश।
राणाजी रै देश में, करणो आज प्रवेश।।
४. खांधै धर-धर नांगळा, नान्हा मोटा सन्त।
मुनिपति मुख आगल खड़्या, हियड़े अति हुलसंत।।

[1]उपकारी अधिकारी तेरापंथ रा,
जशधारी अनुचारी श्री अरिहन्त रा।
सुखकारी दुखहारी दरस भदंत रा।।

५. विषम पंथं मेवाड़ रो, भर गरमी रो काल हो। उपकारी...
पीप झरै गोडां घणो, गुरुवर परम गोवाल हो।। उपकारी...
६. चढ़णो प्हाड़ अरावली, रंच न मन ओचाट हो।
अष्टम गुणठाणी यथा, खपकश्रेणि री बाट हो।।
७. पतली पगडंडी विषे, इत उत निजर निवार हो।
तन मन स्थिर भावे करी, जयणां री गति सार हो।।
८. तीन-च्यार घंटां सुधी, पंथ बही इकधार हो।
मुनिप पधार्‍या 'पींपली', मेदपाट-सीमार हो।।
९. सहनशीलता में हुवै, ऊणायत लवमात हो।
तो ओ पथ आफत भर्‍यो, कुण झेलै किण बात हो?
१०. दो वासर बस 'पीपली', 'देवदुर्ग' दिन च्यार हो।
हुयो चोकन्नो चोखलो, देखण देव-दिदार हो।।
११. 'दोलाजी-खेड़ै' दिवस एक 'कुवाथल' ठेट हो।
दरस 'कमेड़ी' में किया, जाव राव-आमेट हो।।
१२. 'अम्बापुरी' पधारिया, पांच दिवस स्थिरवास हो।
श्रद्धालू घर सैकड़ां, शासण दृढ़ विश्वास हो।।

---

१. लयः जग बाल्हा जग बाल्हा जिनेन्द्र पधारिया

१३. 'आगरियै' स्यूं आविया, गुरुवर 'गढ़ सरदार' हो।
'जेतपुरै' पथ 'केलवै', भिक्षूनगर निहार हो।।
१४. 'मोखमपुर' हो महामुनि, 'राजनगर' अनुकूल हो।
'कांकरोलि' करुणा करी, शांत-सुधारस झूल हो।।

दोहा

१५. 'धोइन्दै' पदरज धरी, नाथ 'नमाणै' गाम।
दरस दिया 'कोठारियै', जन-आशा-विश्राम।।
१६. 'नाथद्वारै' दो दिवस, अब 'गोगुन्दै' माग।
जेठ मास है पख शुकल, यौवनवती निदाघ।
१७. ठंडक जाणी पथ लियो, 'सेळा' रो गण-इंद।
'परवाल' 'मोलेरा' प्रगट, 'काराई' रु 'मचींद'।।
१८. 'कठार' 'बरवाड़ा' बही, मन्द-मन्द गति साज।
समवसर्‌या समभाव स्यूं, 'रावळिया' में राज।।
१६. 'बाटी री घाटी' बड़ी, 'भूताळा रो घाट।'
टार्‌यो परबारो गुरु, तो पिण विषमी बाट।।
२०. भटभेड़ां छेहड़ां बिना, पग-पग चाढ़-उतार।
इण अणमाप्यै पंथ रो, नीठ हि हुवै निकार।।

[1]जी कांइ जनमभूमि मुनि मगन री गुरु आया 'मोटैगाम'।

२१. 'रावलियां' ऋषिराय रो कांइ, जनमधाम पहचाण।
दोय दिवस वासो बसी कियो 'मोटैगाम' मंडाण।।
२२. मांजरियां हरिया-भर्‌या कांइ, सोहै द्रुम सहकार।
कोयलियां खिलियां करै कांइ, कुहुक-कुहुक टुहकार।।
२३. आम्र-मिठास चिठास री भरै, सौरभ सहज सुसाख।
दरखत छाया निरखतां हुवै, पथिक शयन अभिलाख।।
२४. मधुकर-गुंजारव मिषे कांइ, लहि मधु रो आस्वाद।
नहिं-नहिं कहिं इसड़ो मधू, करै पथिकां स्यूं संवाद।।

---

१. लय : वीरमती तरु अम्ब नै कांइ दीधो कम्ब-प्रहार

२५. डूंगरिया गरिया घणां कांइ, हरिया-भरिया भाल।
सांभरिया बिन कुण रहै कांइ, दरिया री सेवाल।।
२६. जेठ मास में वीसर्‌या कांइ, जन गरमी री बात।
ऊर्णायू ओढ्यां बिना कांइ, नावै निद्रा रात।।
२७. चवदह दिवस दया करी कांइ, गोगुन्दै गणनाथ।
प्रगट हुई व्रण-वेदना कांइ, श्री गुरुवर रै हाथ।।
२८. सुगुरु-दिदार निहारियो कांइ, गोगुन्दै रा राज।
प्रवचन सुण्यो सुहावणो कांइ, यद्यपि शिशुवय साज।।
२९. फतेहलालजी आविया कांइ, महताजी रा पुत्र।
उदयपुरी श्रावक घणां कांइ, सेवै सुगुरु सुसूत्र।।

[1]उपकारी अधिकारी तेरापंथ रा।

३०. पूज्य 'उदयपुर' आसनो, कृपया दीजे आश।
किण दिन पधराणो हुसी, पूरण पौर-पिपास।।
३१. भावपूर्ण आग्रह लखी, तीज शुक्ल आषाढ़।
घोषित ढाळ इग्यारवीं, जनता हर्ष प्रगाढ़।।

ढाळः १२.

दोहा

१. चवदस बिद आषाढ़ री, पूज्य कियो प्रस्थान।
'उदियापुर' पावस करण, हरण तिमिर-अज्ञान।।
२. एक दिवस 'भादविगुड़ो' 'थूर' रु 'चिक्कलवास'।
पुर बाहिर बंगलै रह्या, दूजै दिन सोल्लास।।
३. सात कोश है कहण रा, माप मील इक्कीस।
'गोगुन्दा' स्यूं 'उदयपुर' आया शासण-ईश।।

[2]देखो आज अभ्युदय-समय, उदयपुर आया पुण्य-निधान।
आया पुण्य-निधान, कालू जिन-शासन की शान।।

---

१. लय : जग बाल्हा जग बाल्हा जिनेन्द्र पधारिया
२. लय : म्हांरा सतगुरु करत विहार

४. शुक्लाषाढ़ तीज दिन उदयो उदयाचल शुभ भान।
तेरस तीज अचूक मुहूरत जाणै जन मतिमान।।
५. भाषण-चिंतन-मनन-विवर्जित ईर्याधुन इकतान।
जुगमात्रा-मित निरखत-निरखत पग-पग पर पन्थान।।
६. श्रमण-संपदा संगे सोहे जो है आलीशान।
परिषद सद्गुरु-अनुपद चालै मुख-मुख मंगल गान।।
७. 'हाथी-पोळ' धोळ दिल आगै मध्य बजार वितान।
लोक हजारां निरखै परखै परमेश्वर प्रतिमान।।
८. बीस बरस स्यूं दर्शन दीठा मीठा मनु मिष्टान।
पातक नीठा जाणक पायो चातक घन-रस पान।।
९. घणां दिनां रो भूखो मानव पुरस्योड़ा पकवान।
नयन निहारै इष्ट-वियोगी मन इच्छित महमान।।
१०. अहोभाग्य है आज उदयपुर गुरु-पद-रज-संधान।
मोड़-मोड़ पर अमित कोड धर जन-जन करै बखान।।
११. महता फतेलालजी वारी बाड़ी विकसित वान।
सपरिवार गणधार पधारै सारै सेव सुजान।।

सोरठा

१२. महताजी मतिमान, हीरालालजी मुरड़िया।
महलां लख महारान, करै सहज अभ्यर्थना।।

[1]देखो आज अभ्युदय-समय, उदयपुर आया पुण्य-निधान।

१३. तेरापंथ-पूज्य इण पुर में आया आयुष्मान।
त्याग-तपस्या मांही राखै अपणो ऊंचो स्थान।।
१४. कांता कांचन रंच न राखै झांकै निज निध्यान।
ललित ललाट-लालिमा साखे ब्रह्म ज्योत री छान।।
१५. भोगी रूप विलोक्या जोगी जोगी अलख जबान।
आज अनोखो जोगी निरखो मेदपाट-महारान!

१. लय : म्हांरा सतगुरु करत विहार

१६. रान फता अवतार पता को, कविजन करै बयान[1]।
सो पिण कविराजा री बाड़ी भेट्या गुरु मघवान।।
१७. मघव-शिष्य श्री कालू, आप फते की हो संतान।
बा ही विधि राखो महिमागर! ओ अमूल्य ओसान।।
१८. हार्दिक इच्छा स्यूं दी स्वीकृति हिन्दु-सूर्य[2] सह मान।
जैन-सूर्य[3] रा दरसण करणां जीवन-जागृति जान।।
१६. महताजी रु मुरड़ियाजी गुरु-चरणां प्रणती ठान।
राणाजी री राय सुणाई आकर्ष्यो गुरु-ध्यान।।
२०. शुक्लाषाढ़ चौथ दिन सांझे छव बाजे अनुमान।
मोटर री असवारी धारी मेदपाट-भू-मान।।
२१. राज लवाजम संग सुरंगो चंगो अति चोगान।
सद्गुरु-सम्मुख उन्मुख आवत नावत सिर नतिवान।।
२२. पट्टासीन प्रवीण-शिरोमणि अगणित गुण-गरिमाण।
सुरमणि व्योममणीवत निरखत नरपति हित कल्याण।।
२३. विधियुत वन्दे मन आनन्दे भूपति तज अभिमान।
तूर्योल्लासे ढाळ बारमी 'तुलसी' मधुरी तान।।

ढाळः १३.

दोहा

१. एक ओर आसित अहो, मेदपाट-महिपाल।
एक ओर भासित-महो, भैक्षवगण-भूपाल।।
२. निज लवाजमै राजतो, मेदपाट-महिपाल।
व्रती-व्रात-विभ्राजतो, भैक्षवगण-भूपाल।।
३. रान प्रताप प्रताप को अंश भूप भूपाल।
भान भिक्षु भिक्षूपती-वंशज कालु कृपाल।।
४. पर राणा भूपाल तो, मेदपाट-महिपाल।
मूलचंद कुलचंद लो, अखिल विश्व-प्रतिपाल।।

---

१. देखें प. १ सं. २१
२. महाराणा प्रताप के बाद उदयपुर के राजाओं को प्रदत्त उपाधि।
३. कालूगणी

५. संयोजित पाणी-युगल, एकमना अकिलेश।
जाणक मानव लोक में, राणो है अनिमेष।।
६. अवलोकी अवसर उचित, जीवनयुत जीमूत।
सघन श्याम गगनांगणे, सज्ज खड़्यो साकूत।।
७. हरतु हरतु मेऽघं मुनिप! राणाजी री लार।
कटै कुटिल मम कालिमा, बोलै मिष गरजार।।
८. आरंभ्यो उपदेश वर, भव-विरक्तता हेतु।
सभी सजग सज्जन सुणै, गुरुवाणी शिव-सेतु।।

[1]राजन्! सुंदर अवसर पाय, काय अब उद्धरो रे लोय।
खिण लाखीणी जावै रे लोय।।

९. राजन्! लख चौरासी-वासी प्राणी पाहुणो रे लोय,
मानव भव में आयो रे लोय।
राजन्! आर्य देश कुल वेश प्रवर प्रभुता सुणो रे लोय।
आयुः लम्बो ल्यायो रे लोय।।
१०. राजन्! अंग अरुज अरु संग सुगुरु रो सांतरो रे लोय।
जगी तत्त्व-जिज्ञासा रे लोय।
राजन्! घूणाक्षरवत साबत सामग्री करो रे लोय,
अब तो सब सफलाशा रे लोय।।
११. राजन्! यौवन-धन-मगरूरी कूरी नां करो रे लोय,
क्षणभंगूरी काया रे लोय।।
राजन्! घटत-बढ़त री छाया माया रो सरो रे लोय,
मत नां मन लोभाया रे लोय।।
१२. राजन्! चंचल चपला चाल लालललना-श्रयी रे लोय।
संगम स्वाल सुजाणो रे लोय।।
राजन्! क्षणिक भावना परिजन री ममतामयी रे लोय।
नाहक स्थिरता ठाणो रे लोय।।
१३. राजन्! पुद्गल-कलना सकल चलाचलता भजे रे लोय।
बिछुड़न-मिलन स्वभावै रे लोय।

१. लय : भविकां! नृप नी बेटी गुण नी पेटी

राजन्! समझै चतुर सुजान आन अनभिज्ञ जे रे लोय।
नाना कष्ट उठावै रे लोय।।
१४. राजन्! सम्यग दर्शन-ज्ञान-चरण निज हितकरू रे लोय।
बंधन-मुक्ति दिखावै रे लोय।
राजन्! मुक्तात्मा ही परमात्मा परमेश्वरू रे लोय।
पुनर्जन्म नहिं पावै रे लोय।।
१५. राजन्! सत्संगत ही परम मूल सम्यक्त्व रो रे लोय।
धार्मिकता पनपावै रे लोय।
राजन्! धार्मिकता ही परम तत्त्व अपनत्व रो रे लोय।
जीवन-ज्योति जगावै रे लोय।।
१६. राजन्! अनागार सागार धर्म आराधना रे लोय।
मुनि श्रावक आराधै रे लोय।।
राजन्! कठिन महाव्रत सहज अणुव्रत-साधना रे लोय।
निज-पर कारज साधै रे लोय।।
१७. राजन्! यूं विध-विध उपदेश विमल वच वागर्‍यो रे लोय।
झर्‍यो वचोऽमृत झरणो रे लोय।।
राजन्! राणाजी रो हृदय ठर्‍यो मोदे भर्‍यो रे लोय।
मुश्किल विवरण करणो रे लोय।।
१८. राजन्! तेरापंथ-वृतंत तंत संक्षेप में रे लोय।
संतपती समझायो रे लोय।
राजन्! दृढ़ आचार अपूर्व संगठन इण क्रमे रे लोय।
स्वल्प शब्द में गायो रे लोय।।
१९. राजन्! स्वावलम्बिता कार्यकुशलता संघ की रे लोय।
साक्षात देव दिखाई रे लोय।।
राजन्! सूक्ष्माक्षर लिपि-दर्शन बात प्रसंग की रे लोय।
दर्शक मति चकराई रे लोय।।
२०. राजन्! भूपति को कर्तव्य सुझायो गुरुवरू रे लोय[1]।
धर्म राज्य स्थिति सारी रे लोय।
राजन्! बड़ो हुकम मुख बड़ो हुकम कहि नरवरू रे लोय।
निसुण्यो हर्ष बधारी रे लोय।।

१. देखें प. १ सं. २२

२१. राजन्! भू-भूपाल, अभ्र-धाराधर उभय ही रे लोय।
एक साथ गुरु-वाणी रे लोय।
राजन्! सुणी सुहाणी शांत समन समताग्रही रे लोय,
चित्रित है सब प्राणी रे लोय।।
२२. राजन्! अणसमझू आंदोलित मन संशय धर्‌यो रे लोय,
देखत घन गहराई रे लोय,
राजन्! बाधक बणसी ओ बिच में अब ओसर्‌यो रे लोय,
पिण रहस्य कुण पाई रे लोय?
२३. राजन्! खेचल खूब हुई उपदेश सुणावतां रे लोय,
यूं कहि वंदन साझी रे लोय।
राजन्! तामझाम[1] असवारी गुरु गुण गावतां रे लोय,
चाल्या महाराणाजी रे लोय।।
२४. राजन्! आभ्यंतर आलय आया गुरुदेवजी रे लोय,
श्रमण-संघ संघाते रहे लोय।
राजन्! आ तेरहवीं संपूरण स्वयमेव जी रे लोय,
ढाळ सुविस्तृत बाते रे लोय।।

ढाळः १४.

दोहा

१. राणो अति राजी-हृदय, पहुंचै बाड़ी बा'र।
उमड़-घुमड़ कर मेहलो, बरसै धारासार।।
२. गाज हरस आवाज है, अश्रुधार आसार।
सफल मनोरथ हो मुदिर, उत्तार्‌यो सिर-भार।।
३. हरी कालिमा तिण घरी, नवलि धवलिमा धार।
जाणक जाग्यो जोशयुत, सद्‌गुरु रो उपकार।।
४. परख्यो परतख पारखू, मुदित-मुदिर-मन-भाव।
इण कारण अब तक रुक्यो, इण कारण बरसाव।।
५. राणाजी निज महल में, लहि अमन्द आनन्द।
करी प्रशंसा पूज्य री, सांभळतां जन-वृन्द।।

---

१. पालकी विशेष

६. तेरापंथी पूज्य रो, है निस्पृह उपदेश।
सुणतां ही सांसो मिटै, कटै कठिन संक्लेश।।
७. कहै नृपति महता प्रति, अस्यो और ओसान।
आवै तो कहिज्यो बली, होसी हर्ष महान।।

[1]म्हांरा पूज्य परम गुरु! श्री भिक्षूशासण नै थांरी देण।
हो म्हांरा जैन जगतगुरु! श्री भिक्षूशासण नै थांरी देण।।

८. महिमा महिमा प्रसरी सारै शहर जी, प्रसरी....
घर-घर तेरापथ री ख्यात बढ़ी घणी। म्हारा...
जन-जन मुख-मुख यश-परिमल री लहर जी, यश
प्रबल भाग्यशाली है संघ-शिरोमणी।। म्हारा....
९. तीस मिनट लग पन्थाधिप रै पास जी,
जुग कर जोड़्यां महाराणाजी बेसिया।
वचनामृत स्यूं जाणक मेटी प्यास जी,
निज श्रावक ज्यूं राणाजी उपदेशिया।।
१०. एक कहै इण में कुण-सो आश्चर्य जी,
तंयालीसे पिण मघवा महिमागरू।
भैक्षवगण रा पंचम पटधर वर्य जी,
विचरत आया उदियापुर मतिसागरू।।
११. तब महाराणा फतेसिंहजी चाल जी,
भेट्या गुरु-पद बाड़ी में कविराज री।
देशन सुणतां आयो संध्या काल जी,
तब उठ चाल्या रीत नहीं आ आज री।।
१२. बीजो बोल्यो भारिमाल रै काल जी,
भीमसिंह महाराणो अति भगती करी।
कह तीजो सज्जनसिंहजी रो ख्याल जी,
अति ऊंचो पिण आयू अल्प लह्यो वरी।।
१३. अरे अणां री सगती रो नहिं थाग जी,
रुक्यो मेघ बिच में नहिं बरसी बूंदड़ी।
राणो ऊठत बूठत सहज सुभाग जी,
धारासारै शोषी सारी दूंदड़ी।।

---

१. लय : काळी-काळी काजळियै री रेख जी

१४. नई बात रो घर-घर बार बखाण जी,
गणिराजा री भारी प्रभुता री छवी।
कुण गिणती में आवै राजा राणजी,
महाव्रती नै सुरपति धोखै सिर नवी।।

१५. पांचम प्रातः पुर में पूज्य प्रवेश जी,
स्वागत कीन्हो नागर-नर अति उम्मही।
अटल उजागर सागर सुगुण-निवेश जी,
सुंदर शब्दां सद्गुरु संथवणा कही।।

१६. पंचायत-नोहरा में शासणराय जी,
पावस ठायो विक्रम संवत बाणवै।
जुग बत्तीसी श्रमण-सती शोभाय जी,
गुरु-सेवा स्यूं सफल मनोरथ माणवै।।

दोहा

१७. ओ राणाजी रो नगर, ओ है वर्षावास।
नभ में चमकै चंचला, बाजै शीत बतास।।

१८. दुर्जन-मन घन री हुवै, एक रीत विख्यात।
प्राप्त पराई प्रेरणा, बिगड़ै बणै क्षणात।।

१९. अब्धि-शेष-शय्या तजी, सझी वेश अभिराम।
जाणै क्यूं नभ में कियो, घनश्याम विश्राम।।

२०. पर-धन पा फूलै सघन, विधि-दुकूल उन्मूल।
बो बरसाती-सुरसुरी, कबहि उड़ासी धूल।।

२१. अनावृष्टि अतिवृष्टि स्यूं, करै जगत आघात।
तिण स्यूं जीवन-जलद री कहिवाये जड़ जात।।

२२. बढ़ती-बढ़ती ही बढ़ै, शनै-शनै शुरुवात।
बा 'कलाण' उतराद की, सज्जन प्रीति सुजात।।

२३. वर्षा में भोगी भ्रमर, विलसै विषय-विलीण।
सन्त शांत-मन तप तपै, त्रिविधे पडिसंलीण।।

२४. प्रमुख उद्धरण बुद्ध लै, करण क्षणिक मत सिद्ध[1]।
सघन घनाघन गगन में, सुषमा वरै समिद्ध।।

---

१. देखें, प. १ सं. २३

[1]म्हांरा पूज्य परम गुरु! श्री भिक्षूशासण नै थांरी देण।

२५. मुनि-श्रमण्यां में आगम विद्याभ्यास जी,
सुंदर रूपे चालू सुगुरु-प्रयास स्यूं।
श्रावण मासे संघ-चतुष्टय खास जी,
एक-एक पचरंगी तप विश्वास स्यूं।।
२६. मोटो मेदपाट पर्यूषण पर्व जी,
आठ दिवस कइ तप अट्ठाई आदरै।
काम-धाम अरु समारंभ तज सर्व जी,
परम धरम आलंबन गुरु-चरणां परै।।
२७. वाहन पाहन न्हावन धावन त्याग जी,
आवन जावन पिण अल्पांशे आचरै।
हिंसा टाळै हालै दृग लखि माग जी,
बोलत पिण जयणायुत वयणां वागरै।।
२८. अति आरंभ दम्भ दिल दूरो छोड़ जी,
सामायिक पौषध औषध अनुपान स्यूं।
आठ दिवस लग लेवै तज झकझोड़ जी,
त्यूं आत्मिक आमय-उपशम अनुमान स्यूं।।
२९. सांवत्सर पर्वाधिराज गुरुराज जी,
खूब मनायो पायो सुकृत सुहावणो।
ढाळ चवदमी तूर्योल्लासे साझ जी,
कालूयशोविलास सुजन-मनभावणो।।

ढाळः १५.

दोहा

१. भाद्रव शुक्ल त्रयोदशी, भिक्षु-चरमकल्याण।
पूनम पट्टोत्सव प्रवर, कालू गुण-गरिमाण।।
२. दोनूं उत्सव संघ हित, है संगठन-प्रतीक।
जयाचार्य री सूझ री, आ परिणति निर्भीक।।

---

१. लय : काळी-काळी काजळियै री रेख जी

३. प्रथम प्रथम आचार्य की स्मृतियां स्यूं संगीन।
वर्तमान की गतिविधि, पट्टोत्सव में पीन।।
४. गावै नव संगीत रच, मुनि मन ओतप्रोत।
करै प्रवाहित संघ में, काव्यशक्ति को स्रोत।।
५. मिलजुल तीर्थ-चतुष्टयी, उत्सव-युगल पुनीत।
खूब मनावै मुदित-मन, अंतर-हृदय अभीत।।
६. आसोजां में आश धर, दीक्षार्थी गुरु पास।
ऊभा प्रार्थी रूप में, करै अमल अरदास।।

[1]गुरुदेव! दयाल! अब तारो, अहो परम कृपाल! अब तारो।
अब तारो म्हारो भ्रम टारो, थोड़ी तो करुणा-दृग डारो।।

७. नैया डोलै भंवर-मझार, भीषण भव-सागर की धार। गुरुदेव!
सूंपी जीवन की पतवार, आप बिना अब कुण आधार।। गुरुदेव!
८. जननी-जनक-स्वजन को नेह, क्षणभंगुर छिन में दै छेह।
कांचन कांचन-भूषित देह, अणखावै ज्यूं उड़ती खेह।
६. सुंदर मन्दिर सेज सुजाण, कंटाली बाड़ी ज्यूं जाण।।
मधुर-मधुरतर खाण रु पाण, लागै फीका थूक समाण।।
१०. घर परिकर रो छोड़्यो प्यार, तुम चरणां री आश अपार।
शीघ्र समापो संजम-भार, खारो है सारो संसार।।

दीक्षा-प्रार्थी! दिल तोलो, साचा स्वार्थी! मन तोलो।
मन तोलो दिल टंटोलो, मुंडै बाहिर आखिर बोलो।।

११. मुळक-मुळक शासणमहाराण, बोलै मधुरी-मधुरी बाण। दीक्षा-प्रार्थी!
चढ़णो संयम री खरसाण, नहिं कोइ दहि-बाटी रो खाण।। दीक्षा-प्रार्थी!
१२. तेरापंथ संघ-मर्याद, अनुशासन रो एक निनाद।
प्राण-समर्पण री विधि याद, तो संयम पाळो साह्लाद।।
१३. पंच महाव्रत भार सतोल, बहणो राखी हृदय अडोल।
समिति-गुप्ति रो महंगो मोल, एक पलक भी चलै न पोल।।

---

१. लय : आई थी पडोसण कह गइ बात

१४. आजीवन ओ पादविहार, चटपट चलणो ऊठसवार।
हाथे झोळी खांधां भार, स्वेद झरै ज्यूं धारासार।।
१५. कठिन कठिनतर करणो लोच, सुणतां ही मन जागै सोच।
रहणो अपणो मन संकोच, बात करो पूरी आलोच।।
१६. नहिं एकाध दिवस रो काम, ऊमर भर बहणो अविराम।
छुल ज्यावै चरणां री चाम, संयम नहिं नानी रो धाम।।

गुरुदेव! दयाल! अब तारो...।

१७. सुण-सुण गुरु-मुख सीख सनूर, दीक्षार्थ्यां रो निखरै नूर।
ऊग्यो दिल विराग-अंकूर, फिर नहिं संकट कष्ट करूर।।
१८. कष्ट पड़ै मुनिपति! मरणान्त, तो पिण सहस्यां सजग नितांत।
निज तन-मन तोल्यो एकांत, विनय सचिन्तन है चित शांत।।
१९. लागी हृदय लिवल्या एक, संयम-संयम री दृढ़ टेक।
जन्मान्तर री जागी रेख, ल्यो चरणां में शुभ दृग देख।।

दीक्षा-दातार! समझावो, निज सुत-दुहितार समझावो।
समझावो पहली तावो, फिर सही हकीकत दरसावो।।

२०. अभिभावक ऊभा लख लार, पूछै गुरुवर बारम्बार।
कब स्यूं क्यूं वैराग्य विचार, किसी क आदत अरु आचार?

गुरुदेव! दयाल! अब तारो....।

२१. अभिभावक बोलै दिलदार! हार्‌या म्हे समझा कइ बार।
जो हळुकर्मी नर अरु नार, बै ही आसी इण दरबार।।
२२. सहज सरल है प्रकृति स्वभाव, दाव-घाव रो रंच न भाव।
खूब खराया है गुरुराव! अब तो पूरो करो उम्हाव।।
२३. नहिं गुरुवर स्यूं छानी बात, अंतरयामी हो तुम तात!
महर-नजर अब कीजै नाथ! देवो दीक्षा शिक्षा साथ।।
२४. इण पर भर परिषद में छाण, कर-कर सार्वत्रिक पहचाण।
आ पन्द्रहवीं ढाळ सुजाण, पूरी सद्‌गुरु-करुणा पाण।।

ढाळ १६.

दोहा

१. निब्बै स्यूं बाराणवै, दीक्षा-व्यतिकर देख।
पाठक-सुविधा-हित करूं, एकत्रित उल्लेख।।

लावणी छंद

२. निब्बै पावस स्यूं पहिलां चंदेरी में,
मां-बेट्यां डीडवाण री व्रत-सेरी में।
चूनां मोहनां जयपुर री सूर्यकुमारी,
कमलू-लघु-भगिनी संयमश्री स्वीकारी।
उण्णीसै निब्बै सुजानगढ़ चोमासे,
दीक्षा है आठ हुई बिद कार्तिक मासे।
धनकंवरी जोड़ायत सह स्वयं हजारी,
सेखाणी संत मिलाप महाव्रतधारी।
मोमासर री इन्द्रू युत मात सुजाणां,
वसुगढ़ री रायकंवर धारी गुरु-आणां।
बरजू—विजयश्री[1] नोहर-राजकुमारी,
चौथे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

सोरठा

३. पोष मास बिद चोथ, दो दीक्षा बीदासरे।
गुरु-पद ओतप्रोत, पन्नो गंगाशहर रो।।
४. कोठारी बीदाण, जंवरीमल जागृत-हृदय।
कालू करुणा-खाण, पचखायो पावन चरण।।

लावणी छंद

५. एकाणू पावस जबर झंड जोधाणै,
दीक्षा बाईस हुई मोटै मंडाणै।

---

१. साध्वी विजयश्रीजी का नाम पहले बरजूजी था।

हस्ती समंदड़ी, जाळी हरियाणे रो,
मोहन सुजान चम्पक पड़िहार वसेरो।
बच्छावत चाड़वास रो नेमू निरखो,
मोती कुचेरियो चंदेरी रो परखो।
छव सन्त शेष सोळह संख्या सतियां री,
चौथे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

६. मीरां गोगांजी पूनां पानकंवारी,
मग्घू छगनांजी रायकंवारी भारी।
सातूं सरदारशहर की सतियां सोहै,
गिरिगढ़ की गोरां, उदियापुर की जो है।
लिछमांजी, इक संतोकां जनमी हांसी,
संतोका सूरज रतन राजगढ़वासी।
बखतावर[1] और मोहनां[2] मानकंवारी[3],
चौथे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

सोरठा

७. एक साथ बाईस, उपर्युक्त दीक्षित किया।
कालू शासण-ईश, नूतन बात शताब्दि में।।

लावणी छंद

८. सुधरी मोच्छब में दीक्षा तीन सुहाणी,
नगराज दफ्तरी भीखण-पुत्र पिछाणी।
मगनां सुजान टमकोर निवासिणि गोरां,
अब राजसमंद-पाळ पर साझ सजोरां।
मुनि उगमराज बोरदियो देवरिया रो,
पोतो जुहारमलजी रो तप-उजियारो।
पन्द्रह दीक्षा अब उदयपुरे अविकारी,
कालू-बरतारे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

---

१. गंगाशहर
२. टमकोर
३. बीदासर

दोहा

९. उदयचंद भाग्योदये, जोड़ायत[1] संघात।
पन्द्रह दीक्षा में प्रथम, ललित लूणिया जात।।
१०. अर्जुन नाथद्वार रो, कोठारी-सुत भाल।
मीठालाल मनोबली, बालक-भाल विशाल।।
११. चंदेरी री सूवटां, सुता सोहनां भेंट।
भत्तू पुर-सरदार री, लिछमां पुर आमेट।।
१२. रतनी पानकंवर उभय, भगिनी पुर-सार्दूल।
गुलाबां उदियापुरी, पिता नाम शशिफूल[2]।।
१३. चंपा राजलदेसरी, कमलू नो'र[3] निहार।
केशर पुर पड़िहार री, चांदकंवर सुखकार।।
१४. कार्तिक कृष्णा पंचमी, मानै परम प्रमोद।
न्हावै निज आमोद में, उपशम रस रै होद।।
१५. त्राणव दसमी चेत सुद, चन्देरी री बात।
हुलासां दीक्षा ग्रही, खूमांजी रै हाथ।।
१६. माजी छोगां भेजिया, सात सत्यां सुखदाय।
दे दीक्षा बीदाण में ल्याया पूज्य पसाय।।
१७. गुरु-आज्ञा धनजी[4] लही, बम्बूवाळा बैद।
कृपापात्र धुर स्यूं रह्या, गुरु-करुणा अविभेद।।

लावणी छंद

१८. मा. सुद में पन्नालाल और लालांजी,
बड़नगर सुगुरु-पादाम्बुज सेवा साझी।
छब्बीस बरस में सकल च्यार सौ दस है,
दीक्षित शिक्षित परिलक्षित शिष्य स्ववश है।
रिखि लच्छि दयादिक अहंकार अविनय स्यूं,
बण टाळोकर गण-बाहर मोह-उदय स्यूं।

---

१. साध्वी मनोहरांजी
२. फूलचंदजी
३. नोहर
४. धनराजजी बैद, लाडनूं (चक्की वाला)

आ ढाळ सोळमी 'तुलसी' आत्म उजारी,
कालू-बरतारे सुणो ख्यात दीक्षा री।।

कलश छन्द

१६. कर चतुरगढ़ पूर्ण पावस मरुधरा-पादार्पणम्,[१]
जोध-नगर प्रवेश[२] दीक्षा-वर-विवेचन-दर्पणम्[३]।
विचर कांठै[४] उदयपुर-आगमन[५] भूपति-दर्शनम्[६],
छव कला अरु गीति लह स्यूं उलास विमर्शनम्।।

शार्दूलविक्रीडित-वृत्तम्

सौभाग्याय शिवाय विघ्नविततेर्भेदाय पङ्कच्छिदे,
आनन्दाय हिताय विभ्रमशतध्वंसाय सौख्याय च।
श्री-श्री-कालुयशोविलासविमलोल्लासस्तुरीयोऽयकं,
संपन्नः सततं सतां गुणभृतां भूयाच्चिरं भूतये।।

श्री कालूयशोविलास का यह चतुर्थ विमल उल्लास परिसंपन्न होकर गुणी जनों के लिए चिरकाल तक सौभाग्य, कल्याण, विघ्न-विनाश, पाप-मल-प्रक्षालन, आनन्द, हित, भ्रांति-निवारण, सुख और ऐश्वर्य के लिए हो।

उपसंहृतिः

आचार्य-तुलसी-विरचिते श्री-श्री-कालूयशोविलासे

१. नभो[०]-निधि[९]-निधि[९]-शशांक[१]-परिमिते संवत्सरे सुजानगढ़े चातुर्मासिकीं स्थितिं कृत्वा मरुधरदेशं प्रति श्रीपूज्यवर्यस्य पादार्पण...
२. निज-निर्मल-पाद-विन्यासेन जसोलादिपुरः संस्पृश्य तत्र टालोकर-प्रतानित-मिथ्या-प्रचार-वितानमुद्भेद्य च शशि[१]-निधि[९]-निधि[९]-चन्द्राब्दे[१] चतुर्मासस्थित्यै जोधपुरे समवसरण...
३. भव-भ्रान्ति-विरक्तानां शिवसुखोन्मुखानां भव्यानां द्वाविंशतेरेककालमेव कार्तिककृष्णाष्टम्यां भागवती-दीक्षा-प्रदानेन संसारपाथोनिधि-पारतारण....
४. कांठा-प्रदेशे सुधरीपुरे मर्यादोत्सवं परिपूर्य लघीयस्सु ग्रामेषु परमानन्दपूर्वकविहरण...
५. दुरारोहमरावलीमहीधरं समुल्लङ्घ्य च नयन[२]-निधि[९]-[९]निध्यब्ज[१]-मिते संवत्सरे

चातुर्मासिकीं स्थितिं विधातुं श्रीमद्भैक्षवगणनभोमणेरुदयपुर्यागमन.....

६. तत्र च महतावाटिकायां भोपालसिंहाभिधस्य मेदपाटमहाराजस्य श्रीपूज्यपाद-पर्युपासनायसमुपागमन-पूज्यवदन-वर्षित-पीयूषोपमोपदेशपानेन परमाह्लाद-पुरस्सरं प्रतिगमनरूपाभिः षड्भिः कलाभिः समर्थितः षोडशगीतिकाभिः संदृब्धः समाप्तोऽयं चतुर्थोल्लासः।

पंचम उल्लास

शिखरिणी-वृत्तम्

मुखाम्भोजे यस्य स्फुरितमतिमात्रं सुषमया,
गुणोघैर्हंसोघैरिव च रचितं खेलनमलम्।
शुभस्तोमैर्भृङ्गैरिव सविधि विभ्रान्तमनिशं,
गणाधीशं कालुं तमहमभिसेवे प्रतिपलम्।।

जिनके मुख कमल पर अतिशय सुषमा परिस्फुरित होती थी, गुण-गण रूप हंस-समूह सदा जिनके निकट क्रीड़ा करता था, पुण्य-पुंज रूप भ्रमर जिनके आसपास मंडराते रहते थे, उन शासनेश श्री कालूगणी की मैं सतत पर्युपासना करता हूं।

मंगल वचन

दोहा

१. आर्य कार्य की आदि में, आर्य-स्मरण अनिवार्य।
आर्यप्रवर अविकार्य वर, ध्याऊं धर्माचार्य।।

पवित्र कार्य के प्रारंभ में आर्यपुरुष का स्मरण अनिवार्य है। धर्माचार्य आर्यों में प्रवर तथा अविकारी जनों में प्रमुख होता है, इसलिए मैं उसका ध्यान करता हूं।

२. पुरुषोत्तम का प्रतिनिधि, हृदय उदधिवत हृद्य।
सिद्धि संपजै सेवतां, सतत सविधि साविध्य।।

धर्माचार्य पुरुषोत्तम (तीर्थंकर) का प्रतिनिधि होता है। उसका हृदय समुद्र की भांति गंभीर और विशाल होता है। उसकी सतत विधिपूर्वक आसन्नभाव से सेवा करने से सिद्धि की संप्राप्ति होती है।

३. पंच पंच-परमेष्ठि का, तत्त्व-त्रयी का त्रांय।
सत्त्वमयी भुवनत्रयी, त्रयीतनू तमसाय।।

धर्माचार्य पंच परमेष्ठी का पंच—मध्यस्थ और देव, गुरु एवं धर्म—इस तत्त्वत्रयी का भी त्राता—मध्यस्थ होता है। सत्त्वमय तीन लोक के अंधकार को दूर करने के लिए वह सूर्य है।

४. गुरु- धाता त्राता गुरु, सुखसाता दातार।
पितु माता भ्राता गुरु, भव-भय-भंजनहार।।

गुरु धाता—धारण करने वाला या निर्माण करने वाला है, त्राता—रक्षक और सुख एवं अनुकूलता देने वाला है। वह पिता, माता और भ्राता के समान पालन-पोषण करने वाला है। संसार भ्रमण के भय से मुक्त करने वाला है।

५. जिण री करुणा स्यूं भजै, बिंदु सिंधु रो भाव।
सिंधु बिंदुता इतरथा, अद्भुत सुगुरु-प्रभाव।।

गुरु की करुणा से बिंदु भी सिंधु बन जाता है और यदि गुरु की करुणा प्राप्त न हो तो सिंधु भी बिंदु बन जाता है। इतना अद्भुत है सुगुरु का प्रभाव।

६. मार्मिक एक सुगुरु-वचन, जो चाढै निज शीष।
पतित पुरुष पावन बणै, ज्यूं आषाढ़ मुनीश[1]।।

सुगुरु के एक मार्मिक वचन को शिरोधार्य कर लेता है तो पतित पुरुष भी पावन बन जाता है, जैसे—आषाढ़मुनि।

७. क्षण-क्षण लव-लव पलक-पल, सफल करै बो भक्त।
सुगुरु-चरण सुखशरण में, रहै सदा अनुरक्त।।

जो सुखमय शरण देने वाले सुगुरु-चरण में सदा अनुरक्त रहता है, वह भक्त आदमी जीवन के हर क्षण, हर लव और हर पल को सफल बना लेता है।

८. श्रोतृ-श्रवण-तर्पण तरुण, अर्पण अमितानन्द।
थर्पण चित स्थिरता स्थिता, यशोविलास अमन्द।।

श्रोता के श्रवण—कानों को तरुण तृप्ति देने वाला, अमित आनन्द देने वाला, चित्त की स्थिरता को स्थापित करने वाला यह कालूयशोविलास अमंद—सर्वोत्कृष्ट है।

९. अब पंचम उल्लास की, रचना रचूं स्वमेव।
भक्त-भक्ति-आकर्षिता, सहकारी गुरुदेव।।

अब मैं स्वयं पांचवें उल्लास की रचना कर रहा हूं। भक्त की भक्ति से आकर्षित गुरुदेव इसमें सहकारी बनें।

---

१. देखें प. १ सं. २४

ढाळः १.

दोहा

१. आज उदयपुर में अजब, चहलपहल हर द्वार।
होणैवाळो सामनै, शुभ दीक्षा-संस्कार।।
२. दीक्षार्थी भाई-बहन, निज अभिभावक साथ।
प्रस्तुत श्री गुरु-चरण में, कर जोड़्यां नत-माथ।।

[1]शहर उदयपुर में देखो, दीक्षा-मोच्छब मंडाणो, हेजी हां....।

३. दीक्षा-समारोह पावस रो मोटो आकर्षण है,
आत्मशक्ति रो प्रबल प्रदर्शण श्रम रो शुभ दर्शण है।
अंधकार रो वार रोक, आलोक-दिशा में आणो।।
४. छोड़ असंयम संयम-जीवन जीणो ही है दीक्षा,
जीवन भर अपणै जीवन री करणी कड़ी समीक्षा।
कठिन काम है अणुव्रती स्यूं महाव्रती बण ज्याणो।।
५. नहिं अभिशाप अमीरी रो, न गरीबी रो गौरव है,
नहीं गर्व गुरुता रो, हीनवृत्ति रो कहीं न रव है।
दीक्षा है सौभाग्य भाग-जागरणां रो गुणठाणो।।
६. एक-एक कर पन्द्रह दीक्षा रो आदेश दियो है,
वेरागण-वेराग्यां रो खुशियां स्यूं खिल्यो हियो है।
चहल-पहल-सी लागी, सागी बण्यो नगर जोधाणो।।
७. प्रथम-प्रथम है मिल्यो अनोखो मोको उदियापुर में,
एक साथ पन्द्रह दीक्षा, छायो विस्मय घर-घर में।
प्रतिपक्ष्यां कै हाथ लग्यो ओ खुणस मिटावण टाणो।।
८. गत संवत तो मारवाड़ में बाईसी नै तारी,
अब कै मेदपाट रजधानी पन्द्रह री तैयारी।
होणी चहे रुकावट, यूं मंड्यो पथ-पथ में पाणो।।

---

१. लय : दुनिया राम नाम नै भूली

९. बेबुनियाद विरोध-बवण्डर भारी तूद उठायो,
छाप-छाप पेंफलेट शहर भर वातावरण बणायो।
'धर्मे जय पापे क्षय' आखिर फळसी ओ ओखाणो।।
१०. दीक्षा-रोकण दरखासां खासा महलां पहुंचाई,
कसर न राखी राई-पाई भारी धूम मचाई।
जाळी हुंडी चलै न जग में, साच स्वयं उभराणो।।
११. राणो तेरापंथ-प्रणाली भाली क्यूं भरमावै,
मुरड्याजी[1] द्वारा गुरुवर नै गुप्त अरज करवावै।
आदत स्यूं लाचार लोग है, जरा न दिल घबराणो।।
१२. मैं दिल्ली जावूं तिण पहली जदि दीक्षा हो ज्यावै,
तो सब हाल-हकीकत म्हांरी निजर्‌यां स्हामी आवै।
पाछल स्यूं हक नाहक कोई दुष्ट रचै दुष्टाणो।।
१३. सुण संकेत सचेत संघपति जोर गोर फरमावै,
पांचम कार्तिक बिद दीक्षा की तिथि निर्णीत करावै[2]।
दीक्षार्थी मन मुदित क्षुधित ज्यूं देखी पुरस्यो भाणो।।
१४. महाराणा[3] पंडित सुखदेव सहाय मिनिस्टर[4] भेट्या,
सेठ चौपड़ा निज प्रभाव स्यूं सारा विघ्न समेट्या[5]।
रेजिडेन्ट साहिब[6] पिण प्रातः देख्यो पूज्य ठिकाणो।।
१५. परिषद-पूरित पंचायत नोहरो निज निजरां ठावै,
राजाणै रो विदित बैद चम्पक[7] चातुर्य सझावै।
देखी देव-दिदार सार गोरांग-चित्त चकराणो।।
१६. श्री कालू री अक्षत पुण्याई रो पार न पावै,
शेषनाग अनुराग जाग जदि सँहस-वदन स्यूं गावै।
प्रथम ढाळ पंचम उल्लासे मधुरगीत गुंजाणो।।

---

१. हीरालालजी मुरड़िया
२. देखें प. १ सं. २५
३. भोपालसिंहजी
४. उदयपुर के प्राइम मिनिस्टर
५. देखें प. १ सं. २६
६. लेफ्टिनेंट कर्नल बीथम
७. देखें प. १ सं. २७

ढाळः २.

दोहा

१. बिद पांचम प्रातः समय, सूर्योदय सुखकार।
समवसर्या शासनपती, 'सूर्य पोळ' रै द्वार।।
२. जाग्रत जनता ऊमड़ी, जाणक जल-कल्लोल।
'दीक्षा-मंडप में चलो', मुख-मुख एक ही बोल।।
३. 'महाराणा कॉलेज' में, जनता जमी सुयाम।
आर्यप्रवर शोभित करै, उच्चासन अभिराम।।
४. पुलिस स्वयंसेवक सहक, खड़्या व्यवस्था-हेतु।
अब दीक्षा-संस्कार को दृश्य भवाम्बुधि-सेतु।।

[1]महाराणा महाविद्यालय में अद्भुत आभा आज खिली।
है अद्भुत आभा आज खिली, गंगा जमुना सुरसरी मिली।।

५. मंडप-मंजुलता बढ़ी रे, गहरी-गहरी तम्बुवां री छाय छाजै,
फरर-फरर फरियां फहरावै, लहरावै द्युति दरवाजै।
लिखिताक्षर पंक्ती शुभ साझै।।
६. च्यार तीरथ रथ-सो जुड़्यो रे, ऊपर गणवन-अधिराजा,
संयम-सज्जित अंग सुरंगो, तेज तपन-सो है ताजा।
दसुं दिशि में बाजै जस-बाजा।।
७. ल्यो जलूस आयो अबै रे, राज-लवाजम संग रजै,
ग्यारसिया[2] हसिया हसिया हय, आगै-आगै दोर सझै।
रण-झण रण-कंकण वाद्य बजै[3]।।
८. आई. जी. पी.[4] आविया रे, सुपरडेन्ट[5] नै साथ करी,
पय प्रणमी गुरुवर स्यूं पूछै, असल हकीकत खरी-खरी।
बालिस-वचनां मन भ्रांति भरी।।

---

१. लय : डेरा आछा बाग में जी
२. एकादशी के दिन दाना नहीं लेने वाले घोड़े।
३. ग्यारसिया घोड़े और रणकंकणवाद्य राणाजी की असवारी के अतिरिक्त किसी भी जुलूस में नहीं जाते थे; किंतु राणाजी की विशेष आज्ञा से दीक्षा के जुलूस में वे बराबर साथ रहे।
४. लिछमणसिंहजी
५. रणजीतसिंहजी पांचोली

[1]इक भ्रम फेलायो जी,
भ्रम फेलायो, घड़्यो-घड़ायो घर-घर गळी-गळी में।
देखो दुर्जन पर-घर-भंजन निशदिन रंगरळी में।।

९. तेरापंथ-प्रमुख री निखरी, बहकावट री बाजी।
चेला मूंडै चाहे घर का राजी हो बेराजी।।
१०. पन्द्रह दीक्षार्थ्यां में इक है, कोठार्यां रो कूको।
नाम मीठियो भोळो बालक, जाणक चेतो चूको।।
११. मात-पिता तो सात दिवस स्यूं, ऊंधै माथै पड़िया।
कूकै हा! हा! मत दीक्षा लै, रे म्हांरा नानड़िया!
१२. माईतां रो मुखड़ो देखी, बालक बसकां फाटै।
पिण अगवाणी श्रावक तिणनै, छानै-छानै डांटै।।
१३. जबरन मोटर-कोटर मांही घाल जलूस सझायो।
ओ अन्याय हाय! इण पुर में, हा! हा! प्रलय मचायो।।
१४. इण भ्रम स्यूं भरमाया आई. जी. पी. ऊभा आगै।
पर गुरु-चरण शरण में, सबका सारा संशय भागै।।

[2]महाराणा महाविद्यालय में, अद्भुत आभा आज खिली।

१५. शासणपति संक्षेप में रे, दीक्षा-पद्धति दरसाई,
तेरापंथ-संत बणणै की रीति-रश्म सब समझाई।
पूरो लेखो आना-पाई।।
१६. लिखित पत्र अभिभावकां रै द्वारा सारा दिखलाया,
नीचै पंचां रा हस्ताक्षर साक्षी रूप स्वयं आया।
उलसित आन्तर मन वच काया।।
१७. बिन आज्ञा इक तिणखलो रे, लीधां व्रत तीजो भागै,
तो बिन आज्ञा माणस मूंड्यां, दोष न चोरी रो लागै?
हथकड़ियां बेड़्यां भी जागै।।

१. लय : म्हांनै चाकर राखोजी
२. लय : डेरा आछा बाग में जी...

१८. आधी शंका तो सही रे, विदा लही सुण गुरु-वाणी,
रही-खही आधी मेटण नै, शोध करै सचमुच स्याणी।
दीक्षार्थ्यां री स्थिति पहचाणी।।

[1]पूछै पूछै रे आई. जी. पी. वेरागी नै बात।
आशय ऊंचै रे ऊंचै स्वर स्यूं मेटण मन-आघात।।

१९. मीठो[2] दीठो है खड़्यो रे, साधु वेष धर बाल।
गोर वरण वपु ओपतो रे, हँसखिलतो खुशहाल।।
२०. बालक वय में साधुता रे, किण जागरणा जाग।
बहकावट बाबा करी रे, या आन्तर वेराग?
२१. व्यथा सतावै दूसरी रे, बड़ो प्रलोभन लार।
बचपन में बचपन करो रे, क्यूं छोड़ो घर-बार?

[3]महाराणा महाविद्यालय में, अद्‌भुत आभा आज खिली।

२२. मीठी वाणी मीठियो रे, बोलै तोलै हीरां स्यूं,
डरै न तिल भर भर परिषद में, उत्तर देवै धीरां स्यूं।
मनु लियो मनोबल, मीरां स्यूं।।
२३. जनम-मरण-जलधार में रे, बहती दुनिया देख डरूं,
संयम-प्रवहण में बढ़ चढ़कर, मैं अपणो उद्धार करूं।
गुरु-चरण-शरण संताप हरूं।।
२४. जन्मांतर संस्कार ही रे, इणमें मुख्य निमित्त बणै,
गुरु-उपदेश विशेष एषणा जागृति में सहयोग जणै।
संयम-स्वीकृति सौभाग्य घणै।।
२५. बहक प्रलोभन वंचना रे, रंच नहीं तेरापथ में,
भोळी दुनिया दंभोळी सम पाप संच भ्रम-जाळ भमै।
क्यूं विज्ञ विचारशील विगमै।।

---

१. लय : चूरू की चरचा
२. उदयपुर-निवासी कन्हैयालालजी कोठारी का पुत्र मीठालाल।
१. लय : डेरा आछा बाग में जी

२६. बचपन यौवन वृद्धता रो, नहिं कोइ कारण खास खरो,
जब जिणरै वैराग जाग हो, संयम-पथ में चरण धरो।
क्षण भी फिर अन्तराय न करो।।

[1]पूछै-पूछै रे आई. जी. पी. संशय हरण सचेत।
आशय ऊंचै रे उत्तर देवै जननी जनक सहेत।।

२७. एक ओर ऊभा लखी रे, बालक रा मां-बाप[2]।
पूरववत पूछा किंयां रे, समाधान है साफ।।
२८. देवां हार्दिक हर्ष स्यूं रे, अनुमति संयम-काज।
काज सुधारै आपणां रे, धन्य-धन्य शिशु आज।।
२९. नहीं कमी धन-धान री रे, म्है सबविधि संपन्न।
शिशु मन वेरागे रम्यो रे, अद्भुत बात अनन्न।।
३०. बहकायां माया तजै तो आपां नै वेराग-
क्यूं नांवै, गावै गुरु रे, सदा मुक्ति रो माग।।

[3]महाराणा महाविद्यालय में, अद्भुत आभा आज खिली।

३१. आई. जी. आमोद में रे, चित्रित चित्त विचार करै,
लोक-बोक बकवास व्यर्थ सब, ओ आह्लाद विवाद परै।
देख्यां ही आंतर हृदय ठरै।।
३२. ऊंधै माथै क्यूं पड़ै रे, ऊभा मात-पिता उलसै,
बालक वारी रग-रग सारी, संयम में सानन्द बसै।
गुरुवर रो ललित ललाट लसै।।
३३. बाढ़-स्वर बाधा बिना रे, संयम पचखावै भावै,
तूष्णींभावे सकल सुभावे, गुरु-सम्मुख निजर्यां ठावै।
उल्लास सरस रस बरसावै।।
३४. पंचायत नोहरे गुरू रे, मध्य बजारे पधरावै,
जय-जय विजय-विजय जन-धुन स्यूं, अंबर धरणी गुंजावै।
प्रभुता रो पार नहीं पावै।।

---

१. लय : चूरू की चरचा
२. कन्हैयालालजी कोठारी और उनकी पत्नी
३. लय : डेरा आछा बाग में जी

३५. महलां में महाराण नै रे, आई. जी. पी. कर प्रणती,
सारी भाखी आंख्यां झांकी, दीक्षा-मण्डप ख्यात छती।
नहिं वृथा मृषा है एक रती।।
३६. दीक्षा-मण्डप में गयो रे, मैं मन दूजी बात धरी,
पिण अवलोकत अविकल कलना, म्हांरी प्रत्युत आंख ठरी।
अनहद जनता में शांति भरी।।
३७. आंख कान में आंतरो रे, च्यारांगुल रो चतुर कहे,
लाख हाथ रो अगर कहूं मैं, तो पिण सभ्य समाज सहे।
महाराणा मन संतोष लहे।।
३८. स्वमति अन्यमति शहर रा रे, सारा विज्ञ बखाण करै,
यशोविलासे पंचम उल्लासे अघ दूजी ढाळ हरै,
'तुलसी' गुरु-चरण सरोज वरै।।

ढाळः ३.

दोहा

१. आयो कार्तिक मास में, मालव-श्रावक-संघ।
सुजन सैकड़ां मिल सघन, स्पेशल-ट्रेन प्रसंग।।
२. पंचायत नोहरे लगी, इक्कां री इक लेण।
देख चतुर चित्रित रह्या, श्री गुरुवर री देण।।
३. करी प्रार्थना एक स्वर, मालव में पधराण।
सज्ज व्यवस्था सांतरी, सम्मुख धरी सुजाण।।
४. मालव श्रावक-श्राविका, प्रोढ़ वृद्ध युव बाल।
सब खेत्रां रा प्रमुख जन, प्रस्तुत है तिण काल।।
५. अब पावस संपन्न है, मृग-एकम प्रस्थान।
'फते मेमोरियल' में कियो, परदेशी-व्याख्यान।।
६. दो रजनी 'आहेड़' में, 'दाराखेड़ै' होय।
'गुड़ली' बहि 'चन्देसरे' दिवस विराज्या दोय।।
७. 'तुरक्ये' 'घासे' हो सुगुरु, 'पलाणे' दिन तीन।
पूज्य पधारै 'थामलै' मृग-बिद तेरस चीन।।
८. पुर ठाकुर निज दुरग में, करवायो व्याख्यान।
वीतराग-सम देशना, सुणत न धापै कान।।

९. च्यार दिवस लागी चहल, श्रमण-सती मंडाण।
शीतकाल में है सदा, नहिं अद्‌भुत अहनाण।।

[1]भाखर री धरती में, गणि-पंचानन गूंजै जी राज।
जन-उद्धार कृती में, आतम-शक्ति प्रयूंजै जी राज।।

१०. राजनगर भैक्षवगण-राया, आया सह परिवार।
शीतकाल रो काम समेटण, मेटण मन रो भार हो।।
११. मालव-देश-निवासी मानव, अब नहिं छोड़ै लार।
मिलजुल आवै विनय सुणावै, हार्दिक भाव उभार हो।।
१२. वृद्ध अवस्था नाथ! आपरी, पेंडो पिण भरपूर।
सब जाणै पर मन नहिं मानै, कीजै हुकम हजूर! हो।।
१३. शासनमोड़ कानोड़ रो अब, मार्ग कियो मंजूर।
गुरु-वच-गर्जारव सुण हरख्या, मालव-हृदय-मयूर हो।।
१४. श्रमण-साध्वियां सैकड़ां हैं, पूज्य-चरण लयलीन।
सहज सारणा-वारणा रे, साझै स्वाम संगीन हो।।
१५. स्याबाशी-ओलम्भड़ा रे, जथाजोग सीखाण।
भाखै सहु साखै गुणी रे, राखै गणमंडाण हो।।
१६. भाव भर्‌योड़ा भेंटणा रे, कला-पूर्ण उपकर्ण।
श्रमण-सत्यां रा स्वीकर्‌या रे, वर्णन मिलै न वर्ण हो।।
१७. वस्त्र-पात्र उपकरण रो रे, निज कर-वितरण खास।
कियो श्रमण-श्रमण्यां प्रते रे, सारा मन हुल्लास हो।।
१८. किण-किण रा पावस कठै रे, आगामी अनुसंध।
सूंप्या सबनै चोखळा रे, ओ प्रच्छन्न प्रबंध हो।।
१९. तीन महीनां में जिको रे, निवड़ै कार्य महान।
पांच दिनां में पूरियो रे, कालू कलानिधान हो।।
२०. महासती झमकूजी नै गुरु, राख्या राजसमंद।
कुछ दिन पाछै आज्यो, करके बाकी बच्यो प्रबंध हो।।
२१. पो. बिद नवमी पूज्यजी रे, पहुंच्या पुर कानोड़।
मालववासी मानवी रे, बलि आया बाहोड़ हो।।

---

१. लय : रात रा अमला में

२२. दो वासर रहि नगर में रे, दो दिन बाहिर बाग।
कानोड़-रावजी पूज्य रा रे, भेट्या चरण सुभाग हो।।
२३. उपदेशामृत श्रुति सुण्यो रे, मुनिवर रो आचार।
अति इचरज मन अनुभव्यो रे, जय-जय जग-आधार! हो।।
२४. आ पंचम उल्लास री रे, तीजी ढाळ रसाल।
अब आगामी ल्यो सुणो रे, मालव-हाल विशाल हो।।

ढाळः ४.

दोहा

१. रायचन्द जयजश गणी, तेरापंथ-भदंत।
सर्वप्रथम पावन कियो, प्रमुदित मालव-पंथ।।
२. उगणीसै वर विक्रमी, एकादश री साल।
पाछे अणफर्श्यो रह्यो, मालव मालोमाल।।
३. विहरण श्रमणी-श्रमण रो, यद्यपि हुयो सुभाव।
तो भी उडुगण स्यूं अतुल, उडुपति-प्रभा-प्रभाव।।
४. श्रमण विहार हुवै सतत, खाळ-प्रवाह सगोत।
सुगुरु सकृत पादार्पणं, त्रिस्रोता रो स्रोत।।
५. लाखां दीया झगमगै, ले बाती इकलोत।
सारां री सारै गरज, एक तपन-उद्योत।।
६. सदा मुनीम गुमासता, देखै कारोबार।
पर मालिक रो देखणो, कभी-कभी अनिवार।।
७. अति लंबी अंतिम सफर, तीरथ-युत तीर्थेश।
जग-तारण त्रायी करै, मालव-देश-प्रवेश।।

[२]गुरु मालव देश पधारै।
शरणागत काज समारै जी, गुरु मालव देश पधारै।
निजरां निज बाग निहारै जी, गुरु मालव देश पधारै।।

८. शिशु तरुण स्थविर मुनि लारे, परिवरिया बहु परिवारे जी।।
गुरु मालव देश पधारै।

२. लय : सरणाट कूचामण बहग्यो

श्रावक शुभ सेवा सारे, मन मोद बहे इकधारे जी।।
गुरु मालव देश पधारै।

९. तिथि तेरस पो. महिनां री, शुक्लेतर पख सुखकारी जी।
शुभ ग्रह-नक्षत्र निहारी, पुळ-वेळा सुंदर सारी जी।।

१०. धुर ग्राम 'लूणदै' आया, 'बोहीड़ै' झड़ बरसाया जी।
गुरुदरस रावजी पाया, निज कंवर भंवर सह ल्याया जी।।

११. बो शहर सादड़ी सोहै, पादार्पण भवि-मन मोहै जी।
प्रतिपक्षी जनता जो है, अति द्वेषभाव अनपोहै जी।।

१२. धार्मिक-चर्चा हित धाया, अनपेक्षित प्रश्न उठाया जी।
समता-रस स्यूं समझाया, आग्रह री अद्भुत माया जी।।

१३. रहि रात प्रभात विहारी, है पूज्य परम उपकारी जी।
सादड़ी नगर-अधिकारी, भेट्या गुरु दिव्य-दिदारी जी।।

१४. सोळह उमरावा जाणो, सादड़ी प्रधान ठिकाणो जी।
पद 'राजरणा' पहचाणो, बोलै दिल भक्ति भराणो जी।।

१५. कांई आया पधराया? बस एक दिवस पद ठाया जी।
म्है दरसण भी नहिं पाया, सुधरै कस्यान आ काया जी?

१६. मारग में पूज्य विराजे, उपदेश उदित आवाजे जी।
श्रुति राजरणाजी साझे, पीयूष-भाव अंदाजे जी।।

१७. दस मिनट देशना दीन्ही, वेराग्य-भावना-भीनी जी।
तेरापथ-पद्धति झीनी, परखाई सद्गुण-पीनी जी।।

१८. सुण राजरणाजी बोलै, सुणतां ही हिवड़ो डोलै जी।
नहिं तेरापथ रै तोलै, चहे पन्थ अनेक टटोलै जी।।

१९. इण पथ री अनुपम एकी, आलम री एकी छेकी जी।
ओरां में जो अविवेकी, सिर फोड़ गमावै शेखी जी।।

२०. म्है देख्या घणा पवाड़ा, ग्रहिं भेख करै भसवाड़ा जी।
चेलां-हित तोड़ा-फाड़ा, बंध्योड़ा कोरा बाड़ा जी।।

२१. है ओ ही पंथ निराळो, नहिं थानक चेलां चाळो जी।
आचारज एक रुखाळो, सारा साधूपण पाळो जी।।

२२. मारग में मैं श्रमदायी, गुरु करुणा-दृष्टि दिखाई जी।
पण इण परिसम स्यूं त्रायी! म्हांरा पातक प्रलयायी जी।।

२३. अनुरंजित निज पुर हाले, गुरु अपणो पन्थ निभाले जी।
संक्षिप्त चउत्थी ढाळे 'तुलसी' बै स्मृतियां साले जी।।

ढाळः ५.

दोहा

१. स्वामी छोटी 'सादड़ी', पो. सुद तीज पधार।
सारो पुर पावन कियो, जय-जय जगदाधार।।
२. हो 'बाघाणै' आविया, 'निमच छावणी' नाथ।
मालव-श्रावक-संघ री, बड़ी व्यवस्था साथ।।
३. 'निमच छावणी' स्यूं शुरू, 'महू छावणी' अन्त।
सड़क गृहांगणवत पड़ी, संत-सुखद पद-पन्थ।।
४. 'निमच' शहर है सामनै, जैनी बसै सजोश।
स्वामी पादार्पण करै, वरै धर्म परिपोष।।

[1]मुनिप रो मालव-देश विहार।
जन-मन-भाणो हर्ष-बधाणो, समता को संचार।।

५. मालव-भूमी है उपजाऊ, खेत-खळां में धान अमाऊ।
विविध वस्तु-भण्डार।।
६. कहिं काळी-पीळी माटी है, ढेलां री धरती काठी है।
पाणी रो पेसार।।
७. सी-सर्दी गर्मी-वर्मी रो, नहिं भय भय इक दुष्कर्मी रो।
है खटमल खूंखार।।
८. धूप नहीं लू झाळ न झालै, नहि दुष्काल भयंकरता लै।
सब ऋतु में सुखकार।।
६. निमच शहर धुर नाथ पधारै, जाणक जन-जन भाग्य जगारै।
जय-जय री धुंकार।।
१०. सुंदर है बाजार सुहाणो, जैनी बसती में अब जाणो।
देखै सब दृग डार।।
११. ऊंची इमारतां रंगीली, भव्य झरोखां स्यूं भड़कीली।
सझी सुरम्याकार।।
१२. लोक खड़ा है अगल-बगल में, निरखी पलक गिरावै पल में।
करै न को मनुहार।।

---

१. लय : सभापति हमें मिले बुधवान

१३. कोई अपणो स्थान न धामै, पूरी सफर समूचै गामै।
खांधां ऊपर भार।।
१४. आखिर पुर-बाहिर चल आया, रजपूतां रै घर ठहराया।
भगत बण्यो परिवार।।
१५. मिली रेस जैन्यां री सारी, खुणस निकाळी है बरसां री।
सुण मन हास्य अपार।।
१६. थळी देश में पूज्य जवारी[1], की महसूस असुविधा भारी।
तिण रो ओ प्रतिकार।।
१७. अन्य त्रपास्पद असहज बातां, सुणतां लागै दिल आघातां।
बढ़ै व्यर्थ तकरार।।
१८. द्वेधीभाव करण-हित धाया, थळी देश में प्रत्युत पाया।
असफलता साकार।।
१६. अपणी भूल रोष ओरां पर, काढ़ै अनुचित भ्रम फैलाकर।
ओ कोई व्यवहार?।।
२०. गयो बगत बा बीती माया, अंतर पश्चिम-पूरब-छाया।
अब कटुता बेकार।।
२१. कुण ओ समय रु कुण हां आपां? देश काल स्थिति क्यूं नहिं मापां?
समता - रस - संचार।।
२२. संत सदा अनिकेत कहावै, जठै जग्यां सहज्यां मिल ज्यावै।
बठै धर्म की बार।।
२३. जैनेतर विस्मित-सा रहग्या, नहिं कहणै री बातां कहग्या।
समझ्या समझणहार।।
२४. अब तो सारा ही शरमाया, झूठी बहकावट में आया।
खोयो अवसर सार।।
२५. एक दिवस ही प्रवचन कीधो, पूज्य पाधरो मारग लीधो।
पंचमि ढाळ उदार।।

ढाळः ६.

दोहा

१. मन्दसौर प्रतिपक्ष रो, मंद शोर लख स्वाम।
दो वासर वर करुणया, रह्या पुण्य पद थाम।।

---

१. जवाहरलालजी

२. करणो जाग्रत 'जावरो', बण्यो बावरो जाण।
पड्यो मावरो-सो अमिट, प्रतिपख बाण कुबाण।।
३. आ पहुंच्या उण अवसरे, बठै विपख-शिरमोड़।
प्रतख मचाई प्रलय-सी, घर-घर में घुड़दोड़।।
४. जो जाग्यां ठाई करी, मालव-जन गुरु-हेत।
सारी बदळाई तुरत, करी स्पष्ट संकेत।।
५. थळी देश में म्है सह्या, जब संकट असमान।
रे भोळां! भोळप करो, ओ उलटो सनमान?
६. करणो उद्यम उण दिशा, ज्यूं पन्थाधिप पास।
को आवै जावै नहीं, निकसै होय निराश।।
७. आगी-घी-सिंचन जिस्यो, सागी कियो अकाज।
शोर मचायो शहर भर, मुख-मुख इक आवाज।।

[1]मत बणो बावरे, शहर जावरे तेरापंथी आवै रे।
तेरापंथी आवै देखो तेरापंथी आवै रे।।

८. बड़ा-बड़ा अखरां में पोस्टर, चोक-चोक चिपकावै रे।
घर-घर बार दिवार-दिवारां, दौर्मनस्य दरसावै रे।।
९. मुखड़ै चमकदार मुखपत्ती, खांधै ओघो ठावै रे।
चुल्लपट्ट नहिं नहिं प्रलम्बपट, एड्यां स्यूं टकरावै रे।।
१०. अपणी संप्रदाय ही असली साध्वाचार निभावै रे।
सारै संघां रै संयम री, ठेकेदारी दावै रे।।
११. अतुल एकता सबल संगठन, जाहिर जोम जचावै रे।
चमकीली चुटकीली बातां स्यूं जनता भरमावै रे।।
१२. अजब मान्यता सारी दुनियां साथै मेळ न खावै रे।
हन्त! अनोखो पन्थ इस्यो, नहिं हुयो न होणो चावै रे।।
१३. दया नहीं है दान नहीं है, हमदर्दी न दिखावै रे।
दूर देश स्यूं फिरता-फिरता, तेरापंथी आवै रे।।
१४. गो-बाड़े में आगी लागी, भागी मनुज बुझावै रे।
परम धरम ओ नहीं बतावै तेरापंथी आवै रे।।

---

१. लय : आदिनाथ मेरे आंगण आया

१५. आखू रो रस चाखू बिल्ली, हिल्ली पकड़ण धावै रे।
करुणा-भावे नां फरमावै, तेरापंथी आवै रे।।
१६. गाडी-हेठै पड़्यो डावड़ो, काल-गाल में जावै रे।
करुणा-भावे पाप बतावै, तेरापंथी आवै रे।।
१७. हीन-दीन दोहग दुखिया नै, जो कोइ दान दिरावै रे।
तिण में पाप थाप-हित पुर में तेरापंथी आवै रे।।
१८. कूप खणावै बाग बणावै, प्याऊ में जल पावै रे।
तिण में धर्म नहीं समझावै, तेरापंथी आवै रे।।
१९. मात-पिता री सारी सेवा, पूत सपूत कहावै रे।
ओ पिण नहीं मुगत-पथ, कहता तेरापंथी आवै रे।।
२०. हिंदू-मुस्लिम जैन-अजैनी, राज-प्रजा इक भावै रे।
घट-घट अणघट घाट घड़्यो इक, तेरापंथी आवै रे।।
२१. भेड़-चाल दुनिया री देखो, अन्तर भेद न पावै रे।
'अंबर टूट पड़्यो है[1]' भागो, तेरापंथी आवै रे।।
२२. सिंघ-बाघ बिन आग लाग बिन, नाग जाग बिन खावै रे।
सारै पुर में शोर मच्यो इक, तेरापंथी आवै रे।।
२३. त्याग प्रमोद प्रमादी मानव, घोर घृणा फेलावै रे।
ओरां री अपकृति-हित दुष्कृति, क्रूर-प्रकृति बण ज्यावै रे।।
२४. गुरुता नहीं साधुता मानवता भी सुण शरमावै रे।
ऊलजलूल अनर्गल आक्षेपां री झड़ी लगावै रे।।
२५. सुणी पूज्य जब सारी बातां, सम्यग रूप गहावै रे।
जो आगूंच प्रचार करै, उपकारी क्यूं न कहावै रे।।
२६. अप्रत्याशित अद्भुत कृति पर, दुन्दुभि देव बजावै रे।
त्यूं आगूंच प्रचार करै, उपकारी क्यूं न कहावै रे।।
२७. अपणी अक्षमता रो परिचय पर-निन्दा परखावै रे।
स्वयं सिकारै पर-क्षमता, उपकारी क्यूं न कहावै रे।।
२८. घर का कागज घर का पैसा, घर की बगत बितावै रे।
औरां रो परचार करै, उपकारी क्यूं न कहावै रे।।

१. देखें प. १ सं. २८

२९. चहल-पहल-सी लगी, अडीकै लोक खड़्या चित चावै रे।
छट्ठी ढाळे 'तुलसी' कालू-कलना अलख लखावै रे।।

ढाळः ७.

दोहा

१. चोथ प्रभाते माघ बिद, मालव-जनता साथ।
समवसर्या पुर जावरे, तेरापथ रा तात।।
२. गळी-गळी बाजार में, खड़्या हजारां लोक।
उत्कंधर वन्दै सुघड़, दे दे पांवांधोक।।
३. नहिं आवै संपर्क में, कीन्हो प्रखर उपाय।
विपरिणाम पेख्यो प्रगट, कालू-पुण्य-पसाय।।
४. महावीर मुख स्यूं सुणी, गाथा-विसरण-हेत।
रौहिणेय[1] आयासवत, इतर-पक्ष-संकेत।।
५. जठै रुकावट जोर स्यूं, निरखण द्विगुणित राग।
जिनरिख-जिनपालित[2] प्रवर, देख्यो दक्षिण बाग।।

[3]मन-मोहनगारो म्हांरो नाथजी।

६. प्रथम याम में ही कियो, सखे! मध्य नगर परवेश,
भाल भानवत भळकतो, सिर सोहै सिततम केश रे।
दीपै अति धवलित वेश रे, दिल उज्ज्वल अमल अशेष रे,
निज निर्मल चरण निवेश रे, मनु जग-तारक जिन एष रे।।
७. मत्त मयंगल मलपता, मनु मंजुल चाल मराल,
आया भर बाजार में, इक धर्मशाल सुविशाल रे।
चोगान पड़ै चोसाल रे, तिण बिच सिंहासन ढाळ रे,
प्रारंभ्यो देव दयाल रे, व्याख्यानामृत वर्षाळ रे।।

---

१. देखें प्रथम खण्ड, प. १ सं. ७४
२. देखें *प्रथम खण्ड*, पं. १ सं. ८४
३. लय : मुनिवर विहरण पांगुर्या सखि!

८. गिरि-गह्वर में गूंजतो, मनु जब्बर बब्बर सीह,
गाढ़ माढ़ आषाढ़ में, अंबर में गरज्यो मीह रे।
धणणाट नगारां धींह रे, गणिवर-मुख घोष अबीह रे,
है सुधा-स्राविणी जीह रे, सद्गुरु निष्काम निरीह रे।।

९. 'बीस विहरमाण[1]' सासता, गुरु सुमरै कर विस्तार,
पाछै आछै भाव स्यूं, विभु वरणै साध्वाचार रे।
जैनागम रै अनुसार रे, तेरापथ रो आधार रे,
दरसावै उचित प्रकार रे, भीतर बाहर इकसार रे।।

[2]तेरापंथ प्रभो!
वज्रासन में बैठ बबर्ची घन गुंजायो रे।
सुभागी भवि-मन भायो रे।।

१०. तेरा श्रमण उपासक तेरा लख सेवक तुक गायो रे।
सुणतां ही गुरुदेव अनोखो अर्थ लगायो रे।।
११. इक आचार एक आचारज एक विचार सुहायो रे।
प्रबल एकता सबल संगठन रोब जमायो रे।।
१२. शुभ बेळां पार्वत-प्रदेश में रोप्यो भिक्षू पायो रे।
उत्तरवर्ती आचारज अतिमात्र दृढ़ायो रे।।
१३. अति ऊंडी अध्यात्म भूमि पर अनुपम महल बणायो रे।
श्रम सेवा समता रो सक्षम क्षेत्र सझायो रे।।
१४. संयम धर्म असंयम अधरम सही मार्ग सुलझायो रे।
निश्चय अरु व्यवहार उभय नय स्यूं समझायो रे।।
१५. लोकोत्तर लौकिक धर्मां रो पृथक विवेक बतायो रे।
अपणो-अपणो स्थान सदा मिश्रण असुहायो रे।।
१६. निज दुर्बलता ढांकण पर-निंदा रो पथ अपणायो रे।
दयापात्र है बै करुणा स्यूं हृदय भरायो रे।।

---

१. देखें प. १ सं. २६
२. लय : पनजी! मूंढ़ै बोल

१७. गो-बाड़ो जळतो अरु बिल्ली ऊंदर-हित मुंह बायो रे।
ऊळजलूल उदारण दे भ्रम-जाल बिछायो रे।।
१८. दया-दान असली हमदर्दी धर्म-मर्म पनपायो रे।
कृत्रिम तर्क कुतर्कां में क्यूं बगत बितायो रे।।
१९. 'व्यर्थ विरोध विनोद'[1] पाठ ओ म्हांरै पढ़्यो-पढ़ायो रे।
जनता स्वयं कसौटी सुवरण-शान बढ़ायो रे।।
२०. 'काच-मणकलो रयण-टणकलो' अणसमझू मनभायो रे।
निजरां निजरबाज री पड़तां वेग बगायो रे[2]।।
२१. जिणरै मन कोई जिज्ञासा तो ल्यो उत्तर ठायो रे।
छापाबाजी में पड़ क्यूं जड़ता-पथ पायो रे।।
२२. मैं निज निजर्यां देख्यो सद्गुरु भारी रस बरसायो रे।
ओजस्वी व्याख्यान सुखद स्मृति में सरसायो रे।।

[3]मन मोहनगारो म्हांरो नाथजी।

२३. इक मुहुरत री देशना सुण लोग लग्या चकराण,
लिख-लिख लंबा लेखड़ा, सहु छाप्या वितथ बयाण रे।
नर निंदक जे नादाण रे, रह्यो अन्तर घोर अनाण रे,
क्यूं भूल्या सारो भाण रे, हुइ आज छाण पहचाण रे।।
२४. मुख-मुख मघवा-शिष्य[4] रो, सखे! जाग्यो जय जयकार,
उत्तर प्रत्युत्तर बिना ही, संशय रो उपचार रे।
प्रतिपक्ष्यां रो प्रतिकार रे, गुणग्राही लोग उदार रे,
कहि सातविं ढाळ सुप्यार रे, मान्यो गुरु रो आभार रे।।

ढाळः ८.

दोहा

१. संचित सारी रात रो, अंधकार-अधिकार।
भानु-भानवी पलक में, अभ्र उड़ावै छार।।

---

१. जो हमारा हो विरोध : हम उसे समझें विनोद
२. देखें प. १ सं. ३०
३. लय : मुनिवर विहरण पांगुर्या सखि!
४. कालूगणी

२. ज्येष्ठ जेठ-आषाढ़ रो, निस्त्रप निविड़ निदाघ।
एक घनाघन की घटा, सकल मिटावै दाघ।।
३. घटा अटारी ऊठती, कजरारी विकराल।
बरसूं-बरसूं क्षणक में वात्या करै विहाल।।
४. विद्या वर बहुरूपिणी, रावण रची दुसाध्य।
सौमित्री[1] क्षण में करी, बाण-धोरिणी बाध्य।।
५. त्यूं विपक्षि जन रो विपुल, उद्यम आशातीत।
एक देशना में सुधी, विभुवर कियो व्यतीत।।
६. पछताया अनुताप स्यूं, पहलां दीधो स्थान।
बहकावट स्यूं बदळग्या, आज संभार्‌यो भान।।
७. अब दुगुणो नहिं सोगुणो, हुयो पूज्य-सत्कार।
रही बात आछी बुरी, बही बार जल-धार।।

[2]आछो दिन आयो, गुरु गौरवशाली पुर रतलाम में।
है भाग्य सवायो, गुरु गौरवशाली पुर रतलाम में।।

८. सारै मालव प्रांत रो रे मध्य केन्द्र रतलाम,
मंडी है व्यापार री जन यातायात प्रकाम।
यातायात प्रकाम जैन बसती बड़ी,
सोहे सरखी श्रेण मकानां री खड़ी।।
९. चोड़ा-चोड़ा चोहटा रे बिच-बिच धर्मस्थान,
स्थानक और उपासरा रे मोटा आलीशान।
मोटा आलीशान पधारै गणधणी,
फेली घर-घर बार बजारां सणसणी।।
१०. जाणक जाग्यो 'जावरो' रे पोस्टर इस्तीहार,
बो ही वातावरण में रे आयो एक उभार।
आयो एक उभार मौत अपणी मरू,
करै प्रतीक्षा आवै पूज्य प्रभाकरू।।

---

१. लक्ष्मण
२. लय : भलो दिन ऊग्यो

११. प्रथम-प्रथम व्याख्यान में रे कीधो न्याय निवेड़,
आशंका सारी छंटी रे मिटी भ्रांति-भटभेड़।
मिटी भ्रांति-भटभेड़ परखदा पांगुरी,
उठ्यो चिकित्सक एक उठाई आंगुरी।।

१२. म्हांरै पुर हाबू बड़्यो रे नांयो काबू जाण[1],
घर-घर घट-घट में घुसी रे खुशी-खुशी लहताण[2]।
खुशी-खुशी लहताण, लोक भ्रम में भम्या,
इक प्रवचन रै पाण स्वयं सहु वीसम्या।।

१३. चौथे दिन मध्याह्न में रे पंडित[3] एक पुराण,
काव्य कोष व्याकरण रो रे अलंकार रो जाण।
अलंकार रो जाण मनोरथ अब फळ्या,
भेट्या गुरु-पादाब्ज सकल संकट टळ्या।।

१४. पूछै श्री शासनपती रे किं कारण कविराज!
लम्ब विलम्ब समाचर्यो रे सत्संगति कै काज।
सत्संगति कै काज विलक्षण क्षण-क्षणे,
आतुर बेअन्दाज सदा हृदयांगणे।।

१५. नतमस्तक कविवर कहै रे सत्य दयालू देव!
व्यर्थ हुई है वंचना रे अफल रह्यो अहमेव।
अफल रह्यो अहमेव करी मन कल्पना,
सुणस्यां खुल्लै कान जबानी जल्पना।।

१६. उभय पक्ष प्रतिपक्ष की रे भारी मचसी भीड़,
मौखिक लेखिक रूप में रे बजसी खूब भचीड़।
बजसी खूब भचीड़ सुरक्षा धर्म री-
करण बहानै, खुलसी खान अधर्म री।।

१७. देख एक नै होवती रे आशित-अन्न उबाक,
दूजां नै सहज्यां हुवै रे होबरड़ां-हरड़ाक।
होबरड़ां-हरड़ाक तीन दिन बीतिया,
आखिर मानी हार देव दरसण किया।।

१, देखें प. १ सं. ३१

२. देखें प. १ सं. ३२

३. अभिधान राजेन्द्र कोश का काम करनेवाले विद्वानों में से एक वृद्ध विद्वान।

१८. अहो! अलौकिक आपरी रे क्षमा क्षमागर! नाथ!
शांत सुधाकर! दिव्य दिवाकर! अमित उजागर आथ।
अमित उजागर आथ कवण तुलना तुलै,
इचरजवारी बात देख दिलड़ो डुलै।।
१९. वमन देख भोजन वमै रे जाठराग्नि-कमजोर,
नास्तिक आस्तिक वेश में बै, बोलै सुगुरु सतोर।
बोलै सुगुरु सतोर गिरा गंभीर स्यूं,
समता भाव सतोल मिलै तकदीर स्यूं।।
२०. प्रतिपख लिखता ही रह्या नित तेरापंथ-खिलाफ,
गुणियासिय बीकाण में रे झारी सारी बाफ[1]।
झारी सारी बाफ, बीज सो फळ मिलै,
निरख आठमी ढाळ विबुध तन-मन खिलै।।

ढाळः ९.

दोहा

१. च्यार दिवस रतलाम बस, हो 'धराड़' 'बिलपांक'।
दो दिन 'स्टेशन बड़नगर', महर नजर री झांक।।
२. महापर्व अब संघ रो, मर्यादोत्सव माघ।
वैक्रमीय शुभ बाणवै, संवत में बड़भाग।।
३. कनक सूर्यमल चौधरी, मारू मांगीलाल।
श्रद्धालू घर तीन स्यूं, बो बड़नगर विशाल।।
४. सारो मालव संघ मिल, मान्य कर्‌यो ओ क्षेत्र।
समवसरै श्रमणाधिपति, रत्नत्रयी-त्रिनेत्र।।

[2]बड़नगर महोत्सव मेळो लाल, मालवी।
है संघ चतुष्टय भेळो जी।।

५. बड़नगर बण्यो बजरंगी लाल, मालवी।
जिणशासन रो सह संगी जी। बड़नगर...।

१. देखें उ. ३ ढाळः. १
२. लय : सुखपाल सिंहासण

संपन्न तीन घर जंगी लाल, मालवी।
भैक्षवगण रग-रग रंगी जी।। बड़नगर...

६. गणिवर सह मुनि अड़चाली, झमकू सह सतियां वाली।
बावन संख्या सुविशाली, जात्र्यां री जोड़ निराली।।

७. मरुधर-मेवाड़-निवासी, हिसार भिवाणी हांसी।
पंजाब आब अभिलाषी, थळियां री राशी खासी।।

८. जयपुर वाटी सेखाटी, गुजरात कच्छ करणाटी[१]।
बोम्बे मदरास मराठी, बंगाल असम बिहराटी[२]।।

९. खानदेश शेष मुगलाई[३], कोंकण[४] बरार[५] कहिवाई।
सी. पी.[६] रु उड़ीसा तांई, जनता आई उमड़ाई।।

१०. मोटो पंडाल सझायो, छज्जां दरवज्जां छायो।
ऊंचो-सो पाट बिछायो, ज्यूं समवसरण शोभायो।।

[७]तेरापंथ पंथ रो प्रहरी म्हामोच्छब लागै प्यारो।
जयाचार्य री सूझ उजागर सहज्यां संगम सब ऋतुवां रो।।

वर्षा ऋतु

११. तरु-छाया ज्यूं पांथ संत-सती, पलक बिछायां बाट तकै,
कब थ्यावस है पावस पूरो, कब म्हांरा अरमान पकै?
सब रो मन हुलसायो आयो, ओ प्रतीक बण ऋतु वर्षा रो।।

१२. आवै बाढ़ वाहिन्यां की-सी, श्रमण-सत्यां की भीड़ भरै,
गुरुकुल-सागर सभी समावै, निज अस्तित्व विलीन करै।
हरी-भरी सरसब्ज धरित्री, चित्रित सारो अजब नजारो।।

१३. गंगा जमना और सुरसती, उछळ-उछळकर गळै मिलै,
विरह-ताप-संताप भुलाकर, रूं-रूं हर्षांकूर खिलै।
गहरो रंग हृदय में राचै, नाचै मधुकर कर गुंजारो।।

---

१. कर्णाटक
२. बिहार
३. हैदराबाद
४. बम्बई के आसपास का क्षेत्र
५. खानदेश का एक भाग
६. नागपुर, रायपुर आदि क्षेत्र
७. लय : चेतन चिदानंद चरणां में

शरद ऋतु

१४. निरखी म्है कृशकाय निझरण्यां, साधु-श्रमण्यां विरह भर्‍यां,
स्वच्छ हृदय-नभ शारद-शशधर, शांत-वदन गुरु दर्श कर्‍यां।
नीरव अरु निष्पंद वृत्त स्थिर-चित्त शरद ऋतु रो भणकारो।।

१५. बण्या प्रवासी श्रमण-सितच्छद, गुरुकुल-मानस मौज करै,
परम कारुणिक कालू-वदन-सूक्त-मुक्ताफल भोज वरै।
नहिं सरदी-गरमी रो अनुभव, साक्षात शरद वरद बरतारो।।

हेमन्त ऋतु

१६. सकल शीतलीभूत शुभंकर, वातावरण विराट बणै,
दृष्टि-दृष्टि में शब्द-सृष्टि में, उष्मा स्यूं नहिं तीर तणै।
ठंडी नजर नाथ री निरखत, उतरै सो गरमी रो पारो।।

१७. पोष-माघ रो सहज समय है, ठंडी-ठंडी ब्हाळ चलै,
हाथां-पैरां फटै बिवाई, धरती ठंडी हेम गलै।
मुश्किल पड़िलेहण हिम ऋतु में, बढै भार अति उपकरणां रो।।

शिशिर ऋतु

१८. अगर वर्ष भर अति-व्यतिक्रम, प्रतिक्रमण गुरु-चरणां में,
हक नाहक घातक पातक रो, पतझर सद्गुरु-शरणां में।
देख्यो गंगा-स्नान गजब रो, मोच्छब है क शिशिर सुविचारो।।

१९. तूफानी दोरा संतां रा, जाणक अब फागण बाजै,
समुचित परिवर्तित सिंघाड़ा, दूर-दूर यात्रा साझै।
मिलन और बिछुड़न की बेळा, मर्यादोत्सव स्रोत सुधा रो।।

बसंत ऋतु

२०. नयो खून निर्बहै नसां में, बहै नई शम-रस-धारा,
तरुण तेज अरु तत्त्व-ताजगी, पावै नब जीवन सारा।
विटप-विटप में सरस वासना, अंग-अंग में नयो उभारो।।

२१. सुमन-प्रसून खिलै पचरंगा, समतुल-सी गर्मी सर्दी,
आम्र-मंजरी खा कोयलियां कूजै करती हमदर्दी।
ओ आयो मर्यादा-मोच्छब अथवा वैभव ऋतुराजा रो।।

ग्रीष्म ऋतु

२२. स्खलना-पंक प्रशोषण ज्येष्ठ मास-सो सद्गुरु-सूर्य तपै,
कड़ी सारणा लू-फटकारां, संचित सारो पाप खपै।
कटै रोग-कीटाणूं ज्यूं-त्यूं, मोच्छब है क निदाघ करारो।।
२३. ज्ञाताज्ञात कलुष रो कचरो, आतप-अंधड़ स्यूं उजळै,
ले नूतन निखार जीवन-धरती में अभिनव ज्योत जळै।
केवल गुरु-वच-वृष्टि प्रतीक्षा, शिक्षा-रूप सुधा संचारो।।

[1]बड़नगर महोत्सव मेळो लाल, मालवी।

२४. है कनक भवन बड़भागी, सौधर्म-सुधर्मा सागी।
लोकां री जो लय लागी, झिगमगती ज्योती जागी।।
२५. मर्यादा-पत्र पढ़ायो, जाणक सिर छत्र धरायो।
शासण रो गौरव गायो, सुणतां सीनो फूलायो[2]।।
२६. घोषित कीन्हा चौमासा, प्यासां री मिटी पिपासा।
जो आया धर-धर आशा, मुंहमांग्या पड़्या पासा।।
२७. स्मृति बंयासी बरसां री, आ अभिनव रचना सारी[3]।
पंचम उल्लासे प्यारी, नवमी शुभ ढाळ उचारी।।

---

१. लय : सुखपाल सिंहासण
२. देखें प. १ सं. ३३
३. वि. सं. १९१० की साल मालवा क्षेत्र में जयाचार्य का पदार्पण हुआ था। उसके बाद वि. सं. १९९२ में आचार्यश्री कालूगणी का आगमन हुआ तो बंयासी वर्ष पहले की स्मृतियां ताजी हो गईं।

ढाळः १०.

दोहा

१. ग्यारह वासर बड़नगर, पूनम रो प्रस्थान।
'लघु खरसोद' पधारिया, गुरुवर पुण्यनिधान।।
२. 'सरसाणो' सरसावतां, बीच सरसरी एक।
चलै न बस 'चंबल' बहै, रोड रपट पथ छेक।।
३. चटकीली 'चलदू' नदी, भिड़क्यो 'हिड़क्यो' खाल।
सब लंघ्या थल-पथ बही, चलता अपनी चाल।।
४. पर चंबल-जळ झळफळै, मिलै न मूल किनार।
टेढ़ बांक पिण झांकतां, लंबाई अणपार।।
५. अन्य उपाय अदेख नै, आगम-विधि अनुसार।
नदी पार गुरुवर करै, लार शिष्य परिवार।।

[1]गुरु आज बणै जलचारी।
मैं स्वयं साथ अनुचारी, गुरु आज बणै जलचारी।
निरखै अनेक नरनारी, गुरु आज बणै जलचारी।।

६. तटिनी-तट पर ऊभा स्वामी, संत-सती सारा अनुगामी।
उत्तरणी सरिता री, गुरु आज...।।
७. कनै नहीं राखो अन-पाणी, करणो चउविहार पचखाणी।
संथारो सागारी, गुरु आज...।।
८. एक चरण जल में इक ऊपर, धीमै धरणो ससलिल भू पर।
शांत गमन गति जारी, गुरु आज...।।
६. तरंगिणी रै परलै तीरै, चलणो संतां! धीरै-धीरै।
क्लान्त नहीं ज्यूं वारी, गुरु आज...।।
१०. छत्ती पग पाणी में लाग्या, दोष नहीं आगम की आज्ञा।
थिर पर-तीर पधारी, गुरु आज...।।
११. चउवीसत्थव खड़ा-खड़ा कर, अप्रकम्प है काया स्थिरतर।
जल-बिंदू सब झारी, गुरु आज...।।

---

१. लय : कर्मन की रेखा न्यारी

१२. शांत विहार संतपति कीन्हो, उज्जयिणी रो मारग लीन्हो।
पुर-पुर जनता तारी, गुरु आज...।।
१३. उज्जयिणी है पुरी पुराणी, जूना आईठाण जणाणी।
ख्यात बात विस्तारी, गुरु आज...।।
१४. वीर विक्रमादीत-कहाणी, विक्रम संवत चली सुहाणी[1]।
रोहक कथा सुप्यारी[2], गुरु आज...।।
१५. सम्प्रति-सो सम्राट उजागर[3], प्रद्योतन इतिहास-प्रभाकर[4]।
गन्धहस्ति असवारी, गुरु आज...।।
१६. उज्जयिणी रा डालिम स्वामी, निर्वाचित निरुपाधिक नामी।
सप्तम गण-अधिकारी[5], गुरु आज...।।
१७. प्रवर मुखारविंद रो प्रवचन, सुणत सतृष्ण रह्या श्रोता जन।
भौतिक भाव विसारी, गुरु आज...।।
१८. निज कर लेख लिखी लाखीणो, कालू युव-पद-निर्णय झीणो।
कर सब दुविधा टारी, गुरु आज...।।
१६. उज्जयिणी उद्योगी नगरी, क्षिप्रा नदी तीर्थ भू तगरी...।
स्टेट ग्वालियर वारी, गुरु आज...।।
२०. नयापुरा में नव दिन राजै, श्रद्धालू शुभ भक्ती साझै।
कर्म-निर्जरा-कारी, गुरु आज...।।

दोहा

२१. बिद फागण एकादशी, 'माधुनगर' 'फ्रीगंज'।
'पंथपीपलाई' फरस, पुर 'सावेर' सुसंज।।
२२. सुद पख पांचम पूज्यजी, पुर बाहिर 'इन्दौर'।
मोदी गेंदालालजी-बंगले बसै सजोर।।
२३. सेठ हुकमचनजी ससुत, बंगले भेंट्या नाथ।
श्रेष्ठी हीरालालजी, पिण आया सुत साथ।।

---

१. देखें प. १ सं. ३४
२. देखें प. १ सं. ३५
३. देखें प. १ सं. ३६
४. देखें प. १ सं. ३७
५. देखें प. १ सं. ३८

[1]आ बेधारणा री बात, मुनिपति मालव में पधरासी,
मुनिपति मालव में पधरासी, पुर-पुर पावन पद-रज ठासी।
गहरा-गहरा झंड जमासी, तेरापंथ-धजा फहरासी,
लख-लख जन-लोचन चकरासी।।

२४. ओ इन्दौर शहर आयो, मालव-यात्रा अंतिम छोर,
मालव यात्रा अंतिम छोर, समवसर्‍या गुरुवर कर गोर।
म्हांरै कालेजा री कोर, त्रिशला-नंदन को-सो तोर।।
२५. प्रतिदिन ओजस्वी व्याख्यान हुकमीचंद-निवास निहारो,
हुकमीचंद-निवास निहारो, बाजै बास खास दितवारो।
चमकै श्री गुरु चांद-सितारो, ओ साचो असहाय-सहारो।।
२६. देख्या अद्यावधि जो शहर, पुर इन्दौर आगीवान,
पुर इन्दौर आगीवान, औद्योगिक मोटा संस्थान।
उत्पादन री मानो खान, व्यवसायिक खुल्लो मैदान।।
२७. संपन्न है पुरवासी, जैनधर्म री इज्जत भारी,
जैनधर्म री इज्जत भारी, ऊंचा मंदिर है ध्वजधारी।
स्थानक पौषधशाल सुप्यारी, उपासना नित सांझ-सवारी।।

दोहा

२८. प्रांत-प्रांत रा जातरी, आया पुर इंदौर।
सुगुरु-सेव पुर निरखणो, संघ प्रभाव सजोर।।
२९. कलकत्ता स्यूं सदलबल, आयो ईशर सेठ[2]।
अति प्रसन्न-मानस हुयो, पूज्य-पदांबुज भेट।।
३०. हुकम 'हाबली-काबली', स्वागत कर्‍यो अपार।
खोल्यो ईशर सेठ हित, शीशमहल रो द्वार।।

[3]गुरु आज बणै जलचारी।

३१. कर करुणा होळी चौमासी, पुर इन्दौर रह्या गुणराशी।
अब अग्रिम तय्यारी, गुरु आज...।।

---

१. लय : सुहाग मांगण आई
२. देखें प. १ सं. ३९
३. लय : कर्मन की रेखा न्यारी

३२. खूब करी सेवा इन्दौरी, साधर्मिकता सझी सजोरी।
दुर्लभ समय विचारी, गुरु आज...।।

सोरठा

३३. बौद्धिक बड़ो वकील, मोदी नेमीचंदजी।
श्रावक भक्त सलील, योग-साधना रो रसिक।।
३४. सिज्यातर अविवाद, बरसां स्यूं इन्दौर में।
गुरु-सेवा साह्लाद, की पूरै परिवार स्यूं।।

[1]गुरु आज बणै जलचारी।

३५. चातुर्मासिक प्रतिक्रमण कर, जागृत जीवाजोण खमाकर।
विचरै उग्रविहारी, गुरु आज।।
३६. पंचम उल्लासे सुविशाली, दसमी ढाल ढलकती ढाली।
'तुलसी' मुदित मना री, गुरु आज।।

ढाळः ११.

दोहा

१. बीती मालव शिशिर ऋतु, अब बसन्त शुरुवात।
अविदित है किण स्यूं कहो, वर बसंत री बात।।
२. शीत न घाम प्रकाम है, सम निशदिन निर्व्याज।
सुरभित समता स्यूं सुरभि, है यथार्थ ऋतुराज।।
३. पतझड़ बीहड़ता निकट, एक ओर लू-झाळ।
सदा अप्रभावित रहै, ऋतु बसंत रो भाल।।
४. दिवस अविश्रम श्रम करो, सुखभर नींद निशंत।
योग-साधना-रत सतत, सेवै संत बसंत।।
५. नीम नीमझर स्यूं नमै, आम्र-मोर महकंत।
कोयल कुहकुहु मिष पथिक-स्वागत करै बसंत।।
६. शिशिर एकतो शीततम, इतर घाम बिन अंत।
सदा शांत मध्यस्थ-मन, संत सरूप बसंत।।

---

१. लय : कर्मन की रेखा न्यारी

७. ऋतु बसंत धुर दिवस में, विहरत सुगुरु सनूर।
सातम पगमंडा किया, करुणानिधि 'केसूर'।।
८. च्यार दिवस अधिवास ही, मान्यो कर चौमास।
होय 'मणासै' 'नागदै', दो दिन कियो निवास।।
९. बड़बखते गुरु 'बखतगढ़' की करुणा दिन च्यार।
पधरावत 'झखणावदे', मही नदी भयकार।।
१०. मणां टणां भारे भर्या, पत्थर धर्या अथाग।
पड़ी दराड़ां फ्हाड़ ज्यूं, भीषण घण भूभाग।।
११. निरख अचानक एकलो, हुवै भयाकुल गात।
बेहद विषम विहामणी, लोक-शास्त्र-विख्यात।।
१२. गंगा जमुना कोसिया, सरयू मही महान।
पांच नदी आगम-प्रथित[1], सुणी हुसी सुज्ञान।।
१३. पत्थर-पत्थर चरण धर, बिन फरस्यां जल नाथ।
मही नदी लंघी बही, म्है हा सारा साथ।।

[2]सुजा...ण सुणो, रे सुजा...ण सुणो,
श्री कालूयशोविलास-कहाणी जा....ण सुणो रे।
सुजा...ण सुणो, रे सुजा...ण सुणो,
श्री गुरुवर री वाणी स्थिरता ठाण सुणो रे।।

१४. अब झखणावद पथ में आयो, पायो पूज्य-प्रसाद।
ठाकुर साहिब सजधज साझ्यो, साम्हेळो साह्लाद।।
१५. सारो पुर पावन कर माण्यो, जाण्यो सफल जमार।
सुरतरु-सुगुरु अमिय-घन बूठो, तूठो ज्यूं करतार।।
१६. जातर्यां री खातरी रे, श्रद्धालू हद सार।
पांच दिवस सेवा सझी रे, पूज्य परम उपकार।।
१७. 'तारखेडि' पथ 'पटलावद' में, जम्यो सजोरो झण्ड।
चैत्र पूर्णिमा पूज्य पधार्या, साथे संघ अखण्ड।।

---

१. बृहत्कल्प उ. ४ सू. २७
२. लय : चामड़ा री पूतली.

१८. स्टेट 'झाबुवै' का तदा रे, च्यार एक संघात।
बड़ा-बड़ा जागीरदार मिल, भेंटै शासणनाथ।।
१६. 'गंगापुर' स्यूं आविया रे, प्रमुख लोग गुरु गोड।
हुकम करो चौमास को रे, विनय करै कर जोड़।।
२०. इतले ब्यावरवासिया रे, सेठ सांखला ख्यात।
डूंगरमलजी करै प्रार्थना, पावस-हित प्रख्यात।।
२१. वयण-मिठासे सहु आश्वासे, भैक्षवशासण-स्वाम।
नयन-इशारै लारै सारा, श्रावक वाचंयाम।।
२२. छापो साथे ल्याविया रे, ब्यावर-वासी एक।
देखी गुरु पूछा करै रे, तब भाखै सुविवेक।।
२३. स्थानकवासी साध केसरी, पूज्य जवाहिर शिष्य।
रतनदुरग सरदारशहर में, अनशन कर्‍यो विशिष्य।।
२४. फिर 'ब्यावर' में आय नै रे, अनशन-शोर मचायो।
मुद्रित मुद्रित-पत्र में रे, गुरुवर तब बंचायो।।
२५. तेरापंथ-प्ररूपणा रे, धर्म-विरुद्ध अतीव।
परिवर्तित जो नहीं करे तो, अनशन जावज्जीव।।
२६. या बत्तीसी स्यूं करै रे, अपणी श्रद्धा सिद्ध[1]।
नहिं तो अनशन जावजीव रो, लिख्यो लेख परसिद्ध।।
२७. गवरमेंट सरकार स्यूं रे, स्पष्टीकरण कराय।
नहिं तो अनशन जावजीव रो, साधु है क बलाय।।
२८. थोड़ा दिन में ही सही रे, बिना मिल्यां बै बोल।
संथारो पूरो कियो रे, वाह! रे मुनि दृढ़कोल।।
२६. क्यूं अणसण क्यूं पारणो रे, कुणसी पड़गी भीड़।
ढाळ ग्यारवीं इसड़ी बातां सुण पावै मन पीड़।।

ढाळः १२.

दोहा

१. बड़ो क्षेत्र भर मालवै, 'पटलावद' इह बार।
इग्यारह वासर रह्या, करी महर करतार।।

---

१. ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद और १ आवश्यक—इन बत्तीस आगमों के द्वारा अपनी मान्यता को प्रमाणित करें।

२. इग्यारस वैशाख बिद, पूज्य करै प्रस्थान।
दो दिन ही बस 'किशन-गढ़', कियो मधुर व्याख्यान।।
३. मही नदी पुनरपि लही, लांघ 'डाबड़ी' ग्राम।
'लाल गुवाड़ि' 'करेणि' हो, राज्या बलि 'रतलाम'।
४. चाल्या जद 'रतलाम' स्यूं, आज पुनः 'रतलाम'।
गाऊ शत इक्कीस रो, चक्कर लग्यो ललाम।।
५. महाभाग गुरु भेटिया, पुर रतलाम-दिवान।
कौंसिल रा मेम्बर कई, पाया हर्ष महान।।

[1]अब मेवाड़ री धरती की ओर शुभ प्रस्थान है।
जैन साधुवां रो चलतो-फिरतो ही संस्थान है।।

६. च्यार मास आसरै विराज्या मालव देश में।
पुर-पुर ग्राम-ग्राम संघ की बढ़ाई शान है।।
७. भावभीनी प्रार्थना पावस की पूरै प्रांत री।
लागै बण्यो-बणायो पहलां स्यूं ही सारो प्लान है।।
८. जैन-दर्शन में सदा पुरुषार्थ री परधानता।
तो पिण निश्चय में नियती रो एक अपणो स्थान है।।
९. इण ही कारण व्यार काळै उन्हाळै करणो पड़ै।
यद्यपि थळियां स्यूं ओछो सूरज रो तापमान है।।
१०. मालवै रा मांझी लोक खड़्या है उदास-सा।
क्यूं कर अपणै मुंह स्यूं गाईजै विदाई गान है।।
११. आंसूड़ां री ओट में सचोट छुपी भावना।
भारी भार स्यूं अणबोल जण-जण री जबान है।।
१२. काल आया आज जावो जादू को-सो खेल ओ।
मानो इन्द्रजाळ सपनै को-सो तानबान है।।
१३. ठार को-सो तेहड़ो है संतां रो सनेहड़ो।
बात सुणता तो सदा ही आज हुयो भान है।।

---

१. लय : रोको काया री चंचलता नै

१४. प्हाड़-सो आभार मानां म्है दयालू देवता।
तोड़ी आड़ इक्यासी बरसां री राख्यो मान है[1]।।
१५. खैर मत भूलीज्यो म्है तो भक्त हां भगवान रा।
थांरी करुणा रो नजारो म्हांरो जीवन-प्राण है।।
१६. मीठी बोली अमृत घोली देव दै आश्वासना।
खूब हुई है उपासना अब क्यूं मन म्लान है?
१७. मालवै में रह्यो है समूचो संघ म्हालतो।
जातर्‌यां रो यातायात भी उदीयमान है।।

[2]मालव में मतिमान।

१८. थळी देश रा वासी जी, मालव में मतिमान।
गुरु-सेवा अभ्यासी जी, मालव में मतिमान।
मरु-मेवाड़-निवासी जी, मालव में मतिमान।
परिसर प्रांत प्रवासी जी, मालव में मतिमान
बड़भागी सौभागी सद्‌गुरु-उपासना में लीन।।
१९. दास गणेश गधइया जी, बिरधू रा बड़भइया जी,
लख इंगित पथ बहिया जी, गुरु-यात्रा-रथ पहिया जी।
तन दुर्बल मन सबल शाह रो मैं दीठो बेजोड़।।
२०. पहली पुर में जाता जी, बड़ा हाथ रा दाता जी,
कम खा खूब खिलाता जी, घर-घर सेठ कहाता जी।
भैक्षवशासण की प्रभावना में रहता अग्रेस।।
२१. कई एक बर आया जी, कइ बे फेरा खाया जी,
तीजै चौथै धाया जी, नाम न जाय गिणाया जी।
मगन भाई अधिकाई दर्शन कीन्हा तेरह बार।।

---

१. प्रस्तुत उल्लास के नौवें गीत की २७वीं गाथों में बंयासी वर्षों का उल्लेख हुआ है और बारहवें गीत की १४वीं गाथा में इक्यासी वर्षों का। यह विसंगति नहीं, सापेक्ष कथन है। जयाचार्य मालवा पधारे, उस समय वि.सं. १९१० की साल चल रही थी। उनका रतलाम चातुर्मास वि.सं. १९११ का था। प्रवासकाल के आदिबिन्दु और अन्तिम बिन्दु को गणना का आधार बनाने से एक वर्ष का अन्तर हो जाता है।

२. लय : पिउ पदमण नै पूछै जी

२२. सूरत-बोम्बे-वारो जी, श्रावक-संघ-सितारो जी,
गुरु-पद-रक्त सदा रो जी, साधर्मिक रो स्हारो जी।
परम कृपास्पद कालू गणि रो 'कान्ता'-रमण-सुतात[1]।।
(परम कृपास्पद कालूगणि रो नेमू रो बड़भ्रात।।)

२३. कठोतिया परिवारी जी, लंबी अचकनधारी जी[2]
प्रज्ञाचख सहचारी जी,[3] पूनम मोहन भारी जी,
चंदन भंवर श्राविकावां सह मालव सेवा कीध।।

दोहा

२४. धनजी बैद सुजानगढ़, निज साथ्यां रै साथ।
मालव में सेव्या सुघड़, भैक्षव शासणनाथ[4]।।

२५. झूमर डोसी चोरड्या, बोकड़िया शशिबाल[5]।
बेंगाणी शिवजी[6] प्रभृति, सारा साथीवाल।।

२६. दानचंदजी चौपड़ा[7] और हजारी बैद।
सद्गुरु री सेवा सझी, हार्दिक भक्ति अखेद।।

२७. गणपत-आंचलियो[8] भगत, भोजाई[9] सह भाल।
नोजां[10] गट्टू[11] श्राविका, मान्या भाग्य विशाल।।

---

१. कान्ता और रमण, इन दो पुत्रियों के पिता मगन भाई शासनभक्त और जिम्मेदार श्रावक थे। वे नेमू भाई के बड़े भ्राता थे।
२. जेसराजजी कठौतिया (सुजानगढ़)
३. देखें प. १ सं. ४०
४. देखें प. १ सं. ४१
५. बालचंदजी बोकड़िया (सुजानगढ़)
६. शिवराजजी बैंगानी (बीदासर)
७. देखें प. १ सं. ४२
८. सरदारशहर-निवासी
९. हुलासी बाई (सरदारशहर)
१०. सरदारशहर-निवासिनी
११. डॉ. मूलचन्द सेठिया की दादीजी

गीतक छन्द

२८. जुहारी[1] बाई रु बरजी[2] साथ सद्दू[3] झूमरी[4],
रामदेई[5], गोरज्यां[6] अरु हुलासी[7] सेवा करी।
कस्तूर[8] केसर[9] और कोडी[10] मालवै में साथ ही,
बहन संतोकी[11] रु छोगी[12] आदि भी तिण पथ वही।।

२९. सेठिया संतोष-पत्नी[13] और आशकरण-बहू,[14]
बैद मोहन-मात[15] पन्नी[16] हुलासी[17] बाई सहू।
प्रतिबरस दो च्यार छव दस, आठ मास उपासना,
मानसिक परितोष पाई शुभ सुगुरु-अनुशासना।।

दोहा

३०. मालू-डागा[18] सेठिया[19], और श्राविका[20] साथ।
तत्त्व-ज्ञान में देवता, बड़ां-बड़ां नै मात।।

---

१. महालचंदजी डागा की बहिन। इनके पति का नाम था—इन्द्रचंदजी आंचलिया (सरदारशहर)।
२. कालूरामजी जम्मड़ (सरदारशहर) की धर्मपत्नी।
३. मंगलचंदजी बोथरा (सरदारशहर) की धर्मपत्नी।
४. बालचंदजी-सूरजमलजी दूगड़ (सरदारशहर) की बहन।
५. रामलालजी आंचलिया की बहन और सुमेरमलजी नाहटा (सरदारशहर) की धर्मपत्नी।
६. बालचंदजी गोलछा (सरदारशहर) की धर्मपत्नी।
७. हजारीमलजी भंसाली (सरदारशहर) की धर्मपत्नी।
८. जंवरीमलजी आंचलिया (सरदारशहर) की बहिन।
९. झींटूमलजी गोठी (सरदारशहर) की धर्मपत्नी।
१०. विरधीचंदजी गोठी की बहिन।
११. मघराजजी बोथरा की धर्मपत्नी, इनके पिता का नाम कालूरामजी सेठिया था।
१२. सरदारशहर-निवासिनी।
१३. जमनीबाई सेठिया (सरदारशहर)
१४. आशकरणजी बोथरा की धर्मपत्नी आशीबाई
१५. महालचंदजी बैद (रतनगढ़) की धर्मपत्नी
१६. रतनगढ़-निवासिनी
१७. लाडनूं-निवासी माणकचंदजी भूतोड़िया की धर्मपत्नी
१८. महालचंदजी डागा (सरदारशहर)
१९. महालचंदजी सेठिया (सरदारशहर)
२०. सुखदेई बाई, धर्मपत्नी महालचंदजी सेठिया (सरदारशहर)

३१. केसर-बाई[1] श्राविका, खूब बजाई सेव।
भीखण चोरड़िया बहू,[2] आराध्या गुरुदेव।।

गीतक छंद

३२. प्रेसवाळा मालजी री मां[3] हुलासी[4] सुंदरी[5],
सूवटी[6] समदा[7] गभीरी[8] सजग खुशियां स्यूं भरी।
मालवै मेवाड़ श्रावक-श्राविकावां सहज ही,
रह्या साथै सुगुरु-करुणा-दृष्टि अमि-वृष्टी लही।।

दोहा

३३. ग्राम-ग्राम रा और भी, विस्तृत नाम अनेक।
सेवा श्रावक-श्राविका, साधी विमल विवेक।।
३४. अंकित हुया न भूल स्यूं, मत करज्यो मन खेद।
कारण है छद्मस्थता, मन में सदा अभेद।।

[9]मालव में मतिमान

३५. गुरुवर आगम ज्ञानी जी, देवतरूवत दानी जी,
पूरी स्थिति पहचानी जी, विचर्‌या कानीं-कानीं जी।
अब मेवाड़ प्रांत पथ लीन्हो सारा नै संतोष।।

---

१. केसरबाई रामपुरिया (बीकानेर)। वि. सं. २०३२ भाद्रव शुक्ला ९ पट्टोत्सव के दिन आचार्यश्री तुलसी द्वारा 'दृढ़धर्मिणी श्राविका' इस विशेषण से सम्मानित। (विस्तृत विवरण पढ़ें 'मगन चरित्र', पृ. १८१, सं. ६६)
२. श्रीमती मघीबाई (सरदारशहर)
३. लाडनूं
४. सुजानगढ़
५. सुजानगढ़
६. सुजानगढ़-निवासी वृद्धिचंदजी सेठिया की धर्मपत्नी
७. समदड़ी
८. उदयपुर
९. लय : पिउ पदमण नै पूछै जी

३६. साठ बरस री आयू जी, जानू वर्धित वायू जी,
जो है पन्थ सहायू जी, तो पिण विरुद निभायू जी।
'सेलानै' पथ पहुंच 'जावरै' मन्दसोर री दोर।।

[1]अब मेवाड़ री धरती की ओर शुभ प्रस्थान है।

३७. बो ही है 'रतलाम' बो ही 'जावरो' 'निमच' बो।
आवत जावतां में आंतरो भू-आसमान है।।
३८. 'जावद' जागी ज्योत 'कुंदन' 'चौथ' जनम-भूम में।
पांच रात में संभारी वारी पान-पान है।।
३९. बिद[2] दसमी आकस्मिक ऊठी बाएं कर में वेदना।
कण-सी फुणसी रै इतिहास रो करणो संधान है।।
४०. पांचवै उल्लास में सोल्लास ढाळ बारमी।
'तुलसी' सामनै चित्तौड़गढ़ चोड़ो चोगान है।।

ढाळः १३.

दोहा

१. मगन विलोकी पूज्य-कर, उठती फुणसी एक।
सळी जाण शूले खणी, बढ़्यो जोश अतिरेक।।
२. साधारण नहिं समझणी, आ व्रण-कणी व्रतीश!
काफी खेचळ खाटणी पड़ती दीसै ईश!
३. सहज चिकित्सा है शुरू, शीतल जल रो सेक।
बढ़ी वेदना वेग स्यूं, कहूं कल्पना-छेक।।
४. चलतां-चलतां अनवरत, आया गढ़ चित्तौड़।
मेदपाट रा मानवी, नवी मचाई दौड़।।
५. गंगापुर गौरव भर्‌यो, करै प्रार्थना पूज!
अब पावस घोषित करो, मन की हरो अमूझ।।

---

१. लय : रोको काया री चंचलता
२. जेठ कृष्णा

६. आश खास तिण आगले, जो हि करै सफलाश।
सारंग सागर-गाज पे, जपै न 'पिउ-पिउ' भास।।
७. श्रीमुख स्यूं शासणपति, तिराणवै चोमास।
गंगापुर स्वीकृत कियो, दियो बड़ो आश्वास।।

[1]अथग उचरंग उपावै जी, उमंग रंग बरसावै जी।

८. गंगापुर गरिमा बढ़ी जी, पायो वर वरदान।
अंतरंग उल्लास रो जी, कवण करै अनुमान।।
९. प्यास बरस पच्चीस[2] री जी, आश अटल हर बार।
ऋतु आयां फल नीपजै जी, सत्य वचन सुविचार।।
१०. फलित प्रतीक्षा है हुई जी, क्षुधित चख्यो पकवान।
द्रविण-विहूणो देखियो जी, घर में रत्न-निधान।।
११. चातक रो पातक कट्यो जी, प्रगट्यो घन-रस पोष।
घणखरचू-कर अणघट्योजी, सिमट्यो अविकल कोष।।
१२. प्हाड़-प्हाड़ मेवाड़ रो जी, गाढ़ हरस स्यूं चूर।
धरती परतख देखल्यो जी, दूर-दूर सांकूर।।

[3]भयंकर व्रण स्यूं रे, जकड़्यो स्वाम शरीर,
अटल निज प्रण स्यूं रे, धीर वीर गंभीर।
असर नहीं उपचार रो रे, झाल्यो जिद्द हमीर[4]।।

१३. भजै वाम कर वामता रे, सझै नहीं उपशाम।
पीड़-अर्जणी तर्जणी रे, सघन गर्जणी घाम।।
१४. छोटै कद में दीखतो रे, जावद में जो रूप।
लाजविहूणो आज तो रे, बण्यो घणो विद्रूप।।
१५. बांधी ऊपर लूपरी रे, भरी पीप स्यूं पूर।
कुळै कुटिल विष विषमता रे, प्रसरी पीड़ प्रचूर।।

---

१. लय : सपना
२. गंगापुर के श्रावक पच्चीस वर्ष से आचार्यश्री कालूगणी के चातुर्मास की प्रार्थना कर रहे थे।
३. लय : हरी गुण गायलै रे
४. देखें प. १ सं. ४३

१६. चबको अति अबखो चलै रे, सबको दिल बेचैन।
उच्छृंखल खल आग्रही रे, सुणै न मानै ऐन।।
१७. बढ़तो-बढ़तो बढ़ चल्यो रे, हत्थेली तक शोथ।
पल-पल पीड़ा पसरती रे, अंतर करती थोथ।।
१८. नयण न निशभर नींदड़ी रे, दिन में रुचै न आ'र।
चलणो सोणो बैठणो रे, सारा बणग्या भार।।
१६. कब ही पोढ़ै पट्ट पे रे, कब ही समी जमीन।
इत गर्मी चित्तौड़ की रे, बेशर्मी में लीन।।
२०. शांत रूप अरहंत को रे, करै संतपति जाप।
भक्तामर ऋषभस्तुती रे, पुनि-पुनि बोलै आप।।
२१. मगन चौथ चंपक सभी रे, शिव सुख सोहन शिष्य।
झमकूजी आदी सत्यां रे, सेवा सझै विशिष्य।।
२२. मुझनै सूंप्यो महर स्यूं रे, मुनिप निशा-व्याख्यान।
समय-समय स्वाध्याय को रे, मौको दियो महान।।

[1]अथग उचरंग उपावै जी,

२३. 'पूठोली' 'चोगामड़ी' जी, चाल्या तज 'चित्तौड़'।
सुद बारस तिथ जेठ की जी, 'गढ़-हमीर' रै गोड।।
२४. सुराणा श्रावक जठै जी, द्रव्य-भाव-संपन्न[2]।
सबविध सेवा साचवै जी, पल-पल परम प्रसन्न।।
२५. मदनसिंहजी मुरड़िया जी,[3] भीलवाड़ै सुप्रडेन्ट।
लख व्रण-वेदन व्यस्तता जी, विनवै गुरु-पद भेंट।।
२६. पूज्य पधारो पाधरा जी, भीलवाड़ो है पास।
सहज चिकित्सा हाथ री जी, फळसी मुझ अभिलाष।।
२७. जची मगन रै आपरै जी, मुरड़्याजी री बात।
कर विहार आया बही जी, 'मंडपियै' गणनाथ।।
२८. बिद एकम आषाढ़ की जी, मदनसिंहजी साथ।
दो डॉक्टर[4] गुरु प्रणमता जी, दीठो व्रण-युत हाथ।।

---

१. लय : सपना
२. प्यारचंदजी सुराना आदि तीनों भाई
३. देखें प. १, सं. ४४
४. डॉ. नंदलालजी (भीलवाड़ा), डॉ. मोदीलालजी (गुलाबपुरा)

२९. बोलै करणो आज ही जी, ओप्रेशन अनिवार्य।
खिण-खिण लम्ब विलम्ब रो जी, परामर्श नहिं आर्य!
३०. पस पहुंची पूंचै सुधी जी, विकट परिस्थिति साझ।
प्रगट ढाळ आ तेरमी जी, व्रण-वेदन री दाझ।।

ढाळः १४.

दोहा

१. गणिवर तब डॉक्टर प्रति, वदै वचन सुविचार।
'मंडपियै' लघु ग्राम में, चलै न ओ उपचार।।
२. नहिं औषध औजार है, शल्यचिकित्साकार।
उष्ण उदक मिलणो कठिन, प्रासुक तणै प्रकार।।
३. शीघ्र भीलवाड़ै शहर, आणो ही है साब!
तब बोलै डाक्टर प्रवर, स्वामी! सुणो जवाब।।
४. भीलवाड़ै पधरावणो, बणसी दो दिन बाद।
तब लग तो व्रण-वेदना, बधसी बेमर्याद।।
५. रस्सी ज्यूं ऊंची चढ़ै, बढ़ै विषमता व्यक्त।
इण इलाज में पूज्यवर! नहिं विलमाणो बख्त।।
६. चाकर म्है हाजर खड़्या, शल्य-चिकित्सा हेत।
औषध अरु औजार री, पेटी साथ सचेत।।
७. करुणागर! करुणा करो, झरो वचन अनवद्य।
म्हांरी सेवा स्वीकरो, हरो दुरित-घन सद्य।।

[1]साहस सहनाणी नाणी नाणी नाणी।
देखै जो दृग ठाणी, परखै जो पितवाणी।।

८. सुणत धुणत सिर गणि-दिल डोलै, बोलै मुख मृदु वाणी।
साहस सहनाणी नाणी नाणी नाणी।
जैन संत री चर्या वर्या, नहिं कोई है अणजाणी।।
साहस सहनाणी नाणी नाणी नाणी।।

---

१. लय : छेड़ो नांजी नांजी नांजी

९. लाभालाभ और सुख-दुख सम, जीवन-मृत्यु समाणी।
निन्दा-स्तुति अपमान-मान में, समता-वृत्ति सयाणी।।

१०. व्रण-वेदन स्यूं ग्रसित है यद्यपि म्हांरो अंग इयाणी।
हस्तांगुलि में ऑप्रेशन की, आज स्थिती उभराणी।।

११. पर गृहस्थ री सीधी सेवा वर्जित, नीति निभाणी।
म्हांरै गण री आ परंपरा, अब लों रही पुराणी।।

१२. क्यूं ऑप्रेशन डॉक्टर कर स्यूं? करस्यूं निज हित हाणी।
से अपवाद बाद में, करणी पड़ै दण्ड-भुगताणी।।

१३. बोलै डॉक्टर दो कर जोड़ी, आ है बगत विराणी।
बिन शरीर अध्यात्म साधना, करणी कठिन कहाणी।।

१४. क्षणभंगुर है जीर्ण-शीर्ण है, जड़ है काया जाणी।
पिण इण बिन नहिं सधै साधना, सज्झायी हो झाणी।।

१५. जैन अजैन संत-सतियां री, सेवा समय पिछाणी।
करता रह्या अनेक बार म्है, आ सौभाग्य-निशाणी।।

१६. सहज रूप डॉक्टर तनु सेवा नहिं आ बात सुहाणी।
पिण एतादृश संकट-स्थिति में, श्री-आज्ञा अगवाणी।।

१७. ओ शरीर लाखां रो रक्षक, तिण स्यूं ताणाताणी।
नहिं जगतारण! दूजो कारण, अनुभवस्यो माडाणी।।

१८. साच हि वाच अंग है साधन, आ अनुभव में आणी।
विधि-विधान भी है कोई वस्तु, करणी है कुर्बाणी।।

१९. संकट-घड़ियां खरी कसौटी, क्यूं दुर्बलता ल्याणी?
दसरावै पिण जो[1] नहिं दौड़ै, तिणरी कीमत काणी।।

२०. कोई कुछ भी करै करावै, कुण रोकै ग्रहि पाणी?
पिण म्हांरी तो एक रूंवाळी, नहीं कहीं कम्पाणी।।

२१. बो ही होसी जो मर्यादा, गण री है गुणखाणी।
जीवै मरै शरीर डॉक्टरां! आत्मा अमर बखाणी।।

२२. नहिं औषध-ओजार हि लेणो[2], मनोवृत्ति मरदाणी।
यथाकल्प ही कारज करणो, नगर गाम वन ढाणी।।

---

१. घोड़ा

२. मुनि के निमित्त गृहस्थ द्वारा लाई हुई औषधि, औजार आदि लेने की विधि नहीं है।

२३. डाक्टर चकित-चित्त गुरु-चरणां होग्या पाणी-पाणी।
ढाळ चवदमी सुगुरु-वीरता-वाणी जोश जगाणी।।

ढाळः १५.

दोहा

१. आया श्रमण समाज में, किता उतार-चढ़ाव।
औत्सर्गिक अपवाद रा, घुर्‌या अनेक घुमाव।।
२. मुनिचर्या रहि एकदा, अप्रतिकर्म-प्रधान।
पछै अविधि उपचार रो, प्रायश्चित्त विधान।।
३. अचिकित्सा केवल रही, अभिग्रह्यां रै हेत।
की अन्योन्य प्रतिक्रिया, श्रमणी श्रमण सचेत।।
४. वर्तमान अपवाद-पथ, बहै चिकित्सक-योग।
सीधो स्हाज शरीर रो, प्रायश्चित्त-प्रयोग।।
५. बण्यो हजारां बरस रो, ओ लम्बो इतिहास।
क्षेत्र काल धृति संघयण, क्षमता-ह्रास-विकास।।
६. श्री कालू सचमुच तदा, साहस रख्यो सुरेख।
उदाहरण आदर्श रो, इणमें मीन न मेख।।

[1]गुरुजी! थांरो गंगा-निरमल गात।
शीघ्र वरो आरोग्य शुभंकर सदा रहो सुखसात।।

७. बोलै डाक्टर नंदलालजी, वंदत गुरु-पद माथ।
जियां कियां ही जठै कठै ही, बेळां बीती जात।।
८. नंदलाल नहीं, डाक्टर बोलै शीघ्र करो शुरुवात।
ज्यूं-ज्यूं बेळां आगै ठेलां, त्यूं-त्यूं काळी रात।।
६. गौरी श्यामा काबर चितरी, बाखड़ि खोड़ी जात।
केवल गउ रो दूध चहीजै, म करो यातायात[2]।।

---

१. लय : स्वामीजी! थांरी वा मुद्रा जग ख्यात
२. देखें प. १ सं. ४५

१०. भीतर रस्सी फेल्यां जावै, द्रुतगति दीनानाथ!
स्यात पोईजन रो मन भय है, संशयवाची स्यात।।
११. मगन मुनी अनुभव में आणी, सारी स्थिति साक्षात।
आज अभी ऑप्रेशन करणो, निर्णय लियो सनाथ।।
१२. लेखण-छेकणवाळो चक्कू लियो चौथ मुनि हाथ।
डॉक्टर दोन्यूं आगै ऊभा, प्रगट दिखावै पाथ।।
१३. वाम हाथ हत्थेली पीठे, चक्कू रो आघात।
एक इंच ऊंडो एकम दिन, बिद अषाढ़ री बात।।
१४. पीप-पिचरकी चली छलकती, राळो काळो काथ।
सहनशीलता देख सुगुरु की, स्तब्ध रह्यो सहु साथ।।
१५. पींच पींचकर खींच खींचकर, बण निर्घृण-निष्णात।
पीप निकाळ्यो घाव उजाळ्यो, मगन रु कुन्दन-भ्रात[१]।।
१६. पट्टी बांधी गोज रोझकर, सूझबूझ रै साथ।
डाक्टर चित्रित संत समेट्यो सब कुछ हाथोहाथ।।
१७. संघ-ख्यात में स्वयं खतीजी, मंडपियै री ख्यात।
एक नयो इतिहास बण्यो है, जुग-जुग रहसी ज्ञात।।
१८. भीलवाड़ै अब भलै दिहाड़ै, आया पूज्य प्रख्यात।
भक्त मदन डाक्टर नंदा की रंजी सातूं धात।।
१९. सरकारी शिक्षालय स्वामी, निवसै निर्व्याघात।
सहै वेदना शांत भाव स्यूं, आंतर है अवदात।।
२०. प्रतिदिन मुनिजन पट्टी बदळै, सायं और प्रभात।
करै घाव नै लोशन-मिश्रित उष्णोदक स्यूं स्नात।।
२१. चूंथ-चूंथ चूंथी स्यूं चिथड़ा, काढ़ै संत सुजात।
ज्यूं सद्गुरु समकित रै स्हारै, काटै गूढ़ मिथ्यात।।
२२. सेवाभावी मुनिवर-श्रमण्यां, खड़्या रहै दिन-रात।
साफ-सफाई राखण तांई, दै नरसां नै मात।।
२३. पंचम उल्लासे सोल्लासे, पनरमि ढाळ उदात।
श्री गुरुवर रो गौरव गातां, पातक प्रलय प्रयात।।

---

१. मुनि चौथमलजी

ढाळः १६.

दोहा

१. सरकारी डाक्टर सही, नंदलालजी नाम।
व्रण-शोधन समये रहै, हाजर प्रातः शाम।।
२. डाक्टर वर अश्विनिकुमर, कलकत्ता स्यूं चाल।
आयो अति आकुलमना, भेट्या देव दयाल।।
३. भ्रात[1] विभूतीभूषणू, तेरापथ रो भक्त।
शहर लाडणूं स्यूं चल्यो, आयो अति अनुरक्त।।
४. पहुंच्यो ईडर स्टेट स्यूं, मालमसिंह सुजाण।
उदियापुर रो है भंवर-डोसी पुत्र पिछाण।।
५. मिल च्यारूं डाक्टर करै, निश्चित जो उपचार।
शिष्य-वर्ग त्यूं साचवै, होकर मन हुंशियार।।

[2]करारो कुटिल वेदनी कर्म,
समझू समझै मर्म, करारो....।
धीरो मानव धर्म, करारो....।।

६. अश्विनि बाबू अनुभवी रे, सोचै शांत प्रशांत।
घाव सदा ज्यूं-त्यूं रहै रे, निश्चित हेतु नितांत।।
७. शायद शूगर है बढ़ी रे, मूत्र-परीक्षण आज।
करणो है, कीधो सही रे, सही रह्यो अंदाज।।
८. पहिलां यदि शूगर मिटै रे, तो सिमटै ओ घाव।
सघन जतन करणो घटै रे, विघटे नहिं सद्भाव।।
९. दवा देण डाक्टर चहै रे, गहै न गुरु मृदुभाष।
बहै स्व विशद परंपरा रे, जहै न निज विश्वास।।
१०. कहै अश्विनी मम दवा रे, गहै न क्यूं गुरुदेव।
श्रावक ज्यूं इण संघ की रे, सदा की करूं सेव।।

---

१. डॉ. अश्विनीकुमार का भाई विभूतिभूषण
२. लय : खिम्यावंत जोय भगवंत रो

११. सही बात बिल्कुल सही रे, भ्रात-युगल गणभक्त।
पर लौकिक व्यवहार भी रे, पड़ै देखणो व्यक्त।।

१२. गहराई स्यूं नहिं लियो रे, जो आमय मधुमेह।
बही भूल भारी बही रे, संत सदेह विदेह।।

१३. बिखरी पुर-पुर बातड़ी रे, सुण-सुण आवै लोक।
गधिया बिरधीचंदजी[1] रे, हुलस्या गुरुपद धोक।।

१४. ईशरचंदजी[2] चौपड़ा रे बैंगाणी बीदाण-
हणूत श्रावक-श्राविका[3] रे, भेट्या गणनभ-भाण।।

१५. भादाणी[4] डूंगरगढ़ी रे, मोहन वसुगढ़ बैद।
कनक-सूर्यमल-चौधरी[5] रे, आया चाल अखेद।

१६. मगन भाई अरु रुक्मणी रे, बोम्बे स्यूं चल आय।
और सैकड़ां ही मिल्या रे, मुश्किल नाम गिणाय।।

१७. देखी गुरु-तन-खिन्नता रे, सारां रो मन म्लान।
भावै अन्तर-भावना रे, स्वास्थ्य वरै भगवान।।

१८. अश्विनि बाबू एकदा रे, मगन अकेला देख।
दिलगीरी दिल ल्यावतो रे, खींचै भावी रेख।।

१९. सुणो मगन स्वामी! कहूं रे, कहणी जदपि अयोग।
दुःसंभव गुरुदेव रो रे, होवै अंग अरोग।।

२०. मगन कहै—हां ठीक है रे, पण मत करजे बात।
लेणै स्यूं देणो पड़ै रे, सारां मन आघात।।

२१. सुणली ईशरचंदजी रे, ज्यूं-त्यूं आ आवाज।
हुआ अश्विनी ऊपरै रे, सेठ सख्त नाराज।।

२२. इणनै डाक्टर कुण कर्‌यो रे, बिल्कुल अनुभवहीन।
परम पूज्य खातिर कहै रे, बात किती संगीन।।

२३. स्वास्थ्य-लाभ कर पूज्यजी रे, करसी गण-संभाल।
हरसी भ्रम संसार रो रे, शासन-भाल विशाल।।

---

१. सरदारशहर-निवासी

२. गंगाशहर-निवासी

३. देखें प. १ सं. ४६

४. हरखचंदजी भादाणी (डूंगरगढ़)

५. बड़नगर-निवासी

२४. अश्विनि-ईशर बीच में रे, अन्तर पड़्यो अथाग।
आखिर प्रगटी सत्यता रे, बढ़्यो विपुल अनुराग[1]।।
२५. रहतां चवदह दिन हुया रे, करणो अबै विहार।
भिलवाड़ै रा मानवी रे, ऊभा बांध कतार[2]।।
२६. हालत नहीं विहार री रे, अठै करो चौमास।
नहीं व्यवस्था में कमी रे, रहसी दृढ़ विश्वास।।
२७. प्रत्युत्तर श्री पूज्य रो रे, नहीं और कुछ भार।
करणो पावस मैं कर्‌यो रे, गंगापुर स्वीकार।।
२८. जब लग शक्ति शरीर में रे, स्वल्प मात्र पिण शेष।
तब लग वचन निबाहणो रे, ओ कर्तव्य विशेष।।
२९. तीज शुक्ल आषाढ़ की रे, कायिक कष्ट उवेख।
शुभ प्रस्थान कियो गुरू रे, सत्पुरुषां री टेक।।
३०. अति वंकट संकट सही रे, मारग लंघ्यो नाथ।
सकरुण विवरण पन्थ रो रे, लिखतां कांपै हाथ।।
३१. एक हाथ तो नाथ को रे, व्रण-वेदन में व्यस्त।
एक शिष्य-खांधै धरै रे, अंग अधिक अस्वस्थ।।
३२. निज निजरां मैं झांकियो रे, गुरु-अनुपद चालंत।
साक्षात द्रष्टा दिल कहै रे, हन्त! हन्त! हा हन्त!!
३३. मारग है मेवाड़ रो रे, पग-पग-तल पाषाण।
स्थानाभाव स्वभाव स्यूं रे, लघु ग्राम अहलाण।।

दोहा

३४. 'बिलियो' मिलियो धुर मजल, 'पुर' पुर में विश्राम।
मुजरो है 'मुजरास' स्यूं, गुड़ल्यो 'गुड़लां' ग्राम।।
३५. कारो 'कारोई' म कर, दुवा 'दुवालां' मोण।
एक रती बिन 'सोरती', स्याणी! कहसी कोण।।

---

१. देखें प. १ सं. ४७
२. भीलवाड़ा के जैन जैनेतर सभी लोगों ने वहां चातुर्मास करने का अनुरोध किया।

करारो कुटिल वेदनी कर्म।

३६. नामां स्यूं आंकीजसी रे, गामां री स्थिति साफ।
सुद ग्यारस आषाढ़ की रे, अन्तिम मंजिल आप।।

३७. गंगापुर है सामनै रे, अन्तराल है रात।
धन्य-धन्य शासनधणी रे, खूब निभाई बात।।

३८. ढाळ सोळमी आ सुणो रे, ओ पंचम उल्लास।
पूज्य-मनोबल नै कहूं रे, लाख-लाख स्याबाश।।

कलश छन्द

३९. उदयपुर दीक्षा-महोत्सव[१], राजनगर-पदार्पणम्[२]।
प्रांत मालव सघन-विहरण[३], विविध-नगर-निदर्शणम्[४]।
मेदपाट पुनः समागम[५], वेदनाविर्भावनम्[६]।
ढाळ सोळह छव कला उल्लास पंचम भावनम्।।

शिखरिणी

विहारस्यालस्यं हरतु सततं संयतिगणाद्,
सतां स्फूर्तिं नव्यां वितरतु च देशाटनकृते।
व्रते बाढ़ं दाढ्र्यं दिशतु न जरित्वे शिथिलता-
मुपान्त्योल्लासोऽयं सफलयतु वक्तुश्च हृदयम्।।

यह उपान्त्य (अंतिम से पूर्व का) उल्लास मुनिजनों की विहार (यात्रा) के प्रति होने वाली अलसता को दूर करे, देशाटन के लिए उनमें नई स्फूर्ति भरे, व्रतों में दृढ़ता का वर दे, वृद्धावस्था में शैथिल्य न आने दे और कवयिता के हृदय को कृतार्थ करे।

उपसंहृतिः

आचार्य-तुलसी-विरचिते श्री-श्रीकालूयशोविलासे

१. उदयपुर-चतुर्मासान्तर्गत-पंचदश-भागवती-दीक्षा-महोत्सव-विवरण....
२. ततो विहृत्य राजनगरे समुदितानां परःशतानां साधु-साध्वीनां वार्षिक-व्यतिकरं समापृच्छ्य याथायथमुपालम्भ-वर्धापन-पुरस्सरं तदुत्साहविवर्धन...
३. मालवदेशं प्रति श्रीआचार्यमहोदयानां परमया सकरुणया दृष्ट्या पादार्पण-नीमच-जावद-रतलामादिपुरप्रादुर्भूतं द्वेषदावानलं शमथ-सलिलेन प्रशमय्य च बड़नगरे मर्यादामहोत्सवाभिमण्डन...

लयः खिम्यावंत जोय भगवंत रो

४. उज्जैन-इन्दौरादिनगरेषु यथावसरं स्थितिं विधाय तन्नगराणां सांस्कृतिक-विविध-दृश्य-निदर्शन...

५. विरहव्यथाकुलानां मालव-मेदिनी-निवासिनां श्राद्धानां चातुर्मासिकी-सेवा- प्रदानेन मानसीं तृप्तिं विधाय मेदपाटप्रदेशे पुनरागमन...

६. वामहस्ते तर्जन्यंगुलौ अतिभीषणव्रणवेदनाविर्भावन-शिष्यकरेण तद्विपाटन, शान्तचेतसा तद्व्यथाभिसहनरूपाभिः षड्भिः कलाभिः समर्थितः षोडशगीतिकाभिः संदृब्धः समाप्तोऽयं पंचमोल्लासः।

षष्ठ उल्लास

यस्य प्रतापतपनो भुवनाद्भुताभो,
नोदेति नास्तमयते न तमोऽभिगम्यः।
रात्रिंदिवं स्वकिरणैः प्रपुनाति विश्वं,
तं मूलसूनुमनिशं मनसा स्मरामि।।

जिनका प्रताप-सूर्य विश्व में अद्वितीय प्रभा से परिपूर्ण है। जो न उदित होता है, न अस्त होता है और न अन्धकार से पराभूत होता है। जो अपनी रश्मियों से अहर्निश विश्व को पावन करता रहता है, मैं उन मूलसूनु—श्री कालूगणी की मनोयोगपूर्वक सतत स्मृति करता हूं।

मंगल वचन

दोहा

१. परमारथ प्रतिपथिक हित, पाप-पान्थ-पलिमन्थ।
जयतु-जयतु जगती-तले, त्रैशल तेरापंथ।।

जो परमार्थ के प्रत्येक पथिक के लिए हितकर और असदाचार-पंथ के पथिक के लिए प्रतिरोधी है। वह त्रिशलानंद वर्धमान का अनुगामी तेरापंथ इस धरा पर विजयी बने, विजयी बने।

२. पंच याम प्रांगण सघण, कुट्टित मणि-वैडूर्य।
प्रतिपल प्रोद्भासित करै, सजग संघपति सूर्य।।

वैडूर्यमणि से जड़ित पांच महाव्रत रूपी सघन प्रांगण को जागरूक संघपति सूर्य प्रतिपल प्रकाशित करता है।

३. अनणु-अणुव्रतमय वितत, प्रस्फुट है फुटपाथ।
उभय पास शुभभा समन, व्रतिगन विटपि-व्रात।।

उसके महाव्रत और अणुव्रत रूपी दो विस्तृत और प्रस्फुट फुटपाथ बने हुए हैं। उसके दोनों पार्श्वों में कल्याणी आभा और पवित्र मनवाले साधु और श्रावक रूपी वृक्षसमूह लगा हुआ है।

४. कलि-करेणु प्रक्षिप्त यदि, हो रज-रेणु-रबाब।
तो दुर्जन प्रस्तुत सतत, करधृत खलपू छाब।।

यदि कलिकाल रूपी हाथी के द्वारा रज-रेणु का समूह प्रक्षिप्त हो तो दुर्जन व्यक्ति हाथ में बुहारी और छाब लेकर उसकी सफाई के लिए सदा तैयार रहते हैं।

५. करुणा सौख्य समुन्नती, है जुग भेद भिदन्त।
जयतु-जयतु जगती तले, त्रैशल तेरापंथ।।

जिस त्रिशलानंद वर्धमान के अनुगामी तेरापंथ ने करुणा, सुख और समुन्नति के दो-दो भेद बतलाए हैं, वह तेरापंथ विजयी बने, विजयी बने।

६. जिन-अनुपस्थिति में यतो, तेरापथ विस्तार।
सकल संघ पर भिक्षु रो, कोटि बार आभार।।

तीर्थंकर की अनुपस्थिति में जिससे तेरापंथ का विस्तार हुआ, उस भिक्षु का सकल संघ पर कोटि-कोटि आभार है।

७. जब लों आत्मप्रदेश में, संविद को संचार।
प्रथित रहो तब लों तरुण, तेरापंथ-प्रचार।।

जब तक आत्मप्रदेश में संवित/ज्ञान या संवेदन का संचार है, तब तक तेरापंथ का प्रचार तरुण अवस्था में प्रथित होता रहे—विस्तार पाता रहे।

८. सुमरि-सुमरि पल-पल घरी, तेरापंथ-पथेश।
अब छट्ठे उल्लास री, रचना रचूं सुवेष।।

मैं तेरापंथ के अधिनायक पूज्य कालूगणी का हर घड़ी और हर पल स्मरण कर छठे उल्लास की सुंदर आकार वाली रचना कर रहा हूं।

ढाळः १.

दोहा

१. अष्टमपट-अधिदेवता, करण चरम चउमास।
कायिक कष्ट उवेख नै, गंगापुर सोल्लास।।
२. श्रमणसंघ रा अप्रतिम, अनुपमेय आचार्य।
कालू करुणाम्बुधि सविधि, समवसर्‌या अविकार्य।।

[1]गंगापुर गुरु आया।

गंगापुर गुरु आया, लुभाया मधु मधुकर ज्यूं नर-नारी,
जी कांइ मधु मधुकर ज्यूं नर-नारी।
चंद चकोरां मोरां घन ज्यूं, निशिदिन बाट निहारी।।

३. शुक्लाषाढ़ द्वादशी दिवसे, भास्कर प्रहर चढ्यो भारी।
जी कांइ भास्कर प्रहर चढ्यो भारी।
अमृत-सिद्धि योग में स्वामी, सझी सजोरी असवारी।।
४. लोक हजारां खड़्या बजारां, च्यारां ओर छटा छारी।
अंबर में घन-घटा अटारी निरखै निजर्‌यां कृषिकारी।।
५. कालू ललित ललाट थाट, महिमा विराट है मुखड़ा री।
चळचळाट कर चेहरो चळकै, पळकै प्रबल प्रभाधारी।।
६. ब्रह्मचर्य रो ओज, मनोजां की-सी मूरत मनहारी।
श्वेत केश शिर श्वेत वेष, साकार सुकृत-सुषमा सारी।।
७. गमन-योग-संगत शाश्वत-पथ, गणिवर गयवर-गतिचारी।
सामय अंग निरामय-सो बण, बण्यो सहजता-सहचारी।।
८. संग अभंग श्रमणगण शोभै, अगणित श्रावक अनुचारी।
'खमा-खमा' सामूहिक ध्वनि स्यूं, ध्वनित धरा धरणीधारी।।
९. मधुर कंठ में मधुर गीतिका, मेवाड़ी-महिलावां री।
सुणतां रूं-रूं ठरै, भरै मन सारै पथ में संचारी।।

१. लय : नाहरगढ़ ले चालो

१०. देख एकता गण-गणपति में, चक्रबंधु अरु चकवा री।
लोचन में रोचनता प्रगटी, विघटी भ्रमता जनता री।।
११. प्रवचन-मंच जलूस सभा में, परिणत विधिवत विस्तारी।
सुस्वागत स्वागत अभ्यागत! सारी नगरी आभारी।।
१२. एक घड़ी भर झड़ी लगाई, सरसाई जन-मन-क्यारी।
वनमाली री बजी बांसुरी, फूली फली कुसुम-वारी[1]।।
१३. गंगापुर रा भाग्य सुरंगा, गंगा आई घर-द्वारी।
मल-मल न्हास्यां पाप मिटास्यां, पास्यां शिव-सुख संसारी।।
१४. 'रंग-भवन' में रंग लग्यो अब, ऋतु पावस री रिझवारी।
रंगलालजी हिरण लह्यो, शय्यातर रो लाहो भारी।।
१५. चतुर्विंशती व्रती साथ में, सप्तविंशती सतियां री।
सेवा साझै गुरु-तन काजै अपणो तन-मन दै वारी।।
१६. चल्या उदयपुर स्यूं गंगापुर पहुंच्या शासण-अधिकारी।
यात्रा हुई आठ सौ माइल, नूतन रचना निरधारी।।
१७. पुर-प्रवेश अखिलेश विवर्णन, पहली ढाळ परम प्यारी।
'तुलसी' गुरु-गौरव सह तुलसी, कालू करुणा-दृग डारी।।

कलश छन्द

१८. गच्छपति अति स्वच्छमति पावस तिराणू साल रो,
करूयो गंगापुर नगर चिंतन गहन गणपाल रो।
स्वल्प संख्या में श्रमण-श्रमणी रख्या निज पास में,
मैं करी अभ्यर्थना गुरु-चरण दृढ़ विश्वास में[2]।।
१९. छत्तीस अरु पच्चास सिंघाड़ा बहिर विचरण करै,
गुरु-आण-काण प्रमाण कर भंडार शासण रो भरै।
इकचाल ऊपर एक सौ, चौतीस ऊपर तीन सौ,
मुनि साहुणी रो संघ में सुंदर सुरंगो सीन-सो।।

---

१. देखें प. १ सं. १६
२. देखें प. १ सं. ४८

ढाळः २.

दोहा

१. अब पावस-प्रारंभ में, आयो श्रावण मास।
जलधर जलभर वृष्टि स्यूं, पायो घाम प्रवास।।
२. पचरंगी सतरंगियां आदि तपस्या और।
घर-घर में छाई सघन, वन-वन नाचै मोर।।
३. च्यारूं तीरथ में तरुण, अतुलनीय उत्साह।
झांक्यां आंख्यां बन्द है, सुगुरु-स्वास्थ्य री राह।।
४. अभिमत रूप मिल्यो नहीं, पथ में उचित इलाज।
बढ़तो-बढ़तो ही गयो, भीतर व्रण रो राज।।
५. हर्‍यो घाव मधुमेहमय, भर्‍यो न सहज प्रयोग।
नाना रूपां विस्तर्‍यो, तर्‍यो न जावै रोग।।
६. अन्न-अरुचि अरु अंग में, सूक्ष्म-ज्वर सातत्य।
यकृत-विकृति खांसी श्वयथु, तन-दुर्बलता तथ्य।।
७. एक ग्रास भी वदन में, लेतां हुवै उबाक।
व्रण-वेदन गुरु-गात में, खूब जमाई धाक।।

[1]आज म्हांरै गुरुवर रो लागै अंग अडोळो।
सदा चुस्त-सो रहतो चेहरो सबविध ओळो-दोळो।।

८. कुण जाणी व्रण-वेदन बेरण दारुण रूप बणासी,
सारै तन में यूं छिन-छिन में अपणो रोब जमासी।
ओ उणिहारो रे जाबक पड़ग्यो धोळो।।
९. दूर पंचमी-समिती जातां आई है निबळाई,
चलता लंबी-लंबी डग भर अब काया कुम्हळाई।
दिल बिलखावै रे खावै हियो हिलोळो।।
१०. प्रवचन-मण्डप में प्रतिवासर सुधावर्षिणी वाणी,
सहज सुणाता मन उलसाता भवि-सौभाग्य-निशाणी।
मूक उपासन रे कर-कर अब अघ धोलो।।

---

१. लय : कुंथु जिनवर रे!

११. चित चिंतवता इण चोमासे अद्‌भुत लाभ उठास्यां,
सूत्र भगवती गुरु-मुख सुणस्यां प्रश्न-पडुत्तर पास्यां
रह्यो अधूरो रे दिल रो दिल में डो'ळो।।
१२. सेवार्थ्यां नै अवसर दे दे हर्‌या-भर्‌या कर देता,
पूछताछ कर आश पूर कर सारां री सुध लेता।
दुर्लभ बणग्यो रे अब ओ रतन-कचोळो।।
१३. है बेकार चिकित्सा-पद्धति देशी और विदेशी,
अब लों श्री कालू-शरीर पर असर नहीं कम-बेसी।
बारीकी स्यूं रे कोई आय टटोळो।।
१४. अथवा ओ एकांत क्षेत्र नहिं मिलै भिषगवर भारी,
उच्चस्तर डाक्टर की भी नहिं सुविधा संशयहारी।
भारी भरकम रे जिनदर्शन रो चोळो।।
१५. आयुर्वेदाचार्य आर्य यदि रघुनंदनजी आवै,
सुगुरु-शरीर-चिकित्सा रो सारो दायित्व उठावै।
तो मनचाह्यो रे होवै काम सतोलो।।
१६. खबर मिली बेतार-तार स्यूं जाणक दोड़्या आया,
देख आशुकविरत्न च्यार तीरथ रा दिल उलसाया।
ल्यो अब पंडितजी! 'सुश्रुत' 'चरक' फरोळो।।
१७. रघुनंदनजी मन घन-विस्मय कायिक-कृशता देखी,
बो गजेन्द्र-सो गात सुगुरु रो अतिशायी उल्लेखी।
भावुक भावे रे दीठो हाथ-फफोलो।।
१८. राहु-ग्रसित चांद-सी छाया आ काया कोइ माया,
अधम रोग कुण लग्यो नरोत्तम! थोड़ो तो समझाया।
छोगां-जाया! रे मैं तो रह्यो अबोलो।।
१९. अखिल त्रिलोकी रही विलोकी तुझ तनु निजर टिकायां,
रहो निरामय नाथ! सुधामय जंगम सुरतरु-छाया।
सन्त तुलै नहिं रे हीरां रतनां तोलो।।
२०. मगन हकीगत बिगतवार सब शांतमना संभळाई,
'जावद' जेठ बदी दशमी स्यूं 'गंगापुर' अब तांई।
अब जो करणो है सविध विबुधवर! बोलो।।

२१. नेत्र-निरीक्षण नाड़ि-परीक्षण कर निदान शुभ कीधो,
अनुभव रै आधार स्वयं उपचार शुरू कर दीधो।
दूजी ढाळे रे ज्ञान-ग्रंथियां खोलो।।

ढाळः ३.

दोहा

१. जड़ जनता में जोर स्यूं, उठ्यो बवण्डर एक।
हिरणां री हेली तजै, जो स्वामी सुविवेक।।
२. बीमारी सारी कटै, कंचन हुवै शरीर।
क्यूं कि हवेली में बसै, जक्ष जोगणी वीर।।
३. आज हुयो कोई कहै, सपनै में दरसाव।
पित्तर मूंढै बोलिया, अद्‌भुत बण्यो बणाव।।
४. साची घटना रात री, निचलै तलै सुजाण।
बेठ्यो ही मानव गुड़्यो, देव-प्रयोग पिछाण[1]।।
५. कुण जाणै क्यूं विस्तरी, मूंढै-मूंढै बात?
राक्षस भूत पिशाच री, हुई कठै शुरुवात।।
६. भयभ्रांत कइ जन बण्या, कहै पूज्य पे आय।
जगन्नाथ! बदलो जग्यां, सरल स्वास्थ्य-सदुपाय।।
७. पूज्य कहै पागलपणो, जनता है अणजाण।
इसी बिना सिर-पांव री, बात करै अति ताण।।
८. भूत-पलीत-विभीषिका, सहस्यां खूब सताब।
पर शय्यातर गेह री, नहीं घटावां आब।।
९. रहणो इण ही स्थान में, दुख-सुख कर्मज जाण।
व्यावहारिक उपचार-पथ, पंडित[2] करै प्रयाण।।

---

१. बीकानेर निवासी जवाहरमलजी कोठारी सामायिक कर रहे थे, नींद आने के कारण वे लुढ़क गए, लोगों ने उस घटना को देव-प्रयोग के रूप में स्वीकार किया।
२. आयुर्वेदाचार्य पंडित रघुनंदनजी

[1]आयुर्वेदी उपचार।
करै रघुनंदनजी सुविचार रे, अविकार रे।।

१०. यथारोग भैषज्य-विधायी, शास्त्राध्यायी अनुसन्धायी।
अनुभव विभव निधान निखालिस, निज हुन्नर में हुशियार रे।।
११. उदर-व्याधि मूल कर मानी, मन्दाग्नी भी रही न छानी।
ज्वर-वैषम्य रु सूकी खांसी, सारै तन शोथ-प्रसार रे।।
१२. पूरी क्रिया न यकृत करै है, खायो अन्न न जरा जरै है।
अति उबाक अरु उदर-वृद्धि भी, है विभीषिकाकार रे।।
१३. घाव भरै नां बांयै कर रो, कुण जाणै व्रण किसै कदर रो।
बिच में आ मधुमेह जुड़ै है, हा! बढ्यो कितो परिवार रे।।
१४. विविध औषध्यां है प्रारंभी, कम मात्रा पर अवधी लंबी।
सींचै नित गोमूत्र उदर पर, पथ्य तथ्य आधार रे।।
१५. बड़ी कीमती चढ़ी दवायां, पंडित-प्रतिभा की परछायां।
सूक्ष्म-परीक्षण सदा-सदा कर, सायं और सवार रे।।
१६. सेवाभाव श्रमण-श्रमण्यां रो, अविश्राम इंगित बहणां रो।
अर्थहीन सब जब लग गुरु रो, हुवै न स्वास्थ्य-सुधार रे।।
१७. दिन ऊपर दिन निकळ्यां जावै, कोई दवा काम नहिं आवै।
सारो प्रयतन पंडितजी रो, 'भस्मनि हुत' अनुकार रे।।

चौपई छन्द

१८. औषध पथ्य सेव सेवार्थी,
प्रतिपल करै संत परमार्थी।
पर अबलों नहिं राई-पाई,
स्वास्थ्य-सुधार-दिशा दरसाई।।
१९. रोग-निदान नहीं पकड़ीज्यो,
या कोइ औषध गलत दिरीज्यो।
क्यूं न चिकित्सा रोग हरै है?
पंडितजी मन सोच करै है।।

१. लय : यह तेरापंथ महान

२०. समुचित पेय न प्यास मिटावै,
भोज्य मनोगत भूख बढ़ावै।
दीप जळै पर तम ज्यूं को त्यूं,
बड़ी समस्या आय खड़ी क्यूं।।

२१. अगदंकार इसो न पड़ोसी,
मानस - आशंका - परिमोषी।
परामर्श भी ल्यूं तो कीं स्यूं,
शांत नहीं जिज्ञासा जीं स्यूं।।

२२. छोटा-मोटा वैद्य-हकीमां,
बणै न काम लांघगी सीमा।
संतां साथ विमर्षण कीधो,
सुंदर-सो इक निर्णय लीधो।।

२३. राजवैद्य जयपुर रा वासी,
लच्छीराम नाम विश्वासी।
दादू-पंथ-संत संता रा-
भक्त, प्रबुद्ध वैद्य-विद्या रा।।

२४. यदि संभव हो तो बै आवै,
साक्षात रोग-परख कर पावै।
सहज्यां परामर्श हो ज्यावै,
चिंतन की सुस्ती सो ज्यावै।।

२५. सारी स्थिति पत्रांकित कीधी[1],
संस्कृत भाषा सादी-सीधी।
गोठीजी[2] जयपुर चल आया,
पूर्ण-चौपड़ा[3] साथी पाया।।

[4]आयुर्वेदी उपचार।

२६. पहुंच्या प्रवर चिकित्सालय में, स्वामीजी[5] रै नियत निलय में।
कर प्रणाम कर सूंप्यो कागज, रघुनंदन रो उपहार रे।।

---

१. देखें प. १ सं. ४६
२. वृद्धिचंदजी गोठी, सरदारशहर
३. पूर्णचंदजी चौपड़ा, गंगाशहर
४. लय : यह तेरापंथ महान
५. राजवैद्य लच्छीरामजी

२७. पढ़्या विबुधवर श्लोक रच्योड़ा, समुचित रेखाचित्र खच्योड़ा।
पूज्य-व्याधि रो पूरण विवरण, है प्रकरण साक्षातकार रे।।
२८. गंगापुर आणै में अक्षम, रच्या श्लोक षट[1] लक्ष्मी[2] सक्षम।
बन्द लिफाफै गोठीजी-कर पहुंचाया विशद-विचार रे।।
२६. पत्र खोल पंडितजी[3] बांचै, अक्षर-अक्षर हारद खांचै।
स्वीकृत पद्धति स्वमुख सराही, श्री दादू-शिष्य[4] उदार रे।।
३०. पुनरपि उत्साहित कविवरजी[5], सबल सजोश चिकित्सा सरजी।
उलट-पलट कर पुनि-पुनि औषध, त्यूं पथ्य-प्रबंध प्रचार रे।।
३१. सूकी खांसी सदा सतावै, चमत्कार इक बार दिखावै।
अरडूसा कै साथ दवा स्यूं, है कास-वेग बेकार रे।।
३२. क्षणिक शांति निशि निद्रा आई, म्हांरी रोम-राजि विकसाई।
ढाळ तीसरी षष्ठोल्लासे गुरु 'तुलसी' तारणहार रे।।

ढाळः ४.

दोहा

१. चाल शहर-सरदार स्यूं, आयो डॉक्टर श्याम[6]।
पूज्य अंग री गतिविधि, देखी प्रातः शाम।।
२. और चिकित्सा-क्रम स्वयं, पंडितजी रो पेख।
निज अनुभव आधार पर, करै स्वयं उल्लेख।।
३. सुंदर स्यूं सुंदर चल्यो, आमय रो उपचार।
रघुनंदन नै दाद दी, डाक्टर बारंबार।।
४. पर असाध्यता में गयो, श्री-शरीर रो रोग।
कठिन कठिनतर कठिनतम, होवै अंग अरोग।।

---

१. देखें प. १ सं. ५०
२. राजवैद्य स्वामी लच्छीरामजी
३. आशुकविरत्न पंडित रघुनंदनजी
४. राजवैद्य पंडित लच्छीरामजी
५. आशुकविरत्न पंडित रघुनन्दनजी
६. डॉ. श्यामनारायणजी

५. स्थान-स्थान स्यूं और भी, आया डाक्टर वेद।
पिण किण ही दीन्ही नहीं, तन-आरोग्य उमेद।।
६. यूं करतां श्रावण बदी, अमावसी रै बाद।
पंचमि-समिति पधारणो रुक्यो, न रुक्यो विषाद।।
७. सावण सुद दशमी निशा, मुझ स्यूं रामचरित्र।
शुरू करायो स्वामजी, सुणता स्वयं विचित्र।।
८. चल्यो हुसी दो तीन निशि, मैं रोक्यो स्वयमेव।
अति महंगी गुरु-चरण री, नहिं छोड़ीजै सेव।।

[1]बात सुणो अति विरह री।
मति करज्यो दिलड़ो दिलगीर क।।

९. दिन-दिन दुर्बलता बढ़ै, पीड़ा-पीड़ित पूज्य शरीर क।
तो पिण प्रवचन आदि रो, नहिं छोड़ै श्रम सुगुरु सधीर क।।
१०. विनवै शासणनाथ स्यूं, विनयी शिष्य जुगल कर जोड़ क।
अतिश्रम आंवत-जावतां, जीवन-प्राण! हुवै जी-तोड़ क।।
११. जब लग आमय अंग में, तब लग आप रखावो माफ क।
यद्यपि सब श्रवणोत्सुका, मुनिपति-मुख रो मधुरालाप क।।
१२. हां हां सन्तां! साच है, अंग विरंग हुवै अणपार क।
पिण व्याख्यान दियां बिना, पुर-पुर प्रसरै बात विचार क।।
१३. आखिर अति दौर्बल्य स्यूं, प्रवचन में पधराणो बन्द क।
मैं उपदेश शुरू करूं, पाछै बांचै मगन प्रबंध[2] क।।
१४. पड़िकमणो दोनूं बखत करता परखद बीच विराज क।
सो पिण है सहज्यां रुक्यो, सूकी खांसी रो सम्राज क।।

दोहा

१५. सुद तेरस तिथि श्रावणी, प्रतिक्रमण व्याख्यान।
परिषद में करणो रुक्यो, बात निजोरी जान।।

---

१. लय : संभव साहिब समरिए
२. वर्धमानदेशना नामक संस्कृत गद्य ग्रन्थ

१६. करता वंदन मगन नै, सदा ज्येष्ठ-पर्याय।
अब जोड़ी स्यूं उतरणो रुक्यो स्वयं निरुपाय।।
१७. अंतिम दिन तक एक पग, जोड़ी स्यूं उत्तार।
करी वंदना मगन नै, ओ आदर्श उदार।।

[1]बात सुणो अति विरह री।

१८. औषध रै उपचार रो, अब लों असर न प्रसर विशेष क।
खिन्न हृदय कविरत्नजी[2], बोलै ले सद्गुरु-आदेश क।।
१९. मैं उद्योग कियो घणो, उलट-पलट औषध-अनुपान क।
बेमाने सारो रह्यो, ओ म्हांरो दौर्भाग्य-निदान क।।
२०. वैद्य-विफलता स्यूं हुवै, जनता में पिण अब आक्रोश क।
अन्वेषण करणो चहै, प्रवर भिषगवर तरुण सजोश क।।
२१. मैं तो हाजर हूं जिस्यो, जद-तद भी गुरु-पद-अनुरक्त क।
दूजै नै पिण देखणो, आग्रह-विग्रह रो नहिं वक्त क।।

कालूगणी उवाच

२२. पंडितजी! क्यूं पांतर्‌या, क्यूं कमजोरी आणी आज क?
क्यूं विरम्या उपचार स्यूं, सुण जड़ जनता री आवाज क?
२३. नियति-हाथ नीरोगता, है उद्यम ही अपणो काम क।
असफलता अरु सफलता, चिंता करणी है बेकाम क।।
२४. म्हांरै हृदय प्रसन्नता, थांरी औषध स्यूं कविराज! क।
अड़क-वैद्य कोई मिलै, तो उपजावै दुगुणी दाझ क।।
२५. पंडितजी प्रमुदितमना, देखी गुरु-दिल दृढ़ विश्वास क।
पेली ज्यूं चालू रख्यो, सहजतया औषध आयास क।।

दोहा

२६. गुरु-भगिनी मासी-सुता, कानकंवर गुणपात्र।
बरसां स्यूं रहतो व्यथित, उदरग्रंथि स्यूं गात्र।।

---

१. लय : संभव साहिब समरिए
२. रघुनंदनजी

२७. राजलदेसर थाणपति, कीन्हो स्वर्ग-प्रयाण।
पांचम बिद पख भादवै, जीवन रो कल्याण।।
२८. पाळ्यो संयम सांतरो, बरस ऊणपच्चास।
बालकाल ब्रह्मचारिणी, सदा हृदय सोल्लास।।
२६. सरस शास्त्र-स्वाध्याय में, सतत राखती जोर।
समभावे वेदन सही, काट्या कर्म कठोर।।
३०. सिंघाड़ो अति दीपतो, आकर्षक व्याख्यान।
नवलां जेठांजी पछै, साध्वीप्रमुखा-स्थान।।
३१. जीते जी नहिं देखियो, भाई-सुगुरु-वियोग।
अति धन्या पुण्या सती, साध्यो सफल प्रयोग।।
३२. गुरुवर स्वमुख प्रशंसियो, पंडितमरण-प्रकार।
म्हांरै आंरै अंग रो, रहतो प्राय विचार।।

[1]**बोलै मगन सघन दिल बेदल विरह-घटा उमड़ाई है।**
ओ लाखीणो लाल लाडलो क्यूं काया कुम्हलाई है?

३३. जावद स्यूं जद स्यूं मैं देखूं तर-तर तनड़ो है छीज्यो,
कुण जाणै किण कारण तारण! कोई कुग्रह है खीज्यो।
अथवा उदय वेदनी जोगे आ आई निबळाई है।।
ओ लाखीणो लाल लाडलो...।।
३४. चूंट चूंट कर चींट्या ज्यूं चिंता निशि वासर चोट करै,
दिन की भूख रात की निद्रा मूक होठ-जुग मौन धरै।
होणहार रै आगै लागै किसी कला-चतुराई है?
३५. शैशव स्यूं ही साथै रहता सहता समय बितायो है,
अब आ जोड़ी नहीं बिछुड़ज्या मन संदेह उपायो है।
भावी भाव केवळी देख्या त्यूं ही होती आई है।।

कालूगणी उवाच

३६. कब स्यूं आ बहमीली आदत आप अनोखी अपणाई,
केवल बहम-बहम कर-कर क्यूं नई कल्पना निरमाई।
म्हांरो है अन्दाज आज भी टळ ज्यासी आ घाई है।।

१. लय : कहनी है इक बात हमें इस देश के पहरेदारों से

मगनमुनि उवाच

३७. फळो जबान आपरी म्हांरो बहम वितथ बण रह ज्यावै,
चिरजीवी बण रहो निरामय ईड़ा-पीड़ा टळ ज्यावै।
ईं स्यूं बड़ी न बात हरस री रूं-रूं खुशियां छाई है।।

३८. जिती बार दुचिताई मगन जताई सांई सहल गिणी,
दिलगीरी दिखलाई तो दृढ़ता की बीच दिवाल चिणी।
बिद भादव आठम-नवमी तांई री आ सहनाई है।।

चौपई छन्द

३९. मगन एक दिन इण दरम्याने,
तेड़ी कहै सकल संतां ने।
वेदन-व्यथित-अंग गुरुदेवा,
आ अलभ्य अवसर री सेवा।।

४०. पढ़णो-लिखणो कमती-बेसी,
जीवन भर होतो ही रेसी।
और काम वैयक्तिक सारा,
साधारण जीवन की धारा।।

४१. मार्मिक मगन-प्रेरणा जाणी,
थोड़ी बात घणी कर माणी।
सारा संत सजगता धारी,
सेवै सुगुरु परम उपकारी।।

४२. जो ही जिणविध जणां जरूरी,
कर उपासना करी सबूरी।
सायं प्रात दिवस-रजनी में,
खण पहचाणै परम खुशी में।।

[1]बात सुणो अति विरह री।

४३. अश्विनि बाबू आवियो जांच सांचवी बलि बहु भांत क।
नवमी दिन मध्याह्न में अवसर आछो लहि एकांत क।।

---

१. लय : संभव साहिब समरिए

४४. जोड़ी पर गुरुवर रजे पार्श्वस्थित है मुनि मगनेश क।
डॉक्टर बेठ्यो सामनै नयणां झरतो जल अनिमेष क।।
४५. गद्गद स्वर अति व्यथिततर बोलै पत्थर-दिल निर्व्याज क।
अकथ-कथा मन की व्यथा म्हांरी आ अन्तिम आवाज क।।
४६. सुकृत-पिण्डित पिंड ओ धर्ममूर्ति धृत-धैर्य-स्वरूप क।
वाम-हस्त-व्रण-योग स्यूं बण्यो विज्ञवर! अधिक विरूप क।।
४७. बाह्याभ्यंतर यंत्र रा लक्षण अब अवलोकत प्राय क।
है संदिग्ध अवस्थिती दीनानाथ! बात निरुपाय क।।
४८. अप्रियतम आ कल्पना करणी कहणी असुख अमाप क।
अणकहियां पिण जो रहूं, स्वाम-द्रोह रो लागै पाप क।।
४९. आगामी अब आपको जो करणो है करो प्रबंध क।
अनुचित अनुभवस्यो नहीं म्हांरो कहणो करुणासिंध! क।।
५०. स्पष्ट मुखर्जी[1] मुख सुणी चिंतनीय है विषय विशेष क।
श्री कालू मन अनुभव्यो चौथी ढाळ नवीन निवेश क।।

ढाळः ५.

दोहा

१. रघुनंदनजी पिण तदा, मगन पास एकान्त।
आ बेठ्या विभ्रान्त-सा, श्रान्त क्लान्त विश्रान्त।।
२. करै नहीं औषध असर, सब प्रयतन बेकार।
भारी चिंता रो विषय, गहरो मन पर भार।।
३. कहै मगन पंडितप्रवर! अनुभव रै आधार।
साफ-साफ क्यूं नां कहो, जो भावी आसार?
४. तर-तर तनु तनुता भजे, उलझै आमय अंग।
को न इलाज सझे अजे, जटिल बिमारी जंग।।
५. प्रांजल-दिल बद्धांजली, बोलै कविवर बाध्य।
स्पष्ट कहूं गुरु-गात में, है उपताप असाध्य।।
६. है केवल उपचार ही, अब करणो उपचार।
धिकसी टिकसी दिन किता? कहणो कठिन करार।।

---

१. डॉ. अश्विनीकुमार मुखर्जी

७. कुंदन चंपक चौथ मुनि, सविनय मगन-समक्ष।
दरसावै गुरुवर-वपु, क्षीण, सत्त्व प्रत्यक्ष।।
८. म्है तो सब निश्चिंत हां, चिंता करस्यो आप।
निश्चित संघ-प्रबंध री, होणी चावै थाप।।

[1]समुचित अवसर शुभ ग्रह-गोचर श्री चरणां में आवै,
विनय सुणावै गुरुकुलवास में, हो वास में हो वास में।।

९. बालगोठिया श्री कालू रा मगन अनुभवी संत,
आगल-पाछल वर्तमान रो सोचै सकल उदंत।
संतपती ज्यूं धीज पतीजै बो ही पथ अपणावै।।
विनय सुणावै गुरुकुलवास में, हो वास में हो वास में।।
१०. जद-तद भी मैं हाजर होकर कीन्ही अरज कृपाल,
बहम आपरो बहम आपरो कहकर दीन्ही टाल।
अब फिर आयो बणूं न कायो साहस सुगुरु बढ़ावै।।
११. खोल्यो हृदय-कवाड़ अश्विनीकुंवर आपणै पास,
रघुनंदनजी पिण दुहराई बा ही बात हताश।
अंग उत्तरोत्तर उत्तर दै गुरुवर गौर करावै।।
१२. जुग-जुग जीवो शासनदीवो पीवो स्नेह अगाध,
श्री मघवा रो लाल लाडलो सदा रहो साह्लाद।
हार्दिक साखां लाखां मानव इसी भावना भावै।।
१३. जिणशासण रो थांरै ऊपर सारो दारमदार,
अखिल विश्व में उद्योतन रो प्रद्योतन पर भार।
कुण दोभागी दंभी दागी बागी स्वास्थ्य न चावै।।
१४. पर दुनियां में चलसी दुनियांदारी रो व्यवहार,
तीर्थंकर भी मोक्ष सिधावै निराधार-आधार।
अन्तर्यामी अब आगामी थोड़ो ध्यान दिरावै।।
१५. नहिं विस्तर में जाणो चाहूं गाणो चाहूं टूंक,
जळ्यो दूध रो बहमी मानव छाछ पिवै दे फूंक।
है माणक-इतिहास सामनै जाणक जागृति ल्यावै।।

---

१. लय : ठुमक-ठुमक पग धरती

१६. कहतां नहिं चिंतन करतां ही टूट पड़ै ज्यूं प्हाड़।
टुकड़ा-टुकड़ा हुवै कळेजो बढ़ै व्यथा री बाढ़।
काळ-रात बा कदे न देखां नियती कोल निभावै।।
१७. अविच्छिन्न ज्यूं रही शृंखला गण री रहै अबाध,
म्हांरे स्यूं बेसी चिंता है गुरुवर! करूं प्रमाद।
जो भी समझो अगलां-बगलां सगलां री रह ज्यावै।।

[1]धन्नां रा जाया! मगन! सुणो म्हांरी बात,
काया री छाया! मगन! सुणो म्हांरी बात।
अन्तरमन रा भाव सुणाऊं, पाऊं परम प्रभात।।

१८. मैं नहिं सोची ओ म्हांरो वपु यूं करसी व्याघात।
अटल अडिग विश्वास-वास में सोयो कल तक रात।।
१६. कोई आकर कुछ भी केतो मन नहिं देतो साथ।
बहमी-बहमी कह्या आपनै भारी मन आघात।।
२०. आज तिथी भादो बिद दशमी स्वयं जची साख्यात।
अब ओ पिंजर पिंड छुड़ासी संशय नहिं तिलमात।।
२१. आप[2] अनुभवी डाक्टर[3] हितकर पंडितजी[4] प्रख्यात।
सही-सही तीनां री कहणी गवा भरै ओ गात।।
२२. अब जलदी स्यूं जलदी करणो भावी संघ सनाथ।
भूलचूक भी नहिं दोहराऊं माणकगणि री ख्यात।।
२३. 'साठ बरस' 'बीदासर-धरती' 'जननी रै उपपात'।
धरी रही सब मन की मन में, गगन भरै कुण बाथ?
२४. शीघ्र-शीघ्र अब काम समेटूं सारो हाथोहाथ।
श्वास करै विश्वासघात यदि फिर तो आथ न साथ।।

[5]समुचित अवसर शुभ ग्रह-गोचर श्री चरणां में आवै।
विनय सुणावै गुरुकुलवास में, हो वास में हो वास में।।

---

१. लय : स्वामीजी! थांरी बा मुद्रा जग ख्यात
२. मुनि मगनलालजी
३. अश्विनीकुमार
४. रघुनंदनजी
५. लय : ठुमक-ठुमक पग धरती

२५. बोलै मगन सतोली बोली किण पर? किणविध ध्यान?
गुप्त लेख लिखणो या करणो युवपद प्रगट प्रदान?
जिण खाह्वै जिण पर शुभ निजर्यां होसी सहज स्वभावै।।
२६. आप किस्यो नहिं जाणो बरसां स्यूं है जिण पर आंख,
थोड़ो सोच-विचार निकेवल नान्ही ऊमर झांक।
शेष वेष तो आंक्यो-चांक्यो नहिं कोइ तुलना ठावै।।
२७. बड़ी उमर रो और दूसरो अगर नजर में नेक,
हाजर करूं हजूर! हुकम हो पूर्वक नामोल्लेख।
म्है तो इंगित रा आराधक साधकता रै दावै।।
२८. नहीं, नहीं है बात और री औरां स्यूं के काम?
निकट निजर में राख्यो निशदिन छिन-छिन 'तुलसी' नाम।
केवल वय री बात कही है, नहीं अन्यथा भावै।।
२९. एकादशी उदीयमान तिथि करणो अब अभिषेक,
मगन कहै करणो चाहीजै शुभ मुहूर्त दिन देख।
बड़ो काम ओ बड़ां हाथ स्यूं मंगल समय सुहावै।।
३०. ज्योतिर्विद स्यूं जांच सांचवी शुक्ल तीज दिन सार,
पूज्य कहै, है लम्बी बेळां रहसी भारी भार।
इक पल रो भी खरो भरोसो इण शरीर रो नांवै।।
३१. अति आतुरता त्वरता लागी मगन करै आश्वास,
प्रबल प्रतापी पुण्यपोरसा म्हांरो दृढ़ विश्वास।
उण ही दिन ओ कारज होसी बाधा-विघ्न मिटावै।।
३२. नीठ-नीठ अधिनायक गण रा मानी मगन-सलाह,
मन निश्चिंत कियो भाद्रव सुद तीज अडीकै राह।
छट्ठे उल्लासे सोल्लासे पंचम ढाळ पुरावै।।

ढाळः ६.

दोहा

१. कमजोरी बेहद बढ़ी, हुयो वपू बलहीन।
स्वयं ऊठणो सोवणो, रुक्यो स्थिती संगीन।।
२. दशमी स्यूं एकादशी, बारस तेरस भाल।
गिणतां-गिणतां एक दिन, चवदस आई चाल।।

३. पूज्य कहै ल्यो मगनजी स्वामी! छीजै देह।
सुदी तीज लग गात्र ओ, शायद दे दै छेह।।
४. मिनट-मिनट भारी पड़ै, पड़ै न चित में चैन।
निज-कर पद-अर्पण करूं, फिर निचिंत दिन-रैन।।
५. मगन, पूज्यवर! आप हो, कर्तापुरुष प्रधान।
ज्यूं ही धारो त्यूं करो, नहीं कहीं व्यवधान।।
६. पृष्ठभूमिका तीज री, आज करो शुरुवात।
तीज आवती दीखसी, बणसी सहज्यां बात।।
७. जची हृदय गुरुराज कै, सचिव-सला साह्लाद।
अमावसी-मध्याह्न में, मुझनै कीधो याद।।
८. सोमवती मावस मिली, 'विजय मुहूर्त' विशेष।
जद हो सद्गुरु शुभ नजर, हाजर सुदिन हमेश।।
९. चौथमल्ल मुनिवर मनै, आकर कियो सचेत।
आ'र आज जल्दी करो, सद्गुरु रो संकेत।।

[1]हां रे शासणनायक री,
मधुरी-मधुरी बोली प्यारी लागै रे, तुलसी!
हां रे बोधविधायक री,
सेवा करतां सुप्त भावना जागै रे, तुलसी!

१०. ठीक सवा ग्यारह बज्यां,
बड़बन्धव चंपक मुझ तेड़ण आवै रे, तुलसी!
याद फरमावै कोमल साद स्यूं,
श्री गुरुदेव दयालू सहज स्वभावै रे, तुलसी!
११. शीघ्र सहोदर साथ में,
मैं सद्गुरु रा चरण-सरोज जुहारूं रे, तुलसी!
नयनानन्दन वंदना,
छोगां-नंदन नै कर रूं-रूं ठारूं रे, तुलसी!
१२. परम पूज्य आदेश स्यूं,
बाहिर साझै चंपक चौकीदारी रे, तुलसी!

---

१. लय : ओळ्यूं

जोड़ी पर पोढ्या गुरु,
मैं बद्धांजलि बैठ्यो विस्मित भारी रे, तुलसी!
१३. धीमै स्वर गुरुवर कहै,
'बेठ्यो कर' तब म्हांरै हाथ सहारै रे, तुलसी!
अश्रुतपूर्व प्रमोद में,
बैठ सुखासन जाणक इमरत झारै रे, तुलसी!
१४. सुण तूं म्हांरी बातड़ी,
बड़ी पीड़ स्यूं म्हांरो तनु पीड़ाणो रे, तुलसी!
वाम-हस्त-व्रण-योग स्यूं,
बण्यो अनेक व्याधियां रो थिर ठाणो रे, तुलसी!
१५. अब संभव लागै नहीं,
ओ शरीर आ ज्यावै सागी चांकै रे, तुलसी!
वैद्य विशारद डॉक्टरां,
झांकी आ ही स्थिति म्हांरो मन आंकै रे, तुलसी!
१६. आज तनै मैं स्थिरमना,
तेड़्यो है एकान्ते भार भुळाऊं रे, तुलसी!
भैक्षव शासण री मता,
ममता क्षमता लै सारी संभळाऊं रे, तुलसी!
१७. सुणतो रहग्यो स्तब्ध-सो,
एक बार तो सहसा सद्गुरु-वाणी रे, तुलसी!
आज अचानक आ स्थिति,
इंयां सामनै आसी कदै न जाणी रे, तुलसी!
१८. क्षण विश्रम श्रमणेश्वरू,
बोलै केवल एक सीख दिल धारी रे, तुलसी!
सजग सदा रहजे सुधी!
ज्यूं कोई नहिं आंकै लघु वय थारी रे, तुलसी!
१६. वय बालक प्रतिभा-बले,
प्रगट प्रौढ़ कहिवावै विभव बढ़ावै रे, तुलसी!
प्रवया शिशु-सवया बणै,
जो विवेक-बल-वृद्धभाव नहिं पावै रे, तुलसी!
२०. बोलत गुरु जब विश्रम्या,
महर-नजर स्यूं रह्या झांकता स्हामै रे, तुलसी!
गहरी बणी गभीरता,

म्हांरी मनःस्थिती कुण क्यूंकर थामै रे, तुलसी!
२१. कहणी कुछ आवै नहीं,
कह्यां बिना पिण रह्यो न जावै म्हां स्यूं रे, तुलसी!
खिण-खिण भर ज्यावै हियो,
अकुलावै बरसावै आंख्यां आंसू रे, तुलसी!

[1]घणो असुहावणो रे, सुगुरु-विरह रो बाण,
घणो अलखावणो रे, सुगुरु-विरह रो बाण।
दहल उठै दिल देखतां रे, करड़ी विरह-कृपाण।।

२२. साहस सकल बटोर नै रे, सिर गुरु-चरणां ठाण।
मैं तब बोल्यो बिलखतो रे, अंतर-व्यथा मिटाण।।
२३. आकस्मिक व्रण-वेदना रे, कर धर तीर-कमाण।
आ प्रगटी इण अंग में रे, विधि जड़ बण्यो अजाण।।
२४. चूर-चूर चितड़ो हुवै रे, क्यूंकर करूं बखाण।
सुणूं निराशा स्यूं भरी रे, जब श्रीमुख री वाण।।
२५. है लाखां री कामना रे, हुवै कोटि कल्याण।
स्वास्थ्य वरो शासण करो रे, हरो जगत-तम भाण!
२६. बहो भार ओ आपरो रे, आप स्वयं भुज-पाण।
अंतर सूरज दीवलो रे, नीरधि और निवाण।।
२७. कदे न कीन्ही कल्पना रे, मैं मन तीरथ-त्राण!
चढ़णो पड़सी आज ही रे, (इण) गुरुतर पद-खरसाण।।
२८. अब लग तो अध्ययन में रे, एक लगन मन आण।
राखी निश-दिन व्यस्तता रे, करी न गहरी छाण।।
२९. पांच मिनट भी पास में रे, बेठ्यो दियो उठाण।
बखत गमा मत कीमती रे, सीख चितार सुजाण!
३०. भावी सपना देखतो रे, रह्यो मोद मन माण।
पिछताणो क्यूं नां पड़ै रे, जो चूकै ओसाण।।
३१. अब प्रसाद मुझ पर करो रे, चाकर पद-रज जाण।
द्यो चरणां री चाकरी रे, अवसर रो अहसाण।।

---

१. लय : हरी गुण गायले रे

३२. सिर धार्‌यो कर आपरो रे, रही न कोई काण।
मन-चिंत्या सारा हुसी रे, गुरु रै पुण्य-प्रमाण।।
३३. मनचाह्यो मोको मिलै रे, सेवा रो इकदाण।
आही अन्तर भावना रे, गुरुवर जीवन-प्राण!

[1]हां रे शासण-नायक री,
मधुरी-मधुरी बोली प्यारी लागै रे, तुलसी!

३४. तब गुरु दै आश्वासना,
जाणक आंसू पूंछै ऊंचै भावै रे, तुलसी!
निज बूथा सारू सझै,
सेवा जिण स्यूं जो सझणी में आवै रे, तुलसी!
३५. अब भी जो म्हांरो बच्यो-
आयुर्बल तो तूं रहसी मुझ पासे रे, तुलसी!
नहिं तो गण रुखवाळसी,
आ पिण म्हांरी सेवा क्यूं न विमासे रे, तुलसी!
३६. धीरज धर मत कायरी,
मन पर ल्या तूं, मंगलमय गुरु भाखै रे, तुलसी!
यूं अंतर आश्वास स्यूं,
प्रोत्साहित म्हांरो मन शम-रस चाखै रे, तुलसी!
३७. दो क्षण रुक निश्वास ले,
बण गंभीर सुगुरु मुझ सम्मुख जोवै रे, तुलसी!
ओ अतिलम्बो आऊखो,
इण युग में नहिं प्राय फलप्रद होवै रे, तुलसी!
३८. जननी छोगां जीवती,
आ असाध्य-सी म्हारै अंग उपाधी रे, तुलसी!
तूं ही अब संभाळजे,
रहै सदा संयम में चित्त-समाधी रे, तुलसी!
३९. माजी री सेवा सझी,
खूमांजी आजीवन खिण-खिण जागी रे, तुलसी!

१. लय : ओळूयूं

सात सत्यां दीजे सही,
सेवा रो मूल्यांकन करै सुभागी रे, तुलसी!
४०. अंतरंग गुरु-शिष्य री
एकतानता अद्‌भुत स्मृति सरसावै रे, तुलसी!
कर-स्हारै पोढावियां,
छट्ठी ढाळ ढळकती रस बरसावै रे, तुलसी!

ढाळः ७.

दोहा

१. सायं पाक्षिक प्रतिक्रमण, मैं करवायो आप।
गुरुवर पोढ्या ही रह्या, समता में चित थाप।।
२. खमतखामणा सकल मुनि, कीन्हा एकण साथ।
घंटा भर रै आसरै, बीती है अब रात।।
३. मगन-प्रार्थना सामयिक, द्यो गुरु! शिक्षा-दान।
यद्यपि बेसत बोलतां, होवै कष्ट महान।।
४. इण बिरियां री सीखड़ी, बड़ी अलौकिक बात।
करुणानिधि! करुणा करो, हे तीरथ रा तात!
५. तुरत विराज्या भित्तितल, शासण रा सिरदार।
उत्तम असुख गिणै नहीं, सम्मुख पर-उपकार।।
६. सकल श्रमण समुदित मुदित, सुणत उदित आह्वान।
बातड़ली तिण रात री, पढ़ो सुणो सुज्ञान!

[1]आ मावस भादूड़ी हो निशि रूड़ी शिक्षा स्वाम री।
खुली चरूड़ी-सी सारां री आंख।।

७. शीघ्र-शीघ्र सब धाया हो, उलसाया श्रमण सुहावणां,
आया आया पाया परम प्रमोद।
सामन्त्रण बतलाया हो, गुरुराया संतां! सांभळो,
म्हांरै सारै जीवन रो अवबोध।।

---

१. लय : चंडाली चौकड़ियां हो

८. दुर्लभ मानव जीवन हो, दुर्लभतर दरसण जैन रो,
दुर्लभतम है तारक तेरापंथ।
अभिनव बहै त्रिवेणी[1] हो, समश्रेणी निज घर आंगणै,
आपां बड़ा सुभागी इण विरतंत।।

९. आदिम-जिन[2] अवतरिया हो, गुणदरिया जाणक जगत में,
भीखणजी स्वामी नामी नयसूत्र।
मूर्तिमान मर्यादा हो, अध्येता शासन-सूत्र रा,
क्रान्ति-प्रणेता नेता अत्र अमुत्र।।

१०. पट भारी[3] ब्रह्मचारी[4] हो, जय-जश[5] मघ माणक मालवी[6],
एक-एक स्यूं बढ़-चढ़ता आचार्य।
क्षण-क्षण करी रुखाळी हो, वनमाळी गणवन की सदा,
ओजस्वी दायित्व बह्यो अनिवार्य।।

११. अब भी जो पद पावै हो, नेतृत्व निभावै संघ रो,
संघ-सुरक्षा हो सर्वोपरि लक्ष।
उन्नत तीरथ-रथ नै हो, समुचित सतपथ में हांकणो,
नहीं राखणो मन में पक्ष-विपक्ष।।

१२. मर्यादा में चालै हो, नहिं टाळै गुरु-आज्ञा अणी,
तिणनै देणो संयम रो आश्वास।
विनयी विज्ञ विवेकी हो, उल्लेखी गण-इतिहास में,
तिण रो कभी न होणै देणो ह्रास।।

१३. जो स्वच्छन्दाचारी हो, अविचारी अविनयि आग्रही,
गण-मर्याद-व्यवस्था-अवगणनार।
पेनी आंखें झांको हो, आंको त्यांरी करतूत नै,
हो सारां को सबल प्रबल प्रतिकार।।

---

१. एक आचार्य, एक समाचारी, एक प्ररूपण पद्धति।
२. भगवान ऋषभ
३. आचार्यश्री भारीमलजी
४. आचार्यश्री रायचंदजी
५. आचार्यश्री जीतमलजी
६. मालव प्रांत में जन्म लेने वाले आचार्यश्री डालचंदजी

१४. प्रायश्चित्त प्रयोगे हो, समझाइस योगे सहज में,
जमै हृदय जदि गण में तो है खैर।
ऐर-गेर ही बोलै हो, नित घोळै जैर जबान में,
तो गणबाहिर करणै में क्यूं देर?

१५. निज कर्तव्य निभाणो हो, भय खाणो घबराणो नहीं,
करतां रहणो चिंतन सदा स्वतंत्र।
ओ भावी गणपति नै हो, संदेश विशेष शुभंकरू,
अब गण-हित ल्यो मूंघामोलो मंत्र।।

१६. वय-नान्हा हो दाना हो, आचारज गणसमुदाय में,
श्रमणी श्रमण श्राविका श्रावक सर्व।
एक भाव दिल राखो हो, मत भाखो व्यंग-विनोद में,
एक शब्द भी सह आक्रोश सगर्व।।

१७. आण अखंडित तिण री हो, आपंडितमरण बहो मुनी,
खंड-खंड हो ज्यावै चाहे प्राण।
रहणो गुणमणिमंडित हो, दिल दंडित क्यूं करणो कहीं?
सद्‌गुरु-शरणो छंडित छद्‌म छपाण।।

१८. सावधान साधन में हो, बाधन में विषय-विकार नै,
आराधन में प्रतिपल जो व्रतिराज।
शासण शोभै बां स्यूं हो, बै शासण स्यूं शोभै सदा,
दोन्यां स्यूं महकावै मनुज-समाज।।

१९. गण गणिवर स्यूं गणिवर हो, गण स्यूं ही लागै दीपता,
गण-गणिवर स्यूं दीपै जिनवर-धर्म।
तारक तारकपति स्यूं हो, तारकपति तारक-संघ स्यूं।
तारकपति-तारक स्यूं गगन समर्म।।

२०. अक्षर-अक्षर वाणी हो, गुणखाणी श्री गुरुदेव की,
अंकित जाणी रूं-रूं आत्म-प्रदेश।
मुनिवर योजितपाणी हो, सुण माणी मोजां सांतरी,
बीं बेळां रो अब तो सुमरण शेष।।

२१. धन्या ते कृतपुण्या हो, जो मुनिवर मावस-यामिनी,
साक्षात लीन्हो शिक्षा-रस-आस्वाद।

ढाळ सातवीं कलना हो, संकलना भावां री करी,
मूल मूल अनुवाद अंत अनुवाद।।

ढाळः ८.

दोहा

१. बद्धांजलि मुनि मगनजी, सब संतां रै साथ।
कृतज्ञता ज्ञापित करै, की करुणा गणनाथ!
२. प्रबल असातावेदनी-ग्रसित आपरो गात।
तो पिण आ अनुशासना, गहरी गौरव बात।।
३. जुग-जुग रहसी जीवतो, इण निश रो इतिहास।
तनु अशक्तता अवगणी, जो कीन्हो आयास।।
४. देव दयालू नहिं हुयो, अब लों अन्तस्तोष।
तोष-पोष पायां बिना, रहै न मन खामोश।।
५. भैक्षवगण रो सामनै, है अति मोटो काम।
अब तक फरमायो नहीं, श्रीमुख किणरो नाम।।
६. मोघम में शिक्षा सकल, अकल-सरूपी आप।
दीन्ही पिण कीन्ही नहीं, चोड़ै किणरी थाप।।
७. अगर महरवानी करो, हरो व्यथा दिल-व्याप्त।
वरो स्वास्थ्य फिर उद्धरो जन-जीवन पर्याप्त।।

[1]किण रै मन रो जाण्यो कद हुवै रे लाल।
ओ तो आयुः कर्म कराल, आवै कणां कठां स्यूं चाल।
मानव घड़ै मनोरथमाल, पिण ओ खिण में करै विहाल।।

८. बोलै श्री कालूगणी रे, सुणतां श्रमण-समाज।
आज किंयां करणै सकूं रे, जो बांध्यो अन्दाज।।
९. रीत-भांत जाणै नहीं रे, मुनि साम्प्रतकालीन।
किणविध युवपद दीजिए रे, शिष्य-चतुरता चीन।।

१. लय : बोले बालक बोलड़ा रे

१०. युवाचार्य-आचार्य रो रे, पारस्पर व्यवहार।
त्यूं समाज-युवराज रो रे, साचै शिष्टाचार।।
११. पड़ी पुराणी बातड़ी रे, करणै हेत नवीन।
म्हांरै मन री भावना रे, आखूं सुणो अदीन।।
१२. साठ बरस पूरा हुयां रे, कर यात्रा संपन्न।
करणै री जो धारणा रे, निज मन में प्रतिपन्न।।
१३. थळी देश बीदाण में रे, छोगांजी रै पास।
अधिकृत रूप समर्पतो रे, पद युवराज प्रकाश।।
१४. श्रमण-सती श्रावक सभी रे, प्रकट देखता दृश्य।
अभिनव रचना संघ की जो, बरसां रहि अदृश्य।।
१५. जय-मघ मघ-माणक समै रे, जो बर्त्यो बरतार।
परतख रूप दिखावतो रे, आनन्दित अनपार।।
१६. अंगस्थिति अवलोकतां रे, ओ तो दुष्कर कार।
धोरां धरती 'मां'[1] रही रे, म्है बेठा मेवाड़।।
१७. दर्दनाक सुण बातड़ी रे, संत हुया दिलगीर।
कइयां री छाती छळी रे, ढळक्यो नयणां नीर।।
१८. प्रबल पुण्य रा पोरसा रे, श्री कालू प्रख्यात।
मनचिंती नहिं कर सक्या रे, ओरां री के बात।
१९. अतुलबली दुर्बल हुवै रे, इण आयुष्य समक्ष।
रोक सक्या नहिं वीरजी रे, भस्म-ग्रह प्रत्यक्ष।।
२०. भणै श्रमणगण साच ही रे, बिंयां करो थिर थाप।
जिंयां जठै धारो बठै रे, पुरुषोत्तम हो आप।।
२१. थळी देश में जो रळी रे, करणी कर्‌यो विचार।।
अठै करो मेवाड़ में रे, सीझै सारा कार।।
२२. पूज्यप्रवर पभणै सही रे, आछो अवसर देख।
सकल काम करणो अठै रे, लिखणो है त्यूं लेख।।
२३. कल तक तो कहतो रह्यो रे, मोघम में मैं बात।
आज प्रगट प्रत्यक्ष में रे, कीन्ही है शुरुवात।।
२४. आ'र पछै मध्याह्न में रे, मैं उणनै एकान्त।
तेड़्यो, कहणै रो कह्यो रे, अंतरंग वृत्तांत।।

---

१. मातुश्री छोगांजी

२५. **जो भी है बाकी बची रे, कहणी लिखणी शेष।**
सो कहस्यूं लिखस्यूं बली रे, अब तो रही न रेस।।
२६. जो मुझ स्यूं न लिखीजसी रे, तो बो[1] लिखसी भाल।
मैं तो मेहनत प्राय ही रे, म्हांरी दीन्ही टाल।।
२७. इत्यादिक बातां भली रे, गणप्रबंध रै हेत।
स्वाम अमावस-यामिनी रे, भाखी सकल सचेत।।
२८. हर्‌या भर्‌या मनड़ा ठर्‌या रे, सुणी सीख बड़भाग।
सघन घनाघन-वृष्टि स्यूं रे, विकसित सारो बाग।।
२९. कहै मगन—अब पोढ़िए रे, आज किया अति क्लांत।
पण सारां रा मन हुआ रे, घी पीया-सा शांत।।
३०. सुख फरमावै स्वामजी रे, सारै मुनिवर सेव।
ढाळ आठवीं आ कही रे, सुमरत श्री गुरुदेव।।

ढाळः ९.

दोहा

१. एकम दिन मध्याह्न में, आमंत्रित एकांत।
पुनरपि शिक्षा सांतरी, दै सद्गुरु विश्रान्त।।
२. मोटो गणसमुदाय है, तूं राखीजे ध्यान।
आंकीजे छद्मस्थता[2], मत करजे मन म्लान।।
३. सतियां री संख्या बड़ी, शिक्षा वरै विकास।
त्यूं करणो है हो सजग, सतत सफल आयास।।
४. रात-दिवस अवसर लह्यो, जब-जब श्री गुरुदेव।
सानुग्रह बगसीस की, चरणकमल री सेव।।
५. दूज दिवस दोपहर में, चौथ मुनी धर चूंप।
केशलोच म्हांरो कियो, हर्षोत्सुक रूं-कूंप।।
६. सायं सुगुरु-पदाब्ज में, ज्येष्ठ-सहोदर साथ।
मैं बैठो सेवा सझूं, गुरुवर ऊंचै हाथ।।

---

१. यह संकेत मुनि तुलसी के लिए है।
२. देखें प. १ सं. ५१

७. मधुरामन्त्रण कर भणै, सुण रे चंपालाल!
कल प्रातः सूर्योदये, स्याही शीघ्र निकाल[1]।।
८. श्वेत पत्र पटड़ी सहित, लेखणघर संघात।
ल्याज्ये अति ताकीद स्यूं, मत भूलीजे बात।।
९. हृष्टमना स्वीकृत करै, चंपक सद्गुरु-वैन।
'तहत तहत' बद्धांजली, निश्छल निश्चल नैन।।
१०. बीती बीज-विभावरी, ततखिण तीज-प्रभात।
इष्ट घटी प्रगटी प्रवर, गुरुवासर विख्यात।।

[2]म्हांरो नाथ नगीनो भारी सुजश जग लीन्हो रे,
मोने पद युवराज रो दीन्हो रे, म्हांरो नाथ...।
ज्यांरो विक्रमशाली सीनो रे, म्हांरो नाथ...।।

११. प्रातः पड़िलेहण कर स्वामी, नवले वेष विराजै।
'रंग-भवन' रै बड़ै हाल में, नवल धवलिमा साझै रे।।
१२. बाल सूर्य री लाल रश्मियां, प्रभुवर-चरण पखारै।
आकृति की अद्भुत प्रसन्नता, वातावरण निखारै रे।।
१३. चम्पक मुनिवर गुरु-आज्ञा स्यूं, सविनय हाजर कीन्हा।
स्याही लेखण पटड़ी पानो, किंचित ढील करी नां रे।।
१४. वेदन-व्यस्त समस्त शरीरे, वाम-हस्त-व्रण भारी।
तो पिण पूज्य प्रशान्तमना, बण लेखक लेखणधारी रे।।
१५. एक पांव तो धरती ऊपर, एक पट्ट पर राखी।
गोडै पर पानो धर बेठा, सूर्य सामनै साखी रे।।
१६. मगन कहै—अतिमात्र परिश्रम लिखणो किस्यो जरूरी?
श्रम री है के बात, निभाणी संघ-शृंखला पूरी रे।।
१७. मनै बुलायो ततखिण आयो चंपक-बंधव साथे।
सद्गुरु करै अपूर्व अनुग्रह धरै हाथ शिर-माथे रे।।

---

१. देखें प. १ सं. ५२
२. लय : जय जय नंदा

१८. रुक-रुक कर कर थाम-थाम कर सारो पत्र भर्यो है।
गण-आचार्य-पंक्ति में अंकित 'तुलसी' नाम कर्यो है रे।।
१६. अब आदेश दियो शिवराजी[1]! सब सन्तां नै तेड़ो।
झमकूजी आदी सतियां भी जम्या, ठिकाणो नेड़ो रे।।
२०. एक ओर है मगन आदि मुनि, श्रमण्यां बेठी सामै।
श्रावक और श्राविकावां भी, ऊभी भरी सभा में रे।।
२१. युवपद रो परिपत्र मगनमुनि खड़्या पढ़ै समभावै।
मुदितमना मुझनै गणमालिक हाथो-हाथ दिरावै रे।।

आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लिखित परिपत्र—श्री भिक्षु पाट भारीमाल। भारीमाल पाट रायचन्द। रायचन्द पाट जीतमल। जीतमल पाट मघराज। मघराज पाट माणकलाल। माणकलाल पाट डालचन्द। डालचन्द पाट कालूराम। कालूराम पाट तुलछी (सी) राम।

विनयवंत आज्ञा मर्यादा प्रमाणे चालसी, सुखी होसी। सं. १६६३ भाद्रपद सु. ३ गुरुवार।

२२. चद्दर श्वेत चौकड़ी-मुलमुल[2] अब ही नई धराई।
तुरत उतार उदारहृदय गुरु, मनै स्वकर ओढ़ाई रे।।
२३. पद युवराज रिवाज साझ सब, मुझनै दीधो स्वामी।
रजकण नै क्षण में मेरू बणवायो अंतर्यामी रे।।
२४. जलबिन्दू इन्दूज्ज्वल मानो, शुक्तिज आज सुहायो।
मृन्मयपिण्ड अखण्ड पलक में कामकुम्भ कहिवायो रे।।
२५. साधारण पाषाण शिल्पि-कर, दिव्य देवपद पायो।
किं वा कुसुम सुषमता-योगे, महिपति-मुकुट मढ़ायो रे।।
२६. मृन्मय-रत्न प्रयत्न-प्रयोगे, शाण पाण सरसायो।
बिन्दु-सिन्धुता को जो उपनय, साक्षात आकृति पायो रे।।
२७. बाल अनाथ साथ जो बरती, सेठ सुहृदता भारी।
है चरितार्थ कृतार्थ कहाणी[3], मैं देखूं दृग डारी रे।।

---

१. कालूगणी की शारीरिक सेवा के लिए विशेष रूप से नियुक्त मुनि शिवराजजी।
२. तेवीस, पच्चीस और सत्ताईस नंबर की मुलमल, उस पर चौकड़ी का चिह्न होता था।
३. देखें प. १ सं. ५३

२८. मोटां रो सिर हाथ धरावत लघु महान बण ज्यावै।
'महर नजर दौलत'[1] री घटना, कुण जो वितथ बतावै रे।।
२९. संयुक्ताक्षर-योगे लघु-अक्षर-गुरुता आकर्णी।[2]
वर्तमान विरतंत विलोकत, साच वदै व्याकर्णी रे।।
३०. लोह-कंचन-करणारो पारस, ग्रन्थ-ग्रन्थ में गायो।
पर पारस-करणारो पारस, आज सामनै आयो रे।।
३१. अहो सुगुरु-उपकार एक जिह्वा स्यूं क्यूंकर गाऊं?
जो नागेश-रसज्ञा[3] पाऊं, कांयक मन बहलाऊं रे।।
३२. मगन स्वस्थ आश्वस्तमना, हार्दिक कृतज्ञता टाणै।
भावपूर्ण इक दोहक[4] स्यूं, गुरुवर रो विरुद बखाणै रे।।
३३. सकल संघ की चिंता मेटी, देखो छोगां-जायो।
जय-जय विजय-ध्वनि स्यूं, गहरो 'रंग-भवन' गुंजायो रे।
३४. चम्मालीस बरस स्यूं गणपति, नूतन काम करायो।
संघ-चतुष्टय-हृदय सुलय में, रंग उमंग बढ़ायो रे।।
३५. तीज-प्रभात समय रो वर्णन, वर्णवियो भलभावै।
नवमी ढाळ विशाल भाल, श्री कालू रस बरसावै रे।।

ढाळः १०.

दोहा

१. गधिया गणेशदासजी[5], शासणभक्त उदार।
पुर-पुर में पहुंचाविया, समाचार दे तार।।
२. तेल-बिंदु ज्यूं उदक में, फैली सारै बात।
सारां मन निश्चिंतता, हर्षे पुलकित गात।।

---

१. देखें प. १ सं. ५४
२. देखें प. १ सं. ५५
३. शेषनाग के एक हजार मुंह तथा दो हजार जिह्वा होती हैं, ऐसा माना जाता है।
४. मंत्रीमुनि द्वारा कथित दोहा--
रंग भवन में रंगरळी, पद युवराज प्रकाश।
मुनिच्छत्र महिमानिलो, पूरण करदी प्यास।।
५. देखें प. १ सं. ५६

३. साध्वी-वंदन रै समय, दरसाई गणधार।
युवाचार्य-आचार्य री, वनणा-विधी उदार[1]।।
४. नई सृष्टि अब स्यूं हुई, युवाचार्य-आचार्य।
किंयां कठै कुण-सी किसी, रीति-रश्म अनिवार्य।।
५. संत-सती जाणै नहीं, श्रावक नहिं संलग्न।
या जाणै गुरुवर स्वयं, या जाणै मुनि मग्न।।

लावणी छंद

६. मैं स्वयं बण्यो अज्ञात भार स्यूं भारी,
प्रत्येक कार्य में प्रगटी स्थिति दुविधा री।
बैठूं तो कठै किंयां किण रीते बैठूं?
बोलूं चालूं बाहिर या भीतर पेठूं।।
७. **आचार्यप्रवर रै साथै किण विधि वर्तूं,**
किण विधि च्यारूं तीरथ रै साथ प्रवर्तूं?
यदि अनुचित रीते एक ही चरण बढ़ाऊं,
अनभिज्ञ कहाऊं हास्यास्पद बण ज्याऊं।।

दोहा

८. इतले मगन कहै करो, ऊंचै स्वर आवाज।
पधरावै पंचमि-समिति, युवाचार्य महाराज।।
९. नयो चोलपट्टो सहज,. ल्या पहरायो सन्त।
सारो जनसमुदाय है, रोमांचित अत्यंत।।
१०. मुनि नथमलजी आविया, ले पाणी रो पात्र।
सज्ज हुया सारा मुनि, सहचर उलसित-गात्र।।

लावणी छंद

११. संतां रै साथ चल्यो तो भीड़ भरी है,
जनता पग-पग पर बेअंदाज खड़ी है।
हंसता-खिलता सब म्हांरै स्हामै देखै,
कालू-कृपया मुझनै कालू कर लेखै।।

---

१. देखें प. १ सं. ५७

१२. रुक चरण-चरण जनता री श्रद्धा लेतो,
पथ पार कियो ज्यूं-त्यूं जीकारो देतो।
पाछो आयो तो बो ही प्रश्न खड़्यो है,
सारी चरिया रो चिंतन चित्त चढ़्यो है।।

दोहा

१३. श्री कालू मुनि मगनजी, कियो सुखद सहयोग।
दियो बोध श्रमणी-श्रमण स्वीकृत कियो अमोघ।।
१४. शब्द पंचमी-समिति रो, पाद-प्रमार्जन सार।
पट्टासन आचार्य ज्यूं, युवाचार्य-अधिकार।।
१५. पाणी समचै राखणो, समचै करणो आ'र।
'युवाचार्य' आचार्य ज्यूं बहो संघ रो भार।।
१६. इकसरखी सेवा करो, छोटा-मोटा सन्त।
युवाचार्य बहसी सदा, आचार्यां रै पन्थ।।
१७. सुणणी गतदिन-वारता, त्यूं हाजरी-विधान।
आज्ञा अरु आलोयणा, प्रवचन सदा प्रधान।।
१८. इत्यादिक सब काम अै, ओ करसी स्वयमेव।
मैं निश्चिंत हुयो अबै, यूं भाखै गुरुदेव।।
१९. निकट पर्व संवत्सरी, गणनायक दृढ़नेम।
मध्याह्ने करवावियो, केशलोच सप्रेम।।
२०. प्रातः प्रवचन हाजरी बांची नै मध्यान[1]।
मैं गुरुराज-पदाब्ज में रह्यो भृंगता ठान।।
२१. जय-विरचित 'आराधना' बांचण रो संकेत।
कऱ्यो स्वयं शासणपती, मैं तब पढ़ूं सचेत।।

[2]सुजना! स्वाम-आराधन भारी
स्वाम-आराधन शिव-सुख-साधन, बाधन विषय-विकार।
निज में निज-गुण रो संचार।।

---

१. देखें प. १ सं. ५८
२. लय : सुगणा! पाप पंक परहरिए

२२. दस ही द्वार अपार रसीला शीलाश्रित संवाद।
सुप्त चेतना स्फुरणा सागै जागै अंतर्नाद।।
२३. आलोयण[1] अरु व्रत-आरोपण[2] खमतखामणा[3] सार।
पाप अठारै वारै[4], धारै सुखकर शरणां च्यारं[5]।।
२४. दुष्कृत-निन्दा[6] सुकृत-प्रशंसा[7] विदित भावना[8] द्वार।
आजीवन अनशन[9] कर समरो प्रवर मन्त्र-नवकार[10]।।
२५. निर्मलता निश्छलता निपजै खलता रो प्रतिकार।
दिल उज्ज्वलता सहज सरलता आराधन अधिकार।।
२६. पतनशील परिणाम पलक में धावै दृढ़ता-दोर।
आराधन में वीर-वृत्ति रो भाव भर्‌यो 'जय' जोर।।
२७. सुणत अचेतन एक बार तो मानो होय सचेत।
बंद जबान गान हित हिचकै आराधन स्थिर-चेत।।
२८. शूरपणो कायर-चित चमकै घमकै जब रणतूर।
त्यूं जय-कृत 'आराधन' सुणतां पौरुष होत प्रपूर।।
२९. गणिवर अनुपम शांत-रसाप्लुत अद्भुत अंग उमंग।
तन-मन संयम-रंगे रंगै जाणक जीतै जंग।।
३०. च्यारूं तीरथ संगे कीधा खमतखामणा स्वाम।
स्वमति अन्यमति सहज खमावै ल्यावै सम परिणाम।।
३१. संध्या मैं प्रतिक्रमण सुणायो बैठ्यो सारूं सेव।
पांच महाव्रत मुझ उचरादै यूं भाखै गुरुदेव।।
३२. गुरुवर नै महाव्रत उचराऊं पाऊं मन संकोच।
पर इंगित-आराधन करणो आखिर यूं आलोच।।
३३. दशवैकालिक सूत्र-पाठ महाव्रत चौथो अध्येन।
मैं उचराऊं अक्षर-अक्षर सुण पावै गुरु चैन।।
३४. बार-बार नवकार मन्त्र रो आप जप्यो मुख जाप।
आयू माप अल्प-सो जाणी नाणी थिरता थाप।।
३५. कब ही आंख्यां खोलै बोलै होळै-सी आवाज।
कब ही पोढ़ै कबहि विराजै वेदन बेअंदाज।।
३६. गांव-गांव रा लोक हजारां प्रतिदिन दरसण काज।
एक नाळ चढ़ दूजी उतरै निशिदिन पंक्ती साझ।।
३७. डॉक्टर वैद्य हकीम कीमती आया पाया तोष।
पिण इण अंगे आ बेमारी देख कियो अफसोस।।

३८. नव निदान अरु नई चिकित्सा निज-निज औषध साथ।
करणी ठानै पिण नहिं मानै म्हांरो शासणनाथ।।
३९. अै म्हांरे हित औषध ल्याया आया हित उपचार।
मैं न सिकारूं हिम्मत धारूं संयम रो आधार।।
४०. डॉक्टर वैद्य प्रदेशी देशी रहग्या देख अवाक।
इसड़ा संत भाग दुनियां रो बड़ी धर्म री धाक।।
४१. जो आत्यन्तिक कष्ट-समय में नष्ट करै नहिं नेम।
स्पष्ट वचन में ख्यात बात मुख कहतां उपजै प्रेम।।
४२. स्तुति-निन्दा सत्कार-निरादर लाभ-अलाभ समान।
परम धरम अध्यात्मलीन गुरु शमरस में गलतान।।
४३. मुझनै तब मुनिपति फरमावै अब तूं कर विश्राम।
बहुली बीती रात तात री आ करुणा निष्काम।।
४४. सारा सन्त करै अति आग्रह जो कछु नूतन बात।
जोस्यां तो तत्काल जगास्यां बैठा म्हे उपपात।।
४५. आभ्यंतर-आलय मैं पहुंच्यो निवहण गुरु-निर्देश।
दशमी ढाळ नयन नहिं निद्रा इक चिंतन अनिमेष।।

ढाळः ११.

दोहा

१. बीती बेळां बे घड़ी, एक बजे अन्दाज।
श्वास-वेग अति विस्तर्‌यो, सो थरहर्‌यो समाज।।
२. देख विषमगति नाड़ री, डाक्टर वर कविराज-
बोलै, अब मुश्किल बचै, गणनायक-तनु आज।।
३. रघुनंदनजी तो बण्या, है अतिमात्र विहस्त।
तीन नाड़ियां में कहै, एक[1] समूची अस्त।।
४. स्वामी स्वमुख समुच्चरै, तेड़ो तिण नै बेग।
ततखिण आया श्रमणगण, वर्णवता उद्वेग।।
५. शीघ्र-शीघ्र आ वंदना, कर बैठ्‌यो मैं पास।
गुरु पोढ्‌या करवट लियां, सारो संघ उदास।।

१. पित्त की नाड़ी

६. पूछूं कर जोड़्यां प्रणत, मैं सुखप्रश्न उदार।
म्हांरै सम्मुख सुगुरुवर, गहरी नजर निहार।।

[1]मुनिप महामना,
कालू गणस्वामी रे, मुनिप महामना,
जिनमत-अनुगामी रे, मुनिप महामना,
है निरुपम नामी रे, मुनिप महामना,
प्रांजलि प्रणमामी रे, मुनिप महामना।।

७. गुरुवर पोरुषियो वेदन विसराणी रे।
अति ऊंचे स्वरे बोलै वर वाणी रे।।
८. अै श्रमण-सत्यां है सब थारै शरणै रे।
तूं रहजे सजग शासन-संभरणै रे।।
९. छोटां मोटां सह इकसरखी नीति रे।
तूं सहि राखज्ये नहिं तिल भर भीति रे।।
१०. बालक कइ बूढ़ा कइ ग्लानी गण में रे।
सबकी चाकरी ज्यूं आवै बण में रे।।
११. सहयोग सभी नै संयम रो दीजै रे।
बहतो इण पथे जग में जश लीजै रे।।
१२. स्याबाशीवाळो स्याबाशी पावै रे।
ओळम्भो इतर तूं क्यूं घबरावै रे।।
१३. गणरक्षा करणी ओ कारज थारो रे।
तूं करजे सदा दिल राख करारो रे।।
१४. गण-पुस्तक-पानां जो नया पुराणां रे।
रूड़ी रीत स्यूं राखे मुझ आणां रे।।
१५. दीक्षा निज अवसर देखै तो देणी रे।
नहिं अवसर हुवै तो नां कह देणी रे।।
१६. है चरण रयण सम सुध पाळ पळावै रे।
तू इण बात में रहज्ये दृढ़ दावै रे।।
१७. इत्यादिक दीन्ही मुझ सीख अमोली रे।
खिण-खिण संभरू बा गुरु री बोली रे।।

---

१. लय : भावै भावना

१८. रयणां री रासी खासी अणतोली रे।
जाणक जगगुरु मुझ अंग खसोली रे।।
१६. परदेश सिधावत निज सुत नै श्रेष्ठी रे।
ज्यूं दै सीखड़ी त्यूं मुझ परमेष्ठी रे।।
२०. मघ माणक मुनि नै जय मघवा भारी रे।
त्यूं गुरुदेव मुझ मैं बलि-बलि वारी रे।।
२१. गुरुवर बिन दूजो कुण इणविध गावै रे।
गुरु-गौरव भलो गुरु-अंगे पावै रे।।
२२. क्षण विश्रम तिण ही बेळां बगसीसां रे।
नामाङ्कित करै सब चाढ़ै शीषां रे।।
२३. है मगनलालजी स्वामी सुखदाई रे।
गणपति री सदा सिर आण चढ़ाई रे।।
२४. पच्चास बरस लग शासण री साधी रे।
सेवा सारिसी गुरु-महर अराधी रे।।
२५. आंरी नेश्राये उपकरण कहावै रे।
समचै आज स्यूं नहिं भार उठावै रे।।
२६. त्यूं कारण-जोगे औषध नै ऊन्हो रे।
लेवै तो विगै बगसीस सहू नो रे।।
२७. मुनि चौथमल्ल नै बगसीस विचारी रे।
संघ-वजन अरु सारा कामां री रे।।
२८. म्हांरै तन खातिर अति साताकारी रे।
टहल बजावतो दिन-रात न धारी रे।।
२६. दस सहस्र गाथा शिवराज ऋषी नै रे।
है बगसीस यूं कहि गुरु गुण चीनै रे।।
३०. है खरो आदमी दूजो इण सरखो रे।
मिलणो दोहिलो गुणिजन गुण परखो रे।।
३१. मैं इण रै योगे मन अति सुख वेद्यो रे।
वाह! वाह! शिव मुनी! भव-बंधन छेद्यो रे।।
३२. गणिवर जिण हेते अै शब्द उचारै रे।
तिणरो जीवणो सार्थक संसारे रे।।
३३. शिव रो लघु भ्राता हाथी नै जाणी रे।
च्यार हजार ही गाथा बगसाणी रे।।

३४. कुंदन सुख चंपक सोहन सुविशेखी रे।
च्यारां री सुगुरु सेवा उल्लेखी रे।।
३५. लग तीन सियाळां सारा कामां री रे।
शुभ बगसीस आ गुरु बोली प्यारी रे।।
३६. बाकी भेळां रा मुनि साताकारी रे।
बगसूं आज ही नव-नव मैं बारी रे।।
३७. अति सेवा साझी झमकूजी भारी रे।
काम रु बोझ री अंकित रिझवारी रे।।
३८. श्रमण्यां भेळां री दो-दो सीयाळां रे।
सारा काम री बगसीस विशालां रे।।
३९. निज बूथा सारू सहज्यां श्रम करियो रे।
यूं भाखै अहो! गुरुवर गुणदरियो रे।।
४०. इक-इक नै स्वामी जह-जोग संभार्‌या रे।
त्यूं अति हेज स्यूं रूं-रूं सहु ठार्‌या रे।।
४१. सिर मालिक होवै श्री कालू जेहड़ो रे।
निज शरणागतां नै कभी न छेहड़ो रे।।
४२. इकसार दो घड़ी ऊंची आवाजे रे।
गाजै मेघ ज्यूं सीखड़ली साझे रे।।
४३. डॉक्टर कविराजा विस्मित-सा रहग्या रे।
भावावेश में सगळा ही बहग्या रे।।
४४. डगमगती नाड़ी अति विकट अवस्था रे।
तिण में पिण करै गुरु विशद व्यवस्था रे।।
४५. इसड़ी हालत में कुण क्यूं कर बोलै रे।
कोई नीठ स्यूं निज आंख्यां खोलै रे।।
४६. श्री वीर प्रभू दी सोलह प्रहरां री रे।
अंतिम देशना त्यूं आज निहारी रे।।
४७. जन-साधारण स्यूं आ शक्ति निराली रे।
इण नै आंकसी जो पौरुषशाली रे।।
४८. छट्ठे उल्लासे ग्यारहवीं गीती रे।
श्री गुरुदेव री है निरुपम नीती रे।।

ढाळः १२.

दोहा

१. इक-बे घंटा में जमी, पुनरपि हालत मूल।
अश्विनि रघुनंदन कहै, अपणै मत अनुकूल।।
२. यद्यपि तन टिकसी नहीं, तो पिण निश्चित बात।
कहणी मुश्किल, सुगुरु रो अजब-गजब है गात।।
३. ब्रह्मचर्य रो शौर्य है, गुरुवर-अंग अथाग।
कठिन कठिनतम पावणो, पूज्य-आत्मबल-थाग।।
४. फिर डाक्टर अश्विनिकुमर, हृदय-परीक्षण हेत।
यंत्र लगा देखण लग्यो, दिल-धड़कन-संकेत।।
५. के देखै घोचा लगा, मिटी न थारी शंक।
कभी न धड़कै काळजो म्हांरो कहूं निशंक।।
६. अनुपम अतुल पराक्रमी, इसो न दीठो अन्य।
तेरापंथ-भदंत रो है विरतंत अनन्य।।
७. सूर्योदय स्यूं सांझ लों, एकसरीखी भीड़।
देव-दिदार निहारणे, छण ही मिलै न छीड़।।
८. ज्यूं-त्यूं एक'र दरस कर, जाण्यो जीवन धन्य।
अवसर री सेवा हुवै, अनुपम और अनन्य।।
९. स्थानांतर स्यूं भी श्रमण-श्रमण्यां आई चाल[1]।
चातुर्मास विहार री आगम-आज्ञा भाल[2]।।

[3]देखो भादूड़ा री छठ अणतेड़ी नेड़ी आवै रे,
जिणरो वरणन करतां अक्षर घड़तां जी घबरावै रे।
जी घबरावै मन घबरावै विरह बढ़ावै रे।।

१०. उदिता चौथ तिथी मुदिता-सी रही जमावट सार,
दिन भर श्री गुरुदेव शरीरे सायं श्वास-प्रसार।
सारी रात जगावै रे।।

---

१. देखें प. १ सं. ५६
२. ठाणं ५।१००
३. लय : म्हांरो घणां मोल रो माणकियो

११. भणै श्रमणगण श्रमणाधिप स्यूं नाजुक है स्थिति आज,
लग्यो बदलणै रंग अंग रो गौर करो गुरुराज!
म्हांरा दिल दहलावै रे।।
१२. पुरुषार्थी शिरशेखर गुरुवर बोलै वचन विचार,
आज विभावरि काल छमछरी त्याग्या च्यारूं आ'र।
सहज्यां ही समभावै रे।।
१३. ईं बिच में आऊखो आवै तो है जावज्जीव,
च्यारूं आ'र त्याग सागारी अनशन हर्ष अतीव।
दृढ़ परिणामां ठावै रे।।
१४. इण अतिशय अस्वस्थ अंग में अनशन स्यूं अति प्रेम,
जिनदर्शन में अनशन मोटो पावै जो दृढ़नेम।
कुल नै कलश चढ़ावै रे।।
१५. पांचम दिन उपवास पूज्य रै त्यूं ही सारै संघ,
महापर्व पर्यूषण भूषण राचै अभिनव रंग।
कायर खाणो खावै रे।।
१६. सांवत्सर प्रवचन कर आयो मैं गुरु-पद-उपपात,
श्रान्त क्लांत जोड़ी पर पोढ्या नहिं पूछण री बात।
बैठ्या संत सिदावै रे।।
१७. सारै दिन सरखी बेचैनी अति पैनी जल प्यास,
समता-भावे सुख फरमावे मंद श्वास-निश्वास।
दुर्बलता रै दावै रे।।
१८. रात पाछली नाथ गात में थोड़ी ठंडक व्याप्त,
पार्श्वस्थित सन्तां रै स्हामै प्रकट वचन पर्याप्त।
श्रीमुख स्यूं फरमावै रे।।
१९. काल दिवस तो दिन भर निशि भर विवश कियो विश्राम,
उणनै[1] पिण सुख-प्रश्न न पूछ्यो हूंतो घाम प्रकाम।
वत्सलता दिखलावै रे।।
२०. अब बोलावो बार म ल्यावो, मैं तब प्रणमूं पाय,
कर धर मस्तक गुरुवर पूछै, तृषा न व्यापी काय?
प्रवचन-कष्ट-प्रभावै रे।।

---

१. युवाचार्य श्री तुलसी को

२१. उमट्यो मोद प्रमोद अमित मन, मैं विनवूं गुरुराय!
शुभ करुणा-दृष्टी अमि-वृष्टी क्यूं मुझ घाम सताय।
पूज्य चिरायुः पावै रे।।
२२. प्रातः कियो पारणो स्वामी श्रमण-सत्यां पिण साथ,
प्रगटी सारां मन प्रसन्नता शुभ-भविष्य-शुरुवात-
समझी, मोद मनावै रे।।
२३. म्है जाण्यो मोटै खतरै स्यूं उबर्यो स्वाम-शरीर,
चौविहार उपवास-उदधि तर पहुंच्या परलै तीर।
अब आरोग्य सुहावै रे।।

देखो भादो छठ संध्या अणतेड़ी नेड़ी आवै रे।

२४. तीन प्रहर तो बीत्या तिण दिन चोथै रै प्रारंभ,
श्वास-उठाव जीव-घबराहट जिनशासन रो खंभ।
समता रस सरसावै रे।।
२५. मैं पंचमि-समिति स्यूं आयो कर वंदन, विश्राम,
बेठ्यो उपासना में गुरुवर-सम्मुख दृग-युग धाम।
अमृत-रस बरसावै रे।।
२६. पौणी छह बजतां गुरु पूछै कितो बच्यो दिन शेष?
जाच साचवी शीघ्र पडुत्तर देऊं मैं करुणेश!
पैंती मिनट लखावै रे।।
२७. फरमावै—मुझनै बैठायो पाणी पीणै काज,
करी प्रार्थना—आज विराजण शक्ति नहीं व्रतिराज!
पोढ्यां कृपा करावै रे।।
२८. गणिवर भाखै—तरल वस्तु नै सूतां पीणी नांय,
तब धीमै-सी बैठा कीन्हा स्हारो दे मुनिराय।
पाणी पी पोढ़ावै रे।।
२९. पोढ़त पाण श्वास-गति बढ़गी वेदन बेअंदाज,
गहगो साद विषाद न मन में धीमै-सी आवाज।
गुरुवर यूं पूछावै रे।।

३०. मगनलालजी स्वामी अब तक आय गया के नांय?
मैं बोलूं—नहिं आया, आवणवाळा है गुरुराय!
जा झट संत बुलावै रे।।

३१. बेग-बेग बहि बाट मगनमुनि आय खड़्या गुरु-तीर,
सम्मुख झांक 'अबै' दो अक्षर बोलै सुगुरु सधीर।
आंतर भाव सुझावै रे।।

३२. संथारो पचखावां? पूछै सहसा मगन सजोश,
'हां' यूं होळै बोलै स्वामी अब लग पूरो होश।
पर नहिं बोल्यो जावै रे।।

३३. चौविहार संथारो तब ही पचखावै मुनि मग्न,
भारी साहस को ओ परिचय दै शरणां संलग्न।
म्हारो दिल कुम्हलावै रे।।

३४. सिद्ध-सिद्ध अरिहंत देव रो है शरणो गुरुदेव,
म्हां सारां नै शरण आपरो होज्यो देव! सदेव।
ऊंचै स्वर संभळावै रे।।

३५. मैं अनेक संता रै साथै देखूं स्थिति प्रत्यक्ष,
झमकूजी आदी कइ सतियां ऊभी पूज्य-समक्ष।
अवसर लाभ उठावै रे।।

३६. डॉक्टर कवियर रघुनंदनजी, घनश्याम पिण तत्र,
खुल्ली आंखें गुरु-मुख झांके राखे मन एकत्र।
अब ओ वीर विलावै रे।।

३७. बैठा पास अमोलकचनजी बैंगाणी बीदाण,
चंपालाल नाहटो[1], तीजो है शुभकरण सुराण[2]।
जबर भंडारी[3] भावै रे।।

३८. सात मिनट संथारे स्वामी कीन्हो स्वर्ग प्रयाण,
आखिर समय सचेत अवस्था अस्त हुयो जग-भाण।
जनता अश्रु बहावै रे।।

३९. छव बज दोय मिनट पर गुरुवर कर अनशन स्वीकार,
नव मिनटां पर नयन-द्वार वर जीवन रो निस्तार।
अंतिम कष्ट अभावै रे।।

---

१. सरदारशहर निवासी
२. चूरू निवासी
३. जबरमलजी भंडारी, जोधपुर

४०. जिण रै द्वारा सारां रो है इण दुनिया में अंत,
हंत! हंत! बो अंत न पावै अकरुण क्रूर कृतंत।
दुर्जय द्वंद्व मचावै रे।।
४१. सकल संघ में अंग-अंग में व्याकुलता बिन थाग,
प्रबल प्रतापी पुण्य-पोरसो ग्रह्यो स्वर्ग रो माग।
अनघ उदासी छावै रे।।
४२. वासरपति पिण शासणपति रो सुरपुर-गमन विलोक,
केवल ग्यारह मिनट बाद ही अस्तंगत धृतशोक।
सागर पार पलावै रे।।
४३. छट्ठे उल्लासे बारहवीं बड़ी विरहिणी ढाळ,
अन्त्य समय रो विवरो सिंवरो 'तुलसी' हृदय दृढ़ाल।
गुरु-गुण-गंगा न्हावै रे।।

ढाळः १३

दोहा

१. सप्त बीस बरसां सुधी, कर शासन-संभाल।
मूललाल देखालग्यो, आज अनोखो ख्याल।।
२. इक सौ उणचाली मुनी, रह्या सुगुरु-दृग न्हाल[1]।
मूललाल देखालग्यो, आज अनोखो ख्याल।।
३. तीन तीस युत तीन सौ, श्रमणी बणी निढाल[2]।
मूललाल देखालग्यो, आज अनोखो ख्याल।।
४. लाखां श्रावक-श्राविका, विरही हुआ विहाल।
मूललाल देखालग्यो, आज अनोखो ख्याल।।

१,२. पूज्य कालूगणी गंगापुर पधारे, उस समय संघ में साधुओं की संख्या १४१ तथा साध्वियों की संख्या ३३४ थी। यह उल्लेख छठे उल्लास की ढाळ १।१५ में है। कालूगणी के स्वर्गवास के पश्चात उक्त संख्या में अन्तर आ गया। छठे उल्लास की ढाळ १३।२,३ के अनुसार साधुओं की संख्या १३९ तथा साध्वियों की संख्या ३३३ है। पूज्य कालूगणी तथा एक साधु मुनि बनेचन्दजी (मोखुन्दा) का स्वर्गवास होने से साधुओं की संख्या दो कम हो गई। इसी प्रकार साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी का राजलदेसर में स्वर्गवास होने से साध्वियों की एक संख्या घट गई।

५. देखो बाणूं बरस री, जननी रो के हाल।
मूललाल देखालग्यो, आज अनोखो ख्याल।।
६. खिण-खिण में सुमरै हृदय, बो सद्गुरु रो योग।
देखो आज वियोग में, सारा सपना मोघ।।
७. सुख ही सुख संयोग में, जदि नहिं हुवै वियोग।
किण कारण सरज्यो विधी, जग वियोगमय रोग।।
८. आंख झांक रहता सुगण, प्रमुदित-चित हर बार।
आज विरह-विक्षेप में, झारै हृदय-बफार।।

९. [1]घन ओगाज ज्यूं रे लोय, मधुरावाज स्यूं रे लोय,
जिण मुख वाणी रे, नाणीश्वर बरसावता।
आज हुयो किसूं रे लोय, ऊभा दस दिशूं रे लोय,
तिण मुख स्हामा रे, देखै जन बिलखावता।।
१०. मुख जीकारड़ो रे लोय, जी जीकारड़ो रे लोय,
ऊंचै पूंचै रे, गुरुवर जब फरमावता।
भवि उलसावता रे लोय, अधिक उम्हावता रे लोय,
आज न झांके रे, आंखें आवत-जावता।।
११. पाट विराजता रे लोय, छिति पे छाजता रे लोय,
परिषद अनुपद रे, सेवा-संपद झांकती।
कहि मानस-व्यथा रे लोय, करती संकथा रे लोय,
आज निहारै रे, विरही आंख्यां आखती।।
१२. काल करालता रे लोय, अति विकरालता रे लोय,
इणरै बख में रे, सखम आप-सा आवसी।
तो किणनै नहीं रे लोय, कहणै री रही रे लोय,
इण पापी रो रे, फिर कुण कच्छ कटावसी।।
१३. सुरपुर को मिल्यो रे लोय, आमंत्रण झिल्यो रे लोय,
अठै न ओछी रे, आवश्यकता आपरी।
क्षण-क्षण घड़ी-घड़ी रे लोय, देखां बाटड़ी रे लोय,
आ दुख-बेळां रे, पाछी क्यूं नां जा परी।।
१४. कुण जाणी इसी रे लोय, आज हुई जिसी रे लोय,
सहसा पड़सी रे, यूं बाल्हेश-बिछोहड़ो।

१. लय : ज्यां सिर सोवता रे लोय

अति जोखिम टळी रे लोय, हुई संवत्सरी रे लोय,
तो पिण रहग्यो रे, मन रो मन में दोहड़ो।।
१५. कुण यूं संभवी रे लोय, जननी नै ठवी रे लोय,
पुत्र सिधासी रे, असमय में स्वर्गालये।
कुण आ संभवी रे लोय, गंगापुर-भवी रे लोय,
ओ चरमोच्छब रे, होसी झूलै संशये।।
१६. मालव देश में रे लोय, विहरी शेष में रे लोय,
इक व्रण-जोगे रे, सारो तन यूं छीजसी।
कुण जाणी इंयां रे लोय, सांझ समो लिंयां रे लोय,
आज कड़कसी रे, प्रलय काल की बीज-सी।।
१७. पढ़णै रै समय रे लोय, बढ़णै रे समय रे लोय,
मैं नहिं जाणी रे, मुझ बूथै स्यूं कई गुणो।
भार भुलावस्यो रे लोय, यूं पधरावस्यो रे लोय,
म्हारा मन री रे, बातड़ली स्वामी! सुणो।।

१८. [1]हो गुरु गुणगेहरा! आशा-तरु अणपार जो,
लड़ालुम्ब लहराया हृदय अमारड़ै रे लोय।
हो म्हारा शिरसेहरा! क्यूं ओ तरुण तुषार जो,
आज अनूठो बूठो विरह तुम्हारड़ै रे लोय।।
१९. हो गुरु गुणगेहरा! किण आगल कहुं बात जो,
कुण सुणसी अब म्हांरो कहण कृपानिधे! रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! निशदिन पुलकित-गात जो,
रहतो सम्मद लहतो नित पद-सन्निधे रे लोय।।
२०. हो गुरु गुणगेहरा! तुम पद-कमल-पराग जो,
पान करण उत्सृंग भृंगता धारतो रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! लख मुख-चन्द्र सुभाग जो,
चित-चलचंचू असुख-अंगार उगारतो रे लोय।।
२१. हो गुरु गुणगेहरा! खटकै खिण-खिण आज जो,
स्मारं-स्मार इग्यार बरस री बातड़ी रे लोय।

१. लय : हो पिउ पंखीड़ा

हो म्हांरा शिरसेहरा! क्षण इक निरुपम नाज जो,
बीजै क्षण ही विरह-व्यथाकुल आंतड़ी रे लोय।।

२२. हो गुरु गुणगेहरा! तंय्यासी री साल जो,
चंदेरी-म्हामोच्छब मुझ तनु ज्वर चढ़ी रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! आप करी संभाळ जो,
कोटि प्रकारे दिल स्यूं नहिं जावै कढ़ी रे लोय[1]।।

२३. हो गुरु गुणगेहरा! कांटे-बीन्ध्यो पाय जो[2],
छापर, बीदासर-नोहरे उदर-व्यथा रे लोय[3]।
हो म्हांरा शिरसेहरा! बो वात्सल्य अथाय जो,
आप दिखायो क्यूंकर कहिवाए कथा रे लोय।।

२४. हो गुरु गुणगेहरा! इठ्यासी री बात जो,
शहर लाडणूं कारण-जोगे मैं रह्यो रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! बो अवसर अवदात जो,
सुगुरु-अनुग्रह नहिं जावै मुझ मुख कह्यो रे लोय[4]।।

२५. हो गुरु गुणगेहरा! निज मघवा री रीत जो,
शहर ईड़वै निशि प्रवचन-समये करी रे लोय[5]।
हो म्हांरा शिरसेहरा! प्रगटी प्रीत पुनीत जो,
पुनि-पुनि सुमरूं फिर कद मिलसी बा घड़ी रे लोय।।

२६. हो गुरु गुणगेहरा! 'बड़ै गुड़ै' विख्यात जो,
सीख-सोरठियो सामन्त्रण संभळावियो रे लोय[6]।
हो म्हांरा शिरसेहरा! जद-तद रात-विरात जो,
याद किंयां ही गुरुवर भर आवै हियो रे लोय।।

२७. हो गुरु गुणगेहरा! अध्यापन हित आप जो,
जो श्रम दिवस-रात्र अति मात्र समाचर्यो रे लोय[7]।

---

१. देखें प. १ सं. ६०
२. देखें प. १ सं. ६१
३. देखें प. १ सं. ६२
४. देखें प. १ सं. ६३
५. देखें प. १ सं. ६४
६. देखें उल्लास ४ गीतिका ६ गाथा १६, २० और २२ के पादटिप्पण।
७. देखें प. १ सं. ६५

हो म्हांरा शिरसेहरा! ओ उपकार अमाप जो,
कब उऋणता पास्यूं मन संशय भर्‌यो रे लोय।।

२८. हो गुरु गुणगेहरा! आ'र-समय अवधार जो,
कुण दिन रीतो बीतो आप न तेड़ियो रे लोय[1]।
हो म्हांरा शिरसेहरा! पश्चिम रात सुप्यार जो,
बारम्बार चितारण कारण नेड़ियो रे लोय।।

२९. हो गुरु गुणगेहरा! दीक्षा दिन प्रारंभ जो,
आज लगे इकसरखी महर महेश री रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! अद्‌भुत अकथ अचम्भ जो,
निष्कारण करुणा प्रतिपल प्राणेश री रे लोय।।

३०. हो गुरु गुणगेहरा! मैं मिहनत-दातार जो,
पल-पल छिन-छिन आजीवन गुरुवर! रह्यो रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! आप जिसा दिलदार जो,
पामर नै अजरामर पद दे निर्वह्यो रे लोय।।

३१. हो गुरु गुणगेहरा! (अब) जास्यूं किण रै पास जो,
किनै सुणास्यूं म्हांरै मन री वेदना रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! कुण देसी आश्वास जो,
कुण हर लेसी संशय हृदय-कुरेदना रे लोय।।

३२. हो गुरु गुणगेहरा! 'तुलसी' 'तुलसी' नाम जो,
कुण बतलासी किण स्यूं करस्यूं मन्त्रणा रे लोय।
हो म्हांरा शिरसेहरा! ओ गुरुतर गणधाम जो,
किणविध होसी नव निर्माण नियंत्रणा रे लोय।।

३३. [2]रे मन पंछिया रे लोय, अपणा संचिया रे लोय,
सरसी भुगत्यां रे, नहिं किणरी जुगत्यां चलै।
जो भवितव्यता रे लोय, हुई न नव्यता रे लोय,
कर्म निकाचित रे, कहो कहीं टाळ्या टळै?

३४. भागी पूतलो रे लोय, पावन भूतलो रे लोय,
नहिं ऊणाग्रत रे, किंचित गुरु-बरतार में,
ओ मन आपणो रे लोय, आमण-दूमणो रे लोय,
निज-निज स्वारथ रे, नहिं जाणो विस्तार में।।

---

१. देखें प. १ सं. ६६

२. लय : ज्यां सिर सोवता रे लोय

३५. यूं आश्वासियो रे लोय, दिल विश्वासियो रे लोय,
उपकृति-स्मृति में रे, नहिं दुष्कृति पर विश्रमूं।
ढाळ त्रयोदशी रे लोय, रूं-रूं में बसी रे लोय,
मोहन मूरति रे, 'तुलसी' साहस स्यूं खमूं।।

ढाळः १४.

लावणी छंद

१. छत्तीस मिनट गुरु अगल-बगल म्है सारा,
है प्रवहमान मध्यस्थ भाव की धारा।
अब नव परिवेश परिष्कृत अंग कियो है,
अति क्लांत श्रांत सगळां रो सहज हियो है।।
२. आ मगन कहै—गुरु-शव व्युत्सर्ग करावो,
'वोसिरे वोसिरे' शब्द स्वमुख उचरावो।
कर रश्म अदा ध्यानस्थ खड़ा सब ध्यावां,
चउवीसत्थव में ज्यूं-त्यूं हृदय जमावां।।

दोहा

३. अब श्रावक समुदाय मिल, मेल्यो सगळो साझ।
पूज्य देह संस्कार हित, अनुभव रै अंदाज।।
४. रंग-भवन बीं रात में, जगी झिगामिग ज्योत।
अंधारो सारो मिट्यो, जाणक रवि-उद्योत।।
५. तलै नीचलै चोक में, गुरु-तन पट्टासीन।
चलै भजन-कीर्तन समन, रजनी भर संगीन।।
६. आवै अवलोकन सघन, लोक सहस्र-सहस्र।
जनप्रवाह जलवाह ज्यूं, बहतो रह्यो अजस्र।।
७. कारीगर सारी निशा, भारी कियो प्रयास।
रथी ग्रथी मतिपूर्विका, सुरविमान सव्यास।।
८. उदियापुर स्यूं आवियो, शवयात्रा रै काज।
सज्जित राजलवाजमो, समुचित अवसर साझ।।
९. आसपास को और भी, मेल्यो मुरतब आन।
यूं करतां आयो समय, सातम को मध्यान।।

१०. प्रांत-प्रांत रा प्रमुख जन, मिलजुल उचित प्रकार।
करै सजावट सांतरी, करण दाह-संस्कार।।

[१]शोभा शवयात्रा री,
चकित-चकित-सी देखै आंख्यां भीड़-भरी जनता री।
गळी-गळी घर-घर दरखत-दरखत अणगिण नर-नारी।।

११. सब स्यूं आगै दो शकटां पर धैं धैं बजै नगारा,
धिधिकट धिधिकट धिधिकट धुन स्यूं भू-नभ एकाकारा।
'रंग-भवन' रै दरवाजै स्यूं छाई छटा अटारी।।
१२. जाणक अंजनगिरि रा अंगज जुगल मतंगज चालै,
ऊपर बैठ्या मानव मुठ्यां भर-भर रूप्य उछालै।
झोळा भरै हजारां जाचक करता जय जयकारी।।
१३. ध्वजा महेन्द्र गगन फहरावै बलि दो घुरै नगारा,
पाछै सात तुरंग सूर्यरथ स्यूं ज्यूं लिया उधारा।
हणहणाट कर झणझणाट कर बहै नृत्य करता री।।
१४. आगै बैण्ड भीलवाड़ा रो उदयपुरी है लारै,
छड़ियां घड़ियां स्वर्ण-रजतमय सज्ज मनुज कर धारै।
जलप्रवाह ज्यूं चलै बेग गति गुरु-पादाब्ज-पुजारी।।
१५. अब पैंसठ खण को अति टणको रणझण करतो आयो,
सुरविमाण-सो जाणक सुरपति गणपति लेण पठायो।
चुंधियाया-सा रहग्या सारा चमक-दमक लख भारी।।
१६. चम-चम कर प्रत्येक खंड पर तुर्रा सही सितारा,
रंग-बिरंगी झण्ड्यां स्यूं महकै कमनीय किनारा।
तेज-पुंज-सो कुसुम-कुंज-सो है वैडूर्य विडारी।।
१७. झिगमिग ज्योत रूप्य कलधौत कलसियां रो मिष ठाणी,
सूरज चांद जम्या श्रद्धा स्यूं जाणक भक्ति जगाणी।
कारीगरां करांगुळियां स्यूं आभा अजब निखारी।।
१८. बिचलो गुम्बज खीणखांप स्यूं मंढ़ियो महिमा पावै,
शेष गुमटिया साटण-घटिया आसपास शोभावै।
हाथोहाथ उठावै श्रावक बड़ा-बड़ा व्रतधारी।।

---

१. लय : संयममय जीवन हो

[1]गंगापुर में गुरु-शवयात्रा, सझी विमात्रा सरसावै।
धरणीधर अंबर गरणावै, नर-नार नगर में नहिं मावै।।

१९. मध्य स्थान विमान में रे, सुगुरु-शरीर ललित लहकै,
अतर अगर सुरभित घृत अरचित, चरचित घन चंदन चहकै।
मुख मुखपति स्वर्ण घटित महकै, मुक्ताफल तिलक ललाड़ छकै।।
२०. आतपत्र आगै चलै रे, चंवर ढळै दोनूं पासे,
अहमहमिकया मानव धावै, स्कंधारोहण अभिलासे।
निश्चिंत भले भूखे-प्यासे, विरहाकुल अंतर विश्वासे।।
२१. लाल गुलाल उछालता रे, मुठ्यां भर-भर मस्तपणै,
भावुक भजन उचारै भविजन, अतुल आरती हर्ष घणै।
मधुर-स्वर तान वितान बणै, पड़छंदा सहसंगान छणै।।

आरती

ॐ जय कालू गुरुदेव, ॐ जय कालू गुरुदेव।
धन्य जमारो तिण रो, निशदिन सारी सेव[2]।।

२२. छापर में अवतरियो गुणदरियो स्वामी।
बीदासर मघवा-कर संयम-श्री पामी।।
२३. चंदेरी छ्यांसट्ठे पट्टोत्सव पीनो।
सत्तावीस बरस लग तपियो दृढ़ सीनो।।
२४. मरु मालव मेवाड़ां थलवट हरियाणे।
ढूंढ़ाड़ां पंजाबां विचरण मंडाणे।।
२५. त्रिशला-सुत शासण री आभा अति भारी।
तेरापथ-प्रख्याती पग-पग विस्तारी।।
२६. भोग भयंकर शंकर सहज त्याग-सरणी।
अभयंकर दरसाई शिवपुर-संचरणी।।

१. लय : डेरा आछा बाग में
२. कालूगणी के स्वर्गारोहण पर जयपुर-निवासी गुलाबचंदजी लूणिया ने आरती की रचना की थी। उसके स्थान पर आचार्यश्री ने उसी लय में उस आरती को परिष्कृत रूप में लिखकर 'कालूयशोविलास' में जोड़ दिया।

२७. लाखां री डगमगती नैया नै तारी।
जैन जगत जगदीश्वर! थांरो आभारी।।
२८. दृढ़तम हार्दिक भावे कायिक कष्ट सह्यो।
गंगापुर चरमोच्छब छक्कां छाय रह्यो।।

[1]गंगापुर में गुरु-शवयात्रा सझी विमात्रा सरसावै।

२६. ठीक-ठीक ग्यारह बजे रे, 'रंग-भवन' स्यूं असवारी,
प्रारंभी अति लम्बी लाइन, मंद-मंद गति संचारी।
सारै पुर चहल-पहल भारी, भारी मन चाल्या अनुचारी।।
३०. अनुमानिक परमाण स्यूं रे, संख्या तीस हजार मिली,
परिमित लोके अमित द्रव्य ज्यूं गंगापुर री गळी-गळी।
नगरी सगरी री शान खिली, निखरी अनुपम आभा उजळी।।

[2]शोभा शवयात्रा री।

३१. सारै पुर में घूम 'सोरती दरवाजै' बाहिर हो,
रंग-क्षेत्र[3] में चिता सझाई सालै सद्गुरु-विरहो।
कियो दाह-संस्कार अंग रो ओ स्वरूप संसारी।।
३२. पंद्रह मण मलयागिरि चंदण अगर एक मण लाग्यो,
घृत कपूर नारेळ हजारां रो कहिं थाग न जाग्यो।
दुनियांवी व्यवहार सकल नहिं धर्म-धारणा धारी।।
३३. भुवन-भानु जग-तारक जगगुरु-काया यूं विललाई,
तो किणरो विश्वास अरे मन! काची सकल सगाई।
षष्ठोल्लासे यशोविलासे ढाळ चवदमी प्यारी।।

१. लय : डेरा आछा बाग में रे
२. लय : संयममय जीवन हो
३. रंगलालजी हिरण के खेत में।

ढाळः १५.

दोहा

१. पहुंच्या देश प्रदेश में, ततखिण टेलीग्राम।
स्वर्गवास गुरुदेव रो, सित भादो छठ शाम।।
२. सुणतां ही सारै लग्यो, एक बड़ो आघात।
जोर नहीं चालै जरा, बणी निजोरी बात।।
३. पुर-पुर आमण-दूमणी, बणी स्थिती सर्वत्र।
आंख्यां स्यूं ओझल हुयो, ओ शासण रो छत्र।।
४. वर्चस्वी व्यक्तित्व हो, ओजस्वी अभिरूप।
तरुण तपस्वी संचर्यो, ओ शासण रो भूप।।
५. अपणै जुग रो अप्रतिम, आर्यप्रवर आचार्य।
असमय सुरपथ संचर्यो, ओ विधि कर्यो अकार्य।।
६. जैन-जगत-नक्षत्र-सो, तेरापथ रो ताज।
साक्षात आकृति धर्म री, निर्वृति-संस्कृति-नाज।।
७. असहायां रो साहरो, शरणागत-रिछपाल।
आज अचानक उठ चल्यो, बो छोगां रो लाल।।

[1]पुण्य पुरुष नै प्रणमिए जुग जोड़ी हाथ।
पुण्य पुरुष नै प्रणमिए पंचांग नमात।।

८. नगर-नगर में स्मृति-सभा पारित प्रस्ताव।
अभिव्यक्ती गुरु-विरह री मुखरित मुखराव।।
९. बीकानेर रियासते पुर-पुर पुरजोर।
पूरी बंदी को कियो प्रयतन सब ठोर।।
१०. इतरमती कइ जन कियो इण में इतराज।
तार दियो तिण कारणे मिल श्राद्ध समाज।।
११. गंगासिंहजी रै करां पहुंच्यो संवाद।
स्वर्गवास सुण पूज्य रो कियो व्यक्त विषाद।।
१२. हार्दिक खेद दिखावता दियो हुकम उदार।
अखिल रियासत में करो बंदी इकसार।।

---

१. लय : पदम प्रभु नित्य समरिए

१३. सारी कोर्ट-कचेड़ियां अरु सकल बजार।
बन्द देश भर में रह्या गण गौरवकार।।
१४. सारै ही बंगाल में हुयो खेद अपार।
कलकत्ता-बाजार[1] में रह्यो बंद व्यापार।।
१५. दाणा-बंदर नाम स्यूं बंबइ-बाजार।
माटुंगा दादर रुक्या सब कारोबार।।
१६. असम प्रांत नौगांव ल्यो रँगपुर रुचिकार।
महमदसिंह सिराजगंज ब्यावर कूचविहार।।
१७. इत्यादिक सादर रह्या गुरु-स्मृति में बंद।
मुश्किल है अवगाहणो गुरु सुकृत-समंद।।
१८. दैनिक साप्ताहिक बहू मासिक अखबार।
करी प्रकाशित टिप्पणी अति उचित प्रकार।।
१९. तार हजारां ही मिल्या विरहाक्षर व्याप।
पुर-पुर देश-प्रदेश स्यूं हार्दिक अनुताप।।
२०. बही हजारां लोचनां आंसू री धार।
सहणो सुगुरु-बिछोहड़ो है दुक्कर कार।।
२१. जैनेतर अरु जैन जो घन परिचित लोग।
स्वर्गवास सुण स्वाम रो रह्या व्योम विलोक।।
२२. रखता तेरापंथ स्यूं मन में अति खार।
बां रै मुखड़ां स्यूं सुण्या इसड़ा उद्‌गार।।
२३. जैन-जगत में ही सही जगमगती ज्योत।
इकसरखो जिणरो तप्यो आतप उद्योत।।
२४. शान-सिकल में झलकतो अद्‌भुत-सो ओज।
कालूजी में ही लख्यो प्रभुता रो पोज।।
२५. मुख स्यूं कहणै में करै कोई संकोच।
पिण व्याप्यो गुरु-विरह रो जन-जन मन सोच।।

---

१. कालूगणी के स्वर्गवास के उपलक्ष में कलकत्ता के निम्नलिखित बाजार बंद रहे—जूट बेलर एसोसिएशन, ईस्ट इंडिया जूट एसोसिएशन, हटकोला, फूल बगान, बांक बाजार, श्याम बाजार, काशीपुर रोड, कपड़ा बाजार, हेसियन, सोना-चांदी का बाजार, हरिसन रोड, मुर्गी हट्टो, चीणा बाजार, खंगरा पट्टी, देशी पट्टी, सूती पट्टी, वासन पट्टी, गेहूं या तिसी का बाड़ा आदि।

२६. महाराणा मेवाड़ रो भूपति भोपाल।
स्वर्गवास सुण पूज्य रो कर्‍यो खेद विशाल।।
२७. मुरड़्या सुंदरलाल नै ओळम्भो आप।
दियो आमनै-सामनै सुन्दर संलाप।।
२८. बीकानेर रियासते बंदी अति जोर।
खबर न किंचित दी मनै मैं करतो गोर।।
२९. सर्वालय मेवाड़ में नहिं बंदी होय।
हळकी लागै आपणी दियो अवसर खोय।।
३०. हीरालाल[1] नहीं रह्यो आ जाणी आज।
भूल न करतो बो इसी मुझ दिल में दाझ।।
३१. बड़ो हुकम कहतां करी गलती मंजूर।
संभळायो आ रूबरू ओ बड़ो कसूर।।
३२. खेद-प्रगट री आ कही पंद्रहवीं ढाळ।
छट्ठे उल्लासे सही 'तुलसी' गणपाळ।।

ढाळः १६.

दोहा

१. मातुश्री छोगां सती, बीदासर स्थिरवास।
दोनूं कानां स्यूं सुण्यो, ओ सारो इतिहास।।
२. म्हारो लालन लाडलो, शासन रो भूपाल।
काल-कराल-प्रभाव स्यूं, पहुंच्यो स्वर्ग विचाल।।
३. लाल-पाल कर पाळियो, जिण नै हाथोहाथ।
तिणरो आज निभालियो, स्वर्गगमन साक्षात।।
४. जिण जोगे मैं पाळियो, संयम जीवन ख्यात।
तिणरो आज निभालियो, स्वर्गगमन साक्षात।।
५. पल-पल में मैं झांकती, जिणरी निशदिन बाट।
सो सोभागी लाडलो, विलसै सुरगां ठाट।।
६. बलि-बलि मुझ संभारतो, शेषकाल चौमास।
बिन पूछ्यां बाल्हेसरू, जा पहुंच्यो सुरवास।।

---

१. सुंदरलालजी मुरड़िया के पिता

७. मो मन में नेहचो निविड़, सुत-कर में सुरवास।
मुझ कर में सुत संचर्‌यो, ओ विचित्र विधि-भास।।
८. अति लम्बो आयुष्य ओ, म्हारो बण्यो निकाम।
निठुर हृदय निरखै नयन, नन्दन-विरहो वाम।।
९. जो सपनै जाणी नहीं, सो दरसाणी आज।
कोई पण मत बांधज्यो, भावी रो अंदाज।।
१०. गुरु-जणणी अतिविरहणी, सर्वंसहणी रूप।
समझावै चेतन भणी, अपणो आत्म सरूप।।

[1]मन मजबूत कियो माताजी।
तो जीती जीवन री बाजी।।

११. रे रे चेतन! क्यूं घबरावै कल्पित सारा अै सुख-दुख है।
है संयोग वियोग-विधायक ओ जिनमत रो तत्त्व प्रमुख है।।
१२. इष्ट-वियोग अनिष्ट-सुयोगे कायर नर झुर-झुर मुरझावै।
निज अधिकार विसार व्यथाकुल व्याकुलता दिल री दरसावै।।
१३. तज संयोग वियोग रोग-युग जो नर अजर-अमरता पावै।
सहजानंद समंदर अंदर बो अपणत्व ममत्व मिटावै।।
१४. यद्यपि मुझ कुलदीपक कालू कुक्षि-उजारण तारणहारो।
त्रिभुवन-ताज नाज शासण रो लाखां नर-नयणां रो तारो।।
१५. मैं ही क्यूं सारो गण विरही फिर आ कायरता कमजोरी।
खटै नहीं संयम-जीवन में आखिर जो है बात निजोरी।।
१६. मैं नरसिंह-सुता अरु माता इक संतानवती कहलाई[2]।
आज अहो! मुझ लाज घणेरी जो दिल कायरताई आई।।
१७. दृढ़ दृढ़तम हिरदो कर लीन्हो प्रबल मनोबल छोगां माई।
बाणू बरसां री ई वय में पाई ज्यूं नूतन तरुणाई।।

---

१. लय : गुरांजी थे मनै गोडै न राख्यो
२. मातुश्री छोगांजी के संसारपक्षीय पिता का नाम नरसिंहदासजी था। इस दृष्टि से आप नरसिंह-सुता थीं। आपके सुपुत्र कालूगणी मनुष्यों में सिंह के समान थे, अतः आप नर-सिंह-माता थीं।

१८. कुण जाणै क्यूं वितथ बतंगड़ फेल्यो पुर-पुर में अणचाह्यो।
बड़ी मुसीबत में है माजी जीवन को आधार लुटायो।।
१६. कोइ कहै सुद सातम स्यूं ही छोड़ दियो अन दुख री दाधी।
कोइ कहै सति जावजीव रो संथारो पचख्यो संवादी।।
२०. नहिं पचख्यो तो आजकाल में अबै पचखसी नहीं हिचकसी।
शासनछत्र सुपुत्र-विरह में आखिर कब तक धाको धिकसी?
२१. सारां नै उपदेश सुणाती छाती राखो भोळा भाई!
जोग विजोग शुभाशुभ-जोगे गई वस्तु फिर कब कुण पाई।।
२२. किण नै रोवै हसै जु किण नै मूढ़ करै क्यूं थारा म्हांरा।।
गया गया फिर नहीं आण का रह्या रह्या सब जावणहारा[1]।।
२३. इण नीती में ऊमर बीती कोरी रीती सीख सुणातां।
अब घरबीती चढ़ी कसौटी बड़ी-बड़ी माजी री बातां।।
२४. यूं आशंका कर-कर आया बीदासर में लोक हजारां।
माजी बेराजी या राजी देखण लागी भीड़ बजारां।।
२५. मनसा वाचा और कर्मणा माजी दै जवाब इकधारा।
सींहण को-सो रूप अबीहण निरखत चित्रित है जन सारा।।
२६. प्राण-पियारो हार हिया रो कालू-सो सुत स्वर्ग सिधायो।
विरह-व्यथाकुल व्याकुल भाया! मैं म्हांरै मन नै समझायो।।
२७. कालू-पटधर श्री तुलसी रो हुलसी-हुलसी नाम समरस्यूं।
मोह दाव में झुलसी दुनिया मैं निर्मोही रो पथ वरस्यूं।।
२८. तुलसी ही कालू श्री डालू माणक मघ जयजश है म्हांरै।
नहिं कोई ऊणायत गण में क्यूं दिलड़ो कायरता धारै।।
२६. जब लग जीस्यूं तब लग शांत सुधारस प्याला भर-भर पीस्यूं।
संयम समता री सूई स्यूं फाट्योड़ा अंतर-पट सींस्यूं।।
३०. शांत भाव स्यूं तप-जप करती जिनशासण री शोभ बढ़ास्यूं।
अंत समे अंतिम अनशन कर अंतिम आराधक पद पास्यूं।।
३१. छोगां री आ छटा छबीली लख-लख लोचन लोक लुभाया।
कानां स्यूं तो कुछ ही सुणता आंख्यां देखी अद्भुत माया।।

---

१. उक्त पद्य कवि सम्मन के निम्नलिखित पद्य का भावानुवाद है—
सम्मन रोवै काहि को, हसे जु कोण विचार।
गए सो आवण के नहीं, रहे सो जावणहार।।

३२. च्यार बरस बलि तीव्र तपस्या पाळ्यो संजम पूर्ण समाधी।
साल सिताणू म्हांरै सम्मुख संथारे सुर-पदवी साधी।।

३३. जगदानंदन नंदन कालू त्यूं जननी निज जीवन झोंक्यो।
छिनमें बरसां री ऊमर में जाणै जो मानव अवलोक्यो।।

३४. दो माजी इण रूपे मिलिया ओ पिण गण में प्रथम हि मोको[1]।
छोगांजी वदनांजी राजी इचरजवारी बात विलोको।।

३५. गुरु संबंधित गुरु-जननी रो वरणन करतां हूंस पुराई।
यशोविलासे षष्ठोल्लासे ढाळ सोळमी 'तुलसी' गाई।।

कलश छंद

३६. गणपाल गंगापुर पदार्पण[1] भिषग भैषज भावनं[2],
युवपद-समर्पण[3] छट्ठ सायं स्वर्गधाम सिधावनं[4]।
वर चरम यात्रा रो विवेचन[5] साम्यरत मातेश्वरी[6],
उल्लास छट्ठम पाट-अट्ठम-अधिप गुण-ग्रथना करी।।

उपजाति-वृत्तम्

गणाधिपस्यास्य विशालधैर्यं,
दृढव्रतित्वं सुकृतित्वमित्थम्।।
संदर्शयन् स्वान्तबलं च षष्ठो-
ल्लासःसमेतीह समाप्तिमिष्टाम्।।

तेरापंथ के अष्टम आचार्यश्री कालूगणी की विशद धृति, दृढ़ व्रतित्व और सुकृतित्व की अभिव्यक्ति के माध्यम से अपनी क्षमता का प्रदर्शन करता हुआ यह छठा उल्लास अभिलषित संपन्नता पर है।

उपसंहृतिः

आचार्य-तुलसी-विरचिते श्री-श्रीकालूयशोविलासे

१. अत्युग्र-व्याधि-बाधित-करस्यापि श्रीगुरुवर्यस्य चातुर्मासिकीं स्थितिं विधातुं गंगापुरपुरे पदार्पण...
२. आशुकविरत्नायुर्वेदाचार्य-पंडित-रघुनन्दन-समर्पित-भैषज्य-निषेवन- महत्तोद्योगेना-पितदामयानुपशमन-गच्छाधिपगात्रविरह-वृत्तांत-विवर्णन...

---

१. देखें प १ सं. ६७

३. समये समये भिक्षुशासनोन्नतिकारिणीं शिक्षां समर्प्य समुदित-साधु-समाजे स्वहृदयोद्‌गारप्रकाशनपुरस्सरं भाद्रव-शुक्ल-तृतीया-प्रभाते सम्मिलित-तीर्थ-चतुष्टय-संघाते मह्यं युवराजपदाधिकारसमर्पण...

४. आलोचनक्षामणादिकार्यमापूर्य सांवत्सरिकोपवासपारणकं कृत्वा कारयित्वा च भाद्रवशुक्लषष्ठ्यां सायं श्रीशासनाधिपतेः स्फटिक-रत्नवत्स्वच्छपरिणामपद्धतेः विविध-व्याधि-बाधितस्याप्यबाधितहृद्-ध्यानधृतेः सप्तमिनिटकालपरिमित-'चउविहार'-अनशनपूर्वकं स्वर्लोकं प्रति प्रस्थान...

५. सम्मिलितैः परःसहस्रैरदभ्र-गुरु-भक्तिभावाकुलैः श्रावककुलैर्महताडम्बरेण 'जय-जयेति' दिग्दिगन्तरानुयायि शब्द-मंडलापूरिताखण्डभूमण्डलोदरं समुच्छलद्‌धवलगीतध्वनितान्तरिक्षकुहरं प्राणविनिर्मुक्तश्रीपूज्यशरीरसंस्कार-महोत्सवाभिमण्डन...

६. गुरुतर-पुत्र-गुरु-वियोग-व्यथित-हृदयाया मातृप्रवराया छोगाया : मोहजीत-जित्वर-प्रवर-साम्यभावसमर्थित-समुचितोत्तरभरेण निरुत्तरीकृताऽशेषसन्दिग्धजनमान-सायाः दृढ़मनोबल-पूर्वक-समता-सागर-निमज्जनोद्‌भूतोदाहरण-विवरण-रूपाभिः षड्भिः कलाभिः समर्थितः षोडशगीतिकाभिः संदृब्धः समाप्तोऽयं षष्ठोल्लासः।

शिखा-१.

दोहा

१. श्री कालू रो वर्णव्यो, घटनारूप चरित्र।
श्रोतृ-श्रवण-तर्पण सुघड़, वर्णन विशद विचित्र।।
२. उत्तम पुरुषां रो हुवै, आकर्षक इतिहास।
किंचित भी ऊणो नहीं, कालूयशोविलास।।
३. प्रत्युत इण पंचम अरे, अरे! अजब आ ख्यात।
देख-देख स्मृति में हुवै, चौथै अर री बात।।
४. आर्हत मत रो अभ्युदय, भिक्षुगच्छ रो भाल।
धन्य जठै प्रगटै प्रवर, कालू जिस्या कृपाल।।
५. अब आखूं संक्षेप में, गुरु-जीवन की नूंध।
सुणज्यो श्रोता जन सुमन, नींदड़ली अवरूंध।।

[1]समरूं कालू कला-निधान।
६. जनम पूज रो जग उद्धारण, उगणीसै तेतीस।
सुद फागुण की दूज सुबेळां, सहज जगत नतशीष[2]।।
७. चम्मालीसै मघव-चरण में, मां भगिनी रै साथ।
शुक्लासोज तीज बीदासर, पायो संजम-पाथ।।
८. पांच वर्ष बिन आंच सांचवी, मघव मुनिप री सेव।
पाछे साढ़ी च्यार बरस लग, ध्याया माणक देव।।
९. बारह बरस हरस दिल आणी, माणी मानस मोज।
श्री डालिम-चरणां चित ठाणी, रहिया राजाभोज[3]।।
१०. छ्यांसट्ठे चंदेरी लीन्ही, डालिम-गादी आप।
भाद्रव शुक्ल पूर्णिमा मानो, उभय शशांक मिलाप।।
११. प्रकृति-मंदिमा गगन-चंदिमा, करत कला विस्मार।
शासन-चंद अमंद सभावे, समता रस संचार।।
१२. जिनवाणी गणधर गूंथाणी, जाणी शमरस-कूप।
बत्तीसी अध्यात्म-निशाणी, पढ़ी आर्य अनुरूप।।

---

१. लय : सुगुणा! खमाविए तज खार
२. देखें प.१ सं. ६८
३. देखें प.१ सं. ६९

१३. अभयदेव शीलांक मलयगिरि, लक्ष्मिवल्लभाचार्य।
आदि रचित आगम री टीका, पढ़ी पूज्य अविकार्य।।
१४. सारस्वत सिद्धांतचंद्रिका, सारकौमुदी नाम।
इत्यादिक व्याकरण विलोकी, डालिम-पटधर स्वाम।।
१५. नेमि पार्श्व पाण्डवचरितादिक, गद्यकाव्य गुरुदेव।
प्रातः प्रवचन में फरमाया, वाणी मधुर सुधेव।।
१६. उच्चस्तर आचार-प्रभावे, आकर्षित नर-नार।
देश-देश पुर ग्राम-ग्राम में, कीन्हा करुणागार।।
१७. थळी देश री गळी-गळी में, प्रसर्‌यो संघ-प्रभाव।
बाल वृद्ध युव महिलावां में, प्रवर भक्ति रो भाव।।
१८. झूले झुलता हंसता-खिलता, उत्संगाश्रित बाल।
नयनां निरखत ही गुरुवर नै, वंदै गोडी ढाळ।।
१९. सन्तां नै बेरावण ल्यावण, बेठै आड़ो झाल।
व्रत निपजावै मोद मनावै, कालू-कृपा विशाल।।
२०. मरुधर मेदपाट अरु मालव, हरियाणो पंजाब।
शेखाटी ढूंढ़ाड़ प्रदेशां, फेल्यो पूज्य-प्रताब।।
२१. सोळह शहरां स्वामी कीन्हा, सत्तबीस चउमास।
भक्तां री अभिलाषा पूरी, सूरीश्वर सोल्लास।।
२२. संवत उगणीसे अड़सट्ठे, छिहंतरे संभार।
बंयासिय अठ्यासिय पावस, बीदासर में च्यार।।
२३. अब सरदारशहर चौमासा, एक सड़सठे साल।
चउत्तरे दूजो नव्यासिय तीजो कियो कृपाल।।
२४. शहर लाडणूं एक सित्तरे, और छंयासिय धार।
चूरू गुणंतरे इक्यासिय, दो-दो पावस सार।।
२५. सुजानगढ़ में एक इकोत्तर, बीजो निब्बे न्हाल।
गंगाशहरे तंय्यासिय, सत्यासिय साल संभाल।।
२६. दोय उदैपुर इक बहोत्तरे, दूजो बाणव वर्ष।
तिहोत्तरे एकाणव टारी, जोधाणां री तर्ष।।
२७. पिचंतरे राजाणे राज्या, सतंतरे हरियाण[1]।
अठंतरे गुरुदेव रतनगढ़, उणियासिय बीकाण।।

---

१. भिवानी

२८. असिए जयपुर झंड जमायो, चोरासिय नानाण[1]।
पिच्यासी छापर जनुभूमी, गंगापुर चरिमाण।।
२९. गण में दीक्षा हुई च्यार सौ दस गुरुवर-बरतार।
पुरुष एक सौ पिचपन, दो सौ पिच्यावन स्त्री धार।।
३०. मुनि-दीक्षा में च्यार एक सौ अविवाहित सुकुमार।
पत्नी सह बावीस, पांच तज शेष[2] विधुर सुविचार।।
३१. साध्वी-दीक्षा में चौरासी कन्या बिना विवाह।
पति साथे बाईस, त्याग पति तीन बीस सोच्छाह।।
३२. पति-वियोग में संयम साध्यो, सौ ऊपर छब्बीस।
आ दीक्षा री नूंध निहारो, गुरुचरणां नत शीष।।
३३. पतित हुया पैंतीस संयमी, मोह-उदय अवधार।
तिणमें है चौबीस स्वदीक्षित, गुरुदीक्षित इग्यार।।
३४. एक सती फूलां गणबाहिर, अशुभ कर्म रै जोग।
सारो दीक्षा-व्यतिकर समझो, लिखित यंत्र-उपयोग[3]।।
३५. घर में रह्या बरस इग्यारै, आचार्यां री सेव।
एकधार बाईस बरस लग करी छरी अहमेव।।
३६. सावण-भादव सुद पूनम तक, रह्या गुप्त युवराज[4]।
पाछै प्रगट रूप पद पाया, अष्टम पद-अधिराज।।
३७. सप्तवीस बरसां स्वामी रो, रह्यो प्रशासन काल।
तेरापथ में एक नयो युग बरतायो खुशहाल।।
३८. अड़सठ संत सयाणी श्रमणी दो सौ पर इकतीस।
श्री कालू नै सूंप सिधाया स्वर्गां डाल गणीश।।
३९. संत एक सौ नै गुणचाली, मूक्या अंतिम काल।
श्रमणी बली तीन सौ तेती, श्री कालू गणपाल।।
४०. यूं गणरक्षण और प्ररोहण, करत सारणा सार।
रखिया-रोहिणि रो कर दीन्हो, उदाहरण साकार।[5]।

---

१. श्रीडूंगरगढ़
२. चौबीस मुनि
३. देखें प. १ सं. ७०
४. उस वर्ष श्रावण दो थे, अतः कालूगणी तीन मास तक गुप्त युवाचार्य रहे।
५. देखें प. १ सं. ७१

४१. गंगापुर में भादव सुद छठ, शुभतर सायं जाण।
सात मिनट संथारे स्वामी, कीन्हो स्वर्ग प्रयाण।।
४२. गुणसठ बरस मास छव साधिक, मध्यम आयू पाल।
दिव्य धाम सुरधाम सिधाया, अै छोगां रा लाल।।
४३. सत्ताईस बरस लग सारी, इकसारी पजुवास।
पल-पल मींट निहारी भारी मगन, बण्यो इतिहास।।
४४. चौथमल्ल मुनि बहु बरसां लग, सुगुरु-सुश्रुषा कीध।
तन-मन झोस होश अति राख्यो, वाह! वाह! लाहो लीध।।
४५. व्यावचियो शिवराज 'बड़ू' रो, खिण-खिण आज्ञाकार।
परम पूज्य नै साताकारी, जीवन भर अविकार।।
४६. ज्येष्ठ सहोदर चम्पक मुनिवर, गुरु-इंगित आराध।
सुजश कमायो सहु मनभायो, संजम सझ्यो अबाध[1]।।
४७. सुख, सोहन गणमोहन[2] तन री, अंतिम सेवा साध।
और-और पिण संत यथोचित, पाई परम समाध।।
४८. कानकंवर झमकूजी जूझी, गुरु-उपासना-हेत।
क्षण-क्षण पल-पल सजग सयाणी, निर्मल हृदय-निकेत।।
४९. और सत्यां पिण हार्दिक भावे, सेवा सझी अलभ्य।
गुरु-उपकृति स्यूं उऋणता हित, खपणो निज कर्तव्य।।
५०. संघ-चतुष्टय ऊपर श्री गुरुवर रो वत्सल-भाव।
संघ-चतुष्टय रो दिन-दूणो, भक्ति भर्‌यो दृढ़ भाव।।
५१. जय-जय भैक्षवशासन-भासन, विश्व-विकासन देव।
पापप्रणाशन धर्मप्रकाशन, सर्वंसह वसुधेव।।
५२. श्रेष्ठ श्रेष्ठतम प्रेष्ठ प्रेष्ठतम, ज्येष्ठ ज्येष्ठतम खास।
स्थेष्ठ यथेष्ठ पवित्र चित्रकर कालूयशोविलास।।
५३. सुणत-सुणत सिर धुणत, अनोखो जागै अंतर स्नेह।
श्रवणानंदन कलुषनिकंदन, गौरवाब्धि गुणगेह।।
५४. शांत करुण रस तरुण हास्य रस, वीराद्‌भुत अनवद्य।
प्रादुर्भूत अभूतपूर्व रस, श्रोता-हृदये सद्य।।

---

१. प्रस्तुत ग्रंथ के संशोधन काल (वि. सं. २०३२) में आचार्यश्री तुलसी के ज्येष्ठ सहोदर मुनिश्री चंपालालजी (सेवाभावीजी) का स्वर्गवास हो गया, इस दृष्टि से उक्त पद्य में 'संजम सझ्यो अबाध' यह रखा गया है।

२. आचार्य

५५. शुद्ध साधुता आर्यवर्यता, विद्वत्ता प्राज्ञत्व।
मानवता नवता अनुभवता, प्रगटै यत्र सतत्त्व।।
५६. श्री श्रीकालूयशोविलासे, प्रथम शिखा सामोद।
है सम्पन्न सदा मुद मानै, 'तुलसी' सद्गुरु-गोद।।

शिखा-२.

दोहा

१. अष्टम पट अनुशासना, जिण दिन स्यूं प्रारम्भ।
तिण दिन स्यूं होणै लग्यो, गणविकास अविलंब।।
२. अति आतुरता स्यूं रची, धर्मसंघ री ख्यात।
व्यापकता रो रूप ले, बणी विशद विख्यात।।
३. अति प्रचंड पाखंड रो, है घमंड शतखंड।
जिणशासण-मंदिर बण्यो, मंडित सध्वजदंड।।
४. तेरापंथ अनंतचिद! जिनवर! तेरा पंथ।
यूं सतंत जाहिर कर्यो, भास्वर पूज्य भदंत।।
५. जीवनवृत्त-विशिष्टता दिगदर्शन रै काज।
तथ्य-कथ्य संग्रह करूं, अनुभव रै अंदाज।।

[1]म्हांनै याद आवै जी।
गुरु रो दिव्य दिदार, म्हांनै...धर्ममूर्ति साकार, म्हांनै...।
पल-पल छिन-छिन घड़ि-घड़ि निशदिन निराधार आधार।।

६. बड़ा-बडेरा लोग घणेरा कब स्यूं करता बात।
प्रबल प्रतापी पाट आठमो होसी जग-विख्यात[2]।।
७. सपनै में स्वामीजी अथवा जयगणि रो संकेत।
तथ्यातथ्य जिनेश्वर जाणै म्है निरख्यो निज नेत।।
८. असियां ऊपर आंक न झांक्यो संतां रो किण बार।
इक सौ गुणचालीस सूंपग्या श्री कालू करतार।।

---

१. लय : माढ़
२. देखें प. १ सं. ७२

९. सात पाट में एकण साथे छव दीक्षा खुशहाल।
जोधाणै बाईस एक दिन एकाणू री साल।।
१०. सोहागण भागण वैरागण कन्या अकनकुमार।
जठै निहारो जणां निहारो आठ-सात तैयार।।
११. शिक्षाक्षेत्र प्रगति हित स्वामी ढूंढ्या नव-नव पाथ।
बिन शिक्षा केवल दीक्षा स्यूं बढ़ज्या कोरो काथ।।
१२. अष्टाध्यायी और प्रक्रिया-क्रम व्याकरण नवीन।
सरस 'भिक्षुशब्दानुशासनं' 'कालुकौमुदी' पीन।।
१३. रघुनंदन कवि चौथमल्ल मुनि दोनां रो उद्योग।
आशीर्वर कालू गणिवर रो बण्यो प्रयोग अमोघ।।
१४. काव्य कोश व्याकरण विशारद पढ़ साहित्य सतर्क।
श्री कालू-बरतारे मुनिवर गहन ज्ञान में गर्क।।
१५. रचना सरस भावना-भीनी पद्य पूर्तिमय स्तोत्र।
श्री कालू-बरतारे सुण-सुण मुदितमना नहिं कोऽत्र।।
१६. प्रवर प्रेरणा पाकर कीन्हो दर्शनक्षेत्र प्रवेश।
कालू कृपया लही शिष्यगण षडदर्शन री रेस।।
१७. रीझ खीज समयोचित साझी शिष्यवर्ग उत्साह-
अधिक बढ़ायो शिक्षा-क्षेत्रे कालू पुण्य-प्रवाह।।
१८. सत्पुरुषां री सघन कल्पना हो फिर स्वप्न मझार।
प्रायो प्राय साच ही निवरै गुरुवृत्तांत विचार।।
१९. धोळा-धोळा बाछि-बाछड़िया स्वपने दीठा स्वाम।
नान्हा-नान्हा श्रमण सती बहु देखो दृगयुग थाम।।
२०. सूको वृक्ष प्रफुल्लित निरख्यो परख्यो परिणतिरूप।
हरित-भरित संस्कृत रो उपवन इच्छा रै अनुरूप।।
२१. दृढ़ आस्था स्यूं स्वाम सुणायो सफल शकुन-संकेत।
चौथ-प्रश्न पर पूज्य पडुत्तर श्रोता सुण्यो सचेत[१]।।
२२. सूत्र भगवती कठिन-कठिन स्थल स्वपने मघ महाराज।
सरल तरीकै स्यूं समझाता प्राप्त सफलता साझ।।
२३. श्री मघवा री लेख सुघड़ता धारी दृढ़ता-धाम।
लेखन-शिल्प अनल्प बढ़ायो निज शासन में स्वाम।।

---

१. देखें प. १ सं. ७३

२४. उत्तराध्ययन व्यवहार-चूलिका श्लोक सहस द्वय माप।
एक पत्र में कुंदन[1] लिखिया देखो पूज्य-प्रताप।।
२५. ग्रंथ पुरातन हस्तलिखित घन सुंदर संग्रह खास।
गण-उपवन में सुमन-सजावट पूज्य-प्रभाव विलास।।
२६. एक भगवती-काजे कीन्हो भिक्षू भूरि प्रयास[2]।
आज प्रवरतर बीसां प्रतियां पूज्य-प्रभाव विलास।।
२७. देश विदेश निवासी कोविद विविध-विषय-पारीण।
पूज्य-पदाम्बुज भेट मेट भ्रम पायो सुख अक्षीण।।
२८. जर्मन कवि हर्मन जेकोबी गिल्की साब सुजाण।
कर प्रश्नोत्तर समाधान वर हर्ष लह्यो असमाण।।
२६. महाराणा भोपालसिंहजी बाव राणाजी वाह!
साक्षात दरसन पदरज-फरसन पायो मोद अथाह।।
३०. बीकानेर-नरेश मुदित-चित झुक-झुक गुरु-मुख झांक।
कालू शरद-शशांक विलोकत किणरी न ठरी आंख।।
३१. जय-जोधाण-नरेश्वर आया बैठ हवाई यान।
दीक्षा-मंडप झंड निहार्‍यो कालू पुण्य प्रमाण।।
३२. ए. जी. जी. आबू रा रीझी आय नम्या प्रभु पाय।
किण रा किण रा नाम गिणाऊं कालू पूज्य पसाय।।
३३. चंदन है वन-वन में भारी पर कारीगर स्तोक।
कुण चुण पाट कपाट बणावै? भिक्षू-वचन विलोक[3]।।
३४. त्यार किया कारीगर कालू निज प्रोत्साहन-पूर्व।
देखो रौनक चंदन-वन की संघ विकास अपूर्व।।
३५. खानदेश सी. पी. मुगलाई दक्षिण हैद्राबाद।
बोम्बे पूना सीमा पहुंची संत कियो प्रतिनाद[4]।।
३६. तीव्र तपस्या श्रमण सत्यां में सुणतां इचरज होय[5]।
नवमासी[6], छव सार्ध-त्रिमासी[7] आछ अगारे जोय।।

---

१. वि. सं. १६७७, भिवानी चातुर्मास में
२. देखें प. १ सं. ७४
३. देखें, प. १ सं. ७५
४. देखें प. १ सं. ७६
५. देखें प. १ सं. ७७
६. साध्वीश्री मुक्खांजी (सुजानगढ़)
७. मुनिश्री रणजीतमलजी (पुर)

३७. सत्ताईसा स्यूं इकतीसा मासखमण मनुहार।
सार्ध-शतक श्री गुरुबरतारे आत्म-शक्ति संचार।।
३८. बत्तीसां स्यूं इकचाली तक बड़ा थोकड़ा भाल।
छव युत बीस किया मुनि श्रमणी पूज्य-प्रभाव विशाल।।
३९. तक्रागार दिवस सेंताली लघुसिंह पाटी तीन।
एक संत इक दो परपाटी दो सति चौथी चीन।।
४०. नान्हा-मोटा और थोकड़ा कुण कर पावै माप।
संघप्रभावक तीव्र तपस्या कालू पूज्य प्रताप।।
४१. दो-दो मासखमण संलेखन ऊपर अनशनकार।
पंद्रह दिन अरु दोय मुहूरत दो मुनि गुरु-बरतार।।
४२. इकचाली गुणचाल दिवस री धुर संलेखन धार।
तीस दिवस दो घंटा अनशन दो श्रमणी सुखकार।।
४३. सात तीस दिन रो संथारो एक सती[1] उल्लेख।
भारिमाल-बरतारा पाछे श्रमणी-गण में देख।।
४४. दीक्षा-अनुमति पावण कीन्हो सागारी संथार।
दिवस इकोत्तर आयू पूर्‌यो रतनी दृढ़ता धार।।
४५. धर्मसंघ पर कई उपद्रव उठ्या कसौटी-रूप।
दुःस्थ-मनोरथ जल-बुद्‌बुदवत शान्त सकल अनुरूप।।
४६. जब्बलपुर कोरट में साक्षी मान्या द्वेषी लोग।
चम्पक मुनि अनुकूल फैसलो पूज्य-प्रभाव अमोघ।।
४७. शिशु-दीक्षा री रोक राज्य स्यूं होणी चावै साव।
दिल्ली इलाबाद जोधाणै कौंसिल रा प्रस्ताव।।
४८. प्रबल प्रयत्न कियो श्रावक जन रोकण हस्तक्षेप।
पूज्य-प्रतापे मिली सफलता धर्मनीति निर्लेप।
४९. जन-गणना में तेरापथ रो खानो रख्यो स्वतंत्र[2]
राखी श्रावक-संघ सजगता कालू-करुणा मन्त्र।।
५०. बालक वृद्ध अरोगी रोगी सबनै संयम साझ।
खूब समाप्यो जीवन आप्यो कालू भव-जल-पाज।।

---

१. साध्वीश्री छगनांजी (रासीसर)
२. देखें प. १ सं. ७८

५१. अशरण-शरण अबंधव-बंधव निरधन-धन जननाथ।
गणनायक असहाय-सहायक त्रायक तीरथ-तात।।
५२. निजानन्द निर्णायक निरुपम उपमा यदि उपमाय।
पुरुषोत्तम बिन तुलना तिणरी किण स्यूं कीधी जाय।।
५३. गण-गौरव विशिष्ट घटना रो कीन्हो अंकित हाल।
श्री श्रीकालूयशोविलासे दूजी शिखा विशाल।।

शिखा-३.

दोहा

१. श्री कालू शासण-समय, जो संघीय विकास।
अद्भुत और अपूर्व है, पढ़ो सुणो सोल्लास।।
२. दीक्षा-शिक्षा-शृंखला, कला और साहित्य।
खुली सहज ही हर दिशा, ले अनुपम लालित्य।।
३. सात पाट की सम्पदा, धरूं तुला इक अंग।
भारी भरकम ही रहै, अष्टम-पट्ट-प्रसंग।।
४. वर्तमान युग-पद्धती, समझ्या श्रमणी-संत।
श्री कालू री प्रेरणा, ओ उपकार अनंत।।
५. सबल सारणा-वारणा, प्रोत्साहन प्रतिरोध।
दिखा आंख की लालिमा, दियो शांत संबोध।।
६. द्रवित विनय-नत हो चल्या, पंडित पत्थर-रूप।
सड़्या गळ्या सहजे टळ्या, पूज्य-प्रताप अनूप।।
७. मधुर संस्मरण ल्यो लिखूं, सार-रूप संक्षेप।
उपकारक कारक लखी, निरुपचरित निर्लेप।।

[1]भाग्य तेरापंथ रो, सौभाग्य तेरापंथ रो,
श्री कालू, श्री कालू-सा गुरु पाया रे,
गौरवशाली गणवनमाली वीतराग री छाया रे।।

---

१. लय : राख ना रमकड़ा

८. रग-रग में वैराग्य रम्योड़ो, जिनशासन री मुद्रा हर वर्तन में।
आत्म-साधना संघ-साधना, एक रूप तन-मन में रे।।
९. विद्या-प्रेम अपूर्व अंग में, सारै जीवन सक्रिय रूप सिखायो।
सबनै 'घो. ची. पू. ली. रो पथ' श्री गुरुदेव दिखायो रे[१]।।
१०. षड्दर्शन प्रमाणनय मुझनै परम कारुणिक कंठस्थित करवायो।
न्यायशास्त्र अरु काव्यशास्त्र रो महातम हृदय बिठायो रे[२]।।
११. प्राकृत रो व्याकरण रटायो, 'ज्ञान कंठ में दाम अंट में ओपै'[३]।
आगम-अनुशीलन नव-पद्धति-बीज हृदय में रोपै रे[४]।।
१२. असवारी[५] री राग सुणाओ और 'कुमारी ना[६]' है कवण विभक्ति।
बड़ां-वड़ां री मति चकराई, म्हारी सझगी भक्ति रे।।
१३. शिव-जागरण शयन पुनि म्हारो, पुनि जागरण परस्पर दोषारोपण।
गुरु-वात्सल्य गणण-तारागण, सुमर्‍यां मानस-तर्पण रे[७]।।
१४. चली पाठशाळा गुरुकुल-विधि, नवदीक्षित मुनि मनै मनोगत मिलता।
ओ फळ सुगुरु अपूर्व कृपा रो शिशु विद्यार्थी खिलता रे[८]।।
१५. साध्वी-दीक्षा पर शिक्षा री नहीं व्यवस्था, मैं बचपन-सो कीन्हो।
तुच्छ प्रार्थना गुरु अतुच्छ-मन, बड़ो ध्यान दे दीन्हो रे[९]।।
१६. फट्‍या-पुराणां कपड़ां में भी, सरस्वती रो वरद पुत्र मिल ज्यातो।
गीर्वाणी वाणी रो ज्ञाता, (तो) कालू-दिल खिल ज्यातो रे।।
१७. घंटां ज्ञान-गोष्ठियां चलती, संस्कृत विद्या में पूरो रस लेता।
बखत-बखत वक्ता श्रोता नै, लोट-पोट कर देता रे।।
१८. अगर व्यर्थ पांडित्य-प्रदर्शन, करतो कोई बणकर पंडितमाणी।
चोटी खांच चंद्रशेखर ज्यूं, करता पाणी-पाणी रे[१०]।।
१९. नवदीक्षित संतां सतियां री, एक बार में सहज परखता बोली[११]।
गहगी लिपळी बरड़ी इण री, बोली बड़ी सतोली रे।।
२०. समुचित प्रोत्साहन प्रताड़ना, और परीक्षण करता वत्सलता स्यूं।
उदाहरण ल्यो भीम[१२] रु मलयज[१३], कुंदन[१४] आदि बतास्यूं रे।।
२१. धन-चंदन मुलतान बाल वय, बहिर्विहारी पड़िहारै सर कालू।
लग्यो नहीं मन उदासीन सुण, की संभाल दयालू रे[१५]।।
२२. नहीं पढूं मैं गरज न म्हांरै, नहीं पढ़ाऊं म्हांरै पिण नहीं गरजी।
नहिं थारै नहिं इण रै, म्हांरै गरज कहै गुरुवरजी रे[१६]।।

१-१६. देखें प. १ सं. ७६-६४

२३. भीनासर सिरि-पूज-उपाश्रय, संवेगी मुनि पूछै सुगुरु-समक्षे।
'कदागुरोकसो भवन्तः' संत कही शुभ लक्षे रे[१]।।
२४. 'कुमरीनवभूपस्य' अपर इक, सन्धी पूछी उलझ्या श्रमण सयाणां।
कालू-कृपया सोहन चूरू, आराधी गुरु आणां रे[२]।।
२५. हुलस हजारां गाथा बगसी, एक-एक नै विद्या विभव बढ़ाणै।
जगन मझम उत्कृष्ट योग्यता, स्वामी स्वयं पिछाणै रे[३]।।
२६. जटिल कौमुदी क्लिष्ट हैम है, और चंद्रिका सारस्वती अधूरी।
सरल विरल क्रम 'भिक्षुव्याकरण', अभिनव बणी जरूरी रे[४]।।
२७. रजोहरण-निर्माण सिलाई, और रंगाई चित्र-लेख-चतुराई।
हरताळी स्यूं लिख बारखड़ी री पाट्यां बगसाई रे[५]।।
२८. आर्य अनार्य देश चर्चा में, आगम उद्धृत पाठ सामनै आयो।
अनुसंधान अनाग्रहयुत, भारी साहस दिखलायो रे[६]।।
२९. करै ज्ञान की क्यूं आशातन? श्री गुरुवर की कड़ी शासना इण में।
उदाहरण छापर-पावस में, चांदमल्ल मुनिगण में रे[७]।।
३०. बीदासर गुरुवर-प्रवचन में, कानकंवरजी विचरत-विचरत आया।
कर आचार्जां री आशातन, लोक ओळमो पाया रे[८]।।
३१. नमोक्कार-मन्त्रोच्चारण में, स्थान-लोभ स्यूं खड़्या न श्रावक कोई।
पड़ी कड़ी फटकार समय सरदारशहर जन जोई रे[९]।।
३२. शिवजी छोटूजी-सा नटखट, सब व्यसनां स्यूं यावज्जीव उबार्या[१०]।
उत्तेजित जत्ती-रासै में, धैं धा करता वार्या रे[११]।।
३३. पचरंगी में कुंदन मुनिवर, अति आग्रह पर तेलो नहीं लिखायो।
सुगुरु इशारै स्हारै, तीयै ऊपर तियो चढ़ायो रे[१२]।।
३४. दो सुत एक सुता दीक्षित कर, निज में दीक्षित केवल नाम कमायो।
शासन भक्त तपस्वी लेखक, गण में गौरव पायो रे[१३]।।
३५. जेठांजी रो मान सवायो, श्री डालिम रो इंगित खूब अराध्यो।
पुनि-पुनि करी प्रशंसा निज-मुख शासन-गौरव साध्यो रे[१४]।।
३६. पुस्तकीय शिक्षा स्यूं वंचित, श्री झमकूजी शिक्षित जीवन जीयो।
श्रमणीगण में श्री गुरु-कृपया, बो जगमगतो दीयो रे[१५]।।

१-१५. देखें पं. १ सं. ६५-१०६

३७. सूत्र भगवती-जोड़ लिखी है सति खूमांजी श्री कालू-बरतारे[1]।
पूर्ण भगवती लिखी सती-युग[2], कुण गुरु-कृपा बिसारे रे।।
३८. नमणी खमणी सोनां श्रमणी[3], अणचां तपसण[4] गण में गौरव पायो।
कठिन काम करणै री क्षमता, समता-रस सरसायो रे।।
३९. निज अनुभूत अनेक संस्मरण, रख्या सुरक्षित लिख्या संघ रै हित में।
कालूयशोविलास-शिखा शुभ, सदा रहै संवित में रे।।

शिखा-४.

दोहा

१. अनुशासन अरु शिष्टता, क्यूं लंघै किण हेत।।
पुष्टाचार-परम्परा, साझै सदा सचेत।।
२. मार्मिक शिक्षण मुनिपति, देता नित निर्भीक।
सुध लेता सबकी समै, अटल अनुज्ञा-लीक।।
३. काछ वाच निकलंकता, तेरापथ रो रूप।
सदा-सदा विकसित रहै, ओ अध्यात्म स्वरूप।।
४. गळबे फूट्यो घी घड़ो, पींदे फूट्यो एक।
एक अखंड उदाहरण, समझाता सुविवेक[5]।।
५. सेठ विदाई की बगत, दी शिक्षा गंभीर।
सेठाणी क्हाणी सुगुरु, कहता सहज सधीर[6]।।

[7]श्री कालू गुरुदेव रा जीवन-संस्मरण सुणाऊं रे।
पाऊं परम प्रसन्नता।।

६. मगन कथन स्यूं जाण्यो गुरुवर मुझ पर दृष्टि टिकाई रे,
जब स्यूं वैरागी बण्यो[8]।।
श्री कालू री परम कृपा पल-पल वृद्धिंगत पाई रे,
रहतो सहज बण्यो-ठण्यो।।

१-६. देखें पं. १ सं. ११०-११५
७. लय : तेजा
८. देखें प. १ सं. ११६

७. रैन अंधेरी खड़्यो देख मुझ शिव-मुनि आंख दिखाई रे,
क्यूं ऊभो है पंथ में?
इणरै ऊपर म्हांरो हाथ न देखो भाखै सांई रे,
कुण के बोलै अंत में[1]।।

८. गंगाशहर प्रथम पावस में गधियाजी गुरु पासे रे,
म्हांरै बारै में कही।
समिति-गुप्ति में सावधान है स्थिरजोगी अभ्यासे रे,
होणहार होसी सही[2]।।

९. निब्बे माघ लाडणूं बिरधीचनजी बात बताई रे,
पूज्य पिता दरसाव री।
उत्सुकता उत्कर्ष हुवै क्यूं, क्यूं मन मान बड़ाई रे?
महिमा संयम-भाव री[3]।।

१०. बालगोठिया संतां सह 'सिन्दूरप्रकर' मैं सीखूं रे,
पड़तां परबारी मिली।
निज पूठै स्यूं मनै दिराई किणनै अबै अडीकूं रे?
म्हांरी मनवनिका खिली[4]।।

११. कब ही पूछ्यो अमुक ग्रन्थ आवश्यक लिखणो चावूं रे,
क्यूं? पूठै में है पड़्यो[5]।
हर प्रसंग में आशातीत महर री नजरां पावूं रे,
मैं भावुक रहतो खड़्यो।।

१२. धोरै स्यूं सीधो उत्तरतां हरियाली में रेती रे,
बचपन स्यूं मैं नां कही।
दियो दंड फिर माफ कियो आ योगखेम की खेती रे,
श्री कालू नित निर्वही[6]।।

१३. उदयापुर में दसरावै राणाजी री असवारी रे,
अजब अनोखी नीकळै।
इण लालच में औरां साथै सह्यो ओळमो भारी रे,
मानस-संयम सीख लै[7]।।

१४. गुरुवाणी री करी अवज्ञा, प्रबल प्रमाद-प्रयोगे रे,
डूंगरगढ़ निशि बातड़ी[8]।

१-८. देखें प. १ सं. ११७-१२४

म्हांरै साथै मगन मुनी भी कड़ो ओळमो भोगे रे,
खिण-खिण समरूं बा घड़ी।।

१५. क्यूंकर विसरूं विस्मयकारक वत्सलता जो देखी रे।
समरूं गद्‌गद-भाव स्यूं।
छोटी-मोटी स्खलनावां में उलाहना उल्लेखी रे,
याद करूं उच्छाव स्यूं।।

१६. नानकियां संतां स्यूं सतियां स्यूं विनोद की बातां रे,
करता परम प्रमोद में।
बल्कलचीरी[1] बंगू, हाबू नत्थू नै बतलाता रे,
गुण भरता नई पौध में।।

१७. घटना अजब 'मदारी खां' री गुणियासिय चोमासे रे,
छूट पड़ी पिस्तोलड़ी[2]।।
विजय अहिंसा सुगुरु-सत्य री आ उण रांगड़-रासे रे,
चांको प्रभुता चोलड़ी।।

१८. अद्‌भुत क्षमता उपशम रो परिचय अनेक वर दीधो रे,
उपशम-आश्रित श्रमणता।
चूरू मुस्लिम साथ मोरचो सिक्ख 'नारसिंह' लीधो रे,
गुरु समता-रस प्रवणता[3]।।

१९. परम कृपास्पद पृथ्वी मुनि नै कड़ी नजर स्यूं देख्या रे,
अनुशासन-अपराध में।
हुई सफाई सब भरपाई मूल स्थिति कर लेख्या रे,
बा ही करुणा बाद में[4]।।

२०. मगन-स्हाज में मनोभेद की परिस्थिती जब सरजी रे,
गुरुवर उपचर्या करी।
तीन-तीन की चित्त समाधी अजब समाधी अरजी रे,
सारां री दुविधा टरी[5]।।

२१. सोहन-चूरू चौथमल्ल मुनि कृपापात्र कालू रा रे,
वरणूं सहज सधीरता।
सही डांट फटकारा लाग्या जाणक उन्हीं लू रा रे,
गुरुवर गहन गंभीरता[6]।।

१-६. देखें प. १ सं. १२५-१३०

२२. बीदासर में कइ मुनियां री आणी अकल ठिकाणै रे,
कर करड़ी उद्घावणी।
मिनटां में अणबोल मिटाई मिलजुल मोजां माणै रे,
कालू री करुणा घणी[1]।।

२३. छिंयासी चंदेरी चोमासै री दुर्घटना में रे,
दृढ़ मानस गुरुदेव रो।
कड़ै ओळमै साथ संघ नै शिक्षा मिली सुयामे रे,
भार मिट्यो अहमेव रो[2]।।

२४. स्वकर 'भिक्षुशब्दानुशासनं' लिखै चौथ-मुनि चारू रे,
प्रेरित पुनि-पुनि गुरु करै।
छहूं विगै छोड़ी साभिग्रह शीघ्र-गती-संचारू रे,
कालू करुणा-रस झरै[3]।।

२५. तन-रोगी री सेवा मन-रोगी नै किंयां निभाणो रे,
उदाहरण मुनि चांद ल्यो।
लेखण और जबान बंद फिर काम न भार उठाणो रे,
समता स्यूं मन सांधल्यो[4]।।

२६. इंगित री अवहेलना नै क्यूं सहसी गुरु ज्ञानी रे,
सुविनीतां नै सोचणो।
एक बार ठोकर खा धारी रावत सीख सयानी रे,
अंतर-पथ आलोचणो[5]।।

२७. ल्यावो 'लिखतां रो पूठो' कुण रोज सही नहिं कीन्ही रे,
करणी आज गवेषणा।
भारी हलचल भेंट परठणां री मिलती हठभीनी रे,
और सही संप्रेषणा[6]।।

२८. पुस्तक-पड़िलेहण रो प्रकरण कभी सामनै आतो रे,
हो ज्यातो तब च्यानणो।
बड़ां-बड़ां संतां रै बंधतो प्रायश्चित रो भातो रे,
पड़तो लोहो मानणो[7]।।

१-७ देखें प. १ सं. १३१-१३७

दोहा

२६. विश्वासी गुरुदेव रा, गुरु-बरतारे देख।
संघ-सेवकां रा करूं, कतिपय नामोल्लेख।।
३०. गायक जती हुलासजी, लेखक रचनाकार।
सेवक शासण रो सदा, रह्यो स्व जीवन वार[1]।।
३१. रामधीन-रूपां जती-जतणी जंपति-रूप।
शासण री सेवा करी, कालू कृपा-स्वरूप[2]।।
३२. अवसर री सेवा सझी, नेमनाथजी सिद्ध।
अतुल कला शास्त्रार्थ री, कालू कृपा समृद्ध[3]।।
३३. नाजिम वृद्धीचंदजी, कालू-पद अनुरक्त।
जीवन भर सरखा रह्या, तेरापथ रा भक्त[4]।।
३४. श्रुत-मर्मज्ञ गणेशजी-मथेरण मतिमान।
जयाचार्य स्यूं शेष तक, शासण-भक्त महान[5]।।
३५. अंतरंग गुरुदेव रा, अंतेवासी जाण।
श्रावक मोलकचंदजी, बैंगाणी बीदाण[6]।।
३६. इकरंगो गुरु-चरण-रत, खरो टको कलदार।
प्रहरी बण सेवा करी, नारसिंह नर-ना'र ।।
३७. दूगड़ मोतीलालजी, वास शहर सरदार।
अंतेवासी सुगुरु रा, शांतवृत्ति सुखकार[7]।।
३८. बंगला[8] रा सावणसुखा, चंदनमलजी नाम।
अरु गुलाबजी सुगुरुपद-सेवा की निष्काम।।

[9]श्री कालू गुरुदेव रा जीवन संस्मरण सुणाऊं रे
पाऊं परम प्रसन्नता।

३६. गोठीजी री नियमनिष्ठता तत्त्वनिपुणता भारी रे,
स्वीकारी श्रीलालजी।

१-७. देखें प. १ सं. १३८-१४४

८. फाजिल्का

६. लय : तेजा

जय-कृत सूत्र 'भगवती-जोड़' पुराणी विधि स्यूं धारी रे,
कीन्हो काम कमाल जी[१]।।

४०. बिखर्‌या पेच भले पगड़ी रा पिण कुण वीसर ज्यासी रे,
बनणा बालू-सेठ री[२]।
सुजाण खारड़ और गुलाब लूणिया जयपुरवासी रे,
जुगती जोड़ी ठेट री[३]।।

४१. नव हजार गाथां री लागत, छूट बच्छ मुनि चाही रे,
सद्‌गुरु विनय न स्वीकर्‌यो।
सन्त पुस्तकां भेंट अबै अगवाणी विचरूं नांहीं रे,
फिर झट आपो संभर्‌यो[४]।।

४२. फूलां जिसी करकशा नै सहयोगे स्वाम निभाई रे,
वत्सलता हद बावरी।
बीकानेर 'समेर बोथरा' सारी विध समझाई रे,
आखिर गणबाहिर करी[५]।।

४३. दो-दो पोथी रो पड़िलेहण अथवा काजो धारो रे,
प्रात-सांझ साथे रहो।
चौकां रा कर धड़ा परठ अथवा परठणा उतारो रे,
गण-अनुशासन में बहो[६]।।

४४. घटना घटित हजारां देवूं किण-किण नै अभिव्यक्ती रे?
असमंजसता सामनै।
किण मुख पाऊं खीर? केकसी री आ साची उक्ती रे[७],
सोचूं लेखण थाम नै।।

४५. शासण में युग-युग संघीय भावना भरता रेसी रे,
अै संस्मरण सुहावणा।
कालूयशोविलास-शिखा नित जीवन-जागृति देसी रे,
'तुलसी' रंग बधावणा।।

१-७. देखें प. १ सं. १४५-१५१

शिखा-५.

दोहा

१. कालू प्रतिभालू अतुल, हृदयालू हृदयेश।
सतत शयालू शिव-शयन, स्पृहयालू भव-शेष।।
२. श्रद्धालू-हित सुरतरु, परम कृपालू पूज्य।
गौरव गृहयालू कृते, प्रतिपल दिल उपयुज्य।।
३. शुभ-भावन-सुरभी कृते, पूज्य पुहुप-प्रतिरूप।
सुमन-सुमन-निवसन अहो, गुरु शतपत्र अनूप।।
४. सज्जन-जन शतपत्र हित, नाथ विमल जल जान।
सद्गुण-जल-भर जलनिधि, छोगां-सुत गण-भान।।
५. अकथ अनघ अविचल अमल, गुण गरिमामय गात।
प्रमित वरण विवरण करूं, सज्जन सुणो सुजात।।

[1]जय जय जय जोगीसरू, छिति-विश्रुत छौगेय।
भव्य भविक आधेय, गुण-गण गौरव गेय।।

६. पंच महाव्रत प्रेम स्यूं पाळ्या निरअतिचार।
भाव विशदवर भावना पंच बीस सुखकार।।
७. आराध्या अन्तरमना प्रतिपल पंचाचार।
जं वाइद्धं आदि दे सब अतिचार निवार।
८. पंच समिति गुप्तित्रयी प्रवचनमाता आठ।
ससम्मान आराधना कीन्ही गणसम्राट।।
९. क्षय कीन्हा मनु मुनिपती इंद्रिय-विषय-विकार।
रग-रग रमी विरागता वीतराग अनुहार।।
१०. जामण-जाया हा जिस्या आजीवन अम्लान।
ब्रह्मचर्य री वर्यता जोवो जन सुज्ञान।।
११. आसपास पिण कुण लखी पुद्गळ-गाढ-पिपास।
उदाहरण आदर्श ओ अनासक्ति रो खास।।

---

१. लय : लक्ष्मण राम स्यूं बीनवै

१२. अवगुण री अवहेलना घृणित न व्यक्ति विशेष।
सद्‌गुण री संवर्धना आजीवन व्रत एष।।
१३. खलता खलती खिणखिणे करता मूलोच्छेद।
नहिं गिणता लहुड़ो बड़ो अयि! अयि! नाथ अभेद।।
१४. नयि-विनयी री राखता निज अवयव ज्यूं सार।
खाता अनयी अविनयी खुद ही पग-पग मार।।
१५. जिणरै सिर पर कर धर्‌यो लायक गुण अवलोक।
पेलो नहिं पेलो हुवै तब लों नहिं निज रोक।।
१६. तुष्टमना गुरु गुरु करै लघु नै पिण लव मांहि।
गुरु नै पिण लघु इतरथा आ क्षमता गुरु बांहि।
१७. छीन सकै छिन में गुरू पद-युवराज प्रदत्त[1]।
प्रकुपित शिष्य-कुटेव स्यूं इण में गुरु समरत्थ।।
१८. अष्ट संपदा[2] संपदा षोडश उपमा[3] संग।
आगम में आख्यात है सकल मिलै गुरु-अंग।।
१९. आगम में आचार्य रा द्वेधा गुण खटतीस[4]।
परिपूरण गुरु-पिंड में मैं झांक्या नतशीष।।
२०. अतिक्रमी रवि-पवि-छवी आतप विक्रमवान।
जान भरी बेजान में पावन पुण्यनिधान।।
२१. अद्‌भुत धार्‌यो व्रतिपती धुर जति-धर्म सम्मर्म।
कति जन नति कर-कर गया मेटी मन रो भर्म।।
२२. खूब निभायो खांति स्यूं वीरुद पतित-उधार।
कुण-कुण कब पावन बण्या? है गणना दुश्वार।।
२३. मघव-हत्थ दीक्षित छतां मघवा-गुण आसान।
महावीर रा पिण ग्रह्या ओ आश्चर्य महान।।
२४. एक-एक गुण ऊपरे कोटि-कोटि कविराज।
वरणन कर करता थकै निज कविता रै व्याज।।
२५. यदि सहसा साहस करूं मुनिपति! मैं मति-अल्प।
(तो) पंगू चढ़ी पहाड़ पे सोसी साझी तल्प।।

---

१. देखें प. १ सं. १५२
२. देखें प. १ सं. १५३
३. देखें प. १ सं १५४
४. देखें पं. १ सं. १५५

२६. वामन जन मनसा धरी गगन गहेसी बाथ।
गणसी अभण गवार ही ग्रह-तारक-संघात।।
२७. आज लगे कुण पावियो गुरु-गुण-गरिमा थाग।
तो 'तुलसी' किम तोलसी, गुरुजलधिज-जलझाग।।
२८. अब तो वर्णन विश्रमी, शमी! यमी! गुरुराज!
कोटि-कोटि श्रद्धांजलि करूं समर्पित आज।।
२९. एक-एक गुण ऊपरे बलिहारी बहु बार।
सहज समर्पण कर करूं दूर दुरित-घन-भार।।
३०. म्हांरै पर गुरुवर कर्‌यो अथग-अथग उपकार।
तिण नै खिण-खिण संभरूं हुलसित-चित हर बार।।
३१. तूं म्हांरो बाल्हेश्वरू तूं म्हांरो सरदार।
प्राण हृदय जीवनजड़ी जीवन रो आधार।।
३२. स्मृति-पथ में आवै सदा बात पाछली रात।
सायं पड़िकमणो कियां आ'र समै अवदात।।
३३. पढतां और पढावतां विद्यार्थी शिशु संत।
अनहद स्मृतियां ऊभरै जद बैठूं एकंत।।
३४. तब खेंचीजै सांतरो हृदय-पटल पर चित्र।
रंग पत्र बिन पिच्छिका अद्‌भुत और विचित्र।।
३५. मन-मानस में उच्छलै नाना रूप तरंग।
प्रबल वेग आवेग स्यूं बण जावै उत्सृंग।।
३६. तिणनै देवण सान्त्वना आरंभ्यो आयास।
ग्रंथ रूप सहज्यां बण्यो कालूयशोविलास।।
३७. शासण त्रिशलानंद रो त्रायक तेरापंथ।
आद्य प्रवर्तक आर्यवर भिक्षू पूज्य भदंत।।
३८. दीपां-कूख उजाळणो बल्लू-कुल-कोटीर।
जिनदर्शन शिरसेहरो विजयी धीर गभीर।।
३९. आर्हत तत्त्वामृत सुगुरु मति-छकणै स्यूं छाण।
सर्व सुलभ घर-घर कर्‌यो आन्तर प्यास बुझाण।।
४०. स्वार्थ परार्थ यथार्थ है यदि परमार्थ सहीत।
बिन परमारथ व्यर्थता भिक्षू-वचन विनीत।।
४१. संवर अरु वर निर्जरा दोनूं ही शिव-पंथ।
बाकी उज्जड़ भटकणो भाखै भिक्खू संत।।

४२. संघ संगठन को रच्यो अभिनव अजब उसूल।
एक सुगुरु-अनुशासना शिव-सुख-झूले झूल।।
४३. गुरु-आणा प्राणां बड़ी ताणाबेजो छोड़।
स्याणां! 'सौ' मैं मत तजो सात हाथ की सोड़।।
४४. गण-मर्यादा अवगणी भटकै जो गण बा'र।
टाळोकर टाळो करो परिचय पक्ष निवार।।
४५. तिणनै साध न सरधणो नहिं बनणा-व्यवहार।
तीरथ में गिणणो नहीं लिखत गुणसठे सार।।
४६. गुरु-भाई अथ शिष्य नै सूंपै गुरु गण-भार।
अनुशासन ननु नच बिना शीघ्र करो स्वीकार।।
४७. इत्यादिक एकत्व रो रच्यो सुदृढ़ आधार।
एकत्वाश्रित नित नयो तेरापंथ-प्रसार।।
४८. पटधारी भारी गुणी भारमल्ल विख्यात।
रायचन्द्र चन्द्रद्युती गण-नभ पुण्य प्रभात।।
४९. जीतमल्ल जयजश कहूं जयाचार्य पर नाम।
मघवा अघवारक महा माणक डालिम स्वाम।।
५०. अष्टम पट्टाधिप अरुण तरुण करुण रस-पूर।
श्री कालू अशरण-शरण कोहिनूर-सो नूर।।
५१. गुरु-चरणांबुज-रज गणी तुलसी नवमाचार्य।
कालूयशोविलास ओ रच्यो अमल अविकार्य।।
५२. लिखित ख्यात श्री पूज्य री थोड़ी निज अनुभूत।
प्रश्न-पडुत्तर रूप में सुणी बात साकूत।।
५३. इत्यादिक आलम्बने ग्रंथ रच्यो साधार।
कहिं कवित्व किल्लोल में लाघव अरु विस्तार।।
५४. पिण छद्मस्थ स्वभाव स्यूं त्रुटि होणी आसान।
मति लेखा में आणज्यो मानवगण मतिमान।।
५५. ढाळ-ढाळ में भालज्यो भव्य भक्ति रो भाव।
मत ना को संभाळज्यो प्रतिभापूर्ण प्रभाव।।
५६. प्रतिप्रकरण में परखज्यो शिक्षा रो संचार।
पिण कोई मत निरखज्यो अलंकार-टंकार।।
५७. सज्जन अंग सुहावणो ओपै अनलंकार।
त्यूं गुरु-गौरव-ग्रन्थना सहज सफल रुचिकार।।

५८. मूंढ़ै आवै खावतां थोड़ै में पकवान।
सदा दाळ-रोटी रुचै त्यूं गुरु-गुण-व्याख्यान।।
५६. हृदय-हूंस पूरी हुई सफल आश सामोद।
कालूयशोविलास ओ धरूं संघ री गोद।।
६०. पवन-रूप पावनमना सज्जन जन निर्द्वन्द।
जन-जन में फैलावसी ग्रंथ-कुसुम री गंध।।
६१. म्हांरै रचना-कार्य में यदि अज्ञान प्रमाद।
'तस्स मिच्छा मि दुक्कडं' मैं बोलूं साह्लाद।।
६२. दो हजार शुभ संवति भाद्रव सुध पख छट्ठ।
सूर्यवार सागी समय गुरु गहि परभव-वट्ट।।
६३. गंगाशहर सुहावणो गंगापुर रै स्थान।
सारी स्मृतियां ऊभरी अभिनव अनुसंधान।।
६४. श्रावक ईशरचंदजी सिज्यातर शालीन।
जाणक सारो चोखळो सेठ-हुकम-आधीन।।
६५. श्रद्धालू संपन्नता वर्धमान परिवार।
गंगाश'र रा चोपड़ा कालू गुरु-उपकार।।
६६. क्षेत्र सुरंगो है घणो अति धार्मिक उत्साह।
तीन खेत्र दो मील में झांकै गुरु-दृग-राह।।
६७. एगुणचाली संत हैं, सती पांच पच्चास।
झमकू लाडां आदि दे सेवै सुगुरु-सुवास।।
६८. भैक्षवगण में भलकता श्रमण एक सौ साठ।
श्रमणी तेरह च्यार सौ जग-जस बाट हि बाट।।
६६. शिखा पांचमी में हुयो पूरो उपसंहार।
कालूयशोविलास ओ शासण रो सिणगार।।

उपजाति-वृत्तम्

१. शिक्षां तितिक्षां प्रथयन् समाजे,
गायन् गुरोर्गौरव-गीत-गाथाम्।
समुज्ज्वलं नीतिबलं वितन्वन्,
कुर्वन्ननीतेः क्षयमेवमेकम्।।
२. प्रदर्शयन् मोक्षपथं मुमुक्षुं,
संस्पर्शयन् धर्मधुरीणधैर्यम्।

प्रोत्कर्षयन् श्रोतृगणं स्वलाभे,
प्रोल्लासयन् नीतिभृतां मनांसि।।
३. प्रोद्धारयन् प्राणिगणं भवाब्धे-
र्विस्तारयन् जैनमतं जगत्याम्।
चिरं जयेत् कालुयशोविलासो,
यावद् ध्रुवं यत्-तुलसी-प्रयासः।। (त्रिभिर्विशेषकम्)

समाज में शिक्षा एवं तितिक्षा को बढ़ाता हुआ, गुरुदेव की गौरव गाथा का संगान करता हुआ, समुज्ज्वल नीति-बल को विस्तार देता हुआ, अनीति का क्षय करता हुआ, मुमुक्ष व्यक्ति को मोक्षपथ दिखाता हुआ, धर्मनायकों के धैर्य का संस्पर्श करता हुआ, श्रोताओं को अपने लाभ में उत्कर्ष देता हुआ, नीतिमान व्यक्तियों के अंतःकरण को उल्लसित करता हुआ, संसार-समुद्र से प्राणियों का निस्तार करता हुआ तथा विश्व में जैन मत को फैलाता हुआ आचार्य तुलसी द्वारा विरचित यह कालूयशोविलास तब तक विजयश्री का वरण करता रहे, जब तक ध्रुवतारा चमकता है।

अन्तिम-निवेदनम्

अयि सुहृदयाः! परमप्रमुदितमानसाः! गुरुगिराकर्णनैकतानाः! व्रति-सती-श्रावक-श्राविकाः! अद्याहं परिपूर्य राजस्थानीय-भाषा-निबद्धं षडुल्लाससज्जितम्, एकाधिकशतगीतिकोपशोभितं विविध-स्वाभाविक-वृत्तान्त- चित्र-चित्रितं, साकारमिव गुरुयशःसमूहं श्री कालूयशोविलासाभिधेयं गेयकाव्यम् अवर्णनीयानन्दानुभूतेर्विषयतां प्रपन्नोऽस्मि।

अहो! कोऽयं सुधास्वादस्यन्दी समयः कुतः पुनरभ्युपेतः? केयं गुरु-गुण-पीयूष-पान-पोषिणी परिषद्? कीदृगसौ समतिक्रान्तपञ्चशतसंख्याकः साधु-साध्वी-समाजः? कश्चाहं कलापारीण-कालू-कलानिधि-परिक्लृप्त-कलनः? इत्थं न सम्यगवगन्तुं शक्नोमि गुरु-गुण-गौरव-ग्रन्थ-पूर्ति-प्रमोद-परिष्टब्धचेताः। तथैव च यूयमपि सर्वे श्रोतृसंज्ञां प्रपन्नाः आनन्दलहरीलग्नाः स्यात एवात्र किमाश्चर्यम्?

अस्तु....

सुकृतान्वेषकाः सर्वदैव यूयं परमश्रद्धेयानामशेष 'स्वर्भूर्भुवः' समाराध्यपादयुगलानामखिलदर्शनपारदृश्वनां जैनश्वेताम्बरतेरापन्थसम्प्रदायाष्टमाचार्याणां सम्बन्धिनमिदं व्याख्यानं सयत्नं पठित्वा पाठयित्वा च श्रुत्वा श्रावयित्वा च निजं निजं हृदयस्थलं पावनीकुरुध्वम् तेनैव ममायासं सफलयध्वम् इत्याशासे।

प्रशस्ति

१

माणक-महिमा डालिम-चरित्र अरु मगन-चरित रो संपादन,
बत्तीसै जयपुर पावस में एकांतवास रो अभिवादन।
तब ही श्रीकालूयशोविलास पुनर्वीक्षण-हित हाथ लियो,
संशोधन परिष्कार पूर्वक प्रस्तुत करणो संकल्प कियो।।

२

पूरै पावस फिर शेषकाल पदयात्रा में भी अविश्राम,
ओ सतत सुचारू काम चल्यो बस्ती-बस्ती पुर ग्राम-ग्राम।
भाषा-शैली में परिवर्तन उन्मुक्त हुयो खुल्लै हाथां,
नूतन-सी कृति तैयार हुई निर्णायक स्थिति आतां-आतां।।

३

नव रचना को-सो श्रम लाग्यो जागरणां में जागृति आई,
बूथै स्यूं ज्यादा कनकप्रभा इणमें पुरुषार्थ लगा पाई।
परिमार्जित प्रतिलिपि स्वयं करी परिशिष्ट सटिप्पण नामक्रम,
लिख कथावस्तु प्राक्कथन मथन संपादन कीन्हो है सक्षम।।

४

अन्योन्याश्रित सुंदर सुयोग इक परखण योग प्रवृत्ति हुई,
श्री जय आचार्य गुलाब सती रै युग री पुनरावृत्ति हुई।
मूल्यांकन इं सारी स्थिति रो करणैवाळा ही कर सकसी,
साध्वी-समाज री आ प्रगती लिखता-लिखता लेखक थकसी।।

५

श्री कालू-जन्मशताब्दी रो सुंदर अवसर आयो सम्मुख,
श्री कालू-जीवन-झांकी रो संगान करै जन-जन मुख-मुख।
अति उत्तम ओ आयास हुयो कालू-कृपया अभिलाष फळी,
सामूहिक पारायण में भी श्रोतां री खिलती कळी-कळी।।

६

तेतीसै ओ सरदारशहर अति मूंघामोलो चौमासो,
गोठीजी रो सुविशाल हाल सब ऋतुवां में सुख रो वासो।
चौतीस श्रमण चालीस च्यार श्रमणी निशदिन गुरु-चरण-शरण,
शोभै जनता स्यूं हर्‍यो-भर्‍यो प्रवचन-मण्डप 'श्रीसमवसरण'।।

७

श्रावण बिद सातम शांत तिथी उल्लास समूचै शासण में,
श्री कालूयशोविलास-कथा जन-जन मन-मन संभाषण में।
उल्लास षट्क सोलह-सोलह ढाळां सब सोळह छक छिनमें,
है पांच शिखा री पांच ढाळ इक सौ इक समरूं छिन-छिन में।

८

भैक्षवगण-गगनांगणे, ले रविशशी प्रकाश।
आलोकित प्रतिपल रहे, कालूयशोविलास।।

९

'विश्वभारती' भारती, आगम-अनुसंधान।
अणुव्रत आंदोलन समन, कालू-कृपा महान।।

१०

वर वय बासठ बरस री, 'तुलसी' ओ तारुण्य।
बार-बार अनुभव करूं, सुगुरु-पुण्य-कारुण्य।।

११

रहसी जुग-जुग जागतो, वर्धमान बेदाग।
'तुलसी' तेरापंथ ओ, शासण रो सौभाग।।

परिशिष्ट

१. सांकेतिक घटनाएं
२. नामानुक्रम
३. ग्रन्थ में प्रयुक्त मूल रागिनियां
४. विशेष शब्दकोश

१. सांकेतिक घटनाएं

१. वीर-वदन-गिरि-गर्भजा
२. श्री कालूकल्याणमन्दिरम्
३. मणि चिंतामणि मूढ शिरोमणि
४. कामकलश तकदीर-विहूणो
५. मुझनै संप्रेरित कर्यो
६. बणो जु कुक्कड़धम्म
७. एक भूप रो गुनहगार
८. लोकनाथ तत्पुरुष बहुब्रीहि
९. पुरुष-वेद स्त्री-वेद-युत
१०. पुनि पाठ पढ़ायो रे
११. जदि साच सुणावै रे
१२. दिन तीन बळून्दै रे
१३. अहाछन्न ओसन्न कुसीलिया
१४. देखो दिल दृढ़ता आनंद री
१५. पाली पटवाजी
१६. बिन स्वारथ पर-हित प्रति
१७. मालमसिंहजी मुरड़िया
१८. अब लो समरूं आंगदू
१९. शुष्क बाग हरियो हुवै
२०. जंगल में मंगल किंयां
२१. रान फता अवतार पता को
२२. भूपति को कर्तव्य सुझायो
२३. प्रमुख उद्धरण बुद्ध लै
२४. मार्मिक एक सुगुरु-वचन
२५. सुण संकेत सचेत संघपति

२६. सेठ चौपड़ा निज प्रभाव स्यूं
२७. परिषद-पूरित पंचायत नोहरो
२८. अम्बर टूट पड़्यो है
२६. बीस विहरमाण
३०. काच-मणकलो रयण-टणकलो
३१. म्हारै पुर हाबू बड़्यो रे
३२. घर-घर घट-घट में घुसी रे
३३. शासण रो गौरव गायो
३४. वीर विक्रमादीत-कहाणी
३५. रोहक कथा सुप्यारी
३६. सम्प्रति-सो सम्राट उजागर
३७. प्रद्योतन इतिहास-प्रभाकर
३८. उज्जयिणी रा डालिम स्वामी
३६. कलकत्ता स्यूं सदलबल
४०. प्रज्ञाचख सहचारी जी
४१. धनजी बैद सुजानगढ़
४२. दानचंदजी चौपड़ा
४३. झाल्यो जिद्द हमीर
४४. मदनसिंहजी मुरड़िया जी
४५. गौरी श्यामा काबर चितरी
४६. हणूत श्रावक-श्राविका
४७. अश्विनि-ईशर बीच में
४८. मैं करी अभ्यर्थना
४६. सारी स्थिति पत्रांकित कीधी
५०. रच्या श्लोक षट लक्ष्मी सक्षम
५१. मोटो गणसमुदाय है
५२. मधुरामन्त्रण कर भणै
५३. बाल अनाथ साथ जो बरती
५४. महर नजर दौलत री घटना
५५. संयुक्ताक्षर योगे...
५६. गधिया गणेशदासजी
५७. साध्वी-वंदन रै समय

५८. प्रातः प्रवचन हाजरी
५६. स्थानान्तर स्यूं भी...
६०. हो गुरु... तंय्यासी री साल जो
६१. हो गुरु... कांटे-बींध्यो पाय जो
६२. बीदासर-नोहरे उदर-व्यथा
६३. हो गुरु...इठ्यासी री बात जो
६४. हो गुरु... निज मघवा री रीत जो
६५. हो गुरु... अध्यापन हित आप जो
६६. हो गुरु... आ'र समय अवधार जो
६७. दो माजी इण रूपे मिलिया
६८. जन्म पूज रो जग उद्धारण
६६. बारह बरस हरस दिल आणी
७०. सारो दीक्षा-व्यतिकर समझो
७१. यूं गणरक्षण और प्ररोहण
७२. बड़ा-बडेरा लोग घणेरा
७३. दृढ़ आस्था स्यूं स्वाम सुणायो
७४. एक भगवती-काजे कीन्हो
७५. चंदन है वन-वन में भारी
७६. खानदेश सी.पी. मुगलाई
७७. तीव्र तपस्या श्रमण-सत्यां में
७८. जनगणना में तेरापथ रो
७६. विद्या-प्रेम अपूर्व अंग में
८०. षडदर्शन प्रमाणनय
८१. प्राकृत रो व्याकरण रटायो
८२. आगम-अनुशीलन नव-पद्धति-बीज
८३. असवारी री राग सुणाओ
८४. 'कुमारी ना' है कवण विभक्ति
८५. शिव-जागरण शयन पुनि म्हांरो
८६. चली पाठशाला गुरुकुल-विधि
८७. साध्वी-दीक्षा पर शिक्षा री
८८. अगर व्यर्थ पांडित्य-प्रदर्शन
८६. नवदीक्षित संता सतियां री
६०. भीम

९१. मलयज
९२. कुंदन
९३. धन-चंदन मुलतान बाल वय
९४. नहीं पढूं मैं गरज न म्हांरै
९५. भीनासर सिरि-पूज-उपाश्रय
९६. कुमरीनव-भूपस्य
९७. हुलस हजारां गाथा बगसी
९८. जटिल कौमुदी क्लिष्ट हैम है
९९. रजोहरण-निर्माण सिलाई
१००. आर्य अनार्य देश चर्चा में
१०१. करै ज्ञान की क्यूं आशातन ?
१०२. बीदासर गुरुवर-प्रवचन में
१०३. नमोक्कार-मंत्रोच्चारण में
१०४. शिवजी छोटूजी-सा नटखट
१०५. उत्तेजित जत्ती रासै में
१०६. पचरंगी में कुंदन मुनिवर
१०७. दो सुत एक सुता दीक्षित कर
१०८. जेठांजी रो मान सवायो
१०९. पुस्तकीय शिक्षा स्यूं वंचित
११०. सूत्र भगवती जोड़ लिखी है
१११. पूर्ण भगवती लिखी सती-युग
११२. नमणी खमणी सोनां श्रमणी
११३. अणचां तपसण
११४. गळबे फूट्यो घी घड़ो
११५. सेठ विदाई की बगत
११६. मगन कथन स्यूं जाण्यो
११७. रैन अंधेरी खड़्यो देख मुझ
११८. गंगाशहर प्रथम पावस में
११९. निब्बे माघ लाडणूं
१२०. बालगोठिया संतां सह
१२१. कब ही पूछ्यो अमुक ग्रन्थ
१२२. धोरै स्यूं सीधो उत्तरतां
१२३. उदयापुर में दसरावै

१२४. गुरुवाणी री करी अवज्ञा
१२५. वल्कलचीरी
१२६. घटना अजब 'मदारी खां' री
१२७. चूरू मुस्लिम साथ मोरचो
१२८. परम कृपास्पद पृथ्वी मुनि नै
१२९. मगन-स्हाज में मनोभेद की
१३०. सोहन चूरू चौथमल्ल मुनि
१३१. बीदासर में कइ मुनियां री
१३२. छियांसी चंदेरी चौमासै री
१३३. स्व कर 'भिक्षुशब्दानुशासनं'
१३४. तनरोगी री सेवा मनरोगी नै
१३५. इंगित री अवहेलना नै
१३६. ल्यावो 'लिखतां रो पूठो'
१३७. पुस्तक-पडिलेहण रो प्रकरण
१३८. गायक जती हुलासजी
१३९. रामधीन-रूपां जती- जतणी
१४०. अवसर री सेवा सझी
१४१. नाजिम वृद्धीचंदजी
१४२. श्रुत-मर्मज्ञ गणेशजी
१४३. अंतरंग गुरुदेव रा
१४४. दूगड़ मोतीलालजी
१४५. गोठीजी री नियमनिष्ठता
१४६. बिखर्‌या पेच भले पगड़ी रा
१४७. सुजाण खारड़ और गुलाब
१४८. नव हजार गाथां री लागत
१४९. फूलां जिसी करकशा नै
१५०. दो-दो पोथी रो पडिलेहण
१५१. किण मुख पाऊं खीर?
१५२. छीन सकै छिन में गुरू
१५३. अष्ट संपदा
१५४. षोडश उपमा
१५५. आगम में आचार्य रा

१. सांकेतिक घटनाएं

१. तीर्थंकर केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। उस समय गणधर उनकी वाणी को ग्रहण करते हैं और उसके आधार पर द्वादशांगी की रचना होती है। भगवान महावीर के तीर्थप्रवर्तन काल में गणधर गौतम ने प्रश्न किया—भगवन! तत्त्व क्या है? भगवान ने उत्तर दिया—उत्पन्न होता है। गणधर गौतम ने सोचा—सब पदार्थ उत्पन्न होते रहेंगे तो इस संसार में कैसे समाएंगें? उन्होंने फिर पूछा—भगवन! तत्त्व क्या है? भगवान ने उत्तर दिया—विनष्ट होता है। सब पदार्थों का विनाश होने के बाद संसार में क्या बचेगा? इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर उन्होंने फिर पूछा—भगवन तत्त्व क्या है? भगवान ने उत्तर दिया—स्थिर रहता है।

गणधर गौतम ने त्रिपदी का आधार पाकर अपने विशिष्ट ज्ञान से चौदह पूर्वों का ज्ञान कर लिया। विद्वान वे स्वयं थे ही, भगवान की वाणी निमित्त बनी और उनके ज्ञानावरणीय कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम हो गया। इस त्रिपदी के अनुसार उत्पाद, विनाश और ध्रौव्य ही तत्त्व है। द्रव्य सदा स्थिर रहता है। पर्यायों में उत्पाद और विनाश होता रहता है। भगवान द्वारा निरूपित यह त्रिपदी ही समग्र तत्त्वज्ञान का आधार है।

२. 'कालूकल्याणमन्दिर' कालूगणी की स्तुति में लिखा हुआ स्तोत्र है। उसकी रचना कल्याणमंदिर स्तोत्र के प्रत्येक पद्य से एक-एक पंक्ति लेकर समस्यापूर्ति के रूप में की गई। इस काव्य ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा 'जैन मेघदूत' आदि समस्यापूर्ति के रूप में लिखे हुए काव्य-ग्रन्थों के अध्ययन से मिली।

सबसे पहले मुनि कानमलजी और मुनि सोहनलालजी ने भक्तामर स्तोत्र की एक-एक पंक्ति समस्या रूप में लेकर कालूभक्तामर की रचना की। उनके इस प्रयोग से दूसरे संतों में भी जागृति आई। मुनि नथमलजी (बागोर) ने कल्याण-

मन्दिर स्तोत्र के पद लेकर समस्यापूर्ति की। मुनिश्री तुलसी ने भी कल्याण- मन्दिर को आधार बनाकर 'कालूकल्याणमन्दिरम्' का सृजन किया। मुनि धनराजजी और मुनि चंदनमलजी ने भी स्तोत्र लिखे। मुनि सोहनलालजी ने दूसरी बार समस्यापूर्ति के लिए कल्याणमन्दिर का आधार लिया। इस प्रकार सहज रूप से पूज्य कालूगणी के संबंध में संस्कृत भाषा में स्तोत्र साहित्य तैयार हो गया।

मुनि तुलसी ने जब अपना 'कालूकल्याणमन्दिर' स्तोत्र आचार्यश्री कालूगणी को दिखाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और संवत्सरी के दिन परिषद में उसे सुनकर मुनि तुलसी को प्रोत्साहित किया।

३. एक ब्राह्मण देह-चिंता से निवृत्त होकर नदी के तट पर आकर बैठा। लोटा साफ करने के लिए उसे मिट्टी काम में लेनी थी। तट की मिट्टी को खोदते समय उसके हाथ में कुछ कंकर आए। एक कंकर काफी चमकीला और आकर्षक था। उसको ब्रांह्मण ने अपनी जेब में डाल लिया।

वह तट पर बैठा था। ठंडी हवा चल रही थी। चारों ओर चहल-पहल थी। ब्राह्मण ने सोचा—इतना अच्छा वातावरण इस स्थान को छोड़कर कहां मिल सकता है। घर जाने की इच्छा ही नहीं होती। पर करूं ही क्या? पेट भूखा है। क्या ही अच्छा हो, यहां खीर-पूरी का भोजन मिल जाए। सोचने भर की देर थी, खीर और पूरियों से सजा थाल सामने आ गया। ब्राह्मण आश्चर्य में खो गया। मनोनुकूल भोजन पाकर उसने चिंतन में समय लगाना उचित नहीं समझा। भरपेट भोजन किया। ऐसी स्वादिष्ट खीर उसने पहले कभी नहीं खाई थी।

खाने के बाद आलस्य सताने लगा। सोने की इच्छा हुई और पलंग तैयार। प्रातःकाल की ठंडी हवा अब तेज धूप में परिणत हो गई। ब्राह्मण को भी धूप सताने लगी। उसने मकान का स्वप्न देखा। दूसरे ही क्षण आधुनिक साज-सज्जा से युक्त मकान तैयार। ब्राह्मण ने जो-कुछ सोचा, वही उसके सामने उपस्थित। एक ओर विस्मय, दूसरी ओर भगवान की कृपा का आभास। वह निश्चिंत होकर सो गया।

ब्राह्मण ने पलकें मूंदीं कि सामने एक कौआ आकर बैठ गया और कांव-कांव करने लगा। उसने कौए को उड़ाने का प्रयास किया, पर वह उड़ा नहीं। मेरे भाग्य के साथ टक्कर लेने यह कहां से आ धमका? इस चिंतन के साथ उसने जेब में हाथ डाला और वह कंकर निकालकर कौवे की ओर फेंका। कौआ उड़ा और उसके साथ ही उस समूचे ऐश्वर्य का लोप हो गया। इन्द्रजाल या स्वप्न-माया की तरह अपने ऐश्वर्य को खोकर वह ठगा-सा रह गया।

वह सारा ऐश्वर्य चिंतामणि रत्न के द्वारा उपलब्ध था। रत्न गया और ऐश्वर्य समाप्त। प्राप्त चिंतामणि रत्न को भी भाग्यहीन व्यक्ति सुरक्षित नहीं रख सकता।

४. एक विद्याधर आकाश-मार्ग से यात्रा कर रहा था। रास्ते में उसे अतिसार की बीमारी हुई। स्वास्थ्य-लाभ के लिए वह नीचे उतरा। कई व्यक्ति उधर से गुजरे, पर किसी ने विद्याधर की ओर ध्यान नहीं दिया। आखिर एक गरीब व्यक्ति ने उसको देखा। वह उसे अपनी झोंपड़ी में ले गया और परिचर्या में जुट गया।

विद्याधर बेहोश हो चुका था। जब उसे होश आया तो उसने देखा—एक अपरिचित व्यक्ति अग्लान-भाव से उसकी सेवा में संलग्न है। विद्याधर अतिसार और भूख के कारण व्यथित हो रहा था। उसने अपना झोला खोला। उसमें से एक कलश निकाला। उसे पट्ट पर रखकर पूजा की और घी के साथ अच्छी तरह पकी हुई खिचड़ी की मांग की। मांग के साथ ही घी-खिचड़ी तैयार। विद्याधर ने थोड़ी खिचड़ी खाई और अपने उपकारी व्यक्ति को भरपेट खिलाई।

विद्याधर उस अपरिचित व्यक्ति की सेवाभावना पर बहुत प्रसन्न था। वह बोला—'भाई! तुमने मेरी इतनी सेवा की है, कोई वरदान मांग लो।' गरीब व्यक्ति उस कामकलश के जादू को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो रहा था। जब उसे वरदान मांगने को कहा गया तो उसने उसी को मांग लिया। विद्याधर ने उसे समझाया कि मैं तुम्हे ऐसा मंत्र सिखा दूंगा, जिससे ऐसे घड़े बनाए जा सकते हैं। लेकिन वह नहीं माना। आखिर विद्याधर उसे काम-कलश देकर अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा।

विद्याधर को विदा कर उस व्यक्ति ने कामकलश की पूजा की और अपनी मांगें प्रस्तुत कीं। मांग के अनुरूप उसे भोजन, मकान, ऐश्वर्य सब कुछ मिला। गरिष्ठ भोजन ने उसको उन्मत्त बनाया। अब उसने शराब की मांग की। शराब पीने के बाद नर्तकी का नृत्य देखने की इच्छा हुई। नर्तकी नाचने लगी, पर नृत्य उसे पसंद नहीं आया। वह बोला—'तुम ठहरो। मैं नाचता हूं।' कामकलश को सिर पर रखकर उसने नृत्य करना शुरू किया। हाथ का आलंबन छूटते ही कलश नीचे गिर पड़ा और चूर-चूर हो गया। कलश फूटा और सारी लीला समाप्त। वह गरीब आदमी अपनी उसी छोटी-सी झोंपड़ी के अभावग्रस्त परिवेश में खड़ा था। अब अनुताप के अतिरिक्त उसके पास बचा ही क्या था? ऐसे अपूर्व कामकलश को वह दुर्भागी व्यक्ति कैसे रख सकता था।

५. मुनि हेमराजजी हमारे धर्मसंघ के विशिष्ट मुनियों में एक थे। उनका

सैद्धांतिक ज्ञान काफी परिपक्व था। आचार्यश्री तुलसी ने उनको हेमराजजी स्वामी (सिरियारी) की प्रतिकृति मानकर उनका गौरव गाया है। मुनि हेमराजजी मुनि तुलसी को शास्त्रीय और सैद्धांतिक धारणा कराना चाहते थे, पर आचार्यश्री की अभिरुचि इस ओर कम थी। मुनि हेमराजजी का चिंतन था कि मुनि तुलसी इस विषय में पारंगत नहीं होंगे तो सैद्धांतिक ज्ञान की परंपरा आगे कैसे बढ़ेगी? इस दृष्टि से उन्होंने एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग किया।

मुनि हेमराजजी ने मुनि तुलसी को बासठिया, गतागत आदि थोकड़े सिखाए, पर कभी रटाए नहीं। वे बात करते-करते एक-एक बोल का रहस्य समझाते थे। समझाने की कला उनकी विचित्र थी। हर कठिन तथ्य को वे इतनी मधुरता से बताते कि उसमें उपन्यास जैसा रस अनुभव होने लगता। आचार्यश्री तुलसी ने उनके इस प्रयास को अपने प्रति आभार रूप में स्वीकार किया है।

६. गांव के बाहर रंगरेजों के कई परिवार रहते थे। वस्त्र रंगने के लिए उन्होंने जमीन में रंग की कई कुंडें बनवा लीं। उनमें नीला, हरा, पीला, लाल, बैंगनी आदि रंगों का घोल भर लिया। एक दिन एक घने गहरे बालोंवाला कुत्ता नीले रंग की कुंड में गिर पड़ा। जब वह बाहर निकला तो उस पर गहरा नीला रंग चढ़ गया। अब वह एक विचित्र जानवर-सा प्रतीत होने लगा। अपने वैचित्र्य का लाभ उठाने के लिए वह जंगल में जाकर एक ऊंचे टीले पर बैठ गया।

थोड़ी देर में वहां कुछ पशु इकट्ठे हो गए। उस विचित्र जानवर को देख वे उसके पास पहुंचे और उसका परिचय पूछा। कुत्ते ने कहा—'तुम मुझे भी नहीं जानते। मैं इस जंगल का पशु हूं और वनराज ने मुझे इसका स्वामित्व सौंपा है।' पशुओं द्वारा नाम पूछे जाने पर उसने बताया—'मेरा नाम है कुक्कड़धम्म।'

पशुओं ने कुक्कड़धम्म को एक शक्तिशाली पशु माना और वे उसकी सेवा में जुट गए। सहसा गांव के बाहर कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनाई दी। कुक्कड़धम्म से रहा नहीं गया, वह भी उनके साथ भौंकने लगा। भौंकते ही पशुओं को उसका भेद मिल गया। सबने मिलकर उस पर आक्रमण कर उसे मार डाला। धोखा दिया जा सकता है, पर वह अधिक समय तक टिक नहीं सकता।

७. युवा सम्राज्ञी अपने शहर के एक युवक के प्रति आकृष्ट हो गई। वह प्रतिदिन अपने गवाक्ष में बैठकर उस युवक की प्रतीक्षा करती। जब वह महल के नीचे से गुजरता तो वह अनिमिष नयनों से उसे तब तक देखती रहती, जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो जाता।

एक दिन युवक ने आंखें ऊपर उठाईं। महारानी उसकी ओर देख रही थी।

दोनों की आंखें मिलीं। युवक सहमा और उसने आंखें झुका लीं। उसने दूसरी बार ऊपर देखा, महारानी उसी मुद्रा में नीचे झांक रही थी। उसकी आंखों में संकेत था और संकेत में था आमंत्रण। युवक अभिभूत हो गया। अब वह एक से अधिक बार उस पथ से गुजरने लगा।

सम्राज्ञी और वह युवक मानसिक दृष्टि से काफी निकट आ गए। अब वे दोनों मिलने के लिए आतुर हो रहे थे, पर कोई उपाय कारगर नहीं हो रहा था।

उस नगर की मालिन फूलां राजा की विश्वासपात्र थी। वह फूलों की टोकरी लेकर प्रतिदिन अंतःपुर में जाती। युवक उस मालिन से मिला और बोला—'मुझे जैसे-तैसे महारानी के पास पहुंचा दो। मैं तुम्हें मुंहमांगा इनाम दूंगा।' मालिन लोभ में आ गई। उसने कहा—'रनिवास में जाने का रास्ता राजसभा के बीच से है। इसलिए वहां पहुंचना सहज बात नहीं है। हां, यदि तुम मेरे कपड़े पहनकर मेरी पुत्रवधू के रूप में मेरे साथ चलो तो काम हो सकता है।' युवक इसके लिए तैयार हो गया।

मालिन ने उस युवक को अपने वस्त्र पहनाए और उसके सिर पर फूलों की डलिया रख दी। राजमहल में पहुंचने के लिए वह राजा के आगे से गुजरी। राजा ने उसे टोका—'यह तुम्हारे साथ कौन है?' मालिन बोली—'महाराज! यह मेरी पुत्रवधू है। इतने दिन मैं सारा काम अकेली देखती थी, अब बूढ़ी हो गई हूं। इसे साथ में रखने से मेरा काम हल्का हो जाएगा और यह काम सीख लेगी।'

राजा ने उसको रोका नहीं, पर वह उसके प्रति संदिग्ध अवश्य हो गया। फूलां ने उसको महारानी से मिला दिया। लौटते समय ज्योंही वह राजा के निकट से गुजरा, उसका पांव जोर से टिका। राजा के मन में जगा हुआ सन्देह फिर उभरा। उसने अपने सचिव को उनके पीछे जाकर पूरी जानकारी करने का निर्देश दिया।

सचिव के द्वारा संकेतित व्यक्तियों ने उनका पीछा किया। मालिन के घर पहुंचकर जब उस युवक ने अपना मुंह खोला तो गुप्तचरों ने उसको पकड़ लिया और राजा के सामने उपस्थित कर दिया।

राजा ने सारी स्थिति का अध्ययन कर महारानी को दंडित किया, फूलां मालिन को दंडित किया और उस धूर्त युवक को दंड देने का निर्देश देते हुए कहा—'इसका मुंह काला करो, पैर नीले करो, सिर के बाल कटवाओ, पर पांच शिखा—चोटी रख दो। गधे पर सवारी कराओ और कोतवाली के चबूतरे पर रखे हुए सवा हाथ के जूते से उस पंचशिख को पीटते हुए सारे शहर में घुमाओ।

उसके बाद उसे फांसी दो।'

पंचशिख नाम सिंह का है। सिर पर पांच शिखाएं होने के कारण वह दुश्चरित्र युवक भी पंचशिख हो गया। दोनों पंचशिखों में जो अन्तर है, वह स्पष्ट है।

८. 'लोकनाथ' समस्त पद है। इसमें समास दो प्रकार से होता है। तत्पुरुष समास की पद्धति से इसका विग्रह होगा—लोकस्य नाथः लोकनाथः—लोक का स्वामी। बहुव्रीहि समास की पद्धति से इसका विग्रह होता है—लोकः नाथो यस्य—लोक जिसका नाथ है, वह व्यक्ति।

तत्पुरुष और बहुव्रीहि समास से निष्पन्न दोनों लोकनाथ शब्द शाब्दिक दृष्टि से एकसमान होने पर भी अर्थ की दृष्टि से पूरा विपर्यास रखते हैं।

९. आत्मविकास की चौदह भूमिकाओं में आठवीं भूमिका का विशेष महत्त्व है। वहां से आगे बढ़नेवाले जीवों की दो श्रेणियां हैं—उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। उपशम श्रेणी से आगे बढ़नेवाले मनुष्य ग्यारहवीं भूमिका तक पहुंचते हैं, पर उन्हें वहां से लौटना पड़ता है। जो व्यक्ति क्षपकश्रेणी लेकर आगे बढ़ते हैं, वे चौदहवीं भूमिका तक पहुंचकर निश्चित रूप से मुक्त हो जाते हैं।

श्रपकश्रेणी लेनेवाले व्यक्तियों के विश्लेषण में यह स्पष्ट निर्देश है कि एक समय में इतने पुरुष, इतनी स्त्रियां, इतने कृत्रिम क्लीव क्षपकश्रेणी लेते हैं। क्षपकश्रेणी लेने वाले पुरुषों और कृत्रिम क्लीवों का जब मोक्ष होता है, तब स्त्री का मोक्ष क्यों नहीं होगा?

इस संदर्भ में यह कहा जाए कि स्त्री वेद में मुक्ति का निषेध है, तो इस तथ्य से कौन असहमत होगा? क्योंकि मुक्ति न स्त्री वेद में होती है और पुरुष वेद में। लिंग का जहां तक प्रश्न है पुरुषलिंग या स्त्रीलिंग कोई भी मुक्ति में बाधक नहीं है।

१०. गोम्मटसार, जीवकांड, विचार ६।६२९-६३१।

१. होंति खवा इगि समये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य।
उक्कुसेणट्ठुत्तर-सयप्पमा सग्गदो य चुदा।

२. पत्तेयबुद्ध तित्थयरत्थि णउंसय मणोहिणाण जुदा।
दस छक्क वीस दस बीसट्ठावीस जहाकमसो।।

३. जेट्ठा वर बहु मज्झिम ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव।
जुगवं हवंति खवगा उपसमगा अद्धमेदेसि।।

११. माता अपने पुत्र को आदर्श व्यक्ति बनाना चाहती थी। उसके जीवन का आलम्बन एकमात्र वही पुत्र था। वह उसके खान-पान, अध्ययन आदि सब

प्रवृत्तियों का पूरा ध्यान रखती और समय-समय पर उसे प्रशिक्षण देती। उसके प्रशिक्षण के सूत्र थे—

* बेटा! अच्छे बच्चे बनो।
* सबके साथ प्रेम से रहो।
* किसी की चोरी मत करो।
* सदा सत्य बोलो।
* बड़ों का विनय करो।
* पढ़ाई में मन लगाओ, आदि।

लड़के ने कई बार माता की शिक्षा सुनी। अन्य सब बातें तो ठीक, पर सत्य बोलना बड़ी कठिन बात है, यह सोचकर उसने कहा—'मां! तुम्हारी सब बातें मुझे मान्य हैं, पर सच बोलना ठीक नहीं है।' माता ने कहा—'पुत्र! सांच को आंच नहीं। कुछ भी हो, सत्य पर परदा नहीं डालना चाहिए।' पुत्र बोला—'मां! मैं तुम्हारा अनादर तो नहीं करता, पर इस बात में मुझे संदेह है। यदि मैं सत्य बोलूंगा तो तुम भी मुझे मारने आओगी।' माता ने कहा—'नहीं बेटा! यह कभी हो नहीं सकता।'

'तो मां! मैं अपने मन की बात कह दूं?' पुत्र ने अनुमति मांगी। मां ने अनुमति दी तो पुत्र बोला—'मां! मैं आज तुमसे एक बात पूछना चाहता हूं। तुम और मैं सभी जानते हैं कि मेरे पिताजी को गुजरे कितना समय हो गया है। अब तुम यह शृंगार किस पर करती हो?'

अपने पुत्र के ये शब्द सुन मां हाथ में छड़ी लेकर उसको मारने दौड़ी। पुत्र पहले से ही सजग था, वह वहां से भाग गया। काफी देर बाद जब वह लौटा, मां का आवेश समाप्त हो चुका था। उसने उसको संबोधित कर कहा—'मां! तुम मुझे कितना प्यार करती हो। छड़ी तो दूर की बात है, कभी हाथ भी उठाना नहीं चाहती। पर आज सच बोला तो तुम मुझे मारने दौड़ी। 'सत्य बोलने पर मां मारती है,' यह कहावत मुझे एकदम सही जान पड़ती है।'

आदर्श की बात तो सभी कर लेते हैं, पर अपने जीवन में उसका प्रयोग कौन करते हैं।

१२. बलुंदा और जैतारण के बारे में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित दोहे—

ग्राम बलुंदे तीन घर, श्रावक तेरापंथ
भीखम केवल सेठिया और सेठ जसवंत।।
जैतारण में जागतो, छल्लाणी परिवार।
सचमुच तेरापंथ रो, गौरव धरै अपार।।

१३. प्रस्तुत पद्य में प्रयुक्त चार शब्द मुनि की संयम के प्रति उदासीनता और प्रमत्तता के द्योतक हैं। जो मुनि संयम में श्लथ होकर मुनि की चर्या और क्रिया में उपेक्षा के भाव बरतने लगता है, उसे इन विशेषणों से विश्लेषित किया जाता है। प्रमाद अनेक प्रकार का होता है, इसलिए उन विभिन्न अवस्थाओं को अभिव्यक्ति देने वाले भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है—

अहाच्छन्न—वह मुनि यथाच्छन्द कहलाता है, जो आगम-निरपेक्ष होकर स्वच्छन्द मति से जीवन-यापन करता है और स्वच्छन्दता का प्रज्ञापन करता है।

ओसन्न—वह मुनि अवसन्न कहलाता है, जो आवश्यक आदि विहित अनुष्ठान के सम्पादन में आलस्य करता है अथवा मुनि की सामाचारी के पालन में प्रमाद करता है।

कुसील—वह मुनि कुशील कहलाता है, जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार और चारित्राचार का सम्यक अनुशीलन नहीं करता अथवा जाति, कुल आदि के आधार पर आजीविका करता है।

पासत्थ—वह मुनि पार्श्वस्थ कहलाता है, जो कारण के बिना आहृत आदि दोषपूर्ण आहार का सेवन करता है अथवा ज्ञान आदि की आराधना से बाहर रखता है।

१४. वाणिज्यग्राम नामक नगर में गृहपति आनंद रहता था। वह ऐश्वर्यसंपन्न था और शहर का प्रतिष्ठित नागरिक था। एक बार वहां भगवान महावीर का आगमन हुआ। आनंद भगवान के दर्शन करने गया। भगवान का उपदेश सुन वह प्रभावित हुआ और उसने श्रावकधर्म स्वीकार कर लिया। श्रावकधर्म के मर्म को समझकर आनंद ने भगवान महावीर के सामने एक अभिग्रह (विशेष संकल्प) स्वीकार करते हुए निवेदन किया—

'भन्ते! मैं आज से किसी भी अन्यतीर्थिक मुनि, अन्यतीर्थिक देव और अन्यतीर्थिकों द्वारा परिगृहीत अर्हत्-चैत्य को वंदन-नमस्कार नहीं करूंगा। अपनी ओर से पहल करके अन्यतीर्थिकों के साथ बात नहीं करूंगा तथा विशेष परिस्थिति (राजा की आज्ञा, गण की आज्ञा, देव-प्रयोग आदि) के बिना उनको आहार-पानी आदि नहीं दूंगा।'

निर्ग्रंथ धर्म के प्रति गृहपति आनंद के मन में गहरी आस्था थी। भगवान महावीर के प्रति वह हृदय से समर्पित था। महाव्रत दीक्षा के प्रति उसका आकर्षण था, पर उसके लिए उसने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए श्रावकधर्म की दीक्षा स्वीकार की।

श्रावकधर्म की विशेष पुष्टि हेतु आनंद ने उपर्युक्त अभिग्रह स्वीकार किया। जीवनभर धर्मजागरण में जागरूक रहकर उसने अंतिम समय में अनशनपूर्वक मृत्यु का वरण किया।

१५. पाली के विजयचंदजी पटवा आचार्यश्री भिक्षु के प्रमुख श्रावकों में एक थे। उन्होंने गहराई से तत्त्व को समझा और स्वामीजी के पास सम्यक्त्व दीक्षा स्वीकार की। स्वामीजी के प्रति उनके मन में गहरी श्रद्धा थी।

चन्द्रभाणजी, तिलोकचंदजी आदि टालोकर एक बार पाली आए। वहां उन्होंने धर्मसंघ, स्वामीजी और साधु-साध्वियों का अवर्णवाद बोलकर श्रावकों की श्रद्धा डिगाने का प्रयत्न किया। विजयचन्दजी पटवा वहां के प्रमुख श्रावक थे। उनको भी अपने जाल में फंसाने का प्रयत्न किया गया, पर सफलता नहीं मिली।

कुछ समय बाद स्वामीजी पाली पधारे। वहां वे विजयचंदजी के मकान में रहे। कुछ मुनियों ने स्वामीजी से निवेदन किया—'यहां टालोकरों ने काफी बहकावट की है। पटवाजी पर भी उसका कोई असर है या नहीं, आपको ध्यान देना चाहिए।' स्वामीजी बोले—'अब हम यहीं हैं, इनको संभाल लेंगे।'

दिन पर दिन बीतते गए। एक महीना पूरा होने जा रहा था। स्वामीजी को अब वहां से प्रस्थान करना था और वे प्रस्थान से पूर्व संतों को पटवाजी की दृढ़ आस्था से परिचित करना चाहते थे। एक दिन आचार्य भिक्षु ने पूछा—'पटवाजी! यहां तिलोकचन्दजी, चंद्रभाणजी आए थे?'

पटवाजी—'हां, गुरुदेव! आए थे।'

स्वामीजी—'उन्होंने धर्मसंघ और हमारे विरोध में काफी बातें कहीं होंगी?'

पटवाजी—'हां, महाराज! कही थीं?'

स्वामीजी—'क्या तुम्हारे सामने भी कही थीं?'

पटवाजी—'हां, गुरुदेव!'

स्वामीजी—'तुमने कभी कुछ पूछा तो नहीं।'

पटवाजी—'महाराज! मैं क्या पूछूं? मुझे पूरा विश्वास है कि आप ऐसे आत्मार्थी हैं कि अपने साधुत्व में जान-बूझकर दोष लगा नहीं सकते तथा टालोकर झूठ बोले बिना और निंदा किए बिना नहीं रह सकते। जो व्यक्ति अनंत सिद्धों की साक्षी से किए हुए त्यागों को तोड़ देता है, उसकी बात पर विश्वास कैसा?'

विजयचंदजी की बात सुन स्वामीजी ने संतों को बुलाकर कहा—'लगता है कि पटवाजी क्षायक सम्यक्त्व के धनी हैं। धर्म और धर्मसंघ के प्रति इनकी आस्था सबके लिए अनुकरणीय है।

१६. इस सन्दर्भ में एक प्राचीन संस्कृत श्लोक उपलब्ध है—

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।

१७. उस समय उदयपुरनिवासी मालमसिंहजी मुरड़िया जोधपुर आए। वे जोधपुरनरेश के भाई अजीतसिंहजी से मिलने के लिए उनके बंगले पर गए। उन्होंने मुरड़ियाजी से कहा—'आज जोधपुर में दीक्षा का एक कार्यक्रम था। अभी-अभी जयपुरनरेश मानसिंहजी, जोधपुरनरेश उम्मेदसिंहजी, नरेश के साले साहब और मैं, हवाई यान में बैठकर दीक्षा-मंडप का दृश्य देखकर आए हैं। बड़ा भव्य और आकर्षक कार्यक्रम था।

मालमसिंहजी वहां से आचार्यश्री कालूगणी के दर्शन करने गए। वहां इस संबंध में किसी को जानकारी नहीं थी। क्योंकि जोधपुरनरेश ने इस संबंध में किसी को कोई सूचना नहीं दी थी। जयपुर-नरेश उनके आतिथ्य पर आए थे। जब उन्हें पता चला कि जोधपुरनरेश कोई कार्यक्रम देखने जा रहे हैं तो वे भी साथ चलने के लिए तैयार हो गए। मालमसिंहजी ने प्रवचन के समय यह बात सबको सुनाई। लोगों को आश्चर्य हुआ। कालूगणी का असाधारण व्यक्तित्व कितने ही विशिष्ट व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर उनमें तेरापंथ धर्मसंघ के प्रति आकर्षण और अभिरुचि उत्पन्न कर देता था।

१८. आचार्यश्री कालूगणी जब आंगदूस पधारे तब वहां के बारठ लिखमीदानजी ने एक गीत सुनाया, वह इस प्रकार है—

१. एकाणु बरस समत उगणीसै, भाग आछ अंछिया हुई।
मांहरै गाम हुवा पगमंडण हुई महर धर पवित्र हुई।।

२. आया सतियां अगम अमावस, संत पधारण बात सुणी।
मोटी कृपा करी बुध मोटम, धरम कवच मोटका धणी।।

३. आंगौदवस चेत सुद एकम, बिजनस हो जिण दिन बुधवार।
आय दरस दियो दिन ऊगां, सामी धिन धिन जनम सुधार।।

४. सरणै तुज्झ थया तपसाधन! पकड़ै नहिं जमराज पलो।
संता तारण काजसुधारण, भवतारण तूं संत भलो।।

५. समरथ हुवो डाल गणसामी, तिकण पाट तप भलो तपै।
थूं समरथ जनमत दृढ़ थारो, जग सारो जयकार जपै।।

६. पावै दरस जिकै है पावन, जग जश दाखै जुवो-जुवो।
कलजुग बखत आज रो कालू! हरजन मोटो तुहिज हुवो।।
७. मगनीराम जिसा दृढ़मत रा आज्ञाकारी सह हुकम अधीन।
सोवन तुलछीराम सरीखा दिल रा उदधि दयालू दीन।।
८. विदिया रा सागर विधविध रा, जग मुख कहियो जुवै-जुवै।।
दीठा दरस पाप हुवै दूरा, हरदो निकलंक साफ हुवै।
६. भाषा सरल बोलवो भलपण, संधी वाणी अगत सबाय।
कविता भजन एकठा कालू! मैं दीठा थारा घट मांय।।

बारठजी ने बगड़ी के सुधरी नाम पर अपनी टिप्पणी करते हुए एक दोहा भी लिखा—

कइ एक लिखता कागदां, बगड़ी शहर विचार।
कालू थांरी किरपा भई, सुधरी लिखै संसार।।

१६. पतझर का समय था। वृक्षों के पत्ते सूखकर नीचे गिर रहे थे। हवाएं सांय-सांय कर चल रही थीं। श्रीकृष्ण अपनी वंशी के साथ अशोकवनिका में पहुंचे। अशोकवाटिका उजड़ी हुई-सी थी। श्रीकृष्ण ने बांसुरी बजाई। सारी वनिका खिल उठी। वृक्ष हरे-भरे हो गए। फूल खिल उठे। कोयल कूजने लगी। सारा वातावरण बदल गया।

अशोकवनिका के इस आकस्मिक परिवर्तन की बात कुछ ही समय में सारे शहर में फैल गई। लोगों में कुतूहल जगा। वे खिली हुई वाटिका को देखने गए। एक व्यक्ति ने जिज्ञासा की—'श्रीकृष्ण की बांसुरी से समूची अशोकवाटिका हरी-भरी हो गई तो उस बांसुरी का क्या हुआ होगा?'

एक चिंतनशील व्यक्ति ने उत्तर दिया—'वनिका हरी-भरी हुई। क्योंकि वनिका के वृक्ष ठोस हैं। उनमें ग्रहणशीलता है। ग्रहणशील ही कुछ ग्रहण कर पाते हैं। बांसुरी में पोल है। वह खाली है। उसमें ग्रहणशीलता नहीं है, इसलिए वह हरी-भरी नहीं हो सकती।'

२०. आचार्यश्री तुलसी का भाषा ज्ञान बहुत समृद्ध था। संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी, इन तीन भाषाओं में उनका साहित्य उपलब्ध है। वे राजस्थान में जन्मे, राजस्थान की माटी में पले-पुसे। इस दृष्टि से राजस्थानी उनकी मातृभाषा थी। राजस्थानी भाषा के अनेक रूप हैं। आचार्यश्री का राजस्थानी साहित्य पढ़ने से ज्ञात होता है कि उस पर कहीं मेवाड़ी बोली का प्रभाव है, कहीं जोधपुरी बोली का प्रभाव है, कहीं बीकानेरी बोली का प्रभाव है तो कहीं हरियाणवी का भी प्रभाव है।

राजस्थानी भाषा की अपनी कुछ विशिष्ट शैलियां भी हैं, जिनमें डिंगल, पिंगल आदि प्रसिद्ध हैं। कालूयशोविलास डिंगल शैली के प्रभाव से मुक्त नहीं है। पूज्य कालूगणी मारवाड़ से मेवाड़ जाते समय फूलाद की चौकी पधारे। दिन-रात वहां रहे। उस प्रवास और उसके पारिपार्श्विक परिवेश का वर्णन भुजंगप्रयात एवं मोतीदाम छन्द में डिंगलशैली में किया गया है। वह वर्णन इतना सुन्दर और प्रवाहपूर्ण है कि उसे पूरे कालूयशोविलास में एक नया प्रयोग माना जा सकता है।

डिंगल कविता को पढ़ने की शैली भी अलग ही प्रकार की है। सामान्यतः चारण आदि इस शैली में प्रभावी ढंग से अपनी प्रस्तुति देते हैं। कालूयशोविलास के रचनाकार आचार्यश्री तुलसी भी एक विशिष्ट अदा के साथ डिंगल शैली में उक्त स्थलों का पाठ करते तो पाठक मंत्रमुग्ध-से हो जाते।

भाषागत सौन्दर्य के बावजूद फूलाद की चौकी का वर्णन करने वाले पद्य इतने क्लिष्ट हैं कि राजस्थानी के ख्यातनामा विद्वान भी उनकी अर्थयात्रा में उलझ जाते हैं। उक्त समस्या आचाार्यश्री महाप्रज्ञ के सामने प्रस्तुत की गई तो उन्होंने उन पद्यों का हिन्दी रूपान्तरण कर दिया। पाठकों की सुविधा के लिए चतुर्थ उल्लास की दसवीं दाल के २५ से ५० तक पद्यों का हिन्दी अनुवाद यहां दिया गया है—

(२५) अटवी चारों ओर से बड़ी सुन्दर लग रही है। कहीं-कहीं बरगद की बहुत विस्तृत और भारी जटाएं भूमि को छू रही हैं। कहीं नीम, कदम्ब, जामुन और आम की झाड़ियां हैं तथा कहीं यमराज की जिह्वा जैसी बबूल की शूलें सीधी खड़ी हैं।

(२६) कहीं खाखरा (खदिर) की खरखराहट हो रही है। कहीं घग्घराहट ध्वनि के साथ निर्झर का जल बह रहा है। कहीं धव और कहीं महू के पेड़ खड़े हैं। कहीं थूहर के दण्ड खड़े हैं और कहीं बरगद के पेड़ों का जाल है।

(२७) कहीं सियारों की फेतकार की आवाज सुनाई दे रही है। कहीं सांपों के फुफकारने की आवाज आ रही है। कहीं उल्लू के समूह की घुग्घाट ध्वनि सुनाई दे रही है और कहीं वन्यजीवों की बुकबुक्काहट हो रही है।

(२८) कहीं सिंहों के गर्जन से गुफाएं गडक्क की ध्वनि कर रही हैं। कहीं केसरी सिंह निकुञ्जों को प्रकम्पित कर रहे हैं। कहीं बड़े-बड़े पत्थरों और चट्टानों के फिसलने से खड्डों में खड़क की आवाज हो रही है और कहीं बलपूर्वक पैर रखने से धूलिकणों की चुभन होने लगती है।

(२९) एक ओर निकट ही मेवाड़ की घाटी अरावली खड़ी है। वह चलने वालों की गति के लिए बड़ी भयंकर है। कहीं बहुत ऊंची चढ़ाई है, कहीं बहुत

सर्दी का अनुभव हो रहा है और कहीं बड़े-बड़े पहाड़ सिर उठाए खड़े हैं।

(३०) कहीं बीच-बीच में विशाल खोगालें—दर्रे हैं। वे भयंकर कमाल की हैं और खालों के जाल से जड़ी हुई हैं। कुछ चट्टानें रास्ते की ओर झुकी हुई हैं। यदि राही ध्यान न रखे तो उसके सिर पर चोट लग जाती है और सिर भन्नाने लगता है। कहीं झन्नाट की ध्वनि से पानी बह रहा है। उससे मिट्टी में तरेड़ें हो रही हैं।

(३१) कहीं पहाड़ों के बीच बगदों—सुरंगें खोदी हुई हैं। उनसे रण-रण की ध्वनि के साथ रेलगाड़ी जा रही है। कहीं बोझे (बूंटे) खड़े हैं। कहीं रोझ (नील गायें) स्वेच्छाचारी रूप में घूम रहे हैं। कहीं खोज-खोज पर पथिकों की फौज-सी चल रही है।

(३२) अटवी भी बड़ी भयंकर है, जहां झंकार हो रही है। क्षण-क्षण सन्नाटा-सा छाया हुआ है। ऐसी स्थिति में वहां कौन ठहर सकता है। कहीं चौकानुमा पत्थरों की कतार लगी हुई हैं। वहां पैर फिसल जाए तो ऐसा लगता है मानो वह घृष्ट-मृष्ट काल की क्यारी है।

(३३) पूज्य कालूगणिराज उस अरावली के एक स्थान पर निर्भय होकर विराजमान थे, जिन्होंने अहंकार रूप हाथी को एक झटके में मदहीन बना दिया। उनके साथ सुबुद्धि वाले सुधी शिष्यों का समूह था। वे शिष्य उमंग के साथ अच्छे ढंग से गुरु की सेवा में लीन हो रहे थे।

(३४) उनके आसपास चारों तरफ भक्तों की टोली थी। कहीं तम्बू तने हुए थे। कहीं सुन्दर छोलदारियां (छोटे तम्बू) तनी हुई थीं। कहीं चादर और दरी बिछाई हुई थी। कहीं-कहीं बैठने के लिए धोली-धोली समतल भूमि की खोज कर ली गई।

(३५) कुछ लोग अपनी आंखों के सामने स्वामी (पूज्य कालूगणी) को देख रहे थे। कुछ लोग इकट्ठे होकर अरावली की सीनेरी निहार रहे थे। कुछ लोग फूस के छप्पर देख रहे थे। कुछ शाल देख रहे थे। कुछ लोग उनींदे हो रहे थे और कुछ लोग खर्राटे भर रहे थे।

(३६) फूलाद की चौकी अनोखी और अमन्द रूप में सुन्दर लग रही थी। सब द्वेषी समुद्र से पार चले गए। उस रात को चन्द्रमा की चांदनी भी नहीं चमक रही थी। केवल मूलनन्द कालूगणी की रोशनी प्रकाश दे रही थी।

(३७) उस फूलाद की चौकी पर अद्भुत रंग जम रहा था, छक्कम-छक्का हो रहा था। सब लोग बिना किसी भय के सुखसाता का अनुभव कर रहे थे।

वहां न कोई भीति थी और न कोई ईति थी। गुरुदेव की दया से यह भुजंगप्रयात भी प्रख्यात हो रहा है।

(३८) अरावली के जंगल में कड़कड़ाहट के साथ शक्तिशाली केसरीसिंह की गर्जना सुनी। उससे कायर लोगों के कलेजे धड़कने लग गए।

(३९) लोग आपस में बतियाने लगे कि आज सिंह ने दहाड़ क्यों की? क्या तुम्हें इसका कारण ज्ञात है? यदि नहीं है तो उसे कवि की कल्पना के आधार पर सुनो।

(४०) फूलाद की चौकी पर शासनछत्र पूज्य कालूगणी विराज रहे हैं। उनकी अलौकिक आभा चारों ओर फैल रही है। उस अरावली के जंगल में बहुत लोग इकट्ठे हो रहे हैं। यत्र तत्र वृक्षों की पंक्तियां खिली हुई हैं। वनराजि विचित्र रूप में विकसित है।

(४१) कहीं-कहीं हरिण और सियार खिलखिलाहट कर रहे हैं। कहीं बिलाव, मोर और चूहे मिल रहे हैं। कहीं सांभर, सूअर और खरगोश की सरसराहट हो रही है। कहीं बड़े-बड़े पशु धांय-धांय की आवाज करते हुए विचर रहे हैं।

(४२) अपनी गुफा में अपने आसन पर आसीन मृगराज मन में सोच रहा है—अहो! आश्चर्य है, आज अजब-गजब की घटना घटी है। जंगल में अचानक इतनी शान्ति हो रही है, उसका कुछ कारण होना चाहिए।

(४३) मेरे प्राण पराजय को प्राप्त हो रहे हैं। ये जंगली जानवर मुझसे डर नहीं रहे हैं। ये मन में प्रफुल्ल होकर निर्भय रूप में वन में इधर-उधर घूम रहे हैं। ये गर्व से भरे हुए सब अपना-अपना गाना गा रहे हैं।

(४४) आकाश में सूर्य अस्त हो गया, फिर भी अन्धकार का साम्राज्य नहीं छा पाया। प्रश्न उपस्थित हो रहा है कि सूर्य और चन्द्रमा के बिना ही आज पूरा भूतल और दिग्गज प्रकाशित कैसे हो रहा है?

(४५) गर्मी कहां चली गई, इसका हेतु नहीं मिला। आज इस जंगल को प्रकम्पित करनेवाला बल भी कहां चला गया? कहीं यहां पर अखिल विश्व के स्वामी, अहिंसक जिन का अवतरण तो नहीं हो गया?

(४६) अथवा जगत में जिनकी उपमा को धारण करनेवाला कोई गणपति यहां प्रकट हुआ है क्या? मृगराज ने अपने मन में एक अनुमान की संरचना की और वह शीघ्रता के साथ अपनी गुफा से उठा।

(४७) प्रत्यक्ष हेतु की परीक्षा करने के लिए मृगराज गुफा से बाहर आया। वह बड़ी दक्षता के साथ वृक्षों की ओट में छिप गया। दहाड़ने का मिष लेकर

वह बड़ी उतावली से अपने प्रश्न का उत्तर पाना चाहता है।

(४८) वह दहाड़ने का मिष लेकर पूछ रहा था कि करुणामय, वीतराग, निरामय गणपति अपने संघ के साथ कहां है, प्रश्न का उत्तर नहीं मिला तो वह केसरी सिंह पुनः ठहर-ठहर कर दहाड़ने लगा।

(४९) सिंह की दहाड़ सुनकर रक्षकों ने अपनी बन्दूकें हाथ में लीं और उनमें बहुत मात्रा में बारूद भर दी। उनके छर्रे छनछनाहट करते हुए उछलने लगे। इस वातावरण में भी मुनिपति तटस्थ विराजमान थे। उनकी उपासना में समवेत मानव वर्ग भी तटस्थ था।

(५०) मृगराज ने यह सतोली आवाज (बन्दूकों की तेज आवाज) सुनकर अपने सिर को धुना और मौन हो गया। रचनाकार इस शुभ छन्द का प्रयोग कर प्रतिज्ञा के साथ कह रहा है कि मुनिपति मोती की माला जैसे अमूल्य हैं।

२१. महाराणा प्रतापसिंहजी के वंशज फतेहसिंहजी के बारे में प्रचलित एक सवैया इस प्रकार है—

शस्त्र समस्त में बाही सजावट मेनत में मजबूत मता को,
टेढ़ि जगां चढ़वे में टटोरल्यो थाके नहिं फिरता-फिरता को।
शिकार के नाम पहाड़ मझार निहारे सुठोर सुनेह नता को,
जथारथ जान जपै 'जुगता' यह रान फता अवतार पता को।।

२२. कालूगणी द्वारा शासक के लिए प्रदत्त कर्तव्यबोध का सूचक पद्य अग्रांकित है—

प्रथम अकल बहु होय, लोभ मन रती न राखै,
भय न जबर को करै, दीन-खल दया न दाखै।
शत्रुन कू उर आण शत्रु को शत्रु न जानै,
मित्रन कू उर आण मित्र को मित्र न मानै।
आलस न करै नृप एक छिन, सबै कसर प्रभु माफ की,
प्रताप बधै निश्चय कियां सात बात इंसाफ की।

२३. बौद्ध दर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण विनष्ट होता है। इस अभिमत के अनुसार उसका मुख्य सिद्धांत 'क्षणिकवाद' नाम से पहचाना जाता है। इस सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिए वह दृष्टांत रूप में बादलों को उपस्थित करता है। जैसे—'यत् सत् तत् क्षणिकं यथा जलधरः'—इस संसार में जो भी अस्तित्वशील पदार्थ है, वह जलधर की भांति क्षणिक है।

२४. एक आचार्य परिव्रजन करते हुए राजगृही नगरी में पहुंचे। आचार्य के

साथ अनेक ध्यानी, मौनी, तपस्वी और स्वाध्यायी मुनि थे। उनमें आषाढ़ मुनि अत्यंत विनीत, गुरुभक्त और तपस्वी साधक थे। तीव्र तपस्या के द्वारा उन्हें कई लब्धियां (चामत्कारिक शक्तियां) भी उपलब्ध हो गई थीं।

एक दिन आषाढ़ मुनि भिक्षा के लिए शहर में गए। एक श्राविका ने उनको एक मोदक (लड्डू) भिक्षा में दिया। मोदक वास्तव में मोद देने वाला था। मुनि मोदक खाने के लिए आतुर हो उठे। सहसा उनके मन में आया—मेरे पास एक मोदक है। यह गुरुदेव को भेंट कर दूंगा, फिर मैं क्या खाऊंगा? एक मोदक और मिल जाए तो अच्छा रहे।

मुनि ने लब्धि का प्रयोग किया और बाल मुनि का रूप बनाकर उसी श्राविका के घर में प्रवेश किया। श्राविका खुश हुई। उसने प्रसन्नतापूर्वक एक मोदक भिक्षा में दे दिया। मुनि की इच्छा फली, पर एक विकल्प फिर खड़ा हो गया—बाल मुनि को दिए बिना यह मोदक में कैसे खा सकता हूं?

इस समस्या को समाहित करने के लिए वे वृद्ध मुनि बनकर उसी घर में पहुंचे। श्राविका का मन बांसों उछलने लगा। अपने सौभाग्य की सराहना कर उसने वृद्ध मुनि को एक मोदक का दान दिया।

मुनि की समस्या अब भी समाहित नहीं हुई। इस बार वे रुग्ण मुनि का रूप बनाकर भिक्षा के लिए गए। झुकी देह, चेहरे पर झुर्रियां, लड़खड़ाते पांव, एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में भिक्षापात्र। श्राविका ने रुग्ण मुनि के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए उन्हें भिक्षा में वही एक मोदक दिया। मुनि आषाढ़ अब अपने मूल रूप में परिवर्तित होकर चले।

इधर मुनि के रूप-परिवर्तन का क्रम चल रहा था, उधर अपने मकान की छत पर खड़ा एक नट इस विलक्षण प्रयोग को देख रहा था। यह व्यक्ति हमारी नट-मंडली में सम्मिलित हो जाए तो हमारी नृत्यविद्या संसार के लिए एक आश्चर्य बन जाए। यह सोच उसने जयसुंदरी और भुवनसुंदरी नामक अपनी कन्याओं को संबोधित किया। कन्याएं उपस्थित हुईं। नट उनकी ओर अभिमुख होकर बोला—'तुम्हारी कला, रूप, लावण्य और वाग्पटुता सब व्यर्थ हैं, यदि तुम उस मुनि को सम्मोहित नहीं कर सको। मैं मुनि को अपने घर लेकर आता हूं, तुम अपनी तैयारी करो।'

नट आषाढ़ मुनि का मार्ग रोककर खड़ा हो गया। वह मुनि से प्रार्थना करने लगा कि उसकी कुटिया को पवित्र कर भिक्षा ग्रहण करें।

मुनि को काफी विलंब हो चुका था। अब वे जल्दी-से-जल्दी गुरु के पास पहुंचना चाहते थे। उन्होंने कहा—'मैं भिक्षा करके लौट रहा हूं। अब मुझे भिक्षा

की अपेक्षा नहीं है। और कभी अवसर आएगा, तब देखूंगा।'

मुनि का निषेध और नट का प्रबल आग्रह। मुनि किसी भी स्थिति में नट के घर जाने के लिए तैयार नहीं हुए, तब नट व्यंग्यभरी मुस्कान बिखेरता हुआ बोला—'एक ही घर में चार-चार बार मोदकों की भिक्षा लेने के बाद आपको हमारे घर आने की जरूरत ही क्यों होगी।' ये शब्द मुनि के हृदय में तीर-से लगे। अब वे सकुचाते हुए नट के साथ चलने के लिए तैयार हो गए।

मुनि घर के द्वार पर पहुंचे। वहां दो अप्सराएं उनके स्वागत में खड़ी थीं। वे अतिशय भक्ति-भावना का प्रदर्शन करती हुई उन्हें ऊपर ले गईं। मुनि भिक्षा लेकर शीघ्र ही लौटना चाहते थे और कन्याएं विलंब कर रही थीं। सबसे पहले उन्होंने मुनि की साधना, तपस्या और उपलब्धियों की प्रशंसा की। उसके बाद वे मुनि के सौन्दर्य और तारुण्य को शतगुणित रूप में विश्लेषित करने लगीं। प्रशंसा से अभिभूत मुनि ने सहज भाव से उनकी ओर देखा।

तीर निशाने पर लग रहा है, यह देखकर कन्याएं आगे बढ़ीं और बोलीं—'मुनिराज! इस चिलचिलाती धूप में आप कहां जाएंगे? अभी आहार यहीं करें। फिर विश्राम करके शाम तक पधारना। हमें भी आपके सत्संग का अवसर मिलेगा।'

अपने प्रति इस अकारण करुणा को देख मुनि ने कन्याओं की ओर स्नेहभरी दृष्टि टिकाकर कहा—'धूप तो चढ़ रही है, पर मुझे अपने गुरु के पास पहुंचना जरूरी है। उनकी आज्ञा बिना मैं यहां दिनभर रह नहीं सकता।'

'मुनिजी! आप भी कितने विचित्र हैं! यह अवस्था! ये कष्ट! और यह नियंत्रण! हमारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। हम तो अपने अतिथि को इस समय नहीं जाने देंगे।' उत्तेजक हाव-भाव के साथ कन्याओं की इस बात पर मुनि का मन थोड़ा-सा आकृष्ट हुआ और जयसुंदरी ने आगे बढ़कर मुनि के चरणों का स्पर्श कर लिया।

मुनि के शरीर में बिजली-सी कौंध गई। उनके पांव लड़खड़ाने लगे तो दोनों बहनों ने हाथ का सहारा देकर उनको गिरने से बचाया। मुनि शरीर से तो नहीं गिरे, पर मन से गिर गए और अपने आपको भूल गए।

नटकन्याओं ने अत्यंत विनय भरा आग्रह किया—'लंबी प्रतीक्षा के बाद आज आपके चरण यहां टिके हैं। ये कोमल पांव और यह कठोर धरती! कितने कष्ट सहे हैं आपने! अब हम आपको यहां से जाने नहीं देंगी। यह घर आपका अपना घर है। आप जैसे रहना चाहें रहें, हम आपकी सेवा में समर्पित हैं।'

आषाढ़ मुनि अब मुनि नहीं रहे। उनका मन नटकन्याओं के साथ रहने

के लिए राजी हो गया। फिर भी अपने गुरु के प्रति उनके मन में आदर के भाव थे, इसलिए उन्होंने एक शर्त रखी कि वे अपने गुरु की अनुज्ञा लेकर वापस आएंगे। नटकन्याएं उन्हें जाने नहीं देना चाहती थीं, पर जब वे इस बात पर अड़े रहे तो उन्हें वापस आने के लिए वचनबद्ध कर जाने दिया।

आचार्य आषाढ़ मुनि की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें सामने देखकर शांत भाव से पूछा—'आषाढ़! आज इतना समय कहां लगा? यह कोई भिक्षा लाने का समय है?'

इतना सुनते ही आषाढ़ मुनि उबल पड़े। आवेश में आकर वे बोले—'इतना समय कहां लगा? कभी गोचरी करके देखो तब पता चले। इतनी धूप में घर-घर घूमना और ऊपर से आपकी डांट। मुझसे तो अब यह सब सहन नहीं होगा। लो संभालो अपने पात्र और रजोहरण, मैं जाता हूं।'

गुरु अपने शिष्य के मुंह से यह बात सुन विस्मित हो गए। उन्होंने अत्यंत स्नेह से कहा—'अरे आषाढ़! आज तुझे क्या हो गया? ऐसी बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहा है?'

मुनि आषाढ़ पहले तो बात टालते रहे। किंतु गुरु के वात्सल्य और शांत भाव ने उनको सही स्थिति बताने के लिए आया बाध्य कर दिया। शिष्य की मनःस्थिति को समझकर गुरु ने उसे पुनः संयम में सुस्थिर करने का प्रयास किया। पर सफलता नहीं मिली। आखिर आचार्य ने कहा—'तुम नटकन्याओं से वचनबद्ध होकर आए हो, ठीक है। क्या एक वचन मुझे भी दे सकते हो?'

शिष्य सकुचाता हुआ बोला—'गुरुदेव! नटकन्याओं के पास जाने की बात छोड़कर आप कुछ भी कहेंगे, मैं उसे मानने के लिए संकल्पबद्ध हूं।' आचार्य ने उनको संकल्प कराया—'जिस कुल में मांस और मदिरा का प्रयोग होगा, वहां वह नहीं रहेगा।' गुरु-वचन का संबल साथ में लेकर वह चला और नट के घर पहुंच गया। वहां पहुंचकर उसने नट के सामने दोनों कन्याओं को अपना संकल्प सुनाते हुए कहा—'मैं तुम्हारे साथ रहने के लिए आया हूं, पर मेरी एक शर्त है कि यदि यहां मदिरा का व्यवहार होता है तो मैं नहीं रह सकता।' नटकन्याएं इस बात पर एक बार सहम गईं। उन्होंने सोचा—अभी तक साधुत्व का रंग पूरा उतरा नहीं है, इसलिए ऐसी बात कर रहा है। जब हमारे साथ घुलमिल जाएगा तो स्वयं मदिरापान करने लगेगा। इस चिंतन के साथ वे बोलीं—'आप ऐसा क्यों सोचते हैं? यहां ऐसा प्रसंग उपस्थित होने का प्रश्न ही नहीं है।' आषाढ़ ने नटकन्याओं को इस बात के लिए वचनबद्ध कर लिया कि जिस दिन इस परिवार में शराब

का प्रयोग होगा, आषाढ़ यहां नहीं रहेगा।

मुनि आषाढ़ साधना से बहके और वासना के जंगल में भटक गए। लब्धि-प्रयोग, नृत्य-प्रदर्शन और नटकन्याओं के साथ विलासपूर्ण जीवन, इस क्रम में भी उन्हें अपने गुरु का कथन सदा याद रहता।

एक दिन वे नृत्य-प्रदर्शन के लिए अकेले ही कहीं गए हुए थे। कार्यक्रम बदल जाने से वे निर्धारित समय से पहले घर पहुंच गए। घर पहुंचकर देखा कि जयसुंदरी और भुवनसुंदरी शराब के नशे में धुत बेभान होकर सो रही हैं। उनका विकृत चेहरा, अनर्गल प्रलाप और उसको दिए गए वचनभंग ने आषाढ़ के मन में ग्लानि उत्पन्न कर दी। जिन कन्याओं को दिया गया वचन निभाने के लिए वे अपने गुरु के निर्देश का अतिक्रमण कर जहां आए, वहां उनको दिए गए वचन का कोई मूल्य नहीं। वे नट के घर से जाने के लिए उद्यत हो गए।

कन्याएं होश में आईं। उन्होंने आषाढ़ के पांव पकड़ लिए। अपनी भूल के लिए क्षमायाचना की। भविष्य में कभी मदिरापान न करने का संकल्प व्यक्त किया। पर उनके सामने तो गुरु का वाक्य चित्र की भांति अंकित था। वे वहां से मुक्त होकर आत्मारोहण के पथ पर बढ़ गए।

गुरु के एक वचन पर दृढ़ रहने से मुनि आषाढ़ पुनः संभले और अपनी मंजिल तक पहुंच गए।

२५. मेवाड़ में एक आम धारणा थी कि दीक्षा देकर पुनः शहर में नहीं जाना चाहिए। इस धारणा के आधार पर दीक्षा-महोत्सव का कार्यक्रम विहार के दिन ही रहता था। उदयपुर में पंद्रह भाई-बहनों की दीक्षा होने जा रही थी। प्रचलित परंपरा के अनुसार वे दीक्षाएं मृगसर कृष्णा एकम को होने की संभावना थी।

शहर में दीक्षा-विरोधी वातावरण बना और विरोधी लोग प्रयत्न करने लगे कि जैसे-तैसे इन दीक्षाओं को रोकना है। उस समय तेरापंथ संघ के जिम्मेवार श्रावकों ने महाराणा भोपालसिंहजी से संपर्क स्थापित कर उन्हें सारी स्थिति से अवगत करा दिया। महाराणा ने अधिकारी व्यक्तियों के माध्यम से स्थिति का अध्ययन किया। फिर हीरालालजी मुरड़िया के माध्यम से आचार्यश्री कालूगणी को यह निवेदन करवाया कि वे कार्तिक शुक्ल पक्ष में दिल्ली जाने वाले हैं। कुछ व्यक्ति दीक्षा में बाधा डालने की सोच रहे हैं। यदि दीक्षा-महोत्सव उनके दिल्ली जाने से पहले हो जाए तो ठीक रहे।

आचार्यश्री ने राणाजी की प्रार्थना पर ध्यान दिया और विहार के दिन ही दीक्षा देने की परंपरा को तोड़कर कार्तिक कृष्ण पक्ष में दीक्षा-महोत्सव करने की

घोषणा कर दी। विरोधियों का अपना प्रयत्न चालू था, फिर भी निर्विघ्न रूप से दीक्षा-संस्कार का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

२६. गंगाशहरनिवासी सेठ ईशरचंदजी चौपड़ा तेरापंथ समाज के वरिष्ठ व्यक्तियों में से थे। उनका व्यक्तित्व, व्यवहार-कौशल और रोब-रबाव सम्पर्क में आनेवाले नए व्यक्ति को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहता था। वि. सं. १९९२ की बात है। उदयपुर चातुर्मास में वे आचार्यश्री कालूगणी की उपासना करने गए। वहां दीक्षा-संबंधी बवंडर के संदर्भ में वे उदयपुर-महाराणा भोपालसिंहजी से मिले। उन्होंने दरबार को गिन्नियां भेंट कीं और खड़े रहे।

उदयपुर राज्य में महाराणा के पास बैठकर बात करने की परंपरा नहीं थी। किंतु महाराणा को जब पता चला कि ये बीकानेर रियासत के प्रमुख सेठ हैं। यहां अपने धर्माचार्य श्री कालूरामजी के दर्शन करने आए हैं तो उन्होंने सेठजी को बैठकर बात करने की इजाजत दे दी।

चौपड़ाजी ने अपने आने का उद्देश्य बताते हुए तेरापंथ संघ की दीक्षा-पद्धति के बारे में विस्तार से बताया। उनकी बात सुन राणाजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें निश्चिंत भाव से कार्यक्रम बनाने का संकेत दिया।

उस समय चौपड़ाजी तत्कालीन दीवान लाला सुखदेवसहायजी से भी मिले और उन्हें भी पूरी जानकारी देकर अपने अनुकूल बना लिया।

२७. 'जेसराज जयचंदलाल' नाम से प्रसिद्ध बैद परिवार में चंपालालजी बैद (राजलदेसर) अपने छह भाइयों में सबसे छोटे भाई थे। वे तत्त्वज्ञ और श्रद्धालु श्रावक थे। अधिक पढ़े-लिखे न होने पर भी अंग्रेजी भाषा इतनी अच्छी बोलते कि सुनने वाले प्रभावित हो जाते। स्वभाव से वे विनोदी थे, किंतु वार्तालाप करने में बहुत कुशल थे।

वि. सं. १९९२ उदयपुर चातुर्मास में दीक्षा संबंधी जानकारी देने के लिए वे रेजिडेंट साहब कर्नल बीथम से मिले। वहां उनसे तेरापंथ धर्मसंघ और कालूगणी की जानकारी पाकर रेजिडेंट साहब उनके साथ ही कालूगणी के दर्शन करने आ गए।

उस समय कालूगणी प्रवचन-सभा में विराज रहे थे। चंपालालजी के सामने एक समस्या खड़ी हो गई कि वे रेजिडेंट साहब को कहां बिठाएं? उस समय आचार्यों के सामने किसी व्यक्ति को कुर्सी पर बिठा देना एक नए विवाद को खड़ा करना था। नए अतिथि को नीचे बिठाना भी उन्हें उचित नहीं लगा। आखिर उन्होंने साहस कर रेजिडेंट साहब को प्रवचन-सभा में आचार्यश्री के सामने कुर्सी पर बिठा

दिया। बिठा तो दिया, पर वे सोच रहे थे कि कालूगणी क्या कहेंगे?

प्रवचन-श्रवण और वार्तालाप के बाद रेजिडेंट साहब को विदा कर वे कालूगणी के पास आकर विनम्रता से बोले—'गुरुदेव! आज तो एक भूल हो गई।' गुरुदेव उनकी भावना को समझकर बोले—'बगत देख नहीं वरतै बो बाणियो गिंवार'—इसमें भूल की क्या बात है? अवसर देखकर काम करने वाला ही समझदार होता है। चंपालालजी का चातुर्य लोगों के सामने आया और वे अपने गुरुदेव के कृपाशब्द पाकर कृतार्थ हो गए।

२८. दोपहर का समय था। धूप तेज थी। एक खरगोश अखरोट के वृक्ष के नीचे सो रहा था। ठण्डी हवा चली और उसे नींद आ गई। हवा के झोंके से एक अखरोट टूटा और खरगोश पर गिर पड़ा। वह अचानक नींद से जगा और दौड़ा। मार्ग में उसे एक लोमड़ी मिली। उसने पूछा—'खरगोश भैया! आज कहां दौड़े जा रहे हो? क्या किसी दावत में आमंत्रण मिला है?'

खरगोश घबराया हुआ-सा बोला—'मौसी! तुझे दावत सूझ रही है और मेरी जान पर आ बनी है। क्या तुझे पता नहीं है आज आसमान टूट पड़ा है।' लोमड़ी ने यह बात सुनी और वह भी उसके साथ दौड़ने लगी।

रास्ते में गीदड़ मिला, भालू मिला और भी कई पशु मिले। सबने दौड़ने का कारण पूछा और दौड़नेवालों ने आकाश टूटकर गिरने की बात कही। न कोई कारण और न कोई परिणाम। फिर भी सबके मुंह में एक ही बात—'आकाश टूट पड़ा है, आकाश टूट पड़ा है।' जंगल का पूरा वातावरण भयाक्रांत हो गया। चारों ओर पशुओं की भय-मिश्रित आवाज और भगदड़। किसी ने भी यह पूछने का साहस नहीं किया कि आकाश कहां पड़ा? कैसे पड़ा और उससे क्या हुआ? स्थिति यहां तक बनी कि जंगल का राजा सिंह भी उस अफवाह से प्रभावित हो गया।

२९. तेरापंथ संघ में बहु प्रचलित 'बीस बिहरमाण' का यह गीत आचार्यश्री भिक्षु के समय की रचना है। रचनाकार ने अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है, पर समय की सूचना दी है। यह गीत काफी बड़ा है। कालूगणी इसके जिन पद्यों का संगान बहुधा करते थे, यहां उन्हीं पद्यों को उद्धृत किया जा रहा है। इसके गीतकार हैं मुनिश्री हेमराजजी।

बीस बिहरमण सदा शाश्वता, जघन्य पदे परिमाणं,
सौ साठ नै नित-नित नमिये उत्कृष्टे पद आणं।
भवियण णमो अरिहंताणं, णमो सिद्ध निरवाणं,

मन शुध करनै भजिये भवियण ते पामै कल्याणं।।

१. अनन्त ज्ञान दर्शण चारित्र तप, बल कर अनंत आणंदा।
एक सहस्र अठ लक्षण विराजै, सेवत चौसठ इंदा।।

२. चौंतीस अतिशय अति शोभता बहु विस्तार बखाणं।
पंच तीस प्रकार करीनै तारै जीव अयाणं।।

३. सिधजी आठ गुणां कर शौभै, अतिशय गुण इकतीसा।
कर्म विदार्‌या कारज सार्‌या, जीता राग नै रीसा।

४. अवर्ण अगंध अरस अफर्श, नहीं जोग लेश आहारं।
अनंत सुख आत्मिक रा सोहै, सिद्ध सदा सिरदारं।।

५. छत्तीस गुणे करी शोभ रह्या छै, आचारज अणगारा।
निशदिन चरचा न्याय बतावै, गुण कर ज्ञान भण्डारा।।

६. धर्माचार्य धुरा धुरंधर मोटा मुनिवर म्हांरा।
भरतक्षेत्र में भिक्षू शोभ्या, शिष्य भारीमाल सिरदारा।।

७. अंग इग्यारह उपांग बारह, भणै भणावै सारा।
पचीस गुणां करी शोभ रह्या छै, उपाध्याय अणगारा।।

८. जघन्य दोय सहंस कोड़ जाझेरा, उत्कृष्ट नव सहंस कोड़ा।
अढ़ाई द्वीप पनरै क्षेत्रां में मुनीश्वरां रा जोड़ा।।

९. बारह आठ छत्तीस पचीसा, साधु सतावीस गुणवाला।।
एक सौ नै आठ गुणां री ए गावो गुणमाला।।

१०. दोष बयालीस बहरत टाळै, बावन टाळै अणाचारा।
पांच दोष मंडला रा टाळै, गुणकर ज्ञान भण्डारा।।

११. समत अठारह वर्ष गुणसाठे, आषाढ़ जाणीज्यो मासं।
गुण गाया छै पांच पदां रा, शहर पीसांगण चौमासं।।

३०. दो भाई जवाहरात का काम करते थे। दोनों भाइयों में परस्पर गहरा प्रेम था। कुछ वर्षों बाद बड़े भाई का देहांत हो गया। उसकी पत्नी अपने इकलौते पुत्र के साथ अलग रहने लगी। दीपावली के अवसर पर मकान की सफाई करते समय लड़के की मां ने एक गठरी देखी। उसे खोला तो चमक-दमक से उसकी आंखें चुंधिया गईं। उसने पुत्र को बुलाकर कहा—'बेटा! अपने घर में ये रत्न कब-से पड़े हैं, मुझे ज्ञात ही नहीं है। जाओ, इन्हें चाचाजी के पास ले जाओ और अच्छी कीमत पर बेचकर रुपया ब्याज में दे दो। आय का एक माध्यम खुल जाएगा।'

लड़का प्रसन्न मन से वह गठरी लेकर चाचाजी के पास गया और मां द्वारा

कही गई सारी बात बता दी। चाचा बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने कहा—'तुम अपने हाथ से ही गठरी खोलो।' गठरी खुली। चाचा ने उन रत्नों का अंकन किया और उसको निर्देश दिया—'पुत्र! ये रत्न बड़े कीमती हैं। अभी अपने सामने कोई ग्राहक नहीं है, इसलिए इन्हें ले जाकर रख दो। अवसर आने पर इनको बेच देंगे।'

बच्चा गठरी लेकर घर आया और अपनी मां को सारी स्थिति बता दी। माता अपने रत्नों को कीमती समझती ही थी। अपने देवर का समर्थन पाकर वह बहुत खुश हुई। अब उसने अपने पुत्र के भोजन, अध्ययन, मनोरंजन आदि की समुचित व्यवस्था खुले दिल से की। लड़का प्रतिभासंपन्न था। थोड़े ही समय में वह स्कूली शिक्षा में निष्णात होकर व्यवसाय से जुड़ गया। बालक की व्यावसायिक प्रतिभा भी असाधारण थी। जवाहरात के काम में वह अच्छा पारखी बन गया।

चाचा ने उपयुक्त समय देखकर अपने भतीजे से रत्नों की वह गठरी मंगाई। लड़के ने अपनी मां से जवाहरात मांगे। मां ने तिजोरी खोली, मंजूषा खोली और बड़े यत्न से रखी हुई एक गठरी निकालकर पुत्र के हाथ में थमा दी।

लड़के को याद आया, चाचाजी ने कहा था कि रत्न बहुत कीमती हैं। वह उन्हें देखने का लोभ-संवरण नहीं कर सका। उसने गठरी खोलकर रत्नों को देखा और पहली बार दृष्टिक्षेप में ही पूरी परख हो गई। वे रत्न नहीं, रंग-बिरंगे कांच के टुकड़े थे। लड़के ने गठरी फेंक दी। मां बोली—'अरे मूर्ख! यह क्या कर रहा है?' लड़का बोला—'मां! इनकी कीमत पांच कौड़ी भी नहीं, ये तो कांच के टुकड़े हैं।' आचार्यश्री भिक्षु ने इस संदर्भ को अभिव्यक्ति देते हुए कहा—

काच तणो देखी मणकलो, अणसमझू हो जाणै रतन अमोल।
नजर पड़े जो सर्राफ की, कर देवै हो तिण रो कोड्यां मोल।।

मां का मन आहत हुआ। स्त्रीसुलभ संदेह की प्रेरणा से उसने पूछा—'बेटा, उस दिन तुम इस गठरी को चाचाजी के पास ले गए थे। उन्होंने बदल तो नहीं लिया?' लड़का मुसकराता हुआ बोला—'मां! चाचाजी बहुत समझदार हैं। वे जानते थे कि उन पर कोई आरोप आ सकता है, इसलिए उन्होंने इस गठरी का स्पर्श ही नहीं किया। मैंने अपने हाथ से इसे खोलकर दिखाया था। 'यह सुनकर मां आश्वस्त हुई।

लड़का सीधा अपने चाचाजी के पास पहुंचा और बोला—'चाचाजी! उस दिन मैं आपके पास जो गठरी लाया था, उसमें तो कोरे कांच के टुकड़े हैं। आपने उनको कीमती कैसे बताया?' चाचा गंभीर होकर बोले—'बेटा! मैं जानता था कि

वे रत्न नहीं हैं, उनकी कोई कीमत नहीं है। पर उस समय में यह बात कह देता तो तुम्हारी मां तुम्हारे खाने-पीने में कटौती करती, अच्छी शिक्षा की व्यवस्था नहीं करती तथा मेरे प्रति संदिग्ध भी हो जाती। अब तुम स्वयं समझदार हो गए हो, सारी स्थितियां अनुकूल हो गईं, तब मैंने उस गठरी का भेद खोलना उचित समझा।

३१. बच्चों ने शैतानी की। मां ने उनको समझाया, पर वे नहीं माने। मां ने डांटा, किंतु उन पर असर नहीं हुआ। बच्चों की शैतानी से हैरान होकर वह उन्हें तलघर के पास ले गई। तलघर खोला गया। सीलन, बदबू और घोर अंधकार देख बच्चे थोड़े सकपकाए। मां ने उन्हें अंदर धकेलने का अभिनय करते हुए कहा—'जाओ तलघर में और भोगो अपनी करणी का फल। तलघर में एक हाबू रहता है। वह तुम्हें खा जाएगा, तब तुम्हारी शैतानी दूर होगी।'

बच्चे संवेदनशील थे। उनके मन में हाबू की कृत्रिम विभीषिका घर कर गई। हाबू से डरकर उन्होंने शैतानी न करने का संकल्प व्यक्त किया। एक-दो बार फिर ऐसा ही प्रसंग आया और मां ने हाबू का भय दिखाकर उनको शैतानी करने से रोक दिया।

बच्चों ने न कभी हाबू देखा और न कभी उसके संबंध में कोई कल्पना ही की। फिर भी एक अज्ञात भय उनके मन में गहरा होता जा रहा था। अब वे किसी भी अंधेरे स्थान में जाते समय घबराने लगे।

बच्चे बड़े हुए। उनके मन का भय भी बड़ा होता गया। एक दिन उनकी मां ने कहा—'बच्चो! तलघर खोलकर अमुक चीज ले आओ।' बच्चे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे, पर वहां जाने के लिए तैयार नहीं हुए। मां ने दूसरी और तीसरी बार कहा, पर बच्चों के कदम नहीं उठे तो वह झल्लाकर बोली—'तुम सबको आज हो क्या गया है? घर का कोई काम नहीं करते हो, मैं अकेली क्या-क्या कर सकूंगी?'

बच्चे सहमते हुए बोले—'मां! हम तुम्हारा सब काम कर देंगे, पर तलघर में नहीं जाएंगे। वहां जो हाबू रहता है, वह हमें खा जाएगा।'

३२. एक बाल जामाता अपने ससुराल जा रहा था। कुछ लोगों ने उसको समझाया कि ससुराल में अधिक भोजन करना बुरा माना जाता है। ससुराल पहुंचकर वह सब लोगों से मिला। भोजन करने बैठा और दो-चार ग्रास लेकर उठ गया। मध्याह्न में उसने कुछ नहीं लिया। शाम का भोजन भी बहुत हल्का किया। रात घिरते-घिरते वह भूख से व्याकुल हो उठा। उसने अपने साथ आए नाई को जगाया और कहा—'भूख से प्राण निकल रहे हैं, कुछ खाने को दो।' नाई बोला—'सवेरा

होने दो।' सवेरा होने तक प्रतीक्षा कर सके, ऐसी स्थिति उसकी नहीं थी। आखिर नाई को एक उपाय सूझा।

वे जिस कमरे में सो रहे थे, उसकी एक बारी नीचे मिठाई-भण्डार में खुलती थी। नाई बोला—'मैं तुम्हें रस्से से लटकाकर नीचे इस कमरे में उतार देता हूं। पेट भरकर खा लो। जब ऊपर आना हो तो मुझे संकेत कर देना—लै ताण।' उधर नाई को गहरी नींद आ गई। वह पौ फटने के समय जगा। तब तक घर में हाहाकार मच गया। घर के छोटे-बड़े सभी व्यक्ति जग गए। मिष्टान्न-भंडार के समीप से गुजरते समय 'लै ताण, लै ताण' की शब्दावली ने उनके मन में भूत-प्रेत का भय उत्पन्न कर दिया।

नाई को अपनी भूल का भान हुआ। वह तत्काल नीचे आया और बोला—'क्या बात है?' उन लोगों ने कहा—'मिष्टान्न-भंडार में 'लहताण' घुस गई।' नाई बोला—'बहुत बुरा हुआ। 'लहताण' को निकालना भी कठिन है। मैंने अपने गांव में एक-दो बार ऐसा काण्ड देखा है। घर के सब सदस्यों ने नाई की मिन्नतें कीं कि आप जैसे-तैसे हमें इस संकट से बचाएं।' नाई ने कहा—'मैं प्रयास करके देखता हूं। आपके सौभाग्य से सफल हो जाऊं तो बहुत अच्छी बात है। आप मुझे एक लाठी और लबादा दे दीजिए। घर के सब लोगों को कमरों के भीतर भेज दीजिए। कोई भी बीच में आ गया तो 'लहताण' उसमें घुस जाएगी।' सब लोगों के चले जाने पर उसने दरवाजा खोला। जामाता ने उसे देखते ही कहा—'यह क्या कर दिया?' नाई ने अपनी भूल स्वीकार कर बिगड़ती हुई स्थिति को सुधारने का आश्वासन दिया। उसने वह लबादा जंवाई पर डाल दिया और लाठी से बर्तनों को तोड़ने लगा। कुछ समय बाद वह उसको आगे करके दौड़ा और गांव के बाहर तक छोड़ आया। घर लौटकर उसने सब लोगों को इकट्ठा किया और कहा—'आपका थोड़ा नुकसान तो हो गया, पर 'लहताण' को ऐसा धमकाया है कि वह फिर कभी इधर आने का साहस ही नहीं कर सकेगी।'

३३. बड़नगर महोत्सव के अवसर पर मुनि तुलसी द्वारा रचित पद्य, जो संघीय गरिमा को अभिव्यक्ति देते हैं—

१. 'लोक बहकान हेत बात यूं बणाय कहै,
तेरापंथी दान-दया मूल स्यू उखाड़ दी।
गउवन को बाड़ो तामे आग को लगाई नीच,
ताको कोउ खोलै तामे मनाही पुकार दी।।
भूखे और प्यासे दीन दुखियन को देवै दान,

ताको मत देवो ऐसी अंतराय डार दी।
'तुलसी' भनंत ताको तेरापंथ मतहू की,
बाकवी न पूरी यूं ही कूड़ी गप्प मार दी।।

२. ऐसी-ऐसी व्यर्थ बात तान मत पक्षपात,
करते हमेश जाकी बुद्धि जो बिगड़गी।
ताकी सुन वाच नहिं साच-झूठ जांच करै,
लोकन में एक 'लहतान' आन बड़गी।।
एक भेड़ बोलै 'भ्यां' दूजी पिण बोलै 'भ्यां',
तीजी और चौथी सब भाज-भाज भड़गी।
'तुलसी' भनंत समझावै अब काकों काकों,
सारे ही जहान आ तो कुवै भांग पड़गी।'

३४. विक्रमादित्य अपने समय के सुप्रसिद्ध, उदार और न्यायी राजा थे। उन्होंने अपने शासनकाल में नई परंपराओं का सूत्रपात किया। अपने-अपने वर्ण (जाति) में विवाह करने की परंपरा भी इनके द्वारा स्थापित की गई। इस स्थापना के पीछे एक किंवदंती है, जो स्वयं विक्रमादित्य के जीवन से जुड़ी हुई है। घटना इस प्रकार है—

लक्षाधीश और कोट्यधीश दो श्रेष्ठियों में घनिष्ठ मित्रता थी। मैत्री उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होती गई। अग्रिम पीढ़ियों तक मैत्री को स्थायित्व देने के लिए उन्होंने अपने पुत्र-पुत्री का संबंध करने का निर्णय ले लिया। निर्णय कागजी कार्यवाही में अंकित कर वे समय की प्रतीक्षा करने लगे।

लक्षाधीश सेठ अपने पुत्र और पत्नी को छोड़ अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो गया। श्रेष्ठी की मृत्यु के बाद व्यवसाय की पूरी संभाल न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होती गई।

कोट्यधीश सेठ ने सोचा—अब हमारे बच्चों का परस्पर संबंध हो, ऐसी स्थिति नहीं रही है। पुत्री का विवाह कहीं अन्यत्र करने से झगड़ा बढ़ सकता है। अच्छा हो मैं अपनी बेटी का विवाह महाराजा विक्रमादित्य के साथ कर दूं।

राजा के पास संवाद पहुंचा। आगे-पीछे की कोई जानकारी न होने से उन्होंने उस संबंध को स्वीकार कर लिया। शुभ मुहूर्त देख विवाह का दिन निश्चित कर दिया। राजा की बारात लक्षाधीश सेठ के मकान के निकट पहुंची। श्रेष्ठिपुत्र ने अपनी माता से कहा—'मां! राजा की सवारी आ रही है। देख लो। मां की आंखों में आंसू आ गए। पुत्र ने इसका कारण पूछा तो वह बोली—'बेटा! यह तेरी दुर्बलता

का परिणाम है। तुम सबल होते तो आज उस सेठ के घर तुम्हारी बारात जाती।'

श्रेष्ठि-पुत्र यह बात सुन स्तब्ध रह गया। उसने सारी स्थिति की जानकारी की। सेठ द्वारा लिखित कागजात लेकर दौड़ा और उस हाथी के आगे जाकर खड़ा हो गया, जिस पर राजा सवार था। राजपुरुषों ने उसे वहां से हटाना चाहा, किंतु वह बोला, मुझे इसी समय महाराज से आवश्यक बात करनी है।

विक्रमादित्य को जानकारी मिली तो उन्होंने कहा—'इस बच्चे को हाथी पर चढ़ा दो, मैं इसकी बात सुनूंगा।' राजा की आत्मीयता पाकर उसका मनोबल पुष्ट हो गया। वह बोला—'राजन! हमारे साथ कोई अन्याय होता है तो हम आपसे न्याय की मांग करते हैं। आप स्वयं अन्याय करनेवालों का साथ देंगे तो मेरे-जैसे साधारण लोगों को त्राण कहां से मिलेगा? आप जिस लड़की के साथ शादी करने जा रहे हैं, वह मेरी मांग है। बस, मेरा इतना ही निवेदन है, अब आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।'

विक्रमादित्य ने इस सूचना में रस लिया। घटना की पूरी जानकारी की, कागजात देखे और तत्काल लड़की के पिता को अपने पास बुलाया। पिता पहले से ही डर रहा था कि कहीं कोई रहस्य खुल न जाए। राजा के साथ उसी लड़के को देख वह सहम गया। राजा ने कागजात सेठ के सामने रखकर पूछा—'ये हस्ताक्षर किसके हैं।' सेठ को काटो तो खून नहीं। उसकी आंखें नीची हो गईं। वह कुछ कहने की स्थिति में नहीं रहा।

राजा ने सेठ को संबोधित करते हुए कहा—'समय ने आपके मन को भी बदल दिया। लगता है कि आपकी दृष्टि में धन ही प्रतिष्ठा की वस्तु है। अब यह शादी मेरे साथ नहीं, इस लड़के के साथ होगी। आपको धनी पिता के पुत्र को अपना जामाता बनाना है तो मैं इसे पुत्र रूप में स्वीकार करता हूं।'

राजा ने अपनी पोशाक उस लड़के को पहना दी। धूमधाम से विवाह-संस्कार संपन्न हुआ। सेठ ने अपनी भूल महसूस की। राजा ने प्रजा को न्याय दिया। लड़के ने अपना अधिकार पाया और लड़के की माता अपने पुत्र की सूझबूझ से खुश हो गई।

भविष्य में ऐसी अवांछनीय घटना और न घट जाए, इस बात को ध्यान में रखकर राजा ने निर्देश दिया—'आदर्श विवाह वह होगा जो अपने-अपने वर्ण में किया जाएगा।'

विक्रमादित्य उज्जयिनी के प्रभावशाली राजा थे। विक्रम संवत इन्हीं के नाम पर चल रहा है।

३५. बालक रोहक एक साधारण परिवार का असाधारण बच्चा था। उसकी प्रतिभा विलक्षण थी। एक बार वह अपने पिता के साथ उज्जयिनी आया। शहर में घूमकर वह शिप्रा नदी के तट पर गया। वहां उसने संपूर्ण उज्जयिनी को अंकित कर दिया। कुछ समय बाद राजा उधर से गुजरा। तट पर अंकित रेखाचित्रों ने उसको विस्मित कर दिया। राजा ने उसका पता लगाया और बुद्धि-परीक्षण के बाद उसे अपना महामात्य घोषित कर दिया। रोहक की बुद्धि के संबंध में अनेक घटनाएं और किंवदंतियां प्रचलित हैं। 'नंदी सूत्र' की टीका में रोहक की प्रत्युत्पन्न बुद्धि की अनेक कहानियां प्राप्त हैं।

३६. कुणाल के पुत्र सम्राट सम्प्रति अपने समय के यशस्वी राजा थे। ये सम्राट अशोक के पौत्र थे। अशोक ने बौद्ध धर्म की प्रगति में अपना योगदान दिया। सम्प्रति का आकर्षण जैनधर्म के प्रति था। उन्होंने जैनधर्म के विकास-हेतु जो काम किया, वह उल्लेखनीय है।

३७. चंडप्रद्योत भगवान महावीर का भक्त और उनका समकालीन जैन राजा था। गंध हस्ती जैसा विशिष्ट हाथी उसके अधिकार में था।

३८. तेरापंथ धर्मसंघ के सातवें आचार्यश्री डालगणी मालवा प्रदेश के थे। वे बड़े विलक्षण आचार्य थे। उनकी विलक्षणता का स्वयंभू प्रमाण है—माणकगणी द्वारा आचार्यपद के लिए किसी का निर्धारण न करने पर धर्मसंघ ने सर्व-सम्मति से उनका निर्वाचन किया और निर्वाचन का यह कार्य उनकी अनुपस्थिति में हुआ। इस घटना से जाना जाता है कि डालगणी के वर्चस्वी और यशस्वी व्यक्तित्व ने ही धर्मसंघ के अस्थिर भविष्य को स्थिरता दी। डालगणी ने अपने शासनकाल के बारह वर्षों में एक सजग और विश्वस्त प्रहरी की भांति धर्मशासन की देखभाल की। डालगणी का पूरा जीवनवृत्त जानने के लिए पढ़ें—आचार्यश्री तुलसी द्वारा निर्मित 'डालिम-चरित्र'।

३९. गंगाशहर-निवासी श्रावक ईशरचंदजी चौपड़ा के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित सोरठे—

१. लख्या सैकड़ां सेठ, पिण ठकुराई इण जिसी।
कोइक निभावै नेठ, जो रबाब राजां जिसो।।

२. सदा राखतो हाथ, गांठां वाली शुभ छड़ी।
पाई अनुपम आथ, कालू री करुणा निजर।।

३. रुकता पैर पचास, सेठ जठै पग रोकतो।
होतो पन्थ खलास, सेठ आवतां ही स्वयं।।

४. भर कलकत्तै धाक, पड़ती ईशर सेठ री।
आज भरै जन साख, पाट-जूट रै काम री।।
५. पूरो थलवट प्रान्त, बीकाणै रो चोखळो।
गौरव गिण्यो नितान्त, श्रावक ईशर सेठ रो।।
६. मुश्किल मिलै मिशाल, गुरु-इंगित आराधणै।
संघ-भक्ति सुविशाल, 'तुलसी' ईशर सेठ री।।

४०. सुजानगढ़ के प्रसिद्ध श्रावक गणेशमलजी कठौतिया एक विलक्षण व्यक्ति थे। बचपन में ही चेचक के कारण वे आंखों की ज्योति खो बैठे। आंखें जाने के बाद मानो उनका हृदय-पटल खुल गया। वे केवल आंखों से देखते नहीं थे, पर उनकी शेष इंद्रियों की ग्रहणशक्ति बहुत प्रबल थी। उनकी कोई भी प्रवृत्ति ऐसी नहीं थी, जिससे उनकी नेत्रविहीनता का आभास हो सके। अपने सिर पर वे पगड़ी ऐसी बांधते थे, जैसी चक्षुष्मान व्यक्ति भी मुश्किल से बांध सकता हो। उन्हें चलने में केवल अंगुली भर का सहारा अपेक्षित था। उनकी गति देखकर यह अनुमान नहीं होता था कि कोई अपरिचित या नेत्रविहीन व्यक्ति चल रहा है। वे जिस मकान में एक बार घूम लेते, फिर रास्ता बताने की अपेक्षा नहीं होती।

अपनी चक्षु इंद्रिय खोकर गणेशमलजी प्रज्ञाचक्षु बन गए। यही कारण था कि अनेक चक्षुष्मान व्यक्ति उनके पास परामर्श-हेतु आते रहते थे। अपने घर का पूरा हिसाब तथा व्यवसाय में आय-व्यय का पूरा विवरण वे अंगुलियों पर गिनकर बता देते थे।

गणेशमलजी चार भाई थे। उनके छोटे भाई पूनमचंदजी, मोहनलालजी और नथमलजी उनके बड़े विनीत थे। तीनों भाई अपने-अपने क्षेत्रों में दक्षता रखने पर भी ज्येष्ठ भ्राता के भक्त बनकर रहे। बराबर के भाइयों में सौहार्द के साथ इतना विनय कम देखने में आता है। भाइयों की तरह इस परिवार की बहनों में भी धार्मिक संस्कारों और पारस्परिक सौहार्द की स्थिति उल्लेखनीय है।

धर्मसंघ के प्रति गणेशमलजी की आस्था अटल थी। वि. सं. १९८३ में थली के ओसवाल समाज में जो बिरादरी-संघर्ष उत्पन्न हुआ था, उसमें कठौतिया परिवार स्वदेशी पक्ष में था। उस समय उनको धार्मिक दृष्टि से खींचने का बहुत प्रयत्न किया गया। पर गणेशमलजी, मोहनलालजी आदि ने तनाव के उन क्षणों में भी जिस विवेक, मनोबल और दृढ़धार्मिकता का परिचय दिया; वह एक उदाहरण है। इनके कारण अन्य कई व्यक्ति धर्मपरिर्वतन के लिए उद्यत होकर भी संभल गए।

गणेशमलजी अपनी धार्मिक आस्था से प्रेरित होकर प्रतिवर्ष आचार्यों की

उपासना करते। आचार्यश्री कालूगणी और आचार्यश्री तुलसी की उपासना में उन्होंने कोई भी वर्ष खाली नहीं जाने दिया। व्यावसायिक दृष्टि से दिल्ली में प्रवास करने के बाद उनके परिवार ने वहां भी धर्मसंघ संबंधी दायित्व को बराबर निभाया है।

आचार्यश्री कालूगणी के समय जब वे उनकी उपासना में रहे तो मुनि तुलसी के काफी निकट संपर्क में आ गए। वे मुनि तुलसी के पांवों की अंगुलियों को सहलाते रहते और अपने अनुभव ज्ञान के आधार पर बताते—यह अंगुली अंगूठे से बड़ी है, यह शुभ है, इसका यह फल होगा आदि...।

जीवन के सांध्यकाल में गणेशमलजी की धार्मिक अभिरुचि काफी प्रबल हो गई। वे बार-बार पूछते रहते—'अब मुझे क्या करना है? क्या धर्मजागरणा करनी है?' उनके छोटे भाई मोहनलालजी वर्तमान में अच्छी साधना कर रहे हैं, पर अपने समय में गणेशमलजी फड़दी थे। सांसारिक और धार्मिक, दोनों दृष्टियों से उनकी दक्षता उल्लेखनीय है।

४१. सुजानगढ़-निवासी नवलचंदजी बैद के चार पुत्र थे—छगनमलजी, धनराजजी, जयचंदलालजी (वर्तमान में मुनि) और गणेशमलजी। मुनि जयचंदलालजी 'मूंथाजी महाराज' के नाम से काफी प्रसिद्ध हैं।

छगनलालजी अपने समय के अच्छे ज्योतिषी माने जाते थे। साधु-साध्वियों के चातुर्मास-प्रवेश की दृष्टि से वे बिना पूछे ही सबके मुहूर्त निकाल देते और जहां-जहां साधु-साध्वियां होते, वहां संवाद पहुंचा देते।

छगनमलजी की धार्मिक आस्था इतनी दृढ़ थी कि वे किसी समय और किसी भी विषय में शंका-कांक्षा का नाम ही नहीं जानते थे।

धनराजजी अपनी त्याग और तपस्या की विशेष भावना के लिए प्रसिद्ध थे। तपस्या वे प्रायः चौविहार करते थे। उन्होंने अठाई (आठ दिन की तपस्या) भी चौविहार की तथा उसमें चौसठ प्रहरी पौषध किया, ऐसा कहा जाता है। स्वीकृत व्रतों के पालन में वे बहुत पक्के थे। वे कई बार स्वयं कहा करते थे कि उनके जीवन में सब प्रकार के दुर्व्यसन थे। कालूगणी की प्रेरणा और शिक्षा से संकल्प स्वीकार कर उन्होंने अपने-आपको बचा लिया।

धनराजजी यात्रा में सेवा बहुत करते थे। उनकी सेवा की पद्धति विलक्षण थी। अपने कई साथियों (झूमरमलजी डोसी, झूमरमलजी चोरड़िया, बालचंदजी बोकड़िया, शिवजीरामजी बैंगाणी, हजारीमलजी बैद आदि) के साथ एक-एक महीने तक बहुत उदारतापूर्वक सेवा करते।

साधुओं को दान देने की दृष्टि से वे विलक्षण व्यक्ति थे। उनके घर गोचरी

जानेवाले साधु-साध्वियों को बहुत सतर्क रहना पड़ता था। अन्यथा वे भोजन तो क्या, घी के पात्र उलट देते थे। आगमों में श्रावक को साधु-साध्वियों के माता-पिता की उपमा दी गई है। धनराजजी इस उपमा को चरितार्थ करने वाले थे।

एकबार उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गई, फलस्वरूप उन्हें वृद्धावस्था में असम जाकर व्यापार करना पड़ा। यद्यपि उस समय उनकी कहीं बाहर जाने की इच्छा नहीं थी, पर वे किसी का ऋण भी अपने सिर पर रखना नहीं चाहते थे। इसलिए परिश्रमपूर्वक धंधा कर उन्होंने अर्थार्जन किया और पाई-पाई सबका ऋण उतार दिया।

अपनी उज्ज्वल जीवन-यात्रा को अनशनपूर्वक संपन्न कर धनराजजी ने समाज में सुयश अर्जित कर लिया। उन्हें अपनी जीवन-यात्रा के बाह्य और अंतरंग दोनों पक्षों में अपने पुत्र मांगीलालजी और उनकी धर्मपत्नी का पूरा सहयोग रहा।

४२. दानचंदजी चौपड़ा मूलतः डीडवाना के रहने वाले थे। बाद में वे सुजानगढ़ आकर बसे। वहां उनको शहर के मध्यवर्ती उपयुक्त स्थान मिल गया। दानचंदजी की माता वैष्णव थीं, अतः उनमें भी वैष्णव धर्म के संस्कार थे। कालूगणी के संपर्क में आकर वे जैनधर्म के प्रति आकृष्ट हुए। उन्होंने जैन तत्त्वविद्या के संबंध में गहरी चर्चा कर तेरापंथ की श्रद्धा स्वीकार की।

दानचंदजी तत्त्वज्ञान के साथ धार्मिक उपासना में भी अभिरुचि रखते थे। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि वे अपने पुत्र या पुत्री के विवाह में बारात आने पर या बारात में चले जाने पर भी सामायिक करने का क्रम नहीं तोड़ते थे। प्रायः तीन-चार सामायिक करके ही वे आत्मतोष का अनुभव करते थे। आचार्यश्री कालूगणी और आचार्यश्री तुलसी की यात्राओं में भी वे अच्छी सेवा करते थे।

ओसवाल समाज के बिरादरी-संघर्ष में स्वदेशी पक्ष से अनुबंधित होने के कारण धार्मिक दृष्टि से भी उन पर काफी दबाव पड़ा; किंतु वे अपने पथ से डिगे नहीं। उन्होंने अपने समय में प्रचुर मात्रा में प्राचीन और दुर्लभ ग्रंथ संगृहीत कर एक बहुत अच्छा पुस्तकालय बना दिया।

दानचंदजी अपने जीवन में किसी समय साधारण स्थिति में थे। बाद में उन्होंने बंगाल में व्यवसाय कर काफी संपन्नता प्राप्त कर ली। कहा जाता है कि जब वे दिवंगत हुए तब करोड़ों की संपत्ति छोड़कर गए थे। उस संपत्ति में तीन लाख तोला चांदी, दस हजार तोला सोना, लाखों रुपयों का जवाहरात तथा जमीन-जायदाद थी।

४३. रणथंभोर के शासक अलाउद्दीन खिलजी ने एक व्यक्ति को कठोर दंड

दिया। दंडित व्यक्ति चित्तौड़ के राणा हमीर की शरण में चला गया। रणथंभोर के राणा ने अपने व्यक्ति को वापस मांगा तो चित्तौड़ के राणा ने यह कहकर उसे लौटाने से इंकार कर दिया कि वे अपने शरणागत व्यक्ति को पूर्ण संरक्षण देंगे।

अलाउद्दीन खिलजी ने इस प्रसंग को लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा हमीर मुकाबले के लिए तैयार हो गए। युद्ध के लिए सज्जित होकर प्रस्थान करने से पहले वे अपने अंतःपुर में गए। उन्होंने अपनी पत्नियों से कहा—'मुझे दृढ़ विश्वास है कि मैं विजयी होकर लौटूंगा। कदाचित ऐसा नहीं हुआ तो हम तुम्हें संकेत करवा देंगे। पराजय की सूचना मिलते ही तुम लोग जौहर कर लेना।'

युद्ध में राणा हमीर विजयी हुए। उन्होंने अपनी विजय की सूचना अंतःपुर में पहुंचाने का निर्देश दिया। विजयोन्माद से भरे हुए सैनिकों ने प्रमादवश पराजय का संकेत कर दिया। संकेत मिलते ही सारा अंतःपुर जलकर भस्म हो गया।

राजमहल में पहुंचकर अंतःपुर की स्थिति देखते ही राणा सन्न रह गए। छोटे-से प्रमाद ने कितना अनर्थ कर दिया! अंतःपुर के इस प्रकार भस्म होने से वे दुःखित हुए और उस दुःख-शमन के लिए उन्होंने जौहर करने का निर्णय लिया।

राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों तथा प्रजा के प्रतिनिधियों ने राणा को समझाया कि वे इतनी-सी बात के लिए दुःख न करें। उनके लिए एक नहीं, बीसों कन्याएं तैयार हैं। पर राणा नहीं माने, वे बोले—

सिंह-संगम सुपुरुष-वयण, केल फलै इक डार।
त्रिया त्रैल हमीर-हठ, चढ़ै न दूजी बार।।

'मेरी भूल से अंतःपुर जला है। उस भूल का प्रायश्चित्त मेरे जलने से ही होगा।' कहा जाता है कि राणा हमीर ने जिंदा जौहर करके अपना हठ पूरा किया।

४४. मुरड़ियाजी के संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित दोहे—

१. हीरालाल हमीरसिंह, दोय मुरड़िया भ्रात।
श्रावक वासी उदयपुर, अम्बा-सुत विख्यात।।

२. सुत हमीरसिंह रा युगल, मदनसिंह रणजीत।
दोनूं ओधैधर सखर, तेरापंथ प्रतीत।।

३. मदनसिंह बड़सोदरू, आछो अवसर देख।
पूज्यपाद प्रणती करी, विनती करी विशेख।।

४५. गुजरात की घटना है। वहां एक व्यक्ति ने नौकर रखा। नाम था उसका 'अमथा'। अमथा ढीला-ढाला व्यक्ति था, फिर भी जैसे-तैसे अपना काम कर लेता

था। एक दिन उस घर में मेहमान आए। मालिक ने नौकर से दूध लाने के लिए कहा। नौकर तत्परता से चला। वह आधी दूर पहुंचा होगा कि लौट आया और बोला—'दूध काली गाय का लाना है या चितकबरी का? 'गृहस्वामी ने उत्तर दिया—'किसी भी गाय का ले आओ।' वह चला और थोड़ी दूर जाकर फिर आ गया। इस समय उसका प्रश्न था—'दूध बाखड़ी गाय का लाना है या सावड़ी (सद्यःप्रसूता) का?' मालिक थोड़ा झुंझलाया और बोला—'तुम्हें पहले से कह दिया किसी भी गाय का ले आओ।' नौकर आश्वस्त होकर चला, पर एक और जिज्ञासा ने उसको मालिक के सामने लाकर खड़ा कर दिया। उसने प्रश्न किया—'अपने यहां एक गाय खोड़ी है और एक साझी (परिपूर्ण अंगों वाली) है, कौन-सी गाय के दूध की जरूरत है?'

मालिक अपने नौकर की इस वृत्ति से थोड़ा उत्तेजित हुआ। वह उसे कड़ी चेतावनी देते हुए बोला—'यह प्रश्नों का सिलसिला बंद करो और दूध ले आओ। बार-बार आने-जाने की कोई जरूरत नहीं है। सीधे जाकर दूध ले आओ। मुझे दूध से मतलब है, न कि गाय से।' अमथा सहमता हुआ-सा गया और कौन-सी गाय का चिंतन छोड़कर दूध का पात्र ले आया।

४६. बीदासर-निवासी प्रसिद्ध सेठ शोभाचंदजी बैंगानी के सुपुत्र हणूतमलजी बैंगानी धार्मिक दृष्टि से जितने श्रद्धालु थे, सामाजिक दृष्टि से उतने ही उदार थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पारां बाई (सरदारशहर-निवासी संपतरामजी दूगड़ की बहन) भी आस्था और उदारता के क्षेत्र में एक उदाहरण थी। उन दोनों की प्रकृति में विशेष साम्य था। जो व्यक्ति उनके निकट संपर्क में रहे, उनका कहना है कि वैसी जोड़ी बहुत कम मिलती है।

श्राविका पारां बाई की उदारता के संबंध में यह बताया जाता है कि कोई व्यक्ति उनके घर मकरध्वज जैसी कीमती दवा मांगने के लिए आ जाता और दवा घर में नहीं होती तो भी वे आनेवाले को मना नहीं करतीं। आगंतुक को बिठाकर वे पीछे की सीढ़ियों से किसी व्यक्ति को बाजार भेजकर दवा मंगा लेती थीं। उनके घर आकर कोई व्यक्ति खाली लौट जाए, यह उन्हें कभी स्वीकार नहीं था।

आगे जाकर उनकी संपन्नता कम हो गई, पर उदारता में कमी नहीं आई। सदा की भांति हजारों रुपयों का अतिरिक्त व्यय, किन्तु उसका कोई अभिमान नहीं। शहर में उनकी विशेष छाप थी। उदारता की भांति उस दंपति की शासन-भक्ति भी उल्लेखनीय है।

४७. डॉ. अश्विनीकुमार ने कालूगणी के स्वास्थ्य के बारे में निराशाजनक संकेत दिया, वह किसी प्रकार ईशरचंदजी चौपड़ा तक पहुंच गया। चौपड़ाजी इस बात से बहुत नाराज हुए और बोले—'गुरुदेव के संबंध में ऐसी बे-पते की बात करता है; इसको डॉक्टर किसने बना दिया?' सेठजी के मन का आक्रोश इतना तीव्र हुआ कि उन्होंने डॉक्टर के साथ बोलना बंद कर दिया।

अश्विनीकुमार के मन पर भी उनके इस व्यवहार का असर हुआ। ईशरचंदजी ठिकाने में होते तो वह बाहर खड़ा रहता और उनके प्रति टिप्पणी करता—'पूजी महाराज के प्रति मेरी भक्ति है, इसलिए मैं यहां आता हूं। मुझे सेठजी से क्या लेना है?'

कुछ समय बाद ही क्रूर काल ने कालूगणी को उठा लिया। डॉक्टर की बात सही प्रमाणित हो गई। अब ईशरचंदजी को अपनी भूल का भान हुआ। उनके मन में डॉ. अश्विनी के प्रति सहज अनुराग पैदा हो गया। उन्होंने उसको हार्दिक स्नेह और सम्मान दिया तथा कई बार अपने घर (गंगाशहर) भी ले गए।

४८. आचार्यश्री कालूगणी का वि. सं. १९९३ का चातुर्मास गंगापुर था। चातुर्मास के लिए आपने भीलवाड़ा से प्रस्थान किया। रास्ते में प्रसंग चला कि गंगापुर छोटा क्षेत्र है, इसलिए आचार्यश्री के साथ मुनि कम रहेंगे। कुछ संतों को अलग भेजना था। कालूगणी का चिंतन मुनि दुलीचंदजी, जंवरीमलजी, नगराजजी आदि मुनि तुलसी के पास पढ़नेवाले संतों को भेजने का था।

मुनि तुलसी को उस बात की जानकारी मिली। उन्होंने सोचा—ये मुनि चार मास तक अलग रहेंगे तो इनके अध्ययन का क्रम टूट जाएगा तथा फिर एक साल तक क्रम नहीं बन सकेगा। इस दृष्टि से वे कालूगणी की सेवा में उपस्थित हुए और बोले—'गुरुदेव! चातुर्मास में मुनि कम संख्या में रखने हैं अतः किसी न किसी को भेजना पड़ेगा। पर इन संतों को भेजने से सालभर का अध्ययन गतरस हो जाएगा। आप कृपा कर अध्ययनशील मुनियों को सेवा का अवसर दिलाएं तो ठीक रहेगा।'

मुनि तुलसी ने निवेदन किया और पासा पलट गया। विद्यार्थी साधु रह गए और उनके स्थान पर सदा कालूगणी की सेवा में रहने वाले मुनि सुखलालजी आदि को भेजने का निश्चय किया गया।

मुनि सुखलालजी ने बलपूर्वक निवेदन किया कि इस वर्ष तो उन्हें गुरुदेव की सेवा का लाभ दिराना ही पड़ेगा। सदा पास में रहने का सौभाग्य दिराकर अवसर की सेवा से उन्हें वंचित न रखाएं। बहिर्विहार करना ही है तो करते रहेंगे,

किंतु अस्वस्थ अवस्था में गुरुदेव को छोड़ने का मन नहीं करता है। पर कालूगणी ने उनके निवेदन को स्वीकार नहीं किया।

मुनि तुलसी द्वारा एक बार किए गए निवेदन पर कालूगणी का इतना ध्यान वास्तव में एक विशेष घटना है।

४६. पूज्य गुरुदेव कालूगणी के स्वास्थ्य पर औषधि का कोई प्रभाव न देखकर आशुकवि आयुर्वेदाचार्य पंडित रघुनंदनजी शर्मा ने बीमारी और औषधि-प्रयोग का विवरण संस्कृत भाषा के इक्कीस पद्यों में अंकित कर उस पत्र को जयपुरवासी राजवैद्य दादूपंथी संत श्री लच्छीरामजी के पास भेजा। पत्र ले जाने वाले श्रावक थे वृद्धिचंदजी गोठी और पूर्णचंदजी चौपड़ा।

अनुष्टुप्छन्दांसि

१. श्रीमतां वैद्यवैद्यानां, वारीन्द्राणां यशस्विनां।
लक्ष्मीरामाह्वसाधूनां, सेवायामिति तन्यते।।
२. सांप्रतं श्रीजिनाचार्यः, कालूरामाभिधो महान्।
पीड्यते कृच्छ्रसाध्येन, रोगेणैकेन भूरिशः।।
३. चिकित्सा जायतेऽस्माकं, यथावच्छास्त्रसम्मता।
तथापि क्रमशो लाभो विशेषो न विलोक्यते।।
४. लिख्यते रोगनामापि, निर्णीतं यन्मया स्वतः।
लक्षणान्यपि दर्श्यन्ते, कार्या निर्धारणा बुधैः।।
५. कुक्षेराध्मानमाटोपः, शोथः पादकरस्य च।।
इत्यादिलक्षणैः स्पष्टैर्ज्ञायते ह्युदरामयः।।
६. मन्दोग्निर्वर्ततेऽनल्पोऽनल्पकालसमुद्भवः।
सर्वेषामिति कष्टानां प्रारम्भो दृश्यते यतः।।
७. दृश्यते ज्वरवैषम्यमेकाधिकशताङ्कगम्।
शुष्ककासो विशेषेण पूर्वरात्रे च बाधते।।
८. व्याप्तः सर्वत्र देहेऽपि तथापि क्रमयोर्द्वयोः।
शोथो विशेषतां यातो विस्मापयति मानवान्।।
९. करोति भिषजांवर्य! स्वकीयां न क्रियां यकृत्।
दृश्यते पाण्डुता तेन, त्वचि मूत्रे मलेऽपि च।।
१०. जराधिक्ये क्वचित्तन्द्रा, हृल्लासश्चाशनान्तिके।
उदरस्योन्नतिर्धीमन्! कायकार्श्येऽपि वर्धते।।

११. अथैका पिडका जाता, मधुमेहसमुद्भवा।।
वामे पाणौ महाभागैः शल्यज्ञैः सा विपाटिता।।
१२. साम्प्रतं निम्बकल्कादियोगेनायोजिताऽपि सा।
शान्ताऽपि रोपणं पूर्णं भजते न विषायिता।।
१३. चतुःसंख्यं प्रतिशते, मधुमूत्रपरीक्षकैः।
निश्चितं तस्य भागोऽपि बुध्यते न भयावहः।।
१४. विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः।
सत्यस्मिन् सुप्रमाणेऽपि मधुमेहोऽनुमीयते।।
१५. साम्प्रतं मयका किं किं क्रियतेऽत्र चिकित्सितम्।
संक्षेपेण च तद् वक्ष्ये, विचार्य वैद्यवल्लभैः।।
१६. यकृदरिर्ज्वरारिश्च, सिंहनादरसस्तथा।
मकरध्वजकः प्राण-वल्लभो मेहकेशरी।।
१७. हरीतकी च रोहीतो गोमूत्रं च वृषो मधु।
सत्त्वं गुडूचिकायाश्च, पिप्पली भूरिपेषिता।।
१८. फाण्टे मन्थेऽनुपाने च, प्रयुज्यन्ते यथा तथा।
गोमूत्रस्य च सेकोऽपि, क्रियतेऽथोदरोपरि।।
१९. आहारे तु विशेषेण, पयो गव्यं प्रदीयते।
यवागूर्मुद्गदालिश्च, दीयतेऽपि कदाचन।।
२०. केवलस्य तु दुग्धस्य, प्रयोगो नैव वर्तते।
यद्यप्यस्य मतिर्भूयो विज्ञवर्य! प्रपद्यते।।
२१. कृपां विधाय रोगार्ते रक्षयंश्च भिषग्यशः।
यत्करोति भवान् धीमान् तत्कार्यमिति पूर्यताम्।।

५०. पंडित रघुनंदनजी द्वारा प्रदत्त काव्यमय पत्र को पढ़कर वैद्यराज स्वामी लच्छीरामजी ने भी संस्कृत के श्लोकों में पत्र का उत्तर दिया—

अनुष्टुप्छन्दांसि

१. श्रीमन्! भवद्दलं प्राप्तं, साम्प्रतं पद्यपेशलम्।
रोगलक्षणविज्ञानं, व्यवस्थां च प्रकाशयत्।।
२. व्याधेः स्वरूपमालक्ष्य बलकालानुसारतः।
अनुमोदामहे साधु, व्यवस्थां भवता कृताम्।।
३. किन्तु यद्युदरे जातं संभाव्ये तोदकं तदा।
जलोदरारिनामात्र, मात्रया दीयतां रसः।।

४. पुनर्नवाष्टकं क्वाथं, प्रातः सायं पिबेत् गदी।
हृदयार्णवनामानं, मधुना च लिहेद् रसम्।।
५. किं चात्र केवलं दुग्धं, धैनवं वापि कारभम्।
विहायान्नं प्रसेवेत क्षिप्रमारोग्यकांक्षया।।

शार्दूलविक्रीडितं छन्दः

६. रोगः कष्टतमो वयो नहि नवं नाप्यस्ति शक्तो गदी,
किं चोपद्रवपीड़ितोऽथ समयो धाराधरः क्रोधनः।
इत्येतत् मनसाकलय्य यततां सम्यग् विविच्यात्मना,
तस्यारोग्यमहं प्रपन्नशरणं धन्वन्तरिं प्रार्थये।।

५१. आचार्यश्री कालूगणी ने अपने जीवन के संध्याकाल में अपने उत्तराधिकारी आचार्यश्री तुलसी को एक विशेष संकेत देते हुए कहा—'अपना धर्मसंघ बहुत बड़ा है। इसमें सैकड़ों साधु-साध्वियां साधना कर रहे हैं। सब साधक समान नहीं होते हैं। कई साधु-साध्वियां बहुत जागरूक हो सकते हैं तो कई बहुत प्रमादी भी हो सकते हैं। वे प्रमादवश छोटी गलती कर सकते हैं, बड़ी गलती कर सकते हैं और एक गलती को बार-बार दोहरा भी सकते हैं। ऐसी कोई भी स्थिति तुम्हारे सामने उत्पन्न हो जाए तो घबराहट की कोई जरूरत नहीं है। साधना करने वाले सब छद्मस्थ हैं। छद्मस्थ अवस्था में यदाकदा प्रमाद हो सकता है, इस तथ्य को ध्यान में रखकर तुम हर स्थिति को संभालना।'

अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कालूगणी ने कहा—'गलती करने वालों में जब तक साधुत्व के प्रति आस्था हो तथा साधुपन पालने की नीति हो, तुम उनको सहयोग देना। तुम्हारे मन में थोड़ा भी विचार आ गया तो उनका साधुपन पलना कठिन हो जाएगा।'

कालूगणी की इस शिक्षा से आचार्यश्री तुलसी को बड़ा संबल मिला। आज भी उनके सामने जब कभी कोई उलझन भरी स्थिति उत्पन्न होती है, कालूगणी के वे शब्द स्मृति में उभर आते हैं, मन पर आया हुआ भार उतर जाता है और बहुत बड़ा आश्वासन मिलता है।

५२. प्राचीन काल में साधुओं की लेखन-प्रक्रिया में स्याही निकालने की विशेष विधि थी। लेखन- कार्य में काली स्याही काम में ली जाती थी। सूर्यास्त के बाद गीली स्याही रखना विहित नहीं है, इसलिए उसे वस्त्र खण्ड में सोखकर सुखा दिया जाता। दूसरे दिन सूर्योदय के बाद उसे पानी से भिगोकर पुनः स्याही

निकाली जाती।

५३. प्राचीन समय में यातायात के साधन बहुत कम थे। उस समय लंबी यात्रा करने वाले व्यक्ति सार्थ लेकर जाते थे। एक रईस व्यक्ति जलयान के द्वारा विदेश यात्रा पर जा रहा था। उसने अपने शहर में घोषणा करवाई कि सेठजी यात्रा पर जा रहे हैं। कोई भी व्यक्ति उधर जाना चाहे, उसकी व्यवस्था सेठजी की तरफ से हो जाएगी। घोषणा सुनकर कई व्यक्ति आए और सेठजी के सार्थ में सम्मिलित हो गए।

कुछ व्यक्ति एक अनाथ बालक को लेकर सेठ के पास आए और बोले—'सेठ साहब! अपने घर में यह बच्चा अकेला है। माता-पिता की मृत्यु के बाद परिवार में कोई इसको संभालने वाला नहीं है। अपने समाज का लड़का है, आज रोटी का मोहताज बन रहा है। आप संभाल लें तो इसको आश्रय मिल जाए।'

सेठ ने लड़के को देखा। फटेहाल होने पर भी उसकी आंखों में चमक थी। सेठ ने उसको अपने पास रख लिया। नहलाने और अच्छे वस्त्र पहनाने के बाद उसका रूप-रंग भी निखर गया। अच्छा भोजन, अच्छा वातावरण, वरिष्ठ व्यक्तियों का संपर्क और सेठ का स्नेह बालक के व्यक्तित्व को उभारने लगा। बुद्धि उसकी अच्छी थी। सेठ के निर्देशानुसार वह व्यापार सीखने लगा। थोड़े ही दिनों में वह एक कुशल व्यवसायी बन गया। उसके आने के बाद सेठ के व्यापार में उत्तरोत्तर लाभ होता रहा। इससे सेठ के मन में बालक के प्रति आत्मीय भाव विकसित होता गया।

सेठ ने उस अनाथ बालक को अपने व्यापार में भागीदार बना लिया। पहले उसकी दो आना पांती रखी, फिर चार आना रखी और बाद में आधी पांती रख दी। अब वह बराबर का सेठ हो गया और बालक से युवा बन गया। एक दिन उसने अपने घर और परिवार के बारे में जिज्ञासा की। उसे बताया गया कि उसका छोटा-सा घर अमुक शहर में है, पर परिवार में कोई नहीं है। उसके मन में घर संभालने की भावना जगी। सेठ के पास जाकर उसने घर जाने की अनुमति मांगी। सेठ बोला—'यह घर तुम्हारा ही है। तुम्हारी इच्छा हो तो यहीं रहो।' युवक ने कहा—'आपकी कृपा ही मेरा जीवन है। यहां रहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर मैं सोचता हूं कि पुरखों का नाम रह जाए तो अच्छा है।'

युवक की आंतरिक इच्छा देख सेठ ने उसे देश जाने की अनुमति दे दी और कहा—'पूरा हिसाब कर लो।' युवक बोला—'हिसाब किससे कर लूं? आप मेरे लिए मां-पिता सब-कुछ हैं। अपने हाथ से उठाकर जो देंगे, मैं उसमें खुश

हूं।' सेठ ने उसको सम्पदा और सम्मान के साथ विदा किया। शहर पहुंचकर उसने घर के बारे में पूछताछ की। एक-दो दिन में सारी व्यवस्था करके उसने बाजार में लोगों को इकट्ठा कर कहा—'मेरे पिताजी पर किसी का ऋण हो वह ब्याज सहित ले ले।' कई व्यक्ति आए और उन्होंने अपना हिसाब पूरा किया। युवक की दूसरी घोषणा थी कि किसी भी व्यक्ति पर मेरे पिता का ऋण हो, वे अपना ऋण चुका दें।

युवक के सौहार्द की छाप लोगों पर पड़ चुकी थी अतः कर्जदार व्यक्ति भी आए और बोले—'बाबू! बहुत वर्ष हो गए, हम ब्याज नहीं दे सकते।' कुछ व्यक्ति मूल लौटाने में भी कठिनाई अनुभव कर रहे थे। युवक ने उन सबसे कहा—'मुझे पिछला हिसाब पूरा करना है। आपके पास हो तो दें अन्यथा सब-कुछ माफ।' युवक ने उदारतापूर्वक सबको माफ कर दिया। अब उसने अपने टूटे-फूटे मकान को तुड़वाकर दूसरा मकान बनवा लिया और पूरी व्यवस्था के साथ रहने लगा। शहर में उस युवक और उस सेठ की सहृदयता बहुत दिनों तक चर्चा का विषय बनी रही।

सेठ ने एक अनाथ बालक को जो स्नेह, सौहार्द और अपनत्व दिया तथा रंक से रईस बना दिया, वह उल्लेखनीय है। ऐसी घटनाएं कभी-कभी ही घटित होती हैं।

५४. बादशाह का एक सेवा-निवृत्त वजीर आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहा था। अपने कार्यकाल में वह दूसरे लोगों को आर्थिक सहयोग दिया करता था। पर अब आय के स्रोत बंद हो जाने के कारण वह स्वयं काफी कठिनाई से काम चला रहा था। इस स्थिति में भी उसने अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रखने के लिए किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया।

वजीर के पास केवल वह पोशाक बची, जिसे पहनकर वह राजसभा में जाता था। उसको वह अब भी इसी काम में लेता था। घर की स्थिति अत्यंत नाजुक थी। इसलिए वह सब काम हाथ से करने लगा। आटा पीसने की चक्की तक उसने चलाई। पर अपनी गरीबी को प्रकट नहीं होने दिया।

एक दिन बादशाह, वजीर के घर के आगे से गुजरा। वजीर को इस बात का पता नहीं था। वह अपने घर में चक्की पीस रहा था। बादशाह ने पूछा—'यहां वजीर रहता था न?' 'हां, जहांपनाह!' एक अफसर ने उत्तर दिया। बादशाह ने अपनी सवारी रोकी और उस तरफ दृष्टिक्षेप किया। वजीर और बादशाह की आंखें मिलीं। वजीर की पलकें झुक गईं। बादशाह ने हाथ से संकेत कर पूछा—'यह

क्या कर रहे हो?' वजीर समझदार था, उसने पेट पर हाथ रखकर बादशाह को समझा दिया कि पेट पापी है, इसके लिए सब-कुछ करना पड़ता है। बादशाह समझ गया।

बादशाह के साथ बड़े-बड़े मंत्री और अफसर थे। वे रहस्य को नहीं समझ पाए, अतः अपने प्रति संदिग्ध हो गए। हमारे किसी गलत काम के बारे में वजीर बादशाह को जानकारी न दे दे, इस भय से वे वजीर के पास पहुंचे और बोले—'वजीर साहब! आज आपकी बादशाह के साथ क्या बात हुई?' वजीर बोला—'सब बातें बताने की नहीं होतीं।'

मन्त्री—हमारे संबंध में तो कोई बात नहीं हुई?

वजीर—नहीं क्यों? आप सबके काले-कारनामे मेरे ध्यान में हैं। इस प्रकार राज्य का अहित करना उचित नहीं है।

मंत्री—आपने बादशाह से क्या कहा?

वजीर—मैंने कहा कि सब बातें मेरे पेट में हैं।

मंत्री घबराए। अब वे बार-बार वजीर के घर पहुंचते और कहते—'वजीर साहब! आप सब-कुछ जानते हैं, हम तो नए नए हैं। हमारी शान रखना आपके हाथ में है।' इस मौखिक आवेदन के साथ वे भेंट भी लाने लगे। पांच, दस, बीस हजार रुपयों की बड़ी-बड़ी रकमें वजीर के चरणों में चढ़ने लगीं। वजीर ने अवसर का लाभ उठाया और उन सबको आश्वस्त कर दिया।

आर्थिक संतुलन बन जाने के बाद वजीर के रहन-सहन का स्तर उन्नत हो गया। अब वह एक दिन राजसभा में बादशाह के पास गया। बादशाह ने वजीर से पूछा—'बोलो, क्या स्थिति है?' मंत्रियों का कलेजा बैठने लगा। उन्हें भय था कि वजीर उनके संबंध में कुछ न कह दे। वजीर बोला—'जहांपनाह! सब ठीक-ठाक है।' मंत्री लोग आश्वस्त होकर कनखियों से एक-दूसरे को देखने लगे।

वजीर बादशाह के निकट पहुंचा और सारी स्थिति की जानकारी देकर बोला—

'बहुत दिनों से कसीला आया, पर हमने किनसे न जताया।
चक्की पीस कर रखी शान, नजरे दौलत महरवान।।'

महान व्यक्तियों की नजर में ही दौलत है। उनकी नजर जहां टिक जाती है, वहां हर असंभव कार्य संभव हो जाता है।

५५. व्याकरण में दो प्रकार के अक्षर होते हैं—लघु और गुरु। अ इ उ ऋ लृ—ये लघु अक्षर हैं। इनको लघु मानने का आधार है इन अक्षरों की एक मात्रा। द्विमात्रिक अक्षर आ ई ऊ ए ऐ ओ औ गुरु कहलाते हैं। एकमात्रिक अक्षर लघु

ही होते हैं, पर व्याकरण में एक सूत्र आता है—'संयोगे गुरुः'—संयुक्त अक्षर आगे होने पर लघु-संज्ञक अक्षर भी गुरुसंज्ञक हो जाते हैं। जैसे—एक शब्द है—सत्य। इसमें सकार एकमात्रिक अक्षर है, अतः लघु है। किंतु आगे त्य इन संयुक्त अक्षरों के योग से सकार गुरुसंज्ञक हो गया।

इसी प्रकार गुरु की कृपा से सामान्य व्यक्ति भी महान बन जाता है।

५६. आचार्यश्री तुलसी के युवराज पदारोहण के अवसर पर गणेशदासजी गधैया (काली दाढ़ी वाले सेठ) के मानसिक उत्साह का अंकन निम्नलिखित पंक्तियों से किया जा सकता है—

१. उत्साह मनायो सेठ 'श्याम दाढ़ीधर'
थाळ्यां भर बांटी खूब मिठायां घर-घर।
केसरिया साफा केसर स्यूं रंगाया,
पच्चासां कर्मचारियां सिर बंधाया।।

२. जो आयो हाथ बधाई में दे दीन्हो,
सरदार नारसिंह रो मूल्यांकन कीन्हो।
पंडित रघुनंदन घनश्याम सनमान्या,
वैतनिक नौकरां नै घर का ज्यूं मान्या।।

५७. उस समय आचार्य-वंदना के समय साध्वियां सब संतों को नामोल्लेख पूर्वक वंदना करती थीं। उस दिन (वि. सं. १९९३ भाद्रव शुक्ला तृतीया) प्रातःकाल साध्वियां गुरुदेव को वंदन करने पहुंचीं। आचार्यश्री कालूगणी द्वारा मुनि तुलसी को युवाचार्य पद प्रदान करने के बाद साध्वियों ने सदा की भांति वंदना का क्रम प्रारंभ किया।

साध्वी किस्तूरांजी (लाडनूं) एक-एक मुनि का नामोल्लेख कर रही थीं। उन्होंने युवाचार्यश्री का नाम दीक्षा-क्रम के अनुसार बीच में लिया। नाम लेते ही आचार्यश्री कालूगणी ने उनको संकेत कर रोका और फरमाया—'क्या वंदना करती हो? पूरी विधि भी नहीं जानती। दूसरी बार करो।' दूसरी बार के वंदना-क्रम में युवाचार्य तुलसी का नाम बिलकुल छोड़ दिया गया। कालूगणी ने फिर फरमाया—'वंदना विधिवत नहीं हुई, दुबारा करो।'

आचार्य की सन्निधि में युवाचार्य को वंदना कैसे हो, यह अनुभव वहां उपस्थित साध्वियों में से किसी को नहीं था। सब मुनि भी उस विधि को नहीं जानते थे। साध्वी किस्तूरांजी सहमी हुई-सी इधर-उधर देखने लगीं। आखिर मंत्री मुनि मगनलालजी ने उनको मार्गदर्शन देते हुए कहा—देखो, पहले आचार्यश्री को वंदना करो, फिर 'मत्थएण वंदामि युवाचार्य महाराज'—इस शब्दावली से युवाचार्य

को वंदना करो। युवाचार्य का नाम लेने की अपेक्षा नहीं है। उसके बाद सब संतों को दीक्षा-क्रम से नामोल्लेखपूर्वक वंदना करो।

साध्वी किस्तूरांजी का व्यामोह टूटा। आचार्यश्री कालूगणी और मंत्री मुनि के संयुक्त मार्गदर्शन ने सब साधु-साध्वियों को संघ की एक विशेष नीति से परिचित करा दिया।

५८. आचार्यश्री भिक्षु ने तेरापंथ साधु संघ को आचारनिष्ठ, सुव्यवस्थित और संगठित बनाए रखने के लिए समय-समय पर अनेक विधि-विधानों का निर्माण किया, जिनको लिखत कहा जाता है। पहला लिखत वि.सं. १८३२ की साल और अंतिम लिखत वि.सं. १८५९ का लिखा हुआ है। बीच में अनेक लिखत लिखे गए। जयाचार्य ने उन सब विधानों को संकलित कर तथा स्वामीजी की शिक्षात्मक कृतियों का संदर्भ देते हुए उनका वर्गीकरण कर उसका नाम दिया—गणविशुद्धिकरण हाजरी। हाजरी इसका संक्षिप्त रूप है। इसकी भाषा राजस्थानी है। प्राचीन समय में हाजरी का वाचन प्रतिदिन होता था। उसके बाद डालगणी और कालूगणी के समय प्रतिदिन 'लेखपत्र' पर हस्ताक्षर करना तथा सप्ताह में दो बार (सोमवार और गुरुवार) हाजरी वाचन का क्रम चला। वाचन का कार्यक्रम मध्याह्न में होता था। मुनि तुलसी जिस दिन युवाचार्य बने, उस दिन गुरुवार था। आचार्यश्री कालूगणी अस्वस्थता के कारण उस समय हाजरी का वाचन कर नहीं सकते थे। इसलिए युवाचार्य ने मध्याह्न के समय हाजरी का वाचन किया।

(विशेष जानकारी के लिए देखें 'तेरापंथ का इतिहास', पृ. ३३८, ३३९)

५९. कालूगणी के अस्वास्थ्य का संवाद पाकर साधु-साध्वियों का चिंतित होना स्वाभाविक था। यद्यपि आचार्यश्री की सेवा में सेवाभावी साधु-साध्वियों की कमी नहीं थी, पर दूरी में चिंता अधिक बढ़ जाती है। आचार्य की अस्वस्थता में चातुर्मास में भी विहार किया जा सकता है, इस शास्त्रीय परंपरा के अनुसार उस समय कई क्षेत्रों से साधु-साध्वियां गंगापुर पहुंच गए। उन सबका नामांकन यहां किया जा रहा है—

ग्राम	**नाम**
कांकरोली	मुनि सुखलालजी, पूनमचंदजी, उदयचंदजी
राजनगर	मुनि धनरूपजी, हस्तीमलजी
पुर	साध्वी केसरजी का सिंघाड़ा
पहुना	साध्वी केसरजी (छोटा) का सिंघाड़ा
पीथास	साध्वी मघुजी का सिंघाड़ा
बागोर	साध्वी जुवारांजी का सिंघाड़ा
आमेट	मुनि फूलचंदजी

इसके अतिरिक्त 'मोटेगांव' आदि कुछ क्षेत्रों से भी साधु-साध्वियों ने विहार कर दिया था, पर कालूगणी द्वारा मना कर देने पर वे सब गंगापुर नहीं पहुंच सके।

६०. वि. सं. १६८३ लाडनूं मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर मुनि तुलसी को शीत-ज्वर हो गया। बुखार होने के कारण वे सो रहे थे। रात्रि में लगभग दस बजे मुनि मूलचंदजी (बीदासर) उनके पास पहुंचे और बोले—'अब तुम्हारी तबीयत कैसी है? बुखार उतरा या नहीं?' मुनि तुलसी ने पूछा—'आप इस समय क्यों पधारे?' मुनि मूलचंदजी ने उत्तर दिया—'मुझे श्रीजी महाराज (कालूगणी) ने भेजा है। उन्होंने फरमाया कि मैं तुम्हें पूछकर पुनः तुम्हारी स्थिति के बारे में उन्हें निवेदन करूं। देख, तुम पर कालूगणी की कितनी मर्जी है।'

कालूगणी की इस अप्रतिम कृपा ने मुनि तुलसी को अभिभूत कर दिया।

६१. वि. सं. १६८६ छापर में मुनि तुलसी के पांव में बबूल का कांटा लग गया। मुनि चौथमलजी आदि संतों ने शूल से खोदकर कांटा निकालने का प्रयास किया। कांटा काफी गहराई में था। उसे खोदा गया तो वह नीचे चला गया। पीड़ा अधिक होने से कांटा निकल नहीं सका।

कालूगणी को इस बात का पता चला तब वे धरती पर कंबल बिछाकर बैठे और अपने घुटने पर मुनि तुलसी का पैर टिकाकर कांटा देखा। कांटा काफी गहरा था। खोदने में पूरी सावधानी न रखने के कारण वह अधिक गहरा चला गया था। कालूगणी ने फरमाया—'मैं कांटा निकाल तो सकता था पर मुनि चौथमल ने इसे बिगाड़ दिया, इसलिए यह नहीं निकला।'

मुनि चौथमलजी ने मुनि तुलसी की ओर उन्मुख होकर कहा—'तुम्हारा कांटा निकालने का काम हाथ में लिया तब यह पद मिला।'

कांटा निकले या नहीं, कालूगणी के मन में अपने शिष्य के प्रति जो सहज वात्सल्य था और उसे जिस प्रकार से अभिव्यक्ति मिली, वह इतिहास की विरल घटनाओं में से एक है।

६२. वि. सं. १६८६ में कालूगणी बीदासर के पंचायती नोहरे में प्रवास कर रहे थे। मुनि तुलसी उनके साथ ही थे। एक दिन मुनि तुलसी के पेट में भयंकर दर्द हुआ। रात भर नींद नहीं आई, बेचैनी भी काफी रही। कालूगणी ने संतों को निर्देश दिया कि जब तक दर्द ठीक न हो, संत पास में बैठे रहें।

प्रातःकाल नई पोलवाले कानमलजी बैंगानी ने नाड़ी देखकर कहा—'नाड़ी की गति खराब है।' कालूगणी को निवेदन किया गया। कालूगणी ने पंचमी समिति से लौटकर मुनि तुलसी को अपने पास बुला लिया। वहीं बिछौना कर सुलाया,

अपने हाथ से दवा दी तथा पथ्य की व्यवस्था करवाई। इस कृपाभाव से मुनि तुलसी को जो तोष मिला वह तो अनिर्वचनीय है ही, दर्शक मुनियों ने भी उस समय विशेष आह्लाद का अनुभव किया।

६३. वि. सं.१६८८ की बात है। आचार्यश्री तुलसी चर्म-विकृति के कारण अस्वस्थ हो गए। पूरे शरीर पर दाद-से हो गए, जो पहले लाल-लाल होते, फिर सफेद हो जाते। कई उपचार किए गए, किंतु लाभ नहीं हुआ। मुनि तुलसी के मन में एक प्रकार से बहम हो गया कि न जाने क्या हो गया? कालूगणी को पता चला तो उनको बुलाकर फरमाया—'बहम नहीं करना चाहिए, सब ठीक हो जाएगा।'

कालूगणी को लाडनूं से विहार कर मर्यादा-महोत्सव के लिए छापर पधारना था। लाडनूं का डॉ. विभूतिभूषण मुनि तुलसी की चिकित्सा कर रहा था। इसलिए उनको लाडनूं रखना जरूरी था। कालूगणी स्वयं उन्हें दूर रखना नहीं चाहते थे और वे रहना भी नहीं चाहते थे। फिर भी आवश्यकतावश वैसा प्रसंग उपस्थित हो गया।

कालूगणी ने सोचा—मेरे से दूर रहने के कारण इसका मन खिन्न न हो जाए, अतः आत्मीय भाव व्यक्त करते हुए कहा—'तुलसी! तुझे कुछ दिन यहां रहना है। मुनि चंपालाल तुम्हारे पास है ही। और बता, तू अपने पास किस-किस को रखेगा।' मुनि तुलसी द्रवित हो गए। वे कुछ बोल नहीं पाए। कालूगणी ने कृपा कर नौ संतों को वहां रखा। मंत्री मुनि मगनलालजी ने कहा—'तुम्हारी इच्छा हो तो मैं यहां रह जाऊं।'

एक बाल मुनि के प्रति यह असीम करुणा मुनि की अपनी योग्यता को तो प्रमाणित करती ही है, साथ ही कालूगणी की कोमलता और परखने की क्षमता का भी सबल उदाहरण है।

लगभग तीन माह मुनि तुलसी लाडनूं रुके। अन्य औषधियों के साथ तेल मालिश से उस बीमारी में विशेष लाभ हुआ। स्वास्थ्य-लाभ कर उन्होंने रतनगढ़ में पूज्य कालूगणी के दर्शन प्राप्त किए।

६४. वि. सं. १६६० में कालूगणी सुजानगढ़ से विहार कर डीडवाना, खाटू होते हुए ईडवा पधारे। वहां रात्रिकालीन व्याख्यान के समय उन्होंने मुनि तुलसी को अपने पास बुलाकर कहा—'तुलसी! व्याख्यान में गाने का प्रसंग हो, वहां तू गाया कर, उसकी व्याख्या मैं करूंगा।' वहां दो दिन तक यह नया क्रम चला।

इस नए क्रम के पीछे क्या रहस्य है, यह जिज्ञासा कई मुनियों के मन में जाग्रत हुई। कालूगणी ने इस संदर्भ में फरमाया—'मघवागणी व्याख्यान में कई

बार गाने का प्रसंग आता तब मुझे खड़ा करते और उसका विश्लेषण स्वयं करते थे। मैं तो उसी क्रम का प्रत्यावर्तन कर रहा हूं।'

६५. कालूगणी के समय में तेरापंथ संघ में शिक्षा का बहुआयामी विकास हुआ। उन्होंने मुनि तुलसी को भी समय-समय पर अध्ययन की बहुत प्रेरणा दी। दिन में कई बार आप स्वयं हाथ में पत्र लेकर कहते—'तुलसी! आज कितना पाठ याद किया है, मुझे सुना।'

अध्ययन में किसी प्रकार की बाधा न आए, इस दृष्टि से बहुत बार कालूगणी मुनि तुलसी को अपने सामने आने और पहुंचाने जाने के लिए मना कर देते।

कालूगणी कभी-कभी अत्यंत स्नेह के साथ कहते—'तुलसी! तू अभी अधिक समय लगाकर तथा श्रम करके अध्ययन किया कर। इस समय अध्ययन होना सहज है, बाद में मुश्किल हो जाएगा।'

मुनि तुलसी ने उस प्रेरणा को गहराई से स्वीकार किया और शिक्षा के क्षेत्र में एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया।

६६. दीक्षा के बाद शैक्ष साधु-साध्वियों की कुछ समय तक आहार की पांती (विभाग) नहीं की जाती, उनके भोजन की व्यवस्था समुच्चय से होती है। कालूगणी ने मुनि तुलसी को तीन साल तक समुच्चय में रखा। कालूगणी स्वयं भी तीन वर्ष समुच्चय में रहे थे, संभवतः उन्होंने उसी अवधि को लक्षित कर मुनि तुलसी के लिए भी तीन वर्ष का समय रखा।

पांती होने के बाद भोजन की व्यवस्था अपने-अपने साझ (आचार्य के साथ रहने वाले साधुओं के दल) में होती है। मुनि तुलसी भी अपने साझ के संतों के साथ भोजन करने लगे, पर कालूगणी के मन में इतना वात्सल्य था कि बहुत महीनों तक उनको एक समय का भोजन अपने पास ही करवाते तथा बाद में भी कोई विशेष पदार्थ आता तो साधुओं के द्वारा वहीं पहुंचा देते। मुनि तुलसी अपने आराध्यदेव के उस करुणामय प्रसाद को अमृत समझकर स्वीकार कर लेते।

ग्यारह वर्ष की उस अवधि में बहुत कम दिन ऐसे बीते होंगे, जब भोजन के समय कालूगणी ने मुनि तुलसी को याद न किया हो।

६७. मातुश्री वदनांजी आचार्यश्री तुलसी की संसारपक्षीया माता थीं। आचार्यश्री की दीक्षा के समय ही मातुश्री दीक्षा लेना चाहती थीं, पर आचार्यश्री ने अपनी दीक्षा में विलंब की संभावना से उस बात पर ध्यान नहीं दिया। आचार्यश्री कालूगणी के स्वर्गारोहण के बाद मातुश्री ने अपने वैराग्य की बात प्रबलता से उठाई। आचार्यश्री तुलसी ने इस बात को गंभीरता से नहीं लिया, पर सेवाभावी मुनिश्री चंपालालजी का मानस बन गया। उन्होंने मंत्री मुनि श्री मगनलालजी को तैयार

कर आग्रहपूर्वक आचार्यश्री से निवेदन किया।

आचार्यश्री इस प्रसंग को टालना चाहते थे। क्योंकि इसमें कुछ दूसरी बाधाओं के साथ एक व्यावहारिक बाधा यह थी कि मातुश्री छोगांजी की उपस्थिति में दूसरी माजी का आगमन कैसे रहेगा? इस पर जनता की क्या प्रतिक्रिया होगी? दोनों माजी का पारस्परिक संबंध क्या होगा? अनेक प्रश्नचिह्न खड़े हो गए। पर सेवाभावीजी ने दीक्षा के अनुकूल ऐसा वातावरण तैयार कर लिया कि अनेक व्यक्तियों ने मातुश्री को दीक्षा के लिए स्वीकृति देने का अनुरोध किया। मातुश्री छोगांजी ने इस संबंध में सुना तो उन्होंने भी दीक्षा के लिए बल देकर निवेदन करवाया। फलतः वि.सं. १९९४ बीकानेर चातुर्मास में संपन्न इकतीस दीक्षाओं में मातुश्री वदनांजी की दीक्षा हो गई।

मातुश्री वदनांजी दीक्षित होकर बीदासर में जब मातुश्री छोगांजी से मिलीं तो उन्होंने उनका हृदय से स्वागत किया। वे उन्हें अपना साझीवाल कहकर पुकारतीं और वदनां-वदनां संबोधित कर प्रसन्न हो जातीं। चातुर्मास, महोत्सव तथा शेषकाल के समय जब कभी दोनों मातुश्री का सहवास होता, परस्पर सौहार्द का वातावरण खिल उठता।

दो आचार्यों की माताएं दीक्षित होकर एक साथ रहीं। यह तेरापंथ के इतिहास की नई घटना थी। दोनों मातुश्री की एकता विलक्षण थी। मातुश्री छोगांजी बीदासर स्थिरवासिनी थीं। उनका स्वर्गवास वि.सं. १९९७ में हुआ। मातुश्री वदनांजी का स्थिरवास भी बीदासर में हुआ, यह भी उनके एकत्व की एक कड़ी है।

६८. शुक्ल पक्ष की द्वितीया को आकाश में नए चंद्रमा का उदय होता है। द्वितीया के चंद्रमा को हिंदू और मुस्लिम दोनों देखते हैं, महत्त्व देते हैं तथा उसे शुभ और मंगलरूप में मानते हैं। इस परंपरा के पीछे रहस्य क्या है, वह शोध का विषय है। पर यह परंपरा है बहुत प्राचीन।

आचार्यश्री कालूगणी का जन्म फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को हुआ। इसलिए नवोदित चंद्रमा की कल्पना कर संसार सहज ही उनके प्रति नतमस्तक होता रहा।

६९. आचार्यश्री कालूगणी ने अपने जीवन में तीन आचार्यों का सान्निध्य उपलब्ध किया। मघवागणी की सन्निधि में आप पांच साल रहे, माणकगणी के नेतृत्व में साढ़े चार साल रहे और डालगणी की अनुशासना में साढ़े ग्यारह साल रहे।

तीनों आचार्यों की अनुशासना में आचार्यश्री कालूगणी एक शासित व्यक्ति की हैसियत से रहे थे, फिर भी अपने-आप में इतने लीन थे कि उनको निकटता से देखनेवाले कहते—'ये तो राजा भोज हैं।'

कालूगणी के संबंध में यह भी कहा जाता है कि उनकी जन्मकुण्डली में

कोई विशिष्ट योग था। उसे देखकर एक प्रबुद्ध ज्योतिषी ने बताया—'यह कुण्डली जिस व्यक्ति की है, उसके ऊपर बारह बरस से अधिक कोई मालिक नहीं रह सकेगा और एक दिन वह स्वयं अधिकारी बन जाएगा।'

उस समय ज्योतिषी की बात पर किसी ने विश्वास किया या नहीं, पर आगे जाकर वह सही रूप में प्रमाणित हो गई।

७०. आचार्यश्री कालूगणी के समय हुई दीक्षाओं का यंत्र—

कुल दीक्षा		अविवाहित		विवाहित युगल		स्त्री-पति छोड़कर		स्त्री-पति वियोग		गण बाहर	
संत	सतियां	संत	सतियां	संत	सतियां	संत	सतियां	संत	सतियां	संत	सतियां
१५५	२५५	१०६	८५	२२	२२	३	२५	२४	१२३	३५	१
४१०		१९१		४४		२८		१४७		३६	

७१. राजगृह में एक सार्थवाह था। उसके चार पुत्र और चार पुत्रवधुएं थीं। पुत्रवधुओं के नाम थे—उज्झिता, भोगवती, रक्षिता और रोहिणी। सार्थवाह वृद्ध हुआ। उसने घर की जिम्मेदारी संभलाने के लिए बहुओं का परीक्षण करना चाहा।

सार्थवाह ने एक विशाल भोज आमंत्रित किया। भोज के बाद परिजनों के समक्ष चारों बहुओं को पांच-पांच दाने चावल के दिए और कहा—जब मैं मांगूं, तब लौटा देना।' बड़ी बहू ने चावल के दाने फेंक दिए। दूसरी ने ससुरजी का प्रसाद मानकर खा लिए। तीसरी ने एक डिबिया में उनको सुरक्षित रखा और चौथी ने अपने पीहरवालों के पास भेजकर उन पांच दानों की अलग से खेती करने को कह दिया।

एक-एक कर पांच वर्ष व्यतीत हो गए। सार्थवाह ने पुनः प्रीतिभोज बुलाकर बहुओं से चावल मांगे। बड़ी बहू ने कोष्ठागार से चावल के पांच दाने लाकर दिए। ससुर ने पूछा—'क्या ये वे ही चावल हैं?' वह बोली—'उनको मैंने फेंक दिया था, ये दूसरे हैं। दूसरी बहू ने कहा—'उन चावलों को मैंने आपका प्रसाद मानकर खा लिया, दूसरे दाने तैयार हैं।' तीसरी ने अपनी डिबिया खोलकर ससुर को मूल के चावल सौंप दिए। अब छोटी बहू की बारी थी। वह बोली—'ससुरजी! आपके दिए हुए पांच चावल पांच वर्षों में बहुत बढ़ गए। उनके लिए कुछ वाहनों की व्यवस्था कीजिए।'

बहू के पीहर से चावल आ गए। सार्थवाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी सबसे छोटी बहू रोहिणी को घर की पूरी जिम्मेदारी सौंपी। तीसरी बहू रक्षिता

को तिजोरी की चाबियां सौंपकर सुरक्षा का भार दिया। दूसरी बहू भोगवती को रसोईघर की व्यवस्था संभलाई और बड़ी बहू उज्झिता को घर की सफाई का काम सौंपा। योग्यता के अनुसार कार्य का विभाजन देखकर आगंतुक लोगों ने सार्थवाह की मुक्तकंठ से प्रशंसा की।

पूज्य कालूगणी ने भी रक्षिता और रोहिणी की भांति धर्मसंघ की प्रगति में अपना योगदान दिया।

७२. आचार्यश्री तुलसी ने अपने बचपन में लोगों के मुंह से सुना—'अपने धर्मसंघ के संबंध में किंवदंती चली आ रही है कि इसके आठवें आचार्य विलक्षण होंगे।' किसी अन्य व्यक्ति ने कहा—'किंवदंती क्यों? स्वयं स्वामीजी ने स्वप्न में इस तथ्य का संकेत दिया है।' एक अन्य व्यक्ति बोला—'जयाचार्य को एक स्वप्न आया, उसमें भी इस बात का आभास मिलता है।' एक भाई बोला—'स्वप्न और किंवदंतियों की बात छोड़ो। मैं एक ठोस प्रमाण देता हूं। बीदासर के नगराजजी बैंगानी को देवता का इष्ट था। जिस दिन कालूगणी का जन्म हुआ उसी दिन उन्होंने व्याख्यान में जयाचार्य एवं युवाचार्यश्री मघवा से यह निवेदन कर दिया था कि आज तेरापंथ के एक प्रभावक आचार्य का जन्म हुआ है और वह स्थान यहां से चार कोस के अंदर-अंदर है।'

आचार्यश्री ने अपने काव्य में उक्त तथ्यों का उद्धरण देते हुए लिखा है कि इन किंवदंतियों में कितना तथ्य है, मैं नहीं जानता। पर आठवें आचार्यश्री कालूगणी का प्रभाव अनिर्वचनीय रहा, यह हमने प्रत्यक्ष देखा है और अनुभव किया है।

७३. मुनि चौथमलजी ने शकुन के फल में संदेह उपस्थित करते हुए एक दिन आचार्यश्री कालूगणी से निवेदन किया—'गुरुदेव! पहले तो शकुन की बात बहुत मिलती थी, आजकल ऐसा नहीं होता है। क्या शकुन सारे निरर्थक हैं?' कालूगणी ने मुनि चौथमलजी के इस प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए कहा—'शकुन के फल होते थे और होते हैं, अतः हम उन्हें निरर्थक क्यों मानें? देखो, अभी हम जब लाडनूं गए थे तब फणधर काले नाग का शकुन हुआ था। उसके फलस्वरूप अकल्पित रूप से 'तुलसी' की दीक्षा हो गई। इससे बढ़कर उस शकुन का और क्या फल होता।

७४. आचार्यश्री भिक्षु एक नए धर्मसंघ के संस्थापक थे। उस समय उनके सामने मकान और भोजन की कठिनाई तो थी ही, अध्ययन के लिए पूरे शास्त्र भी उपलब्ध नहीं थे। भगवती सूत्र की प्रति प्राप्त करने के लिए स्वामीजी ने अथक

परिश्रम किया, किंतु वह नहीं मिल पाई। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वे गोगुंदा (मोटेगांव) पधारे। वहां के श्रावकों से आपको लगभग २३०० पन्नों की भगवती सूत्र की एक प्रति उपलब्ध हुई थी। कालूगणी के समय में संघ का पुस्तक भण्डार काफी समृद्ध हो गया। उस समय केवल भगवती सूत्र की बीसों प्रतियां प्राप्त थीं।

७५. भयंकर विरोध, संघर्ष और कठिनाइयों के बावजूद आचार्यश्री भिक्षु अपने संकल्प पर दृढ़ थे। उनकी सत्यनिष्ठा, सिद्धांतवादिता और संकल्पशक्ति ने लोगों का मन जीतना शुरू कर दिया।

एक दिन कुछ भाइयों ने निवेदन किया—'गुरुदेव, अमुक-अमुक क्षेत्रों में आपके प्रति अच्छी भावना है। आप वहां साधुओं को भेजें तो वे लोग तत्त्व समझ सकते हैं।'

आचार्य भिक्षु ने उक्त प्रसंग में कहा—'भाई! जंगल में चंदन के वन बहुत हैं। अच्छे कारीगर हों तो अच्छे-से-अच्छे कपाट, पट्ट आदि तैयार हो सकते हैं। काष्ठशिल्प विकसित हो सकता है, पर कारीगर (शिल्पकार) ही न हों तो क्या किया जाए? अभी हमारे पास साधु इतने कम हैं कि हम इतने क्षेत्रों की संभाल नहीं कर सकते।' आचार्यश्री भिक्षु ने जो कमी अनुभव की, आचार्यश्री कालूगणी के समय में उसकी पूर्ति हो गई। कालूगणी के शासन में संतों की संख्या के साथ सिंघाड़ों (दलों) की संख्या में भी वृद्धि हो गई।

७६. कालूगणी के युग में प्रथम बार सुदूर प्रदेशों की यात्रा करने वाले सन्तों का विवरण निम्नांकित सोरठों में पढ़ें—

१. शुभ संवत संभाल, उगणीसै सित्यासियै।
भेज्या पूज्य कृपाल, खानदेश घासी मुनी।।
२. विचरी देश बरार, मुगलाई मन म्हालतो।
बोलारम बाजार, नय्यासिय पावस कियो।।
३. बोम्बे शहर सुजाण, सूरजमल मुनि पाठव्यो।
नय्यासिय पहिचाण, कालू गुरु करुणा करी।
४. निब्बै विक्रम साल, सी. पी. जब्बलपुर लगे।
मुनिवर चंपालाल, नूतन नाम कमावियो।।
५. विक्रम बाणव साल, पूना में पहुंच्यो प्रवर।
कानमल्ल मुनि चाल, गुरु कालू आदेश स्यूं।।

७७. आचार्यश्री कालूगणी के समय में साधु-साध्वियों में हुई विशेष तपस्या का यंत्र—

नवमासी आछ के आगार से	छवमासी आछ के आगार से	साढ़े तीन मासी आछ के आगार से	दो मासी	५५ दिन	५४ दिन
साध्वी	सन्त	सन्त	सन्त साध्वियां	सन्त	सन्त
१	१	१	२ २	१	१
			४		

५३ दिन	५२ दिन	५१ दिन	डेढ़मासी ४४ से ४७ दिन	३२ से ४१ दिन	४७ दिन आछ के आगार से
साध्वी	सन्त	सन्त	सन्त साध्वियां	सन्त साध्वियां	सन्त
१	२	२	५ १	१६ १०	१
			६	२६	

मासखमण २७ से ३१ दिन	परिपाटी प्रथम, दूसरी, चौथी तथा दूसरी और तीसरी	चौथी परिपाटी	दो-दो मास संलेखना १५ दिन दो घण्टा अनशन	४१,४६ दिन सलेखना ३० दिन २ घण्टा अनशन	३७ दिन अनशन
सन्त सतियां	सन्त	साध्वियां	सन्त	साध्वियां	साध्वी
३६ २१	२	२	२	२	१
५७					

७८. वि. सं. १६७७ (ईस्वी सन १६२१) में केन्द्र सरकार ने जनसंख्या के आंकड़े तैयार करने का निर्देश दिया। जनसंख्या करने के लिए जो गणना-पत्र तैयार हुआ, उसमें धार्मिक दृष्टि से जैनधर्म को दो वर्गों में विभक्त किया—श्वेतांबर और दिगंबर। श्वेतांबर जैनों का वर्गीकरण दो कोष्ठकों में हुआ—मूर्तिपूजक और स्थानकवासी। तेरापंथ सम्प्रदाय में आस्थाशील लोगों के लिए अलग से कोई कोष्ठक नहीं था। इस बात की अवगति पाकर श्रीचन्दजी गधैया (सरदारशहर), केशरीचंदजी कोठारी (चूरू) तथा जनगणना से संबंधित दो अधिकारियों ने दिल्ली पहुंचकर केन्द्र सरकार को पूरी जानकारी दी। इसके लिए उन्हें काफी प्रयत्न करना पड़ा। इस

प्रयत्न के फलस्वरूप तेरापंथी जैनों के लिए एक अलग कोष्ठक रखने का निर्देश दिया गया।

७९. कालूगणी अपने शासनकाल में संस्कृत विद्या को विकसित रूप में देखना चाहते थे। संस्कृत का विकास उसके व्याकरण पर निर्भर है। संस्कृत भाषा का व्याकरण कुछ जटिल तो है पर दृढ़ संकल्प के सामने जटिलता स्वयं समाप्त हो जाती है।

कालूगणी संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करने वाले साधुओं से कहते—'व्याकरण का अध्ययन करना है तो 'घो. चि. पू. लि.' इन चार शब्दों को पकड़ लो।' इस संदर्भ में आप एक दोहा सिखाते—

खान पान चिंता तजै, निश्चय मांडै मरण।
घो. चि. पू. लि. करतो रहै, तब आवै व्याकरण।।

घो.—घोकना, कंठस्थ करना।

चि.—चितारना, प्रत्यावर्तन करना।

पू.—पूछना।

लि.—लिखना।

उपर्युक्त चार बातें नहीं आएंगी तो व्याकरण भी नहीं आएगा। कालूगणी ने स्वयं इन चार बिन्दुओं को पकड़ा तथा साधु-साध्वियों को भी इस ओर प्रेरित किया।

८०. न्यायशास्त्र के क्षेत्र में जैन न्याय का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। तेरापंथ संघ में न्याय के अध्ययन-अध्यापन का क्रम विशेष रूप से कालूगणी के समय से चला। आपने मुनि तुलसी को 'षड्दर्शन' कंठस्थ करने के बाद 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' के सूत्र याद करने का निर्देश दिया। उस समय कालूगणी के पास 'प्रमाणनय....' की एक ही प्रति थी। उसमें केवल सूत्र थे, जो आठ-नौ पत्रों में लिखे हुए थे। वह प्रति वर्षा से भीगी हुई थी और उसमें पानी के धब्बे भी थे।

मुनि तुलसी ने पहली बार किसी न्याय-ग्रंथ का नाम सुना। विषय नया था, फिर भी कालूगणी ने उसके प्रति इतनी अभिरुचि जाग्रत कर दी कि उन्होंने कुछ ही समय में सूत्र याद कर लिए। कालूगणी कई बार वे सूत्र सुनते और कहते—कहीं इसकी वृत्ति मिल जाए तो जरूर पढ़नी है।

कालूगणी के स्वर्गवास के कुछ वर्षों बाद आचार्यश्री तुलसी को अपने पुस्तक भण्डार से 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' की वृत्ति (रत्नाकरावतारिका) की एक पुरानी

प्रति मिली। उसे देखते ही आचार्यश्री के मन में एक अज्ञात आकर्षण जग गया। उन्होंने उसकी नई प्रति बनवाई। कालान्तर में तो उसकी मुद्रित पुस्तकें (रत्नाकरावतारिका एवं बृहद्वृत्ति स्याद्वादरत्नाकर) भी उपलब्ध हो गईं। इस उपलब्धि के बाद उसका अध्ययन किया, अध्यापन किया और तेरापंथ संघ के पाठ्यक्रम (योग्यतम द्वितीय वर्ष) में जोड़ दिया। अध्ययन-अध्यापन के क्रम से पता चला कि न्याय के क्षेत्र में विशद जानकारी पाने के लिए उक्त ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। आचार्यश्री कालूगणी उसका महत्त्व नहीं बताते तो सम्भवतः उसके प्रति सहज भाव से इतना आकर्षण नहीं होता।

८१. आचार्यश्री कालूगणी के मन में अपने धर्मसंघ में ज्ञान की गंगा को तीव्रता से बहा देने की इच्छा थी। इस इच्छा की पूर्ति के लिए वे समय-समय पर अपने भावी उत्तराधिकारी मुनि तुलसी को प्रेरित करते रहते थे। संस्कृत भाषा पढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने मुनि तुलसी को व्याकरण सिखाया। छंद विद्या में अवगाहन करने के लिए 'वृत्तरत्नाकर' याद करवाया। साहित्य की दृष्टि से काव्यानुशासन पढ़ने की प्रेरणा दी। प्राकृत भाषा में गति करने के लिए आठवां अध्याय सिखाया। आठवें अध्याय पर लिखी गई 'प्राकृतढूंढिका' का अध्ययन उसी पूर्व प्रेरणा से हुआ। ढूंढिका आठवें अध्याय की व्याख्या है, जिसके दो चरण छपे हुए हैं। शेष दो चरण हमारे पुस्तक भण्डार में हैं, जो संभवतः अभी तक अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हुए हैं।

'ज्ञान कंठां और दाम अंटां' इस जनश्रुति में कालूगणी का पूरा विश्वास था। इसलिए उणादि, गणरत्नमहोदधि, धातुपाठ, लिंगानुशासन, प्रबोधचन्द्रिका (व्याकरण) आदि न जाने कितने प्रकीर्ण ग्रंथ मुनि तुलसी को कंठस्थ करवाए। 'शान्तसुधारस' (जो कि उस समय पूरा उपलब्ध नहीं था) की कुछ गीतिकाएं याद करवाकर बार-बार सुनते और प्रसन्नता व्यक्त करते। बाद में जब वह पूरा उपलब्ध हुआ तो तेरापंथ धर्मसंघ में इसका विशेष प्रचलन हो गया। ज्ञानाराधना की इन दिशाओं का उद्घाटन पूज्य गुरुदेव कालूगणी की सूझबूझ और प्रेरणा का सुफल है तथा उद्घाटित दिशाओं में नए-नए उन्मेष लाने का सारा श्रेय आचार्यश्री तुलसी को है।

८२. आगम साहित्य के अनुशीलन से श्रीमज्जयाचार्य को कुछ विशेष दृष्टियां मिलीं। कालूगणी ने अपने युग में उन दृष्टियों को अधिक परिमार्जित कर लिया। वे बहुत बार कहते थे—आगमों का शब्दार्थ रटने मात्र से काम नहीं चलेगा, विशद जानकारी के लिए टीका साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। तुलनात्मक अध्ययन

की दिशा में भी उनकी अभिरुचि थी। किंतु पर्याप्त सामग्री उपलब्ध न होने से उस दिशा में गति नहीं हो सकी।

आगमों के आधुनिकतम संपादन का काम आचार्यश्री तुलसी के युग में शुरू हुआ, पर उसका बीजवपन कालूगणी द्वारा किया हुआ है। बीज को पल्लवित, पुष्पित और फलित करना बहुत बड़ी उपलब्धि है, किंतु इस उपलब्धि का स्रोत है बीजवपन करने की कला और क्षमता। कालूगणी के बीजवपन को आचार्यश्री तुलसी प्रशस्त मार्ग की उपलब्धि के रूप में स्वीकार करते हैं।

८३. आचार्यश्री कालूगणी समय-समय पर सन्तों का परीक्षण करते रहते थे। वे परीक्षण भी इस प्रकार करते कि सन्त हक्के-बक्के रह जाते। एक दिन प्रायः सभी सन्तों को बुलाकर आपने कहा—'असवारी' की राग सुनाओ।' इसकी पूरी पंक्ति है—'राणाजी! थांरी देखण द्यो असवारी'।

मुनि कुन्दनमलजी, चौथमलजी, सोहनलालजी (चूरू) आदि कई सन्त इस रागिनी से परिचित थे। उन्होंने राग सुनाई, पर कालूगणी की दृष्टि में वे उत्तीर्ण नहीं हुए। कई मुनियों की रागिनी सुन लेने के बाद उन्होंने मुनि तुलसी से कहा—'तुम सुनाओ।' मुनि तुलसी ने कुछ ही दिन पूर्व वह रागिनी कालूगणी से धारी थी। ग्रहणशीलता होने के कारण उन्होंने उस रागिनी में रचित एक पद्य उसी रूप में सुना दिया।

कालूगणी ने फरमाया—'यह ठीक गाता है। इस प्रकार गाना चाहिए।' कालूगणी की इस टिप्पणी पर संतों ने परस्पर कहा—'इन्हें कालूगणी स्वयं सिखाने वाले हैं। इनकी तुलना में हम कैसे आ सकते हैं।' ऐसे प्रसंगों पर संत यह अनुभव करने लगे थे कि मुनि तुलसी पर कालूगणी की विशेष कृपा है।

८४. एक दिन पश्चिम रात्रि में गुरु-वंदना के समय सब मुनि आचार्यश्री कालूगणी के उपपात में बैठे थे। व्याकरण का प्रसंग चल रहा था। कालूगणी ने कहा—'तुम लोग व्याकरण पढ़ते हो, पर कढ़ते कौन-कौन हो? मनन बिना व्याकरण व्याधिकरण बन जाता है।' परीक्षण की दृष्टि से आपने पूछा—'कुमारीमिच्छति, कुमारी इव आचरति इति 'कुमारी ना'—यहां कौन-सी विभक्ति है?'

बात कठिन तो नहीं थी, पर आचार्यश्री द्वारा पूछे जाने पर वह कठिन हो गई। संत विभक्ति खोजने में उलझ गए। 'कुमारी ना' यह तृतीया विभक्ति जैसा प्रतीत होता है, पर होनी नहीं चाहिए। क्योंकि कुमारी शब्द का तृतीय विभक्त्यन्त रूप कुमार्या बनता है। यह सोच संत मौन रहे। कालूगणी ने मुनि तुलसी का नाम लेकर कहा—'तुलसी! तुम बताओ। मुनि तुलसी ने तत्काल उत्तर दिया—'गुरुदेव!

इसमें प्रथमा विभक्ति है।' यह उत्तर सही था।

'कुमारी ना'—ये दो शब्द हैं। ना का अर्थ है पुरुष। कुमारी ना का विशेषण है। कुमारी को चाहने वाला या तदनुरूप आचरण करने वाला पुरुष 'कुमारी' ही कहलाता है। यहां इच्छा और आचरण अर्थ में जो क्यच् प्रत्यय हुआ उसका लोप होने से शब्द पूर्ववत रह गया।

८५. शीतकाल का समय था। लम्बी और ठिठुरन भरी रातों में भी बालमुनि नींद से तृप्त नहीं होते थे। कालूगणी की मंगलमय छत्रछाया और पूरी निश्चिन्तता, फिर गहरी नींद क्यों नहीं आए? मुनि तुलसी भी उस समय बाल मुनियों में थे।

मुनि शिवराजजी कालूगणी के अंग-परिचारक थे। कालूगणी के निर्देशानुसार वे प्रातः लगभग चार बजे मुनि तुलसी को नींद से जगा देते। मुनि शिवराजजी के पीठ फेरते ही मुनि तुलसी फिर से सो जाते और नींद आ जाती।

उधर कालूगणी पूछते—'अभी तक 'तुलसी' स्वाध्याय करने आया नहीं है, उसे जगाया नहीं क्या?' मुनि शिवराजजी पुनः वहां जाते और कहते—उठो, मेरे साथ चलो। उठाने पर भी उठते नहीं हो, इस बार मैं साथ लेकर जाऊंगा।'

कालूगणी के पास पहुंचने पर वे पूछते—'देरी से कैसे उठे?' मुनि तुलसी कहते—'मुझे उठाया नहीं (नींद में पता नहीं चलता)।' मुनि शिवराजजी कहते—'मैं इनको जगाकर आया था, जगकर भी ये वापस सो गए।' एक-दूसरे पर दोषारोपण के सिलसिले में कालूगणी स्वाध्याय का क्रम शुरू करते, फिर भी मुनि तुलसी की नींद नहीं टूटती। तब कालूगणी एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग करते। वे फरमाते—'तुलसी! बाहर जाओ, देखो आकाश में तारे कितने हैं? उनकी संख्या कर मुझे बताओ।' मुनि तुलसी तारों की संख्या करने के लिए घूमते, निद्रा टूटती और स्वाध्याय का क्रम शुरू हो जाता।

ऐसी घटना एक बार नहीं, अनेक बार घटित होती। इन घटनाओं की शृंखला वि. सं. १९९० तक चलती रही।

८६. तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्यश्री भिक्षु के समय में मुनि हेमराजजी हुए थे। मुनि हेमराजजी स्वयं अध्ययन-प्रिय मुनि थे और बाल साधुओं का अध्यापन भी करते थे। आचार्यश्री ऋषिरायजी के समय तक उनकी पौशाल चलती रही। उसका नाम था 'हैम पौशाल'। उसके छात्र थे—मुनि स्वरूपचन्दजी, जयाचार्य, मुनि सतीदासजी आदि। उनके बाद बाल साधुओं की पाठशाला चलाने का इतिहास आचार्यश्री कालूगणी के युग में फिर प्रारंभ हुआ।

कालूगणी ने वि.सं. १९८७ के आसपास कुछ शैक्ष मुनियों को मुनि तुलसी

को सौंपा। उन्होंने उन मुनियों को बड़ी कुशलता से सम्भाला। फलस्वरूप 'तुलसी पाठशाला' की नींव लग गई। उसके बाद दीक्षित होने वाले मुनियों में जो भी प्रतिभासम्पन्न और योग्य मुनि होते, उन्हें मुनि तुलसी को सौंप दिया जाता। यह क्रम तब तक बराबर चलता रहा, जब तक मुनि तुलसी के कंधों पर आचार्य पद का दायित्व नहीं आ गया।

'तुलसी पाठशाला' इतनी व्यवस्थित चली कि उसमें जितने विद्यार्थी रहे, उनकी प्रतिभा में निखार आता गया। इस पौशाल से निकलने वाले विद्यार्थी मुनियों में से कुछ नाम हैं—मुनि नथमलजी (आचार्य महाप्रज्ञ), मुनि बुद्धमलजी, मुनि दुलीचन्दजी, मुनि जंवरीमलजी आदि।

८७. वि. सं. १९९२ की बात है। एक दिन मुनि तुलसी आचार्यश्री कालूगणी की उपासना में बैठे थे। शिक्षा का प्रसंग चला तो उन्होंने निवेदन किया—'गुरुदेव! अपने यहां साध्वियों की दीक्षाएं काफी होने लगी हैं। साध्वियां प्रतिभासंपन्न और ग्रहणशील भी हैं, पर उनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। शिक्षा के अभाव में इस बढ़ती हुई संख्या का परिणाम अच्छा कैसे होगा?'

मुनि तुलसी ने निवेदन तो कर दिया, किंतु फिर उन्होंने अनुभव किया कि गुरुदेव को इस प्रकार निवेदन नहीं करना चाहिए था। मुनि तुलसी ने इस प्रसंग में कुछ भी सोचा हो, कालूगणी ने इसको बहुत गंभीरता से पकड़ा। अंतिम समय में अपने उत्तराधिकारी को धर्मसंघ की बागडोर सौंपकर उन्होंने सबसे पहले साध्वी-शिक्षा का काम हाथ में लेने का इंगित किया। मुनि तुलसी के निवेदन, कालूगणी के संकेत तथा फिर आचार्यश्री तुलसी के परिश्रम, प्रेरणा और प्रोत्साहन ने साध्वी-समाज में शिक्षा के अनेक नए आयाम उद्घाटित कर दिए।

८८. घटना वि.सं. १९७९ की है। आचार्यश्री कालूगणी उस समय बीकानेर प्रवास कर रहे थे। एक बार वहां पण्डित चन्द्रशेखरजी आचार्यश्री के दर्शन करने आए। वार्तालाप के सिलसिले में मुनि सोहनलालजी (चूरू) ने जिज्ञासा की—रघुवंश महाकाव्य में एक प्रयोग आता है—**'कथं द्वयेषामपि मेदिनीभृताम्'**। इस पद में 'द्वयेषां' का प्रयोग अशुद्ध नहीं है क्या?

पण्डितजी ने उक्त प्रश्न की पृष्ठभूमि में रहे जिज्ञासाभाव को गौण कर दिया और यह समझा कि ये जैन मुनि हमारे प्राचीन मनीषियों की कृतियों में दूषण निकाल रहे हैं। इस भ्रांत धारणा ने उनको उत्तेजित कर दिया। अब वे उस शब्द को सही प्रमाणित करने के लिए धाराप्रवाह संस्कृत में बोलते ही गए। उनकी उत्तेजना और भ्रांत धारणा को निराकृत करना आवश्यक था। पण्डितजी

की वागृशक्ति विलक्षण थी, पर उन्हें सही स्थिति की अवगति भी देनी थी। अतः कालूगणी बोले—'विद्वद्वर! हम आपकी विद्वत्ता का अंकन करते हैं। किंतु हम अधिक बोलने से किसी को पण्डित नहीं मानते और कम बोलने पर मूर्ख नहीं मानते। हमारे मुनि आपके काव्य में दोष नहीं निकाल रहे हैं, जानकारी की दृष्टि से पूछ रहे हैं।'

कालूगणी के ये शब्द सुनते ही पण्डितजी मौन हो गए। उन्हें अनावश्यक रूप में उत्पन्न अपने रोष पर पश्चात्ताप हुआ। दूसरे दिन वे फिर प्रवचन के समय उपस्थित हुए और कालूगणी की स्तुति में कुछ श्लोक बनाकर लाए। पण्डितजी ने श्लोक परिषद में पढ़कर सुनाए तथा पिछले दिन की घटना के लिए क्षमायाचना की। पण्डितजी द्वारा विरचित दो श्लोक यहां उद्धृत किए जा रहे हैं—

सायंतने गतदिने भवदीयशिष्यैः-
साकं विवादविषयेऽत्र यते! प्रवृत्ते।
यत्किंचिदल्पमपि जल्पितमस्तु कोष्णं,
क्षन्तव्यमेव भवतात्र कृपापरेण।।

विशदबोध - विशुद्धमतिप्रभा,
धवलिता ललिता वचनावलिः।
भगवतो मुखपद्मविनिःसृता,
सुमुदमातनुतेऽतनुतेजसः।।

८६. कालूगणी की परखने की क्षमता बड़ी विलक्षण थी। स्वभाव, योग्यता आदि के साथ वे बोली की परख भी बहुत जल्दी कर लेते। जब कभी संतों की दीक्षा होती, कालूगणी उनसे श्लोक आदि सुनते और फरमाते—'इसकी बोली गहगी है, इसकी लिपळी है, इसकी बरड़ी है और इसकी स्पष्ट है।' उनकी परख के अनुसार मुनि डूंगरमलजी (सरदारशहर) की बोळी बरड़ी थी। मुनि गणेशमलजी (गंगाशहर) की बोली लिपळी थी। मुनि नथमलजी, बुद्धमलजी आदि की बोली सतोली थी और मुनि चंपालालजी (लाडनूं) की बोली गहगी थी।

६०. मुनि भीमराजजी विद्यारसिक और श्रमशील मुनि थे। उनका उच्चारण बहुत शुद्ध और स्पष्ट था। वे बाल साधुओं को कुछ न कुछ सिखाते रहते थे। एक बार उन्होंने कुछ मुनियों को अन्वय सहित 'सिन्दूरप्रकर' सिखाया। कालूगणी को इस बात की अवगति मिली। उन्होंने सब संतों को बुलाकर उनसे 'सिंदूर-प्रकर' के श्लोक सुने। श्लोक सुनकर कालूगणी खुश हुए। उन्होंने सीखने वाले सब संतों

को पांच-पांच परिष्ठापन और मुनि भीमराजजी को इक्यावन परिष्ठापन का पुरस्कार देकर प्रोत्साहित किया।

६१. आचार्यश्री कालूगणी व्यक्ति-निर्माण की दृष्टि से कुशल शिल्पी थे। वे जिस व्यक्ति को योग्य समझते, उसमें किसी प्रकार की त्रुटि का आभास होता तो कड़ाई के साथ उसका प्रतिकार करते। कड़ाई के पीछे दृष्टिकोण एक ही था—गलती का सुधार।

घटना राजलदेसर के समीपस्थ किसी देहात की है। वहां गढ़ में कालूगणी विराज रहे थे। मुनि तुलसी आदि कई बालमुनि गुरुदेव के पास अध्ययन कर रहे थे। उस समय मुनि भीमराजजी चंदन मुनि (सरसा) को साथ लेकर कालूगणी के निकट आए और शिकायत के लहजे में बोले—'गुरुदेव! इसकी बुद्धि अच्छी है, यह अध्ययन कर सकता है। पर अपनी मनमानी अधिक करता है। कोई कुछ भी कहे, यह अपनी जिद्द नहीं छोड़ता।'

कालूगणी चन्दन मुनि में छिपे व्यक्तित्व को निखारना चाहते थे। उन्होंने उनको जिद्दी स्वभाव के लिए दण्ड कुछ भी नहीं दिया, पर उपालंभ इतना कठोर दिया कि पास में खड़े अन्य मुनि भी कांपने लगे। उपालंभ के साथ कालूगणी ने कहा—'यदि तुम जिद्द नहीं छोड़ोगे तो मैं तुझे अध्ययन के लिए कुछ नहीं कहूंगा।'

कालूगणी के इन शब्दों से जादू का-सा असर हुआ। अवस्था से बालक होने पर भी चंदन मुनि ने गुरुदेव की शिक्षा इतनी गंभीरता से ग्रहण की कि अपने जीवन का क्रम बदल लिया। गुरुदेव के कड़े उपालम्भ में निहित सुधार की भावना ने स्वभाव में कितना बड़ा परिवर्तन ला दिया, यह उल्लेखनीय है।

६२. मुनि कुंदनमलजी धुन के धनी और अध्ययनप्रिय व्यक्ति थे। अध्ययन में अभिरुचि होने पर भी वे इस दिशा में विकास नहीं कर पाए। क्योंकि वे सभी स्तरों के विद्यार्थी साधुओं के साथ पढ़ना-सीखना शुरू कर देते, पर उसमें स्थिर नहीं रहते। बुद्धि उनकी इतनी तीव्र थी कि एक दिन में सौ श्लोक याद कर लेते। पर जितनी तीव्रता से याद करते, उतनी ही शीघ्रता से भूल जाते। परिश्रम भी वे बहुत करते थे, पर अस्थिरता के कारण ठोस अध्ययन नहीं कर पाते।

कालूगणी उनकी इस वृत्ति से पूरे परिचित थे। वे जब कभी कोई नई चीज प्रारंभ करने कालूगणी के पास जाते, तो वे कहते—'प्रारंभ भले ही करो, पूरा होना कठिन है।' मुनि कुंदनमलजी कई बार कहते—'गुरुदेव! आप पहले ही फरमा देते हैं, इसलिए मेरा काम पूरा नहीं होता। आप कृपा कर इस बार तो ऐसा न फरमाएं।' कालूगणी कुछ कहते या नहीं, पर वे कौन-सा अध्ययन कर पाएंगे और कौन-सा

नहीं, इस परीक्षण में कभी विसंवाद नहीं होता।

९३. वि. सं. १९८३ में आचार्यश्री कालूगणी का चातुर्मास गंगाशहर था। उसी वर्ष उन्होंने मुनि गणेशमलजी, जीवनमलजी, हस्तीमलजी और मुलतानमलजी (ये चारों संसार-पक्ष में पिता-पुत्र थे) का एक नया दल बनाकर कालू, लूणकरणसर की तरफ विहार का निर्देश दिया। मुनि गणेशमलजी उधर पहुंचे। मुनि मुलतान-मलजी बालक साधु थे। वे चार-पांच साल कालूगणी की सन्निधि में रहकर गए थे। वहां उनका मन नहीं लगा। गुरुकुलवास की मधुर स्मृतियों ने उनको बेचैन कर दिया। कालूगणी को इस स्थिति की जानकारी मिली तो उन्होंने सब संतों को गंगाशहर बुला लिया और उस वर्ष वहीं आसपास रहने का आश्वासन देकर उन्हें समाधिस्थ कर दिया।

मुनि गणेशमलजी अच्छे खानदानी संत थे। उनका शरीर-संहनन बड़ा मजबूत था। वे किसी का हाथ पकड़ लेते तो उसे छुड़ाना कठिन हो जाता। धर्मसंघ के वे परम भक्त थे और कालूगणी के पूर्ण विश्वासी मुनियों में से थे। कालूगणी के समय में जब रिखिराम-लच्छीराम के साथ जिल्लाबंदी की संभावना से दयारामजी को वि.सं. १९९० में आचार्यश्री के दर्शन करने का आदेश हुआ, तब उन्हें मुनि गणेशमलजी के साथ आने का निर्देश मिला था। आखिरी वर्षों में वे खाटू स्थिरवासी रहे और समाधिपूर्वक आराधक पद प्राप्त किया।

इसी प्रकार मुनि केवलचन्दजी, धनराजजी और चन्दमनलजी (ये भी संसार पक्ष में पिता-पुत्र थे) को पड़िहारा भेजा गया। वहां मुनि चन्दनमलजी का मन नहीं लगा। वे दिनभर खिन्न रहे और गुरुकुलवास के सुखद प्रसंगों को याद कर उदास हो गए। कालूगणी को उनकी मनःस्थिति का पता चला तो उनको भी अत्यन्त वात्सल्य भाव से संभालकर मानसिक-स्थिरीकरण का पथ दिखलाया।

९४. बाल-मुनियों के जीवन-निर्माण की दृष्टि से कालूगणी सदा जागरूक रहते थे। उनका मधुर वात्सल्य निराशा में आशा का दीप जला देता और अन्तर-विरोध को विनोद में रूपांतरित कर देता। ऐसे एक नहीं, अनेक प्रसंग साधु-साध्वियों की स्मृति में हैं। यहां एक प्रसंग का उल्लेख किया जा रहा है।

घटना वि. सं. १९८० जयपुर-चातुर्मास की है। मुनि धनराजजी और मुनि चंदनमलजी उस समय नवदीक्षित मुनि थे। मुनि धनराजजी बड़े भाई थे, अतः वे मुनि चंदनमलजी को सिखाते थे। एक दिन वे 'अभिधानचिन्तामणि' कोश कंठस्थ कर रहे थे। प्रतिदिन के क्रमानुसार पहले मुनि धनराजजी श्लोक बोलते और उसके बाद मुनि चंदनमलजी। उस दिन मुनि चंदनमलजी मौन होकर बैठ गए। मुनि

धनराजजी ने कहा—तुम मौन क्यों बैठे हो? बोलो। मुनि चंदनमलजी बोले—'आप बोलते रहें, मुझे सुनते-सुनते याद हो जाएगा।'

मुनि धनराजजी—मुझे क्या गरज है, जो मैं तुम्हारे लिए रटन लगाता रहूं।

मुनि चंदनमलजी—आपको गरज नहीं है तो मुझे क्या गरज है, जो मैं आपके साथ बोलता रहूं। आपको जरूरत हो तो स्वयं रट-रटकर सिखाएं, अन्यथा मैं नहीं सीखूंगा।

दोनों मुनि बालक तो थे ही, अपनी-अपनी बात पर अड़ गए। बात कालूगणी तक पहुंची। उन्होंने दोनों मुनियों के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'न तो तुझे आवश्यकता है और न इसे। पर मुझे आवश्यकता है। मैं अपने बाल-साधुओं को अबोध नहीं रखना चाहता। अतः दोनों को ही कठिन परिश्रम कर सीखना होगा। तुम रटाओ और तुम रटो।'

९५. भीनासर प्रवास-काल में संवेगी संप्रदाय (पायचन्दिया गच्छ) के श्री पूज्यजी देवचन्दजी ने कालूगणी को अपने उपाश्रय में आने के लिए आग्रह भरा निवेदन किया। पंचमी समिति जाते समय कालूगणी वहां पधारे। प्रारंभिक शिष्टाचार के बाद थोड़ी देर और बात हुई। कालूगणी वहां से वापस पधारने लगे तो संवेगी मुनि लावण्यविजयजी ने संतों से पूछा—'कदागुरोकसो भवन्तः' आकस्मिक रूप से नई बात पूछे जाने पर मुनि विस्मित होकर सोचने लगे। तभी मुनि सोहनलालजी बोले—'कदा आगुः ओकसो भवन्तः (आप घर कब आए?)।' इस विलक्षण संधि-विच्छेद में सफलता देखकर पूछने वाले मुनि भी आश्चर्य में खो गए। उन्होंने कालूगणी की ओर संकेत कर कहा—'आप संतों को काफी अच्छे ढंग से तैयार कर रहे हैं।'

९६. आचार्यश्री कालूगणी के बीकानेर-प्रवास में मूर्तिपूजक संत कभी-कभी आचार्यश्री से मिलते रहते थे। एक बार मिलन-प्रसंग में एक मुनि ने संतों से पूछा—'कुमरीनव भूपस्य'—इस वाक्य में संधि क्या है? संधि काफी जटिल थी, फिर भी संत अपनी प्रतिभा को कसौटी पर कसने लगे। कुछ ही क्षणों में मुनि सोहनलालजी (चूरू) ने संधि-विच्छेद कर बताया—भूप! 'कुम् अव अरीन् स्य' (हे राजन्! पृथ्वी की रक्षा करो, शत्रुओं का अंत करो)। संधि और अर्थ दोनों ठीक थे।

इसके बाद तो ऐसी गुप्त संधि को खोजने और पूछने का सिलसिला ही चल पड़ा। इस सिलसिले में कुछ ऐसे पद्य भी जानकारी में आए, जिनकी जटिल सन्धियां बुद्धि के लिए अच्छा व्यायाम हैं। कुछ श्लोक यहां उल्लिखित किए जा रहे हैं। पाठक अपनी प्रतिभा की स्फुरणा के लिए उनके अर्थ और अन्वय में

अवगाहन करें–

१. राजन्! कमलपत्राक्षे करेणुः करणैर्विना।
लिखितं रक्तमसिना तत्ते भवतु चाक्षयम्।।

२. देवराजो मया दृष्टो वारिवाहस्य मस्तके।
भक्षयित्वार्कपत्राणि वनं पीत्वा वनं ययौ।।

३. माला स्वयंवरस्थाने कण्ठे रामस्य सीतया।
मुधा बुधा भ्रमन्त्यत्र प्रत्यक्षेऽपि क्रियापदे।।

४. एहि हे रमणि! पश्य कौतुकं धूलिधूसरतनुं दिगम्बरम्।
साऽपि तद् वदनपंकजं पपौ कर्मगुप्तमिति तद् विभाव्यताम्।।

६७. आचार्यश्री कालूगणी ने तेरापंथ धर्मसंघ में शिक्षा का विकास करने के लिए हर संभव उपाय काम में लिया। संस्कृत व्याकरण, शब्दकोश आदि कंठस्थ करना काफी कठिन काम था। किंतु कालूगणी ने नाममाला, चन्द्रिका आदि सीखने वालों के लिए हजारों गाथाओं (तेरापंथ संघ की कल्पित मुद्रा) के पुरस्कार का निर्धारण कर दिया। पुरस्कार के इस क्रम में मुनि तुलसी ने बीस हजार गाथाओं का पुरस्कार प्राप्त किया।

अध्ययन की प्रेरणा के साथ कालूगणी विद्यार्थी साधु-साध्वियों की योग्यता के आधार पर उनके स्तरों का भी निर्धारण कर देते थे। तीक्ष्णबुद्धि संतों को 'हैमी नाममाला' सीखने का निर्देश मिलता और मन्द बुद्धि मुनि शारदीया नाममाला सीखते।

उस समय साध्वियों का अंकन तीक्ष्णबुद्धि संतों के साथ नहीं था, इसलिए उन्हें भी शारदीया नाममाला के क्रम में रहना पड़ा। कालान्तर में साध्वियों ने 'हैमी नाममाला' सीखने की मांग की। आचार्यश्री तुलसी ने उनकी योग्यता का अंकन कर उसे सीखने का आदेश दे दिया।

६८ संस्कृत भाषा में गति करने के लिए संस्कृत व्याकरण का अध्ययन नितांत अपेक्षित है। कालूगणी अपने युग में संस्कृत की नई पौध को पल्लवित करना चाहते थे। इस कार्य में अध्ययन सामग्री और सहायक, दोनों का योग अपेक्षित था। पण्डित घनश्यामदासजी के बाद पण्डित रघुनन्दनजी का सुयोग सहायक की भूमिका के लिए सर्वथा अनुकूल था। पर अध्ययन सामग्री के लिए ग्रंथों का निर्धारण करना जरूरी था।

कालूगणी ने साधु-साध्वियों को अध्ययन करने के लिए 'सिद्धान्तकौमुदी' याद करने का निर्देश दिया। याद करना सहज था, पर प्रक्रिया जटिल होने से

उसे समझना कठिन था। इसलिए सारस्वत का पूर्वार्द्ध और चन्द्रिका का उत्तरार्द्ध, इस प्रकार दो संयुक्त व्याकरणों का क्रम प्रारंभ हुआ। वे दोनों व्याकरण अपूर्ण थे, अतः उनको भी स्थायित्व नहीं मिल पाया। उनके बाद हैमशब्दानुशासन का अध्ययन शुरू हुआ। वह व्याकरण पूर्ण था, पर उसकी प्रक्रिया न होने से नए विद्यार्थियों के लिए समस्या बन गया।

इस परिस्थिति में कालूगणी ने यह निर्णय किया कि उपलब्ध व्याकरणों में जो कमियां या जटिलताएं हैं, उन्हें ध्यान में रखकर एक नया व्याकरण तैयार कराना चाहिए। इसी बीच 'विशालशब्दानुशासन' नामक एक और व्याकरण उपलब्ध हो गया।

आचार्यश्री कालूगणी ने मुनिश्री चौथमलजी को नया व्याकरण तैयार करने का कार्यभार सौंपा। आचार्यश्री का निर्देश पाते ही मुनिश्री काम में जुट गए। कठिन परिश्रम, आंतरिक लगन और स्थिर अध्यवसायों के योग से 'भिक्षुशब्दानुशासन' नामक व्याकरण का उद्भव हुआ। पण्डित रघुनंदनजी ने इसकी बृहद्वृत्ति तैयार कर व्याकरण ग्रंथ को परिपूर्णता दी। इस ग्रंथ का सबसे पहले अध्ययन करने वाले थे—मुनि तुलसी और उनके सहपाठी मुनि। भिक्षुशब्दानुशासन में प्रवेश पाने के लिए एक प्रक्रियाग्रंथ की अपेक्षा अनुभव हुई तो मुनि चौथमलजी ने इस कार्य को भी तत्परता से पूरा कर दिया। कालुकौमुदी नामक प्रक्रिया को पढ़ने के बाद भिक्षुशब्दानुशासन के सूक्ष्म रहस्यों को ज्ञात करने में अधिक कठिनाई नहीं होती।

व्याकरण ग्रंथ के निर्माण में जितना समय लगा, उस अवधि में अध्ययनशील पचीसों साधु-साध्वियां व्याकरण पढ़े बिना रह गए। इस एक क्षति के बावजूद अपने संघ का एक व्याकरण तैयार हो गया, जो सरल और प्रशस्त होने के साथ-साथ व्यवस्थित भी है।

६६. तेरापंथ धर्मसंघ शिक्षा के साथ कला के क्षेत्र में भी एक उदाहरण है। आचार्यश्री भिक्षु स्वयं कलाप्रेमी थे, पर उस समय उन्हें संघ की मर्यादाओं को समझाने और व्यवस्थाओं को जमाने में पर्याप्त श्रम और समय का व्यय करना पड़ा। जयाचार्य के युग में कला को अभ्युदय का जो अवसर मिला, वह कालूगणी के समय तक विकास की ऊंचाइयों तक पहुंच गया। तेरापंथ धर्मसंघ की कुछ कलाकृतियां बेजोड़ हैं। इनमें रजोहरण-निर्माणकला, सिलाई, रंगाई, लिपिकला आदि उल्लेखनीय हैं। वैसे कला के क्षेत्र में अनेक साधु-साध्वियों ने अहमहमिकया गति की है, फिर भी कुछ कार्यों में साध्वियों की कला विशिष्ट है। कालूगणी के समय की कुछ कलाकार साध्वियों का नामोल्लेख यहां किया जा रहा है—

रजोहरण—साध्वी केसरजी (श्रीडूंगरगढ़), साध्वी केसरजी (रतनगढ़), साध्वी सुन्दरजी (लाडनूं)।

सिलाई—साध्वी संतोकांजी (लाडनूं), साध्वी भत्तूजी (सरदारशहर)।

रंगाई—साध्वी हीरांजी (नोहर), साध्वी सोनांजी (सरदारशहर)।

चित्रकला—साध्वी केसरजी (रीणी), साध्वी चिमनांजी (राजलदेसर)।

लिपिकला—साध्वी ज्ञानांजी (पीतास), साध्वी सोहनांजी (उदयपुर), साध्वी भीखांजी (बीदासर), साध्वी सुंदरजी (लाडनूं)।

साध्वीप्रमुखाश्री कानकुमारीजी ने आचार्यश्री कालूगणी के आचार्य पदारोहण के बाद प्रथम बार दर्शन किए, उस समय एक साथ तेरह रजोहरण भेंट किए थे।

साध्वीप्रमुखाश्री झमकूजी कला का जीता-जागता उदाहरण थीं। उनकी कुछ कलाएं तो आज दुर्लभ होती जा रही हैं।

१००. आचार्यश्री कालूगणी ने अपने समय में कुछ ऐसे साहसिक कदम उठाए, जो इतिहास के महत्त्वपूर्ण पृष्ठ बन गए। उनमें एक कदम है—आर्य-अनार्य क्षेत्रों के संबंध में नई स्थापना। वि. सं. १९८४-८५ साल की बात है। कालूगणी उन दिनों बीदासर विराज रहे थे। शीतकाल का समय था। मुर्शिदाबाद-निवासी मानसिंहजी (शहरवाली) आदि कई व्यक्ति गुरुदेव के दर्शन करने आए। मानसिंहजी ने एक प्रश्न उपस्थित करते हुए पूछा—गुरुदेव! यह आर्य-अनार्य क्षेत्र की परिभाषा कैसी है? जिन क्षेत्रों को शास्त्रों में अनार्य माना गया है, वे उपयुक्त प्रतीत होते हैं। इस स्थिति में हम आर्य और अनार्य का वर्गीकरण किस आधार पर करते हैं?'

कालूगणी ने इस परंपरा के आधारभूत ग्रंथ 'बृहत्कल्प' सूत्र का निरीक्षण किया। उसमें लिखा है—साधु-साध्वियों के लिए पूर्व में अंग-मगध तक, दक्षिण में कौशांबी तक, पश्चिम में थूणानगर तक और उत्तर में कुणाला देश तक जाने का कल्प (विधि) है। यह इतना ही कल्प है और इतना ही आर्यक्षेत्र है। इससे आगे जाना विहित नहीं है। इससे आगे जाने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र क्षीण हो जाते हैं।[1] इस आगम पाठ का अंतिम हिस्सा है—''तेण परं जत्थ नाणदंसण-

१. बृहत्कल्प सूत्र ३.१

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुरत्थिमेण जाव अंगमगहाओ एत्तए, पच्चत्थिमेण जाव थूणाविसयाओ एत्तए, दक्खिणेण जाव कोसम्बीओ एत्तए, उत्तरेण जाव कुणालाविसयाओ एत्तए, एयावयाव कप्पइ, एयावयाव आरिए खेत्ते, नो से कप्पइ एत्तो बाहिं, तेण परं जत्थ नाणदंसणचरित्ताइं उस्सप्पंति।

चरित्ताइं उस्सप्पंति''। बृहत्कल्प के टब्बे में उस्सप्पंति का अर्थ है—विनाश होना। कालूगणी ने मुनिश्री हेमराजजी आदि संतों से कहा—'उस्सप्पंति के सही अर्थ की खोज करो।' मुनि हेमराजजी आदि मुनियों ने परिश्रमपूर्वक अनेक ग्रंथों और शब्दकोशों का अवलोकन किया। उन्हें उस्सप्पंति का एक अर्थ मिला—'वृद्धिं प्राप्नुवन्ति'। इस अर्थ के उपलब्ध होते ही कालूगणी ने फरमाया—'इस संदर्भ में यह अर्थ बिलकुल ठीक बैठता है।' अर्थ की संगति बैठने पर भी वह अब तक की परंपरा से नया निर्णय होता। उससे ऊहापोह होना सम्भव था; फिर भी कालूगणी का मन निष्कंप था। उन्होंने एक बार टब्बे का अर्थ कटवा दिया, किंतु तत्काल फरमाया—हम अब इसी अर्थ को मानकर अपनी नीति का निर्धारण करेंगे, फिर भी किसी के द्वारा कृत अर्थ को उस पुस्तक से हमें नहीं काटना चाहिए।' इसके बाद टब्बे का मूल अर्थ पुनः ठीक करवाकर कालूगणी ने अपनी नई नीति की घोषणा कर दी।

इसके बाद साधु-साध्वियों के लिए विहार के नए क्षेत्र खुल गए। कालूगणी के इस साहसिक और दूरदर्शितापूर्ण निर्णय के संबंध में जिसने भी सुना, वह उनके प्रति विनत हो गया।

१०१. वि. सं. १९८५ में आचार्यश्री कालूगणी का चातुर्मास छापर था। भाद्रव शुक्ला पूर्णिमा को उनके पट्टारोहण समारोह का आयोजन था। आयोजन में कवि और गीतकार मुनि अपनी-अपनी भावांजलि के साथ उपस्थित हुए। मुनि चांदमलजी अपने समय के अच्छे कवि थे। उनकी कविताएं अच्छी होती थीं, पर वे बोलने की कला नहीं जानते थे। उस दिन अनेक साधुओं को समय मिला, किंतु मुनि चांदमलजी को नहीं मिल सका। इस बात का उनके मन पर प्रतिकूल असर हुआ। उन्होंने कालूगणी की स्तुति में जो पद्य लिखे, वे पन्ने फाड़ डाले। एक बार अवसर न मिलने से ऐसी निराशा नहीं होनी चाहिए थी, पर उन्होंने आवेश में आकर वह अनुचित काम कर लिया।

दूसरे दिन मुनि कानमलजी ने इस संबंध में कालूगणी से निवेदन किया। कालूगणी ने मुनि चांदमलजी को बुलाकर ऐसा करने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—'सबको मौका दिया गया, मुझे ही वंचित क्यों रखा गया?' कालूगणी ने फरमाया—'आपको कल समय नहीं मिला तो आज मिल जाता, पन्ने फाड़कर आपने अच्छा नहीं किया।'

मुनि कानमलजी उसी समय बोले, 'गुरुदेव! इन्होंने बड़ी मूर्खता की है।' मुनि चांदमलजी ने गुरुदेव से शिकायत करते हुए कहा कि मुनि कानमलजी क्या कह रहे हैं? कालूगणी ने सब संतों को याद किया और फरमाया—'कानमलजी

कहते हैं आपने मूर्खता की। अब सब संत कहेंगे—आपने महामूर्खता की।'

कालूगणी द्वारा उठाए गए इस कठोर कदम के पीछे मुनि चांदमलजी की अवहेलना का उद्देश्य नहीं था। कालूगणी का एक ही चिंतन था कि संघ में कोई गलत काम न हो। इसलिए वे हर बात पर सूक्ष्मता से ध्यान देते थे तथा संघ के वरिष्ठ और दीक्षाज्येष्ठ मुनियों की भूल पर भी कड़ा एक्शन लेकर सबको सजग कर देते थे।

१०२. बीदासर के पंचायती नोहरे में आचार्यश्री कालूगणी प्रवचन कर रहे थे। साध्वीप्रमुखाश्री कानकुमारीजी कारणवश पीछे रह गई थीं। वे चाड़वास से विहार कर बीदासर पहुंचीं। जब वे आचार्यश्री के दर्शन करने नोहरे में पहुंचीं तो प्रवचन-सभा में हलचल मच गई। साध्वीप्रमुखाश्री के स्वागत में लोग खड़े हो गए। हलचल होने से प्रवचन बीच में स्थगित करना पड़ा।

थोड़ी देर में हलचल शांत हो गई तो कालूगणी ने फरमाया—'अब तक हमारे श्रावकों को यह भी ज्ञान नहीं है कि आचार्य के सान्निध्य में किसके साथ क्या व्यवहार होना चाहिए। कोई भी साधु-साध्वी किसी स्थान और पद पर हो, आचार्यों के सामने वह सब गौण है। आचार्यों के व्याख्यान में व्यवधान उपस्थित करना आचार्यों की आशातना है। श्रावकों का कर्तव्य है कि वे आनेवाले साधु-साध्वियों को विनयपूर्वक रास्ता दे दें, पर व्यवहार में अति न करें।

श्रावकों को अपने प्रमाद का अनुभव हुआ। उन्होंने भविष्य में सजग रहने की भावना व्यक्त कर आचार्यश्री से क्षमायाचना की। कालूगणी ने साध्वीप्रमुखाश्री कानकुमारीजी की ओर इंगित कर कहा—'इन्होंने अपनी ओर से भाई-बहनों को स्वागत में उठने से मनाही नहीं की, यह इनकी भूल है।' साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने विनयपूर्वक अपनी भूल स्वीकार की और उसके कारण आचार्यश्री को जो परिश्रम करना पड़ा उसके लिए अनुताप व्यक्त किया। यह घटना वि. सं. १९८४-८५ के आसपास की है।

१०३. सरदारशहर में कालूगणी सेठ संपतमलजी दूगड़ की धर्मशाला में प्रवास कर रहे थे। उस समय प्रवचन सुनने के लिए बाह्य उपकरणों की सुविधा नहीं थी, अतः पीछे बैठने वालों को अच्छी प्रकार सुनाई नहीं देता था। आचार्यों के प्रवचन सुनने का लोभ सभी को रहता था; इसलिए आगे बैठने हेतु दौड़ा-दौड़ होती रहती थी।

कालूगणी प्रवचन करने पधारे और नमस्कार मंत्र का पाठ किया। विधि के अनुसार नमस्कार मंत्र के पाठ के समय सब श्रावक-श्राविकाओं को अपने

स्थान पर खड़ा होना आवश्यक है। उस दिन धर्मशाला का प्रांगण खचाखच भरा था, पर प्रायः व्यक्ति खड़े नहीं हुए। खड़े न होने के पीछे उनका दृष्टिकोण था—उनके बैठने के स्थान में कोई दूसरा आकर न घुस जाए।

कालूगणी ने प्रवचन-सभा का दृश्य देखा, लोगों की मनःस्थिति को परखा और नमस्कार महामंत्र का पाठ पूरा कर दिया। प्रवचन प्रारंभ करने से पूर्व उन्होंने श्रावक समाज को लक्षित कर फरमाया—'नमस्कार मंत्र का उच्चारण हो और श्रावक बैठे रहें, यह नई पद्धति कहां से आई है? हमारे श्रावकों में इतना भी शिष्टाचार नहीं रहा अथवा वे प्राचीन परंपराओं को भूल गए? प्राचीन पद्धति की अवहेलना संस्कृति की अवहेलना है। कहीं भी ऐसी पद्धतियों का अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।' सरदारशहर के श्रावक समाज को इस घटना से ऐसी प्रेरणा मिली कि उसके बाद वे कहीं भी होते, नवकार मंत्र का उच्चारण सुनकर बैठे नहीं रह सकते।

१०४. कालूगणी एक महान आचार्य थे। उनकी कृपा और मार्गदर्शन ने न जाने कैसे-कैसे व्यक्तियों को बुराई से बचाया है और जीवन की सही दिशा दी है। शिवजीरामजी और छोटूलालजी बैंगानी बीदासर के श्रावक थे। प्रारंभ से ही उनके जीवन का क्रम थोड़ा विचित्र-सा था। वाग्-संयम की बात तो उन्होंने सीखी ही नहीं थी और उनका स्वभाव भी नटखट था। वे व्यक्ति कालूगणी के निकट संपर्क के कारण सब प्रकार के व्यसनों से दूर रह गए। वे स्वयं बहुत बार कहते थे—'हम तो कालूगणी की कृपा से ही बचे हैं, अन्यथा पता नहीं कहां चले जाते।' महान व्यक्तियों का निकट सान्निध्य ही व्यक्ति को कहीं से कहीं पहुंचा देता है।

१०५. बीदासर में अगरचंदजी और गणेशजी यति तेरापंथ धर्मसंघ के खिलाफ अनर्गल बात करते रहते थे। उनकी जघन्य मनोवृत्ति कुछ श्रावकों को उत्तेजित कर देती और वे उनका मुकाबला करने के लिए उद्यत हो जाते। उस परिस्थिति में पहले आचार्यश्री डालगणी और बाद में कालूगणी ने श्रावकों पर पूरा नियंत्रण रखा, अन्यथा वातावरण में आए हुए उफान को शान्त कर पाना बहुत कठिन था।

घटना वि. सं. १९६४ की है। आचार्यश्री डालगणी पंचमी समिति पधार रहे थे। कई मुनि और श्रावक साथ में थे। यति अगरचन्दजी अपने उपाश्रय की भींत पर बैठे थे। वे बोले—'आगे मुर्दा जा रहा है और पीछे कंधा देने वाले जा रहे हैं। डालगणी के साथ चलनेवाले लोगों ने यह बात सुनी और उनका खून उबल उठा। वे यतिजी से भिड़ने के लिए कटिबद्ध हो गए। किन्तु डालगणी के दृष्टिकोण को समझ अपने आवेश को पी लिया।

आचार्यश्री डालगणी ने उस रात को लगभग दो बजे सब संतों को संबोधित कर कहा—'यतिजी ने जिस प्रकार के शब्द कहे हैं, अब बीदासर में चातुर्मास होना कठिन प्रतीत होता है।'

बीदासर-निवासी शोभाचंदजी बैंगानी उस समय वहीं सामायिक कर रहे थे। उन्होंने यह बात सुनी। प्रातःकाल बैंगानी, सिंघी, चोरड़िया आदि परिवारों के अनेक चिंतनशील व्यक्तियों ने परामर्श कर यह तय किया कि यतिजी अब बीदासर छोड़कर चले जाएं, तो अच्छा रहे। पर वे इसके लिए तैयार नहीं हुए। बीदासरवासियों ने चिन्तनपूर्वक उनका असहयोग करना शुरू कर दिया। इसके बाद यति अगरचंदजी उपाश्रय बन्द कर तेला (तीन दिन का उपवास) करके बैठ गए और बोले—'कोई भी यहां आएगा, उसे मैं अपने मंत्रबल से चिड़िया बना उड़ा दूंगा।'

बीदासर के श्रावकों ने सुजानगढ़ पहुंचकर नाजिम सीतारामजी व्यास को इस घटना के संबंध में पूरी जानकारी दी तथा वकील के द्वारा दरख्वास्त लिखाकर पुलिस सुपरिंटेंडेंट मीर साहब तक पहुंचा दी। मीर साहब दूसरे दिन आठ बजे बीदासर पहुंचे। वे यतिजी को उपाश्रय से निकालकर खूबचंदजी दूगड़ के नोहरे में ले गए और वहां लोगों से बयान लिए। छोटूलालजी और शिवजीरामजी बैंगाणी ने बयान दिया। डी. एस. पी. महोदय ने उनके बयान में सचाई की बात कही, तब अगरचन्दजी घबरा गए और बीदासर छोड़कर जाने के लिए तैयार हो गए। सरकारी अधिकारियों तथा समाज के वरिष्ठ श्रावकों की साक्षी से राजीनामा लिखवाकर उनको बीदासर से ग्यारह मील दूर सांडवा पहुंचा दिया गया।

दूसरी घटना वि. सं. १९६८ की है। उस समय आचार्यश्री कालूगणी बीदासर प्रवास कर रहे थे। यति गणेशजी आचार्यश्री के साथ धर्मचर्चा करने गए। धर्म-चर्चा में निरुत्तर होने के कारण वे पंचायती के नोहरे में कुछ बोल नहीं पाए, पर अपने उपाश्रय में पहुंचकर ऊटपटांग बोलने लगे। खींवकरणजी, जयचन्दलालजी, छोटूलालजी, शिवजीरामजी बैंगानी आदि कई श्रावक मुकाबला करने गए तो उन्होंने ऊपर चढ़कर कपाट बन्द कर लिया।

कालूगणी ने श्रावकों को समझाकर अपनी ओर से शांत रहने का निर्देश दिया। कालूगणी के निर्देशानुसार उन्होंने मुकाबले की बात छोड़ दी, किन्तु स्थानीय ओसवाल सभा ने एक निर्णय लिया कि कोई भी व्यक्ति उपाश्रय की सीढ़ियों पर पांव नहीं देगा। इस निर्णय से उत्तेजित होकर गणेशजी ने सुजानगढ़ पहुंचकर दावा कर दिया कि ये लोग मुझे मारने आए थे और हमारे पूजन में रखी हुई पचीस स्वर्ण मुद्राएं उठाकर ले गए। उस संदर्भ में हुलासमलजी, खींवकरणजी,

हणूतमलजी आदि भी सुजानगढ़ पहुंच गए और इस झूठे दावे से अपने बचाव की पैरवी करने लगे। सही और स्पष्ट स्थिति सामने आने पर गणेशजी को छह माह की सजा हुई। चार मास सजा भोगने के बाद उन्हें दो महीने की सजा माफ हुई। इस प्रकार के और भी अनेक प्रसंग हैं, जिनमें छोटूजी और शिवजी अनेक झंझटों में पड़ते-पड़ते बच गए।

एक बार बाजार में धर्म को लेकर झंझट खड़ा हो गया। छोटूजी उस समय कालूगणी की सेवा में सामायिक कर रहे थे। उन्हें जब घटनाचक्र की जानकारी मिली तो वे आपा खोकर बाहर जाने ही वाले थे कि कालूगणी ने संकेत दिया—'छोटूजी! सामायिक है।' फिर वे वहीं बैठ गए, पर उनके मन का आक्रोश कम नहीं हुआ। वे अपने साथी शिवजीरामजी को संबोधित कर बोले—'अरे सोजीड़ा! मेरे सामायिक है तो क्या हुआ? तेरे तो सामायिक नहीं है और मेरी इस लाठी के भी सामायिक नहीं है। बैठे-बैठे क्या देखते हो?'

इन घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है कि धर्मशासन के कट्टर भक्त होने पर भी वे लोग अत्यन्त उग्रवादी थे। समय-समय पर आचार्यों के मार्गदर्शन और प्रेरणा से वे अपनी उग्रता पर काबू पाते रहे, अन्यथा पता नहीं वे किस प्रवाह में बह जाते।

१०६. वि. सं. १९८८ में कालूगणी का चातुर्मास बीदासर था। उस समय कालूगणी के साथ पचीस संत थे। संतों ने पचरंगी तपस्या का निर्णय लिया। इस तपस्या में पचीस संतों को उपवास से पंचोले तक की तपस्या करनी थी, अतः सभी संतों को इसमें सम्मिलित होना आवश्यक था। मुनि सुखलालजी ने मुनि कुंदनमलजी से कहा—'आपको एक तेला करना होगा।' मुनि कुंदनमलजी बोले—'कालूगणी उपवास कराएंगे तो मैं भी करूंगा, अन्यथा तेला तो दूर मैं तो उपवास भी नहीं करूंगा।'

मुनि सुखलालजी ने विनयपूर्वक कहा—'मुनिश्री! आप साथ नहीं देंगे तो हमारी पचरंगी टूट जाएगी।' मुनि कुंदनमलजी ने दो टूक जवाब दिया—'कल टूटती आज ही टूटे, मुझसे तो कुछ नहीं होगा।'

मुनि सुखलालजी ने कालूगणी के पास पहुंचकर अपनी समस्या रखी। कालूगणी ने मुनि कुंदनमलजी को बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा—'गुरुदेव! तेला करने की इच्छा नहीं है।' कालूगणी ने फरमाया—'क्या इच्छा नहीं है। थोड़ा उत्साह रखो।' कालूगणी का इंगित मिलते ही उनका मन बदल गया और बोले—'गुरुदेव! तेला पचखा दीजिए।'

तीन दिन पूरे हुए। तपस्या का पारणा करने का प्रसंग आया तो मुनि

कुंदनमलजी बोले—'सुखलालजी! तेला तो ठीक ही हो गया, चोला कर लूं।' चोले से पंचोला, छह, सात, संख्या का क्रम बढ़ता ही गया। आखिर तेंतीस दिन की तपस्या के बाद उन्होंने पारणा किया। कालूगणी के एक इशारे ने तीन का तेंतीस कर दिया। यह गुरु के प्रति दृढ़ आस्था की निष्पत्ति है।

१०७. मुनि केवलचंदजी का जनम सरसा के नौलखा परिवार में हुआ। आर्थिक दृष्टि से संपन्न उनके परिवार का व्यावसायिक संबंध दार्जिलिंग से था। केवलचंदजी अपने दो पुत्रों (मुनि धनराजजी, मुनि चंदनमलजी) और एक पुत्री (साध्वी दीपांजी) के साथ संसार से विरक्त हो गए। वे चारों एक साथ दीक्षित होना चाहते थे, पर व्यापार संबंधी झंझट में विलंब की संभावना से उन्होंने अपनी पुत्री और पुत्रों को पहले दीक्षा की अनुमति दे दी। उनकी दीक्षा छह मास बाद में हुई। मुनि केवलचंदजी को दीक्षापर्याय में ज्येष्ठ रखने के लिए मुनि धनराजजी और चंदनमलजी की बड़ी दीक्षा छह मास बाद हुई।

प्रायः देखा जाता है कि पुत्र और पुत्री के साथ दीक्षित होने वाले माता-पिता अपने साधु-जीवन में भजन-भाव में अधिक रस लेते हैं। मुनि केवलचंदजी इसके अपवाद रहे। उन्होंने अपने जीवन में काफी तपस्या की और लेखनकार्य बहुत किया। इन्होंने लिपिकला का अभ्यास मुनि अमीचंदजी के पास किया था। वे सुबह से शाम तक लिखते रहते थे। मुनि तुलसी आदि कई संत उनके लेखन के सन्दर्भ में विनोद के लहजे में कहते—'केवल प्रेस चल रही है।'

मुनि केवलचंदजी धर्मसंघ और संघपति के प्रति गहरी निष्ठा रखते थे। धर्मसंघ और संघीय मर्यादा की अवहेलना उनसे सहन नहीं होती थी। धर्मसंघ की थोड़ी भी उतरती आलोचना करनेवालों को वे कड़ा जवाब देते थे। जीवन के सान्ध्यकाल में वे एक बीमारी से घिर गए। 'खंधक मुनि' के खाल उतारने की घटना हम पढ़ते और सुनते हैं। मुनि केवलचंदजी के भी बीमारी से पूरे शरीर की चमड़ी उतर गई। उस वेदना को उन्होंने समभाव से सहन किया। मुनि धनराजजी उस समय मुनि केवलचंदजी के साथ ही थे और मुनि चंदनमलजी अग्रगण्य के रूप में हिसार चातुर्मास बिता रहे थे। अस्वस्थ मुनि केवलचंदजी की सेवा करने के लिए वे चातुर्मास में ही हिसार से चलकर सिरसा पहुंचे। दोनों बंधु मुनि उनकी सेवा में विशेष रूप से संलग्न रहकर उन्हें मानसिक समाधि देते रहे। उनकी जीवन-यात्रा की संपन्नता सिरसा में ही हुई।

१०८. डालगणी ने अपने अंतिम समय में साध्वीप्रमुखाश्री जेठांजी के विषय में एक संकेत किया था। कालूगणी ने उस संकेत को गहराई से पकड़ लिया।

इसके फलस्वरूप आपने साध्वीप्रमुखा जेठांजी के साधना-काल तक मातुश्री छोगांजी और साध्वी कानकुमारीजी के पास उनसे कम साध्वियां रखीं। जब कभी प्रसंग आता, आप साध्वीप्रमुखा की विशेषताओं का उल्लेख करते। वृद्धावस्था के कारण जब साध्वीप्रमुखाश्रीजी राजलदेसर में स्थिरवासिनी हो गईं, तब भी शीतकाल में आप कई बार वहां पधार जाते और फरमाते—'जेठांजी में साध्वियों को परोटने की अच्छी क्षमता है। शीतकाल में इनके पास रहने की इच्छा होती है। क्योंकि यहां रहने से साध्वियों संबंधी मेरा भार हल्का हो जाता है।'

वास्तव में साध्वीप्रमुखाश्री जेठांजी का जीवन ऐसा ही था। उन्होंने संघ और संघपति के प्रति सर्वात्मना समर्पित रहकर शासन की सेवा की।

१०६. साध्वीप्रमुखाश्री झमकूजी अपने युग की विलक्षण साध्वी थीं। यद्यपि आपने पुस्तकीय शिक्षा नहीं पाई, फिर भी आपका अनुभव ज्ञान काफी प्रौढ़ था। लोगों को परोटने और उनके दिल को जीतने की बेजोड़ कला उनके पास थी। श्रावकों की वंदना नामोल्लेखपूर्वक स्वीकार कर वे अनुपम स्मरण-शक्ति का परिचय देती रहीं। हस्त-लाघव और कार्य-कुशलता के द्वारा उन्होंने कला के क्षेत्र में अनेक कीर्तिमान स्थापित किए थे। उनकी कला में नई स्फुरणा, सौष्ठव और सौन्दर्य का निखार था। पुस्तक और रजोहरण बांधने में भी उनकी कला विलक्षण थी। प्रत्येक कार्य के संपादन में वैसी कला अन्य साध्वियों में कम मिलती है।

आचार्यश्री कालूगणी की दृष्टि में उनकी कला का विशेष स्थान था। एक बार संतों की एक पात्री दूसरी पात्री के अंदर घुस गई। अनेक प्रयत्नों के बावजूद वह नहीं निकली। कालूगणी ने फरमाया—'झमकूजी को दो, वे निकाल देंगी।' उन्होंने कुछ ही समय में पात्री निकालकर दे दी। उनकी कलाप्रियता के और भी अनेक उदाहरण हैं।

११०. साध्वीश्री खूमांजी प्रारंभ से ही मातुश्री छोगांजी की सेवा में रहीं। अपनी सेवाभावना और कर्तव्य-परायणता के आधार पर उन्होंने कालूगणी का विश्वास प्राप्त कर लिया। कालूगणी साध्वी खूमांजी को मातुश्री छोगांजी की सेवा में रखकर निश्चिंत हो गए। उन्होंने सेवा के साथ लेखन कार्य में अच्छी अभिरुचि दिखाई। जयाचार्य कृत भगवती सूत्र की जोड़ का लेखन कर उन्होंने एक इतिहास का पुनरावर्तन कर दिया। इनसे पहले साध्वी-समाज में साध्वीप्रमुखाश्री गुलाबांजी ने भगवती की जोड़ लिखी थी। संतों में मुनि कालूजी (बड़ा) और मुनि कुन्दनमलजी ने भगवती की जोड़ लिखी।

१११. साध्वी प्रतापांजी और साध्वी हुलासांजी (सरदारशहर) ने भगवती सूत्र

का लेखन कर धर्मसंघ के पुस्तक भंडार को समृद्ध बनाया। साध्वी प्रतापांजी प्रारंभ में साध्वी मीरांजी के साथ रहीं। साध्वी मीरांजी पहले मातुश्री छोगांजी की सेवा में थीं। आचार्यश्री कालूगणी की उन पर पूरी कृपा थी। साध्वी मीरांजी के बाद साध्वी प्रतापांजी ने अग्रगण्य रूप में विहार किया। वे भीनासर में कई वर्षों तक स्थिरवासिनी रहीं। लंबे समय तक अस्वस्थ होने पर भी उन्होंने दृढ़ मनोबल और समभाव से वेदना सहन की।

साध्वी हुलासांजी संसार-पक्ष में श्रीचंदजी गधैया की पुत्रवधू थीं। धर्मसंघ में एक निष्ठाशील और सुशील साध्वी के रूप में उनकी प्रतिष्ठा रही। बड़े घर से संबंधित होने पर भी उनके मन में इस बात का कोई गर्व नहीं था। श्रावक समाज को संस्कारी बनाना उनका विशेष लक्ष्य था। अंतिम वर्षों में उन्होंने मोमासर स्थिरवास किया और वहां काफी अच्छा काम किया। अपनी लेखन अभिरुचि के आधार पर ही वे भगवती सूत्र का लेखन कार्य पूरा कर पाईं।

११२. साध्वी सोनांजी (सरदारशहर) संघ और संघपति के प्रति गहरी आस्था रखती थीं। उनका समर्पण भाव सहज था। वे पहले साध्वीप्रमुखा श्रीं जेठांजी के पास रहती थीं। वृद्धावस्था के कारण जब वे थली में स्थिरवासिनी हो गईं तब साध्वी सोनांजी को आचार्यश्री की सेवा में भेज दिया। साध्वी सोनांजी समुच्चय की गोचरी तथा तासक, पात्र आदि रंगने का कार्य अत्यंत उत्साह और प्रसन्नता से करती रहीं। अंतिम वर्षों में उन्होंने पड़िहारा में स्थिरवास किया। पड़िहारा की जनता में उनका अच्छा प्रभाव रहा। वहां के लोग अब भी कहते हैं कि साध्वी सोनांजी ने पड़िहारा को सोना कर दिया।

११३. साध्वीश्री अणचांजी हमारे धर्मसंघ की तपस्विनी साध्वी थीं। आचार्यश्री तुलसी ने षष्टिपूर्ति समारोह (सं. २०३१) के अवसर पर उनको 'दीर्घ तपस्विनी' के रूप में सम्मानित किया। साध्वीश्री अणचांजी के जीवन में तपस्या के अतिरिक्त भी कुछ ऐसी विशेषताएं थीं, जिनके कारण धर्मसंघ में उनका विशेष स्थान बना। उन विशेषताओं में एक है कठिन काम करने का उत्साह।

एक बार ब्यावर में एक साध्वी बीमार हो गई। उन्हें सुजानगढ़ लाना जरूरी था। साध्वी अणचांजी ने उनको कंधे पर बिठाकर सुजानगढ़ पहुंचा दिया। इस प्रकार कठिन-से-कठिन काम करने में वे सबसे आगे रहती थीं।

साध्वी प्यारांजी (मुनि मांगीलालजी की संसारपक्षीया माता) श्रीडूंगरगढ़ में थीं। उन्हें वहां से विहार कराना था, पर प्रकृतिगत वैचित्र्य के कारण वे वहां से विहार करना नहीं चाहती थीं। अनेक साधु-साध्वियां उन्हें समझाकर हार गईं, किंतु

वे अपनी बात पर अड़ी रहीं। आखिर साध्वी अणचांजी को वहां भेजा गया। उन्होंने जाते ही साध्वी प्यारांजी को विहार के लिए राजी कर लिया। ऐसी और भी अनेक घटनाएं हैं, जिनसे साध्वीश्री अणचांजी की विशेषताओं का अंकन किया जा सकता है। उनके संबंध में आचार्यश्री तुलसी द्वारा कथित दोहा—

अणचां! तें आछी करी, करणी शिव-सुख-काम।
मुदो न दीखै मांस रो, थांरै चलकै कोरी चाम।।

११४. आचार्यश्री कालूगणी कुशल व्याख्याता थे। वे अपने प्रतिपाद्य को घटनाओं और उदाहरणों को माध्यम से इतनी सशक्त अभिव्यक्ति देते थे कि श्रोताओं के अन्तश्चक्षु उद्घाटित हो जाते। ब्रह्मचर्य के संबंध में वीर्यरक्षा की दृष्टि से वे एक उदाहरण देते थे, जो इस प्रकार है—

एक व्यक्ति के पास तीन घड़े हैं—एक अखण्ड, एक ग्रीवा से फूटा हुआ तथा एक नीचे पैंदे से फूटा हुआ। वह तीनों को घी से भरता है। अखण्ड घड़ा ऊपर तक घी को धारण कर लेता है। उससे अधिक जो घी डाला जाता है, वह उसमें समाता नहीं है। ग्रीवा से फूटे हुए घड़े में ग्रीवा तक घी सुरक्षित रहता है उससे ऊपर का निकल जाता है। जो घड़ा नीचे से फूटा हुआ है, उसमें घी को धारण करने की क्षमता नहीं है। इसलिए जितना घी डाला जाता है, सारा का सारा निकल जाता है।

यह एक रूपक है। इसके द्वारा रूपायित है तीन प्रकार के व्यक्तियों की योग्यता। प्रथम अखण्ड घड़े की तुलना ब्रह्मचारी साधकों से की गई है। उनके शरीर में सातों धातुओं का उत्पादन और उपयोग उचित मात्रा में होता है। इस लिए उनका शरीररूपी घट भरा रहता है। कदाचित उत्पादन में मात्रा का अतिक्रमण होता है तो वीर्य की जो अतिरिक्त मात्रा होती है, उसका दुःस्वप्न आदि कारणों से क्षरण हो जाता है। इससे साधक का कोई खास नुकसान नहीं होता।

दूसरे वर्ग में वे गृहस्थ आते हैं, जो स्वदार संतोषी होते हैं। वे ग्रीवा से फूटे हुए घड़े के समान हैं। ऐसे घड़े में ग्रीवा तक घी सुरक्षित रहता है, उससे ऊपर का निकल जाता है। सीमित संभोग से जो वीर्य-क्षरण होता है, उसके कारण शरीर ऊर्जा से रिक्त नहीं होता। उसकी अधिक ऊर्जा सुरक्षित रहती है और थोड़ा नुकसान होता है। इस मध्यम मार्ग का आलंबन लेकर सामान्य गृहस्थ समाज द्वारा मान्यता प्राप्त नैतिक सीमा में आ जाते हैं।

तीसरे वर्ग में वे व्यक्ति आते हैं, जो प्रकृति-विरुद्ध आचरण करते हैं। अप्राकृतिक संभोग और व्यभिचार दुराचार की कोटि में गिने जाते हैं। ऐसे व्यक्ति

पैंदे से फूटे हुए घड़े की तुलना में आते हैं। पैंदे से फूटा हुआ घड़ा घी को धारण नहीं कर सकता, इसी प्रकार दुराचारी व्यक्ति वीर्य-धारण की क्षमता खो देते हैं। वे शरीर और मन दोनों ओर से अक्षम होकर सत्त्वहीन जीवन जीते हैं।

इस उदाहरण के माध्यम से कालूगणी अपने साधु-समाज और श्रावक-समाज को ब्रह्मचर्य-साधना के लिए सजग करते रहते थे।

११५. मनुष्य का मन चंचल होता है। जब तक साधना के द्वारा इस पर काबू नहीं कर लिया जाता है, यह भटकता रहता है। भटकन के क्षणों में मानसिक विकृति का उद्भव स्वाभाविक है। मानसिक विकार के समय व्यक्ति को अच्छा संपर्क मिल जाए तो वह पुनः संभल जाता है और गलत संपर्क से पतन की संभावनाएं प्रबल हो जाती हैं। सत्संग से टूटा हुआ मनोबल संध जाता है और मानसिक विकृति का भी निरसन हो जाता है। इस सन्दर्भ में आचार्यश्री कालूगणी एक कहानी सुनाते थे—

एक सेठ को व्यवसाय की दृष्टि से सुदूर प्रदेश जाना था। उस समय यातायात के शीघ्रगामी साधन उपलब्ध नहीं थे, इसलिए यात्रा में काफी समय लग जाता था। सेठानी सेठ के जाने का निर्णय सुन उदास हो गई। सेठ ने उसको जल्दी आने का आश्वासन देकर उससे स्वीकृति ले ली। सेठानी अकेली रहना नहीं चाहती थी, पर विवश थी। आखिर उसने अपने पति को विदा दी। विदा के समय सेठ ने अपनी पत्नी को शिक्षा देते हुए कहा—'मैं वहां का काम निपटाकर जल्दी आने का प्रयास करूंगा। फिर भी कुछ समय लग सकता है। तुम अपने कुलाचार का ध्यान रखना। किसी भी स्थिति में कुल-मर्यादा का अतिक्रमण मत करना। कदाचित तुम्हारा मन अस्थिर हो जाए तो किसी व्यक्ति को याद कर लेना। पर ध्यान रखना वह व्यक्ति ऐसा हो, जो शौच के लिए सबसे दूर जाता हो।'

सेठानी को सेठ का यह कथन अप्रिय लगा। वह बोली—'आप मेरा अविश्वास क्यों करते हैं? मेरा मन स्थिर है। मैं अपने जीवन में कभी ऐसा प्रसंग आने ही नहीं दूंगी।'

सेठ बोला—'मेरे मन में तुम्हारे प्रति किंचित भी अविश्वास नहीं है। पर पता नहीं कब क्या घटित हो जाए? इसलिए थोड़ा-सा संकेत मात्र किया है। और तो तुम स्वयं समझदार हो।'

सेठ अपने व्यावसायिक प्रदेश में पहुंचा और लंबे समय तक नहीं लौट सका। सेठानी सेठ की प्रतीक्षा में पलकें बिछाए बैठी थी, पर सेठ के आगमन की कोई सूचना नहीं मिली। आखिर एक समय आया, जब सेठानी का मन विचलित हो

गया। उस समय उसे अपने पति की शिक्षा याद आई। अब वह अपने मकान की छत पर चढ़कर शौच जाने वाले व्यक्तियों का निरीक्षण करने लगी। उसने देखा—एक व्यक्ति दूर, बहुत दूर जा रहा है। दो-चार दिन उसके बारे में पक्की जानकारी कर सेठानी ने उसे आमंत्रित करने का निर्णय ले लिया। वह व्यक्ति सेठानी के मकान के आगे से ही गुजरता था। एक दिन उसने अपने कर्मकर के साथ उसे ऊपर बुलाया। उस व्यक्ति ने सोचा—कोई काम होगा। वह सेठानी के कमरे में पहुंचा। उसके पहुंचते ही प्रारंभिक शिष्टाचार की बातों के बाद सेठानी ने अपनी मनःस्थिति के अनुरूप व्यवहार का प्रदर्शन किया। आगन्तुक एक बार चौंका और फिर कांप उठा। वह सेठानी के हाव-भाव को समझ गया था। अपने बचाव के लिए उसने एक उपाय सोचा। उस उपाय की क्रियान्विति के लिए उसने अपने हाथ में थामे हुए उस मिट्टी के बर्तन (करवा) को गिरा दिया, जिसे वह जंगल जाते समय पानी से भर कर ले जाता था।

मिट्टी का बर्तन गिरा और चूर-चूर हो गया। आगन्तुक उसे देख सिसकियां भरकर रोने लगा। सेठानी आश्चर्य में खो गई। मिट्टी का बर्तन टूटने पर इतना दुःख! उसने दुःख का कारण पूछा। आगंतुक आंसू पोंछते हुए बोला—'हे प्रभो! अब क्या होगा? मेरे जीवन भर की अर्जित इज्जत समाप्त हो जाएगी।' सेठानी की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। वह बोली—'आप चिंता क्यों करते हैं? जैसा चाहो वैसा 'करवा' अपने यहां से ले लीजिए। आप यह तो बताएं कि आपके मन में दुःख क्या है?'

आगंतुक सकुचाता और सहमता हुआ बोला—'यह करवा मेरे जीवन का साथी है। मैंने आज तक अपनी पत्नी और इस करवे के अतिरिक्त किसी के सामने अपनी काछ को अनावृत नहीं किया। अब मुझे दूसरा मिट्टी का बर्तन लेना पड़ेगा। बस यही सोचकर मैं व्यथित हो रहा हूं।'

सेठानी ने आगंतुक की यह बात सुन अपने आपको संभाल लिया। वह सोचने लगी—कहां यह सदाचारी व्यक्ति और कहां कुल-परंपरा को तोड़ने के लिए उद्यत मेरा मन? मैंने अपने कुत्सित विचारों से अपने जीवन में धब्बा लगा लिया। खैर, अब भी संभल जाऊं तो अच्छा है।

सेठानी का मन बदला और उसने आगंतुक को पिता-तुल्य सम्मान देकर विदा किया। कुलीन व्यक्ति के संपर्क से असंतुलित मन भी संतुलित हो जाता है इसलिए ऐर-गैर व्यक्ति के संसर्ग से बचाव करना चाहिए।

११६. मंत्री मुनि कहा करते थे कि आचार्यश्री कालूगणी ने मुनि तुलसी

को अपना उत्तराधिकारी बनाया, यह उनका तात्कालिक निर्णय नहीं था। जब से बालक तुलसी संसार से विरक्त हुआ और कालूगणी के संपर्क में आया, तभी से कालूगणी की दृष्टि उस पर टिक गई थी। बालक तुलसी को दीक्षित कर कालूगणी एक प्रकार से निश्चिंत हो गए थे। मंत्री मुनि यह भी कहते थे कि कालूगणी ने कई संतों को तैयार करने के लिए प्रयत्न किया, पर सफलता नहीं मिली इसलिए उनका निश्चिंत होना स्वाभाविक था।

आचार्यश्री तुलसी पर कालूगणी का ध्यान केन्द्रित हुआ, इस तथ्य का प्रबल साक्ष्य है आचार्यश्री पर उनका उत्तरोत्तर विकासमान वात्सल्य। उनके अनेक व्यवहारों के आधार पर साधु-साध्वियों और श्रावक समाज में भी आचार्यश्री तुलसी के भावी जीवन की संभावनाएं होने लगी थीं।

११७. वि.सं. १९८३ में कालूगणी का चातुर्मास गंगाशहर था। वहां उनका प्रवास आसकरणजी चौपड़ा के मकान में था। किंतु व्याख्यान देने के लिए ईशरचंदजी चौपड़ा की कोटड़ी में पधारना होता था। रात्रिकालीन प्रवचन का भी यही क्रम था। कालूगणी व्याख्यान देकर पुनः लौट आते तब उनके शयनपट्ट और बिछौने की व्यवस्था होती थी। यह काम मुनि शिवराजजी के हाथ में था।

एक रात की घटना है। मुनि शिवराजजी अपने कार्य में व्यस्त थे। कमरे में गहरा अंधेरा था। कालूगणी वहीं टहलकदमी कर रहे थे और मुनि तुलसी उनको हस्तावलम्बन दिए हुए थे। मुनि शिवराजजी ने मुनि तुलसी को बीच में खड़ा देखकर कहा—बीच में क्यों खड़े हो? आचार्यश्री तुलसी उन्हें कुछ उत्तर दें, उससे पहले ही आचार्यश्री कालूगणी बोले—शिवराजजी! ऐसे कैसे बोलते हो? देखते नहीं, इस पर मेरा हाथ है। मुनि शिवराजजी ने विनम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार की। वहां उपस्थित संतों ने 'इस पर मेरा हाथ है' इस वाक्य से झलकते हुए श्लेषालंकार के दर्पण में मुनि तुलसी के समुज्ज्वल भविष्य को देखा।

११८. मध्याह्न का समय था। शैक्ष मुनि तुलसी पंचमी समिति जा रहे थे। संयत देह, युगप्रमित भूमि का पर्यवेक्षण करती हुई झुकी पलकें, तीव्र किन्तु सधी हुई गति। मार्ग में सरदारशहर के वरिष्ठ श्रावक श्रीचन्दजी गधैया मिले। उन्होंने शैक्ष मुनि को वंदन किया और किया समालोचनात्मक निरीक्षण। अपने मन पर एक गहरी छाप लेकर वे आचार्यश्री कालूगणी के पास पहुंचे और बोले—गुरुदेव! आज बालमुनि मुझे रास्ते में मिले। उन्हें जाने की जल्दी थी, फिर भी वे ईर्या समिति में पूर्ण सजग थे। मैंने अनुभव किया कि ये मुनि स्थिरयोगी और होनहार हैं। यह घटना वि. सं. १९८३, गंगाशहर चातुर्मास की है। 'होनहार बिरवान के

होत चीकने पात'—इस जनश्रुति को मुनि तुलसी ने चरितार्थ कर दिया।

११९. घटना वि. सं. १९९० की है। उन दिनों आचार्यश्री कालूगणी जोधपुर यात्रा से पूर्व लाडनूं प्रवास कर रहे थे। वहां सरदारशहर-निवासी वृद्धिचंदजी गधैया गुरुदेव की उपासना में आए हुए थे। उन्होंने व्यक्तिगत उपासना के लिए समय लिया और निवेदन किया—'गुरुदेव! मुझे अपने दिवंगत पिताश्री श्रीचंदजी का दरसाव हुआ। मैंने उनसे कई बातें पूछीं। उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया और कुछ बातें अपनी ओर से भी कहीं। मैं कुछ तथ्यों से गुरुदेव को अवगत करना चाहता हूं। गधैयाजी द्वारा निवेदित तीन बातें—

● सबसे पहली बात उन्होंने कही—उनके पीछे हमने जो उछाल की, वह ठीक नहीं हुआ। ऐसा नहीं होना चाहिए था।

● मेरे एक व्यक्तिगत प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—ब्रह्मचर्य की साधना कठिन अवश्य है, पर तू इसे अच्छी तरह निभा सकेगा।

● शासन-संबंधी मेरी एक जिज्ञासा के समाधान में उन्होंने कहा—अभी कालूगणी कुछ समय तक धर्मसंघ की सार-संभाल करेंगे, फिर इनके बाद मुनि तुलसीरामजी आचार्य बनेंगे।

कालूगणी ने इन सब बातों को ध्यान से सुन लिया, कहा कुछ नहीं। एक मुनि को किसी प्रकार यह जानकारी मिल गई। वे सीधे मुनि तुलसी के पास गए और बोले—'तुम्हें पता है क्या? आज वृद्धिचंदजी ने तुम्हारे संबंध में यह बात निवेदन की है।' मुनि तुलसी ने अन्यमनस्क भाव से कहा—'मैं इन सब बातों को अधिक महत्त्व नहीं देता। आपको भी नहीं देना चाहिए। अपने को इस संबंध में जानने-समझने का प्रयोजन ही क्या है?'

जिस स्थिति की जानकारी पाकर सामान्य व्यक्ति बहुत बड़ा दर्प कर सकता है, उस स्थिति में मुनि तुलसी अहम् और उत्कर्ष भाव से सर्वथा मुक्त सामान्य मनःस्थिति में रहे, यह उनके व्यक्तित्व की गंभीरता के अनुरूप ही था।

१२०. मुनि जीवन का प्रथम वर्ष, अध्ययन-अध्यापन की सहज अभिरुचि और कालूगणी का वात्सल्य तथा प्रोत्साहन। मुनि तुलसी चारित्र की आराधना के साथ ज्ञान की दिशा में भी आगे बढ़ रहे थे। कालूगणी ने बाल मुनियों को निर्देश दिया—'सिन्दूरप्रकर' याद करना है। बालमुनियों ने रत्नाधिक संतों से 'सिन्दूरप्रकर' की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त कर लीं।

मध्याह्न के समय बाल मुनि आचार्यश्री के उपपात में उपस्थित हुए। प्रायः सब संतों के पास प्रतियां थीं, पर मुनि तुलसी खाली हाथ थे। कालूगणी ने अपने

पूठे से 'सिन्दूरप्रकर' की एक शुद्ध और सुंदर प्रति मुनि तुलसी के हाथों में थमा दी। गुरुदेव की इस निष्कारण करुणा ने मुनि तुलसी को अभिभूत कर दिया।

१२१. आचार्यश्री कालूगणी ने मुनि तुलसी को दीक्षित कर निश्चिंतता का अनुभव किया। वे अपने और अपने भावी उत्तराधिकारी के बीच इतना तादात्म्य स्थापित कर चुके थे कि कहीं अलगाव की अनुभूति होती ही नहीं थी। अनेक घटनाएं इस तथ्य को पुष्ट करने वाली हैं। यहां केवल एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है—

मुनि तुलसी को अध्ययन की दृष्टि से कोई प्रति लिखने की अपेक्षा होती तब वे आचार्यश्री कालूगणी से निवेदन करते—'मैं अमुक ग्रंथ की प्रतिलिपि करना चाहता हूं।' कालूगणी फरमाते—तुलसी! तू नई प्रति लिखकर क्या करेगा? यह तो अपने पूठे में है।

अपनत्व और एकत्व की इस अभिव्यक्ति से मुनि तुलसी अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति में खो जाते।

१२२. आचार्यश्री कालूगणी सफल सृजनशील कलाकार थे। व्यक्ति-निर्माण की अनुपम कला उन्हें सहज प्राप्त थी। उनकी सृजन-क्षमता के सबल साक्ष्य बने मुनि तुलसी। उनको दीक्षित करने से पूर्व ही कालूगणी की दूरगामी दृष्टि उन पर टिक गई। दीक्षित करने के बाद उनकी छोटी-बड़ी हर प्रवृत्ति के प्रति कालूगणी पूरा ध्यान रखते थे।

सुजानगढ़ में मुनि तुलसी कालूगणी के साथ पंचमी-समिति गए। उस समय वहां बालू रेत के टीले बहुत थे। बचपन में टीलों पर चढ़ने-उतरने की रुचि स्वाभाविक होती है। मुनि तुलसी एक ऊंचे टीले से सीधे नीचे उतरे। टीले के नीचे हरियाली थी। गति के वेग से रेत हरियाली पर जाकर गिरी। कालूगणी ने फरमाया—'कैसे उतर रहे हो? नीचे हरियाली है।' मुनि तुलसी ने अपने आसपास देखा और कहा—'यहां हरियाली नहीं है।'

टीलों के बीच में बने रास्ते से लौटते समय कालूगणी उस टीले के नीचे पहुंचे और वहां प्ररोहित हरियाली की ओर संकेत कर मुनि तुलसी से बोले—'तू कह रहा था कि हरियाली नहीं है। देख तुम्हारे पांवों से कुचली हुई धूल कहां गिरी?' मुनि तुलसी की आंखें झुक गईं। कालूगणी ने मुनि तुलसी को पांच कल्याणक का दण्ड दिया। स्थान पर पहुंचकर मुनि तुलसी ने विनयपूर्वक अपनी भूल स्वीकार की और भविष्य में सजग रहने की भावना व्यक्त की। कालूगणी ने कृपा कर दंड माफ कर दिया। योगक्षेम का यह दायित्व आचार्य ही निभा पाते हैं। यह

घटना मुनि तुलसी के दीक्षित होते ही आठ-दस दिनों के बीच की है।

१२३. वि. सं. १९९२ में कालूगणी का चातुर्मास उदयपुर था। वहां दशहरे के दिन राणाजी की सवारी बड़ी धूमधाम से निकलती थी। कई साधु सवारी देखने के लिए उत्सुक थे। अपराह्न में जब वे पंचमी समिति गए तो सवारी देखने के लिए वहीं रुक गए। मुनि तुलसी भी उनके साथ थे। सवारी की झांकियों की शृंखला इतनी लंबी थी कि उन्हें देखते-देखते सूर्यास्त हो गया। सवारी देखकर आनेवाले साधु जब तक अपने स्थान पर पहुंचे, वंदना हो चुकी थी। कालूगणी उस समय प्रतिक्रमण में संलग्न थे। प्रतिक्रमण पूरा होने के बाद साधु गुरुदेव को वंदन करने गए। बिना पूछे सवारी देखने जाना और विलंब से पहुंचना, इसके लिए कालूगणी ने उपालंभ के साथ तेरह कल्याणक का दण्ड भी दिया। संतों को अपने प्रमाद का बोध हुआ और भविष्य में सजग रहने की प्रेरणा मिली।

मुनि तुलसी जब कालूगणी के पास अकेले रह गए, तब उन्होंने विशेष रूप से फरमाया—'इन सन्तों के साथ तुम क्यों रहे? तुमने यह असावधानी क्यों की?' यह ममता भरा उपालंभ मुनि तुलसी के लिए प्रकाश-स्तंभ बन गया।

१२४. आचार्यश्री कालूगणी श्रीडूंगरगढ़ प्रवास कर रहे थे। रात्रि के समय मंत्री मुनि श्री मगनलालजी, मुनि धनराजजी, मुनि चंदनमलजी, मुनि तुलसी आदि कुछ संत कालूगणी के पास बैठे थे। रात्रि के अंधकार में वहां थोड़ी दूरी पर प्रकाश दिखाई दे रहा था। समीपस्थ मुनि उस प्रकाश के संबंध में बात करने लगे। कोई उसे बिजली का प्रकाश बता रहे थे, कोई लालटेन का और कोई और कुछ।

कालूगणी ने फरमाया—'यह प्रकाश बिजली का नहीं, गली के नुक्कड़ पर लगी लालटेन का है।' यह बात सुन संतों ने एक बार 'तहत' कह दिया, किंतु समर्थन बिजली का करते रहे। मंत्री मुनि भी इस समर्थन में साथ थे। कालूगणी ने फिर फरमाया—'यह प्रकाश लालटेन का ही है।'

मुनि मगनलालजी 'तहत' कहकर मौन हो गए। पर विद्यार्थी साधुओं में से एक मुनि बाहर बरामदे में गया और प्रकाश के संबंध में पूरी जानकारी करके लौटा। उनके आते ही सब पूछने लगे—'वह प्रकाश किसका है?' मुनि ने लालटेन का प्रकाश बताकर उनकी उत्सुकता को समाहित किया।

कालूगणी ने संतों की इस वृत्ति पर टिप्पणी करते हुए कहा—'मैंने दो बार कह दिया कि यह प्रकाश लालटेन का ही है, फिर भी तुम्हारा आग्रह नहीं टूटा। आखिर वहां जाकर देखने से ही तुम्हें संतोष हुआ।' मंत्री मुनि की ओर संकेत

कर उन्होंने फरमाया—'ये तो बच्चे हैं, पर आप भी इनके साथ हो गए। मेरे द्वारा इतना स्पष्ट कहने के बाद भी आपने इनको बाहर जाकर देखने से रोका नहीं।

सब संतों के साथ मंत्री मुनि ने भी गुरुदेव के वचनों के प्रति हुई आशातना के लिए क्षमायाचना की।'

१२५. वल्कलचीरी प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का छोटा भाई था। उसका जन्म और लालन-पालन तापसों के आश्रम में हुआ। उसके पिता सोमचन्द्र ने उसके जन्म से कुछ समय पूर्व ही तापस-दीक्षा स्वीकार की थी। जन्म के कुछ समय बाद ही उसकी माता की मृत्यु हो गई। थोड़े दिन बाद उसकी धात्री मां भी काल-कवलित हो गई। उसके पश्चात आश्रम के ऋषि और ऋषिकुमार उसकी देखभाल करने लगे। वल्कल (छाल) का परिधान पहनने से वह वल्कलचीरी नाम से पहचाना जाने लगा।

वल्कलचीरी एक बहुत ही सहज और सरल बालक था। उसके व्यवहार आबादी में पले हुए बच्चों से भिन्न प्रकार के थे। एक बार वह कहीं जंगल में भटक गया। जंगल में उसे एक रथिक मिला। वह पोतन नामक उसी आश्रम की ओर जा रहा था, जहां वल्कलचीरी अनेक ऋषियों, तापसों और ऋषिकुमारों के साथ रहता था। उसने कुमार वल्कलचीरी को रथ में बिठा लिया।

रथ में उस रथिक की स्त्री भी बैठी थी। वल्कलचीरी ने उसको 'तात' इस संबोधन से संबोधित किया। रथिक की स्त्री ने कहा—'यह बच्चा ऐसे कैसे बोल रहा है?' रथिक ने उसको समझाया—'लगता है यह बच्चा स्त्री-विरहित आश्रम में पला है, इसलिए स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं समझता।' थोड़ी देर बाद वल्कलचीरी ने घोड़ों की ओर लक्ष्य करके पूछा—'ये हिरण इतने बड़े कैसे हैं?' (उसने आश्रम में हिरण के अतिरिक्त किसी पशु का नाम ही नहीं सुना था)। जब उसे खाने के लिए मोदक दिए गए तो वह बोला—'पोतन आश्रम के ऋषि कुमार मुझे ऐसे ही फल देते थे। (आश्रम में उसे खाने के लिए केवल फल ही मिलते थे)।

आश्रम के परिवेश में रहने के कारण उसे शहरी सभ्यता तथा अन्य किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। आश्रम में जो कुछ होता, वही उसके ज्ञान का विषय था। यही भद्र और सरल स्वभाव वाला वल्कलचीरी आगे जाकर प्रतिबुद्ध हुआ। केवलज्ञान प्राप्त कर उसने अपने पिता सोमचन्द्र और भाई प्रसन्नचन्द्र को धर्मोपदेश दिया तथा भगवान महावीर के पास पहुंच गया।

आचार्यश्री कालूगणी मुनि नथमलजी को वल्कलचीरी, बंगु, हाबू, शंभू आदि संबोधनों से संबोधित करते थे। इसका कारण यह था कि मुनि नथमलजी भी

एक छोटे से ग्राम 'टमकोर' में पले-पुसे थे। ग्रामीण परिवेश और सरल स्वभाव के कारण उनका रहन-सहन, संभाषण आदि प्रवृत्तियां अन्य मुनियों से असाधारण—भिन्न थीं। कालूगणी ने एक असाधारण बालक मुनि को असाधारण रूप से तैयार करने का लक्ष्य बनाया। 'तुलसी पाठशाला' में उनको प्रतिबोध मिला और आज वे अपनी साधना और प्रज्ञा के उत्तरोत्तर विकास से तेरापंथ-शासन की प्रभावना में योगभूत बन रहे हैं।

१२६. वि. सं. १९७९ में आचार्यश्री कालूगणी का चातुर्मास बीकानेर था। बीकानेर रियासत में तेरापंथ के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर विरोधी लोग उत्तेजित हो रहे थे। उनकी ओर से छापाबाजी, गालीगलौज और अन्य दूषित प्रवृत्तियों के साथ हत्या तक के षड्यंत्र बन रहे थे।

उस समय बीकानेर शहर से बाहर काफी दूर तक मिट्टी के बड़े-बड़े ढूह थे। आचार्यश्री कालूगणी पंचमी समिति के लिए उधर ही पधारते थे। षड्यंत्रकारियों को अपने षड्यंत्र का उपयोग करने के लिए वह स्थान उपयुक्त प्रतीत हुआ। उन्होंने एक व्यक्ति (मदारी खां) को प्रलोभन देकर वहां छिपा दिया। कालूगणी सदा की भांति वहां पहुंचे। जब वे अकेले रह गए तो एक व्यक्ति ओट से निकलकर उनके सामने आया। उसके हाथ में भरी हुई पिस्तौल थी।

उस व्यक्ति ने ज्योंही कालूगणी की ओर देखा, वह उनके व्यक्तित्व से अभिभूत हो गया। उसके हाथ से पिस्तौल छूटकर गिर पड़ी। उसके मन और मस्तिष्क में उथल-पुथल मच गई। वह रुआंसा होकर कालूगणी के निकट पहुंचा और चरणों में गिर पड़ा। कालूगणी ने अप्रत्याशित रूप से एक व्यक्ति को सामने देखकर पूछा—'क्यों भाई! क्या बात है?' वह बोला—'बात तो बहुत बड़ी थी, किंतु समय पर मेरी अक्ल ठिकाने आ गई। मैं एक दुष्कृत्य से बच गया। चांदी के चंद टुकड़ों के प्रलोभन में आप जैसे देवपुरुष को पिस्तौल का लक्ष्य बनाकर मैं अपना अहित नहीं करूंगा।'

कालूगणी ने विस्मित भाव से पूछा—'मुझे पिस्तौल का निशाना क्यों बनाना चाहते थे?' उस व्यक्ति ने समूचे षड्यंत्र का रहस्योद्घाटन करते हुए बताया कि अमुक-अमुक व्यक्तियों ने मुझे प्रलोभन देकर ऐसा जघन्य काम करने के लिए कहा, पर मेरा नसीब अच्छा था कि मैं समय पर संभल गया।' वह व्यक्ति क्षमायाचना कर लौट गया।

कालूगणी सामान्य मनःस्थिति से शहर में पधारे तथा सब संतों को सजग कर दिया कि कम-से-कम चातुर्मास संपन्न होने तक इस घटना के संबंध में किसी

गृहस्थ को कुछ भी न बताया जाए। धर्मसंघ के सौभाग्य और पूज्य गुरुदेव कालूगणी की उत्कृष्ट अहिंसा वृत्ति के प्रभाव से एक षड्यंत्र विफल हो गया। मदारी खां सदा के लिए गुरुदेव का भक्त हो गया। धर्म के इतिहास में एक काला पृष्ठ जुड़ता-जुड़ता कट गया।

१२७. वि. सं. १९८१, चूरू चातुर्मास में आचार्यश्री कालूगणी रायचंदजी सुराणा के कमरे में विराजते थे। रायचंदजी के यहां एक सरदार नाहरसिंह रहता था। उन्होंने नाहरसिंह को संतों की सेवा में नियुक्त कर दिया। संतों की सन्निधि पाकर वह भी प्रसन्न था।

नाहरसिंह अपने कर्तव्य के प्रति पूरा जागरूक था। कभी-कभी वह रात को प्रहरी का काम भी करता था। कालूगणी जिस कमरे में प्रवास करते थे, उसके पीछे सार्वजनिक मार्ग था। एक रात मुसलमानों के ताजिए ढोल-ढमक्कों के साथ उसी रास्ते से आ रहे थे। उस समय तक कालूगणी सो गए थे। नाहरसिंह मकान के नुक्कड़ पर जाकर खड़ा हो गया और बोला—'मेरे मालिक सो रहे हैं। ढोल-ढमक्कों से उनकी नींद में व्यवधान होगा, इसलिए मैं इधर से ताजिए नहीं जाने दूंगा।' सिक्ख होने के कारण उसके पास कृपाण थी। कृपाण हाथ में लेकर वह मुकाबले के लिए तैयार हो गया। ताजिए निकालनेवालों का रास्ता वही था और नाहरसिंह अपने मोर्चे पर डटकर खड़ा था।

कालूगणी की नींद टूटी। उन्हें जब स्थिति का पता लगा तो उन्होंने तत्काल रायचंदजी को याद कर नाहरसिंह को समझाने के लिए संकेत दिया। रायचन्दजी ने नाहरसिंह से कहा—'हमें किसी प्रकार का झमेला खड़ा नहीं करना है। गुरुदेव अभी जाग रहे हैं। तुम रास्ता छोड़ दो।' उस समय कालूगणी शांत रहने का संकेत नहीं देते तो स्थिति में कोई अवांछनीय मोड़ आ सकता था।

चूरू चातुर्मास के बाद नाहरसिंह प्रायः कालूगणी की सेवा में रहने लगा। वह खरा और स्यामखोर व्यक्ति था। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित था तथा पूरा स्वाभिमानी था। वह तीन दिन भूखा रहने के लिए तैयार था, पर किसी के आगे हाथ नहीं पसारता था। मांगने को वह पाप समझता था। उसके जीवन की एक विचित्र बात यह थी कि वह जब कभी घर जाता, बीमार हो जाता। गुरुदेव की सेवा में पहुंचते ही पुनः स्वस्थ हो जाता।

नाहरसिंह के संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि उसमें संग्रह की वृत्ति नहीं थी। एक बार कालूगणी ने उसको इस विषय में शिक्षा फरमाते हुए कहा था—'नाहरसिंह! साधुओं की सेवा में रहते हो तो पैसों का संग्रह करने की वृत्ति

मत रखना।' गुरुदेव की शिक्षा को उसने इतनी गंभीरता से स्वीकार किया कि अपने जीवन को तदनुरूप ढाल लिया। सेवा में रहने वाले अन्य कासीदों के लिए यह एक अनुकरणीय बात है।

१२८. मुनि पृथ्वीराजजी आचार्यों के कृपापात्र मुनि थे। जिस समय डालगणी का स्वर्गवास हुआ, उनका चातुर्मास देवगढ़ था। वहां एक भाई दीक्षा लेना चाहता था। उसके लिए देवरिया-निवासी जवाहरमलजी बोरदिया ने कालूगणी के दर्शन कर निवेदन किया—'कस्तूरचंदजी आछा दीक्षा लेने वाले हैं। आप कृपा कर मुनि श्री पृथ्वीराजजी को चातुर्मास के बाद उधर रहने का आदेश दिलाएं।' कालूगणी ने फरमाया—'चातुर्मास के बाद कुछ दिन आसपास के गांवों में रहकर देवगढ़ में दीक्षा दे देंगे, फिर इधर आ जाएंगे।'

बोरदियाजी ने वहां जाकर दीक्षा देने की बात कह दी, पर विहार की बात कहना भूल गए। मुनि पृथ्वीराजजी चातुर्मास के बाद दीक्षा के कल्प में देवगढ़ ही रह गए। जब उन्होंने कालूगणी के दर्शन किए तो उन्हें पूछा गया—'चातुर्मास के बाद आपने विहार क्यों नहीं किया?' मुनि पृथ्वीराजजी विनम्रता से बोले—'गुरुदेव दीक्षा का आदेश था, इसलिए मैं वहीं रह गया।' कालूगणी ने फरमाया—'आपको दीक्षा के साथ अन्यत्र विहार का भी आदेश था। आपने एक बात पकड़ ली और दूसरे निर्देश के प्रति लापरवाही बरती है। अपने धर्मसंघ में अनुशासनहीनता की छोटी बात भी नहीं चलनी चाहिए।' कालूगणी की दृष्टि में मुनि पृथ्वीराजजी द्वारा आदेश-पालन में उपेक्षा रही, इसलिए उनके प्रति दृष्टि में थोड़ा अंतर आ गया। आखिर बोरदियाजी आए और उन्होंने स्थिति को स्पष्ट करते हुए अपनी भूल स्वीकार की तथा निवेदन किया—'मुनिश्री की कोई गलती नहीं है। आपका आदेश इन तक पहुंचाने में असावधानी मेरी ओर से हुई है।' कालूगणी ने इस लापरवाही के लिए उनको उपालंभ दिया। बोरदियाजी ने अनुनय-विनयपूर्वक अपनी गलती के लिए क्षमायाचना की। कालूगणी ने उनके अनुरोध पर ध्यान दिया और मुनि पृथ्वीराजजी का भी सही मूल्यांकन किया।

१२९. मंत्री मुनिश्री मगनलालजी तेरापंथ संघ के स्तंभ थे। मघवागणी ने वि. सं. १९४६ में आपका स्हाज बना दिया। कालूगणी के समय गुरुकुलवास में दो ही स्हाज थे—एक मंत्री मुनि का और दूसरा मुनि शिवराजजी का। मुनि शिवराजजी के स्हाज में चार संत थे। बाकी सब संत मंत्री मुनि के स्हाज में थे। मंत्री मुनि का कार्यक्षेत्र व्यापक था, इसलिए वे अपने स्हाज की व्यवस्था में भाग कम लेते थे। इसका परिणाम यह आया कि स्हाज में अव्यवस्था होने लगी, संतों

के तीन दल बन गए और छोटी-छोटी बात को लेकर मनोभेद होने लगा। साधु-जीवन में ऐसा कुछ होना नहीं चाहिए, पर कभी-कभी छद्मस्थता की छोल काम कर जाती है।

कालूगणी उस समय हमीरगढ़ (मेवाड़) विराज रहे थे। स्थिति की जानकारी पाकर उन्होंने संतों को बुलाया और प्रशिक्षण देते हुए कहा—'संतो! मानसिक दुराव साधना की दृष्टि से उचित नहीं है। तुम लोग अपनी व्यवस्था भी ठीक नहीं रख सकते तब यहां इतने साधु इकट्ठे होकर क्या करते हो? आज से तुम लोगों की एक नई व्यवस्था हो रही है। अब अमुक-अमुक तीन-तीन संतों की परस्पर चित्तसमाधि है। सुखलालजी, गणेशमलजी आदि छह संतों की चित्तसमाधि मगनलालजी स्वामी के साथ है।'

यह बात कुछ संतों को समाधिदायक नहीं लगी। उन्होंने पुनः निवेदन किया—'गुरुदेव! गलती हम सबकी है। इसका दण्ड सब संतों को नहीं मिलेगा तो हमारे मन पर असर रहेगा। हमारा अनुरोध इतना ही है कि स्हाज मंत्री मुनि का है, अतः उनका संबंध सबके साथ रहे।' इस अनुरोध में कालूगणी को औचित्य लगा। उन्होंने मुनि सुखलालजी आदि संतों को भी तीन-तीन की चित्तसमाधि में विभाजित कर दिया और मंत्री मुनि की चित्तसमाधि सब संतों के साथ जोड़ दी।

कालूगणी की इस व्यवस्था से सबको संतोष हुआ और मंत्री मुनि के स्हाज में पुनः सौहार्द स्थापित हो गया।

१३०. आचार्यश्री कालूगणी समभाव के साधक थे। वे अपने निकटस्थ या दूरस्थ किसी भी व्यक्ति की गलती को उपेक्षित नहीं करते थे। जिस किसी साधु से गलती होती, वे उसकी पूरी खबर ले लेते। मुनि चौथमलजी और मुनि सोहनलालजी कालूगणी के निकट रहने वाले साधुओं में थे। दोनों ही मुनि बड़े कर्मशील और आचार्य की दृष्टि की आराधना करने वाले थे। किंतु उनकी कुछ बातें ऐसी थीं जो कालूगणी को पसंद नहीं थीं। अनेक बार सजग करने पर भी उनमें विशेष परिवर्तन नहीं आया, तब कालूगणी ने सब संतों की सभा में उनको कड़ा उपालम्भ दिया। कड़ा भी इतना कड़ा कि सुनने वाले प्रायः साधु कांप उठे। यह घटना वि. सं. १९८९ सरदारशहर चातुर्मास (गोठीजी की हवेली) की है।

दोनों ही मुनियों ने उस उपालंभ को धैर्य और विनम्रता से सहन किया। कालूगणी तथा अन्य संतों ने भी उनकी सहनशीलता का अंकन किया। ऐसी घटनाओं से आज की पीढ़ी को शिक्षा लेनी चाहिए। जो व्यक्ति उपालंभ को सहना सीख लेता है, वह अपने जीवन को रूपान्तरित कर सकता है।

१३१. सं. १९८८ में कालूगणी का चातुर्मास बीदासर था। वहां कुछ संतों में मानसिक तनाव हो गया। तनाव इतना बढ़ा कि परस्पर बोलचाल भी बंद हो गयी। रत्नाधिक साधुओं को वंदना और पक्खी के दिन 'खमतखामणा' का क्रम भी मात्र औपचारिक रह गया। जहां अपना-अपना आग्रह हो जाता है, वहां व्यक्ति सही चिंतन नहीं कर सकता। तनाव का यह वातावरण भी साधारण साधुओं में नहीं, कुछ दीखते संतों में बना। उसके प्रमुख पात्र थे मुनि सगतमलजी, मुनि कानमलजी, मुनि सोहनलालजी, मुनि सुखलालजी, मुनि चंपालालजी आदि।

बीदासर-निवासी अमोलकचंदजी बैंगाणी ने कालूगनी से निवेदन किया—'गुरुदेव! यह दीये तले अंधेरा कैसे?' कालूगणी को तब तक इस संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। जानकारी मिलते ही उन्होंने संबंधित संतों को याद किया। आकस्मिक सूचना ने संतों के मन में हलचल उत्पन्न कर दी, फिर भी उन्हें उपस्थित तो होना ही था। संत आकर वंदन की मुद्रा में बैठ गए। कालूगणी ने उनको लक्ष्य कर कहा—

'तुम लोग गुरुकुलवास में रहते हो और ऐसी हरकत करते हो। क्या तुम्हें इसका ख्याल नहीं है? मैं तुमसे संघ का छोटा-बड़ा हर काम करा लेता हूं और तुम परस्पर अनबोल रहते हो। क्या यह मेरी दृष्टि और आज्ञा की आराधना है? मेरी समझ में ऐसा करने वाले मेरी आज्ञा का लोप करते हैं। तुम सब साधु हो, उपदेशक हो। तुम्हारे उपदेश का लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? तुम स्वयं राग-द्वेष में उलझे हुए हो तब श्रद्धालु लोगों का राग-द्वेष कैसे कम कर पाओगे? तुम समझते नहीं, तुम्हारे इस व्यवहार से लोगों के मन में मेरे बारे में क्या प्रतिक्रिया होगी? मैं जानता हूं कि तुम सब छद्मस्थ हो, परस्पर कोई बात भी हो सकती है, पर इसका सीधा उपचार है तत्काल क्षमायाचना कर सौहार्द की स्थापना। ऐसी वृत्तियों से तुम अपनी मंजिल तक कैसे पहुंचोगे?'

कालूगणी की इस प्रेरक शिक्षा ने जादू का-सा काम किया। लंबे समय से चली आ रही अनबोल कुछ ही क्षणों में समाप्त हो गई। सब संतों ने अपनी-अपनी भूल बताकर एक-दूसरे को गले लगाया। समूचा वातावरण स्नेह और सौहार्द से आप्लावित हो गया।

तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्यों का प्रभाव और उचित समय पर किया जाने वाला अनुशासन बड़ी-से-बड़ी उलझन को सहज भाव से सुलझा देता है।

१३२. गलती चाहे व्यक्ति की हो या समूह की, उसे नजरंदाज नहीं करना चाहिए, यह आचार्यश्री कालूगणी की स्पष्ट नीति थी। अपना दायित्व समझकर

वे गलती पर करारी चोट किया करते थे। वि. सं. १९८६, लाडनूं चातुर्मास में मुनि सोहनलालजी (चूरू) के जीवन में एक अकल्पित घटना घटी। उससे समाज में एक हलचल-सी मच गई। मुनि सोहनलालजी कुछ दिन अज्ञात रहने के बाद संभलकर लाडनूं पहुंचे। वहां उन्होंने संघ में पुनः प्रवेश के लिए निवेदन किया। उनके निवेदन में विनय था, संघ और संघपति के प्रति गहरी निष्ठा थी और साधुत्व पालने की मनोवृत्ति थी। चतुर्विध संघ को उन्होंने अपने प्रवाह में बहा लिया, पर कालूगणी उनके निवेदन को तत्काल स्वीकृत न करने के निर्णय पर दृढ़ थे। इस निर्णय के पीछे कुछ विशेष कारण थे। अतः चारों ओर से प्रार्थना के बावजूद कालूगणी अपने निर्णय पर दृढ़ रहे। इस बात का समाज पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा।

मुनि सोहनलालजी वहां तखतमलजी फूलफगर के मकान में ठहरे थे। यद्यपि वे धर्मसंघ के अनुकूल थे, किंतु थे संघ से बाहर। संघ से बहिर्भूत या बहिष्कृत व्यक्ति के साथ अति संपर्क संघीय मर्यादाओं से प्रतिकूल है। इस बात को जानते हुए भी प्रमादवश संतों ने वहां जाना शुरू कर दिया। कई संत प्रतिदिन वहां जाते और घण्टों उनके साथ बातचीत करते। बात भी कोई विशेष नहीं थी, फिर भी एक सिलसिला चल पड़ा। इस घटना में उल्लेखनीय बात यह है कि वहां जाने वाले कालूगणी से निवेदन किए बना ही चले जाते थे।

कालूगणी को स्थिति की अवगति मिली। उन्होंने संतों की एक सभा बुलाई और अनुशासनात्मक कार्यवाही करते हुए कहा—'मुझे पता चला है कि तुम लोग वहां बार-बार जाते हो। क्या यह अपने संघ की सामाचारी है? जो व्यक्ति संघ से अलग है, उसके साथ इतना संपर्क कहां तक उचित है? तुम लोग वहां गए भी तो बिना पूछे कैसे गए? मैं मानता हूं कि वह (मुनि सोहनलालजी) ठीक है, अनुकूल है, फिर भी हमारे धर्मसंघ की एक सीमा है। उसका अतिक्रमण किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए।'

कालूगणी के इस सामयिक प्रशिक्षण ने सब संतों का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अपनी भूल की अनुभूति के साथ उन्हें संघीय सामाचारी के संबंध में भी पूरी जानकारी मिल गई।

१३३. मुनि चौथमलजी ने 'भिक्षुशब्दानुशासन' का निर्माण-कार्य संपन्न होने के बाद उसकी नई 'प्रति' लिखनी शुरू की। ग्रंथ विशाल था। प्राचीन लेखन सामग्री से लिखने में अधिक समय लगता था। लेखन में उनकी गति भी मंद थी। लेखन-कार्य शुरू करने के बाद कालूगणी उनसे कई बार पूछते—'कितना लिखा

है?' काफी समय बीत जाने पर भी जब लेखन में विशेष प्रगति नहीं हुई तो उन्होंने एक दिन फरमाया—'अभी तक इतना ही लिखा है?'

कालूगणी की यह बात मुनि चौथमलजी को लग गई। उन्होंने भावावेश में आकर संकल्प कर लिया कि जब तक 'भिक्षुशब्दानुशासन' नहीं लिखा जाएगा, उन्हें छह विगय (दूध, दही आदि) खाने का त्याग है। कालूगणी को इस बात का पता चला, तब उन्होंने पूछा—'त्याग क्यों किया?' मुनि चौथमलजी बोले—'गुरुदेव! बिना अभिग्रह काम होता ही नहीं है।'

कालूगणी ने मुनि चौथमलजी के संकल्प को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें सामूहिक और व्यक्तिगत कई कामों से मुक्त कर दिया। वे कालूगणी का प्रतिलेखन करते थे, साथ में पंचमी समिति जाते थे, इन कामों को भी बंद कर उन्हें दिनभर लेखन-कार्य का अवकाश दिया गया। इसके परिणामस्वरूप वे प्रतिदिन छह-छह पृष्ठ (लगभग १५० अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण) लिख लेते थे। कालूगणी के इस विशेष अनुग्रह और प्रेरणा से उन्होंने अपने कार्य को शीघ्र संपन्न कर दिया। उनके द्वारा प्रतिलिपि की गई भिक्षुशब्दानुशासन की वह प्रति आज भी तेरापंथ संघ के पुस्तक भंडार में सुरक्षित है और अध्ययन-अध्यापन में काम आती है।

१३४. आचार्यश्री कालूगणी एक सफल मनोचिकित्सक थे। मन से रुग्ण व्यक्ति का निर्वाह कैसे हो, इस कला में वे दक्ष थे। मुनि चांदमलजी (जयपुर) ऐसे ही मुनि थे, जिन्हें हम मानसिक रोगी की श्रेणी में रख सकते हैं। शरीर से वे स्वस्थ लगते थे, पर अपने विभाग का काम करने तथा वजन उठाने में कसमसाहट करते थे। तत्कालीन संघीय परंपरा के अनुसार चौवन वर्ष के बाद समुच्चय के आधे वजन और साठ वर्ष के बाद पूर्ण वजन की छूट थी तथा गुरुकुलवास में जब तक शक्ति रहे, सभी काम करने आवश्यक थे। मुनि चांदमलजी साठ वर्ष से पहले ही वजन और काम की छूट मांगने लगे। कालूगणी को उनके निवेदन में औचित्य नहीं लगा, अतः छूट नहीं दी। वे कभी कड़ाई से और कभी कोमलता से उनको समझाते रहे, पर उनके मन का रोग बढ़ता गया और वे इस संबंध में गृहस्थों के सामने बात करने लगे।

एक दिन मुनि चांदमलजी आवेश में आ गए और बोले—'मुझसे न कोई काम होगा और न वजन उठेगा।' कालूगणी ने उनको आश्वस्त कर कहा—'ऐसा लगता तो नहीं है कि आप शरीर से इतने असमर्थ हैं। फिर भी आप असमर्थता अनुभव करते हैं तो आज से कोई काम मत करो और वजन भी मत उठाओ, पर इसके बदले में आपको एक विकल्प स्वीकार करना होगा।

'वह विकल्प क्या है?' उनके ऐसा पूछने पर कालूगणी ने फरमाया—'जब तक आपसे काम नहीं होता है, आप गृहस्थों के साथ बात नहीं कर सकेंगे और एक पंक्ति भी लिख नहीं सकेंगे।' एक बार तो उन्होंने विकल्प स्वीकार कर लिया, पर बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई। दिन पूरा बीता ही नहीं कि वे कालूगणी के सामने आकर खड़े हो गए और बोले—'गुरुदेव! मैं काम करूंगा।' कालूगणी ने कहा—'आप वृद्ध हैं, थकान अनुभव करते हैं, फिर काम क्यों करेंगे?' वे बोले—'गुरुदेव! मौन रखना मेरे वश की बात नहीं है।' लिखने की भी उन्हें इतनी हॉबी थी कि वे दिन-रात जब भी अवकाश मिलता, लिखते रहते थे। आखिर कालूगणी ने लिखने और बोलने से प्रतिबंध हटाकर उन्हें कार्य में नियुक्त किया।

कालूगणी के जीवन की यह एक विशेष बात थी कि वे उत्तेजित और अड़ियल प्रकृति वाले साधकों को भी जीवन-भर निभाने का प्रयास करते थे। बात टूटने के कगार तक पहुंच जाती, फिर भी वे उसे जल्दी से तोड़ते नहीं थे। मनोरोगियों को निभाने में उनकी कला विलक्षण थी।

१३५. आचार्य और शिष्य का संबंध विनय और वात्सल्य का संबंध है। शिष्य का विनय आचार्य के वात्सल्य को प्राप्त करके फलता-फूलता है और आचार्य का वात्सल्य विनीत शिष्य को सहज उपलब्ध होता है। शिष्य के संरक्षण की समग्र जिम्मेवारी आचार्य पर होती है, इसी प्रकार आचार्य के इंगित की आराधना करना शिष्य का पुनीत कर्तव्य होता है। कोई भी स्थिति आचार्य को निवेदन करने की हो, उसे निवेदित कर निश्चिंत हो जाना विनयी शिष्य का काम है। आचार्य की दृष्टि या इंगित की अवहेलना कर व्यक्ति अपना हित नहीं कर सकता।

मुनि रावतमलजी (सुजानगढ़) और मुनि फूलचंदजी, मुनि हीरालालजी के सहयोगी संत थे। मुनि हीरालालजी पहले आचार्यश्री कालूगणी की उदक-परिचर्या में नियुक्त थे। बाद में उन्हें अग्रगण्य बनाकर बहिर्विहार करवा दिया गया। मुनि रावतमलजी ने दोनों संतों की प्रकृति के संबंध में कालूगणी से शिकायत की। कालूगणी ने फरमाया—'यह स्थिति मेरे ध्यान में है।' इसके बाद मुनि रावतमलजी को निश्चिंत हो जाना चाहिए था, पर वे दूसरी बार, तीसरी बार निवेदन करते रहे।

शिकायत की यह वृत्ति कालूगणी को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने उपालंभ के लहजे में फरमाया—'जो बात मेरे ध्यान में है, उसे बार-बार दोहराने से क्या लाभ? तुम्हें वहां नहीं रहना हो तो मत रहो। अपने लिए अन्यत्र स्थान खोज लो।' अब मुनि रावतमलजी को अपनी भूल का भान हुआ। उन्होंने बहुत

अनुनय-विनय किया, किन्तु कालूगणी उन्हें मुनि हीरालालजी के साथ रखने के लिए सहमत नहीं हुए। अन्य अग्रगण्य संत भी कालूगणी की दृष्टि के बिना मुनि रावतमलजी को अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं थे। आखिर उन्हें अपने सहदीक्षित मुनि जयचंदलालजी के साथ रहना पड़ा।

इस घटना के बाद मुनि रावतमलजी ने एक मंत्र पकड़ लिया कि गुरु के इंगित की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इस मंत्र को उन्होंने इतनी गहराई से पकड़ा कि जीवन-भर आचार्यों के अनुकूल रहे और धर्मसंघ की प्रभावना करते रहे। आखिर आचार्यश्री तुलसी ने उनको अग्रगण्य बना दिया और उनके स्वर्गारोहण पर उनके संबंध में एक दोहा फरमाया—

रावत एरावत जिसो, शासनेन्द्र अनुकूल।
गुरु-आज्ञा अनुसरण में, कदे न करतो भूल।।

१३६. तेरापंथ संघ की तत्कालीन परंपरा के अनुसार प्रत्येक मुनि के लिए यह आवश्यक था कि वह लिखत (मर्यादा-पत्र) पर प्रतिदिन हस्ताक्षर करे। हस्ताक्षर करने के बाद उस लिखत को अपने पास न रखकर समुच्चय के पूठे में रखे। समुच्चय का वह पूठा मुनि शिवराजजी के पास रहता था। यदा-कदा कालूगणी उसे मंगाकर उसका निरीक्षण कर लेते थे।

जिस दिन कालूगणी निरीक्षण करने के लिए पूठा मंगाते, संतों में हलचल-सी मच जाती। हलचल का कारण होता हस्ताक्षर करने में संतों का प्रमाद। कुछ संत एक मास तक हस्ताक्षर नहीं करते और कुछ एक मास आगे के हस्ताक्षर पहले ही करके रख देते। कुछ मुनि लिखत पत्र अपने व्यक्तिगत पूठे में रखकर भूल जाते तो कुछ संत पूठा लाने का आदेश होने पर उसमें हस्ताक्षर करते।

आचार्यश्री कालूगणी एक-एक मुनि के कार्य का पूरा पर्यवेक्षण करते और औचित्य के अनुसार प्रायश्चित्त देते। लिखत में जितनी तिथियां आगे की होतीं, जितने दिन कम होते, उतने ही परिष्ठापन दण्ड में प्राप्त होते। व्यक्तिगत पूठे में लिखत रह जाए तो जितने दिन रहे, उतने परिष्ठापन। इस प्रकार प्रत्येक भूल का सूक्ष्मता से अवलोकन कर वे संतों को सजग कर देते। इस क्रम में प्रायः संत दंड के भागीदार बनते। मुनि भीमराजजी, मुनि चौथमलजी आदि कुछ संत इस विषय में पूरे जागरूक रहते थे।

१३७. 'पुस्तक भंडार' साधुसंघ की संपदा होती है। हस्तलिखित पुस्तकों की सुरक्षा इतिहास और संस्कृति की सुरक्षा है। सुरक्षा की दृष्टि से पुस्तकों के प्रतिलेखन का दायित्व संतों पर था। प्रायः संतों के पास समुच्चय की दो-दो,

तीन-तीन पुस्तकें प्रतिलेखन के लिए थीं। संत पुस्तकों की कितनी सुरक्षा रखते हैं? यह जांच करने के लिए कालूगणी कभी-कभी अचानक 'पुस्तक भंडार' में पधारते और एक-एक पुस्तक खोलकर देखते। जिन सन्तों की पुस्तकों के पन्ने आगे-पीछे या मुड़े हुए होते, पाटियां बराबर नहीं होतीं, पल्लों में सलवट रहती, उन्हें सजगता की दृष्टि से प्रायश्चित्त मिलता। पुस्तकें बांधने की कला में संतों में मुनि चौथमलजी निष्णात थे। साध्वियों में साध्वीप्रमुखा झमकूजी और साध्वी संतोकांजी (लाडनूं) इस कला में विशेष दक्ष थीं। शेष मुनि कभी अधिक और कभी कम प्रायश्चित्त पाकर उससे प्रेरणा लेते और इस कला में विकास करने का प्रयत्न करते।

१३८. यति हुलासचंदजी पहले बीदासर रहते थे और बाद में सरदारशहर रहने लगे। आचार्यश्री डालगणी के समय से लेकर अपने जीवन के अंतिम समय तक वे तेरापंथ शासन के अनुकूल रहे। वे एक लेखक, कवि, गायक, लिपिकार और रचनाकार भी थे। उन्होंने 'शासन-प्रभाकर' और 'रूपसेन चरित्र' की रचना की। वे गाते अच्छा थे, अतः अनेक संत उनके पास पुराने गीतों की रागिनियां सीखा करते थे। उनकी लिपि-कला की धर्मसंघ में प्रतिष्ठा थी। हुलासजी के हाथ की लिखी प्रति शुद्ध मानी जाती थी। उसे सब बड़े चाव से अपने पास रखते थे।

१३९. रामधनजी यति, उनकी पत्नी रूपां और उनका समूचा परिवार बीकानेर के रांगड़ी चौक के पास में रहता था। आचार्यश्री कालूगणी के बीकानेर चातुर्मास में जब सांप्रदायिक संघर्ष की स्थितियों ने उभार लिया तो उन दोनों ने धर्मसंघ की सेवा में काफी योगदान दिया। रूपां बाई का बीकानेर में विशेष प्रभाव था। संघर्ष के समय वह साध्वियों की सेवा में रहती थी। रूपां बाई जब साथ होती तो मजाल है कि कोई साध्वियों की ओर आंख उठाकर भी देख ले। रामधनजी भी निडर और होशियार व्यक्ति थे। उनका पूरा परिवार तेरापंथी है और साधु-साध्वियों का भक्त है। रामधनजी के पुत्र मिश्रीलालजी आदि भी धर्मशासन की सेवा में पूरा रस लेते हैं।

१४०. नेमनाथजी सिद्ध (सरदारशहर) पहले संवेगी मुनि थे। अपने मुनिजीवन में वे काफी अध्ययनशील रहे थे। 'परीक्षामुखमण्डन', 'विदग्धमुखमण्डन' जैसे न्याय-ग्रंथों का अध्ययन कर उन्होंने न्यायशास्त्र की सैकड़ों पंक्तियां याद कर रखी थीं। मुनि जीवन को छोड़कर वे पुनः गृहस्थ हो गए। गृहस्थ जीवन में उनकी धार्मिक आस्था का केन्द्र 'तेरापंथ' रहा।

नेमनाथजी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे। शास्त्रीय चर्चाओं में उनका अच्छा उपयोग था। अन्य संपद्राय के आचार्यों ने थली पहुंचकर जब तेरापंथ पर आक्षेप-प्रक्षेप किया तो उनके साथ चर्चा-प्रसंगों में वे आगे रहते थे। उन्हें सामने देखकर कई व्यक्ति घबरा जाते थे।

तेरापंथ संघ की सैद्धांतिक मान्यताओं को लेकर कहीं भी चर्चा का काम पड़ता, नेमनाथजी सदा तैयार रहते थे। चर्चा के लिए उन्हें खानदेश तक आमंत्रित किया गया। स्थानकवासी पूज्य जवाहरलालजी के साथ भी उन्होंने कई बार चर्चा की।

१४१. वृद्धिचंदजी नाजिम (बीकानेर) जाति से कायस्थ थे। पहले वे थली प्रांत में तहसीलदार थे, बाद में नाजिम बन गए। यद्यपि वे जैन नहीं थे, पर तेरापंथ शासन के परम भक्त थे। कालूगणी की उन पर विशेष कृपा थी। वे प्रतिवर्ष कालूगणी के दर्शन किया करते थे। आचार्यश्री तुलसी के समय में भी जब तक वे जीवित रहे, उनका संबंध बना रहा।

थली में वे काफी लोकप्रिय थे। वि. सं. १९९८ के आसपास कलकत्ता में बमबारी हुई तो शहर में भगदड़ मच गई। हजारों तेरापंथी श्रावक अपने माल-असबाब के साथ कलकत्ता छोड़कर भागे। उस समय यात्रियों को यातायात की सुविधा देने के लिए उन्हें दिल्ली भेजा गया। नाजिम महोदय अणुव्रत के आदर्शों पर चलने वाले व्यक्ति थे। कलकत्ता छोड़कर आनेवाले व्यक्तियों के साथ उनका व्यवहार सौहार्दपूर्ण और प्रामाणिक रहा। फलतः लोगों के मन में भी उनके प्रति सहज सहानुभूति रही।

१४२. गणेशमलजी मथेरण (महात्मा) मूलतः रीणी के थे; फिर वे सरदारशहर आकर बस गए। उनके एक भाई का नाम बाघजी था। दोनों भाइयों के परिवारों में सैकड़ों व्यक्ति थे, वे सभी तेरापंथ शासन के पक्के भक्त थे। उन्होंने जयाचार्य के समय में धार्मिक श्रद्धा स्वीकार की थी।

गणेशजी तेरापंथ दर्शन के अच्छे जानकार थे। जयाचार्य के 'प्रश्नोत्तर तत्त्व-बोध' का अधिग्रहण (धारण) कर उन्होंने ही मुकसदाबाद भेजा था। गणेशजी सफल लिपिकार भी थे। उन्होंने संभवतः बत्तीस सूत्रों को लिपिबद्ध किया और अत्यंत भक्तिभाव से बहराया। धर्मशासन में किसी भी कार्य के लिए वे सदा तत्पर रहते थे।

१४३. बीदासर-निवासी शोभाचंदजी बैंगानी के तीन पुत्र थे—हणूतमलजी, अमोलकचन्दजी और चंपालालजी। अमोलकचंदजी बचपन से ही कालूगणी के

विशेष कृपापात्र और शासनभक्त व्यक्ति थे। धर्मसंघ को वे अपना जीवन समझते थे। उनके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आए, पर कालूगणी की कृपा में कभी कमी नहीं आई। उनके संबंध में लोगों की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं थी। कभी-कभी कालूगणी की असीम अनुकंपा भी उनकी आलोचना का विषय बन जाती थी। पर उन्होंने इस बात की कभी परवाह नहीं की। कालूगणी जिस व्यक्ति पर दृष्टि टिकाते, वह व्यक्ति स्वयं विमुख न हो तो उनकी दृष्टि में जीवन भर अंतर नहीं आता था। कालूगणी ने बीदासर-प्रवास में अमोलकचंदजी की हवेली में दो चातुर्मास भी किए।

१४४. सरदारशहर-निवासी मोतीलालजी दूगड़ (वाणीदावास) आचार्यश्री कालूगणी के अंतेवासी भक्तों में से थे। वे बड़े चरित्रनिष्ठ, निश्छल और शासनभक्त व्यक्ति थे। कालूगणी के परम विश्वासी थे। यद्यपि अमोलकचंदजी बैंगानी की तरह वे श्रावक समाज में प्रसिद्ध नहीं थे, पर कालूगणी की उन पर भी विशेष कृपा थी। वे प्रतिवर्ष गुरुदेव की सेवा करते थे। आचार्य और धर्मशासन की सेवा में उन्हें आत्मतोष का अनुभव होता था।

१४५. वृद्धिचंदजी गोठी (सरदारशहर) व्यक्तिगत और संघीय दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण जीवन जीते थे। उनकी संकल्पनिष्ठा और शास्त्रीय धारणा विलक्षण थी। उन्होंने खुले मुंह धर्म-चर्चा करने का त्याग कर दिया। इस त्याग के पालन में वे पूरे सतर्क रहे। उन्होंने जयाचार्य-कृत भगवती सूत्र की जोड़ धारने का काम हाथ में लिया। यद्यपि प्राचीन 'धारणा प्रणाली' की विधि से साधुओं के हस्तलिखित ग्रंथों के अधिग्रहण का काम अत्यंत श्रमसाध्य था, किंतु उन्होंने इसको काफी आगे बढ़ा लिया। प्राचीन पद्धति के अनुसार एक व्यक्ति को तीन मकानों (कमरों) के तीन द्वार छोड़कर साधुओं के हस्तलिखित ग्रंथों को लिखना पड़ता था। लेखन में कोई अशुद्धि रह जाती, उसे भी देखकर शुद्ध नहीं किया जा सकता था। गोठीजी इसके लिए पचासों कंकरों का उपयोग करते। वे जहां-जहां अशुद्धि रहती, वहां एक-एक कंकर रख लेते और उन्हें भी तीन द्वार छोड़कर शुद्ध करते।

इस कार्य में उनको इतना श्रम हुआ कि उनके पांव छिल गए, फिर भी वे थके नहीं और पांवों के पट्टे बांधकर लेखन कार्य करते रहे। भगवती सूत्र की जोड़ का परिमाण अधिक होने से वे उसको पूरी नहीं लिख पाए, किंतु उन्होंने जिस परिश्रम और लगन से काम किया, वह किसी दूसरे व्यक्ति से होना बहुत कठिन था।

गोठीजी तेरापंथ दर्शन के अच्छे ज्ञाता और व्याख्याता थे। शास्त्रीय और

पारंपरिक दोनों दृष्टियों से उनकी धारणा गहरी थी। शासन-सेवा के किसी भी कार्य में वे तत्पर रहते ही थे, चर्चा के प्रसंग में भी आगे रहते थे।

वि. सं. १९७२-७३ में आचार्य श्रीलालजी का थली (सरदारशहर) आगमन हुआ। गोठीजी उनके साथ चर्चा करने गए। वहां मुनियों के साथ बीकानेर से समागत कुछ श्रावक भी उपस्थित थे। गोठीजी ने बातचीत के संदर्भ में आचार्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा—'शास्त्रों में आचार्य को कुत्तियावण की उपमा दी गई है।' गोठीजी की यह बात सुनते ही श्रावक चौकन्ने हो गए। उन्होंने इस कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—'आपने आचार्यश्री के लिए इतने हीन शब्द का प्रयोग कैसे किया? आचार्य आचार्य होते हैं। उन्हें कुत्तिया कहना कहां तक उचित है?' गोठीजी थोड़ी देर मौन रहे। जब श्रावक लोग इस शब्द-प्रयोग को लेकर काफी उलझ गए तो वे बोले—'श्रावको! आप समझते नहीं। मैंने कुत्तियावण—कुत्रिकापण की शास्त्रीय उपमा का उपयोग किया है, जो कि बहुत ऊंची उपमा है। आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो तो आचार्यश्री से पूछ लीजिए।' श्रावकों को सम्बोध देते हुए आचार्य श्रीलालजी ने कहा—श्रावको! गोठीजी बहुत गहरे व्यक्ति हैं। कुत्तियावण वास्तव में ही अच्छी उपमा है। आप गोठीजी से इसका हार्द तो समझ लें।'

आचार्यश्री का संकेत पाकर गोठीजी बोले—'कुत्तियावण ऐसी दूकान का नाम है, जहां तीन लोक की समग्र वस्तुएं उपलब्ध होती हैं। आचार्यों की ज्ञानधारा भी ऐसी ही होनी चाहिए, जिससे वहां आकर कोई जिज्ञासु व्यक्ति निराश न लौटे।' यह बात सुनकर श्रावकों ने गोठीजी के प्रति सद्भावना व्यक्त की।

आचार्य श्रीलालजी वृद्धिचंदजी के तत्त्वज्ञान से पूरे परिचित थे। उन्होंने एक प्रसंग में कहा—'एक तरफ हमारे हजार श्रावक और एक तरफ अकेले गोठीजी हों तो भी शास्त्रीय धारणा में इनका कोई मुकाबला नहीं है।' वृद्धिचंदजी अपने जीवन में आचार्यश्री डालगणी, कालूगणी और तुलसीगणी की उपासना में बराबर निरत रहे। वर्षों तक वे तेरापंथी महासभा के अध्यक्ष रहे। जब कभी धर्मशासन की सेवा का प्रसंग उपस्थित हुआ, उन्होंने सदा आगे रहकर काम किया। जीवन के अंतिम समय में उन्होंने अनशनपूर्वक समाधि-मृत्यु प्राप्त की।

१४६. बालचंदजी सेठिया सरदारशहर के प्रमुख श्रावकों में से एक थे। साधु-साध्वियों के प्रति वे अत्यंत विनीत थे। गोचरी के समय भावना भाने का उनमें विशेष गुण था। अपने घर के निकट छोटे-बड़े किसी भी साधु-साध्वी को देखते तो जूते खोलकर विधिवत वंदना करते थे। जिन लोगों ने उनको देखा,

वे उनकी वंदना-विधि को देखकर विस्मित रह गए। परिवार को धार्मिक संस्कार देने में भी वे बहुत कुशल थे।

१४७. जयपुर-निवासी सुजानमलजी खारड़ और गुलाबचंदजी लूणियां वहां के वरिष्ठ तेरापंथी श्रावक थे। वे तेरापंथ तत्त्वदर्शन के विशेषज्ञ थे। उन दोनों श्रावकों की अच्छी जोड़ी थी। आचार्यश्री की सेवा वे दोनों साथ-साथ करते और साथ-साथ गाते भी थे। पहले गुलाबचंदजी का गला ठीक नहीं था, पर कालूगणी के प्रोत्साहन और खारड़जी के साथ गाते-गाते ठीक हो गया। उन्होंने तेरापंथ साहित्य की भी अच्छी सेवा की। वे स्वयं रचनाकार थे। इसके साथ ही उन्होंने धर्मसंघ के कुछ साहित्यिक ग्रंथों का अनुवाद तथा उनके प्रकाशन की व्यवस्था कर उस साहित्य को सुलभ बना दिया। उन्होंने 'श्रावकआराधना' की भी रचना की थी।

१४८. जयाचार्य तेरापंथ शासन के वर्चस्वी आचार्य थे। उन्होंने अपने समय में धर्मसंघ को हर प्रकार से सक्षम बनाने का प्रयत्न किया। संघ के पुस्तक-भंडार की समृद्धि के लिए उन्होंने एक व्यवस्था दी—प्रत्येक अग्रणी मुनि प्रतिवर्ष नौ हजार गाथा (पद्य) लिखकर लाए। जो मुनि लिखने में असमर्थ होते, उन्हें रुग्ण, स्थविर और तपस्वी साधुओं की सेवा करनी होती। ऐसे साधुओं का नामांकन कर लिया जाता और आचार्य जब आवश्यक समझते, उनसे सेवा-कार्य करा लेते। महोत्सव के अवसर पर गाथाओं का लेखा-जोखा होता। असमर्थ मुनि आचार्य को विशेष निवेदन कर छूट लेने की प्रार्थना भी करते। आचार्य औचित्य देखकर किसी को छूट देते और किसी को नहीं भी देते।

वि. सं. १९८६ डूंगरगढ़ महोत्सव की घटना है। मुनि बच्छराजजी ने आचार्यश्री कालूगणी से गाथा-लेखन की छूट देने के लिए प्रार्थना की। कालूगणी ने फरमाया—'लिख सकते हो तो लिखो, नहीं तो नावें लिखा दो।' मुनिश्री ने काफी अनुनय-विनय किया, पर गुरुदेव ने कृपा नहीं कराई। इससे उनके मन में निराशा आ गई और वे बोले—'गुरुदेव! संभालो आपकी पुस्तकें, ऐसी अग्रगामिता का निर्वाह मुझसे तो नहीं हो सकेगा।'

कालूगणी ने उनके भावावेश को शांत करने के लिए शांत भाव से कहा—'अच्छी बात है, पुस्तकें यहां रख दो और जिसके साथ रहना हो, तय करके बता दो।' मुनि बच्छराजजी वहां से चले और होश आया। उन्होंने अपनी भूल का अनुभव किया और उल्टे पांव लौट आए। उन्हें अपनी साध्वी बहन दाखांजी का कथन—'आचार्यों की आश करनी चाहिए, आसंगा नहीं' याद आ गया। कालूगणी के पास अपनी गलती स्वीकार कर कहा—'गुरुदेव! आप महान हैं। सबका निर्वाह करने वाले

हैं। मैं अपने शब्द वापस लेता हूं। अब जैसा आप निर्देश देंगे, करता रहूंगा।'

कालूगणी ने उनको पुनः पुस्तकें लौटा दीं और अग्रगामी के रूप में ही विहार करने का निर्देश दिया। 'बड़ों से निवेदन करना चाहिए, पर उनके सामने अति आग्रह न हो', यह नीति का सूत्र है।

१४६. मोटेगांव के एक परिवार से तीन सदस्य दीक्षित हुए—मुनि चंपालालजी, उनकी संसारपक्षीया धर्मपत्नी फूलांजी और पुत्री राजकंवरजी। फूलांजी दीक्षित होने से पहले वर्षों तक सेवा में रही थीं, पर उनकी प्रकृति के बारे में सही जानकारी नहीं हो सकी। दीक्षा के कुछ समय बाद ही उनकी अड़ियल और विचित्र प्रकृति सबके सामने आ गई। उनके विचित्र व्यवहारों को देखने वालों का अनुभव है—ऐसा व्यक्ति तो सैकड़ों-हजारों में एक ही होता है। फूलांजी की अड़ियल प्रकृति के कुछ बिंदु हैं—रोना ही रोना, मुंह से अनर्गल बकना, कभी कुछ नहीं खाना और कभी बहुत अधिक खाना। बात-बात पर वे साध्वियों को तंग करने लगीं। बीसों-पचीसों साध्वियों के लिए लाया हुआ भोजन वे अकेली कर लेतीं। पता नहीं और भी क्या-क्या करती थीं।

स्थिति की विषमता को ध्यान में रखकर साध्वीप्रमुखा कानकुमारीजी ने इस संबंध में कालूगणी से निवेदन किया। कालूगणी ने उनको काफी समझाया, आश्वासन दिया, अनुशासन और वात्सल्य का मिश्रित प्रयोग किया, पर उनकी मनःस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। गुरुदेव ने उनको यहां तक फरमा दिया कि तुम अपनी साधना करो। साधुत्व पालने की नीति होगी तो तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। ये सब साध्वियां तुम्हारी सेवा करेंगी। इतना कहने के बावजूद भी फूलांजी के स्वभाव में कोई अंतर नहीं आया। कालूगणी ने उनके संसारपक्षीय पति मुनि चंपालालजी को उपालंभ देते हुए कहा—'तुम इतने साल इसके साथ रहे और हमें इसकी प्रकृति के संबंध में कुछ बताया नहीं।' मुनि चंपालालजी बोले—'गुरुदेव! स्थिति की इस भयंकरता का मुझे बिल्कुल पता ही नहीं था। अब तो इसका निर्वाह आप ही कराएंगे।'

वि. सं. १९८७ में आचार्यश्री शेषकाल में बीकानेर प्रवास कर रहे थे। उस समय एक बार फूलांजी आपे से बाहर हो गईं। उस स्थिति में भी कालूगणी ने उनको निभाने का आश्वासन दिया, पर वे अपने-आपको संभाल नहीं पाईं। गुरुदेव ने स्थानीय वरिष्ठ श्रावक सुमेरमलजी बोथरा को याद कर उनके सामने सारी स्थिति रख दी। बोथराजी ने फूलांजी को सब प्रकार से समझाया, पर सब व्यर्थ। आखिर गंगाशहर में कालूगणी ने साध्वी झमकूजी को उन्हें संघ से अलग कर

देने का निर्देश दिया।[1] संघ से बहिष्कृत होने के बाद भी फूलांजी अपनी दुष्ट प्रकृति से बाज नहीं आई। फलतः उनका जीवन आर्तध्यान में ही पूरा हुआ। उनकी पुत्री साध्वी राजकंवरजी ने छोटी अवस्था में दीक्षित होकर भी अपने-आपको संतुलित और स्थिर रखा।

१५०. जहां संघ होता है, वहां कुछ व्यवस्थाएं भी आवश्यक हो जाती हैं। सामूहिक कार्यों के लिए कोई व्यवस्था न हो तो काम समुचित रूप से नहीं हो पाता। तेरापंथ संघ में कुछ काम वैकल्पिक पद्धति से किए जाते हैं। ये व्यवस्थाएं सामयिक होती हैं। आचार्यश्री कालूगणी के समय में कुछ कामों की व्यवस्था इस प्रकार थी—

● प्रत्येक मुनि संघीय दो पुस्तकों का प्रतिलेखन करे। जो पुस्तक-प्रतिलेखन की विधि नहीं जानता हो, वह दो पुस्तकों के अनुपात से काजा ले (मकान की सफाई करे)।

आचार्य द्वारा विशेष कार्यों में नियुक्त साधुओं के अतिरिक्त प्राय सभी साधु सुबह या शाम एक समय आचार्य के साथ पंचमी समिति जाएं। जो किसी कारणवश न जा सके, वह एक अतिरिक्त पुस्तक का प्रतिलेखन करे या उस अनुपात में काजा ले।

प्रायश्चित्त के परिष्ठापन अधिक हो जाएं और उन्हें उतारने की स्थिति न हो तो चौकों के धड़े करके परिष्ठापन उतारे जा सकते हैं। 'चौकों का धड़ा' तेरापंथ संघ का पारिभाषिक शब्द है। इसका भावार्थ है साधु-साध्वियों के लिए अपेक्षित भोजन-सामग्री का सीमांकन। साधु और साध्वियां अपना अलग-अलग धड़ा बनाकर दे देते। दोनों धड़ों को मिलाकर एक चौकों का धड़ा तैयार किया जाता। उदाहरणार्थ पचास साधु और पचास साध्वियां हों तो सौ के चौक पचीस होते हैं। चौक निश्चित कर उस धड़े को आचार्य को दिखा दिया जाता। आचार्य उसके अनुसार साधु-साध्वियों से आहार मंगवाते। वह आहार उस धड़े के अनुसार सबमें विभाजित हो जाता। इस कार्य के आधार पर दो, तीन, चार परिष्ठापन उतर जाते। इसी प्रकार समूची विगय या व्यंजन छोड़ने से, समुच्चय की चिरमली का प्रतिलेखन करने से भी परिष्ठापन उतरने का क्रम रहा है।

---

१. साध्वी झमकूजी उस समय साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी की देखरेख में साध्वियों का काम संभालती थीं। वे आचार्यश्री कालूगणी की विशेष कृपापात्र थीं। साध्वीप्रमुखा कानकंवरजी के बाद उनका दायित्व उन्हीं ने संभाला।

१५१. सामान्यतः मनुष्य के एक मुंह होता है। एक से अधिक मुंह की स्थिति कुछ उलझन पैदा कर देती है। रावण की माता केकसी ने जिस समय दशकंधर पुत्र को जन्म दिया, उसके सामने समस्या खड़ी हो गई कि वह अपने पुत्र को दूध किस मुंह से पिलाए?

केकसी की भांति आचार्यश्री तुलसी ने भी अपने आराध्य देव कालूगणी से संबंधित संस्मरणों की अभिव्यक्ति में असमंजसता का अनुभव कर उसे विराम दे दिया।

१५२. बात उस समय की है जब जैनधर्म में प्रभावक आचार्यों की शृंखला चल रही थी। उसी शृंखला की कड़ी में एक जैनाचार्य अपने सैकड़ों साधु-साध्वियों के परिवार के साथ विहरण कर रहे थे। आचार्य यौवन की दहलीज लांघकर स्थविर बन चुके थे। उचित अवसर देखकर उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्य को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। युवाचार्य ने पूरी दक्षता के साथ संघ का काम संभाल लिया। आचार्य अब अपना अधिक समय ध्यान-स्वाध्याय में बिताने लगे।

एक बार आचार्य ने युवाचार्य को चातुर्मास के लिए कहीं अन्यत्र भेजा। युवाचार्य ने प्रस्थान किया। मध्यवर्ती क्षेत्रों के श्रावकों ने प्रार्थना की कि इस साल आपका चातुर्मास हमें मिलना चाहिए। युवाचार्य बोले—'मुझे आचार्यश्री का आदेश अमुक क्षेत्र में जाने का है, अतः यहां नहीं रह सकता।' कुछ मुंहलगे व्यक्ति यह सुनकर बोले—'महाराज! आप तो युवाचार्य हैं, संघ की प्रभावना के लिए स्वतंत्र निर्णय भी ले सकते हैं।'

युवाचार्य को अपने पद का गर्व हो गया। उन्होंने आचार्य के आदेश की उपेक्षा कर चातुर्मास दूसरे स्थान पर कर दिया। यद्यपि युवाचार्य संघ के मालिक होते हैं, किंतु आचार्य के तो शिष्य ही होते हैं। वे आचार्य के अनुशासन के प्रति जितने सजग रहते हैं, अन्य साधुओं को उससे बड़ी प्रेरणा मिलती है।

चातुर्मास संपन्न कर युवाचार्य ने आचार्य के दर्शन किए। आचार्य ने पूछा—'चातुर्मास कहां किया?' युवाचार्य ने सहमते हुए कहा—'गुरुदेव! चातुर्मास तो वहीं करना था, पर अमुक क्षेत्र के लोगों की भावना प्रबल थी और अधिक उपकार की संभावना थी, अतः वहां कर लिया।'

आचार्य ने युवाचार्य को कड़ा उपालंभ देते हुए कहा—'तुमने लोगों की भावना का इतना ध्यान रखा, पर आज्ञा और अनुशासन का बिलकुल ध्यान नहीं रखा। ये सैकड़ों साधु-साध्वियां तुमसे क्या शिक्षा ले सकेंगे? मुझे लगता है, तुम आचार्य पद के योग्य नहीं हो।' आचार्य की इस कड़ी चेतावनी से समूचे समाज पर एक

प्रभाव पड़ा। आचार्य ने युवाचार्य को पदच्युत कर उनके स्थान पर अन्य सुयोग्य शिष्य को युवाचार्य बना दिया।

इस घटना से दूसरे लोगों पर क्या प्रतिक्रिया हुई, कहा नहीं जा सकता। स्वयं युवाचार्य के मन में किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हुआ। उन्होंने सबके सामने अपनी भूल स्वीकार की, आचार्य का विनय किया और आचार्य के नए निर्णय का स्वागत किया। युवाचार्य के इस समभाव का इतना असर हुआ कि उनके लिए संघ ने आचार्य को विशेष निवेदन किया।

आचार्य प्रसन्न हुए, पर युवाचार्य पद तो अब दूसरे शिष्य को दिया जा चुका था। फिर भी युवाचार्य ने उस समय जिस धैर्य, नम्रता और सम्रता का परिचय दिया, उसके परिणामस्वरूप उन्हें युवाचार्य के बाद युवाचार्य पद प्रदान कर एक नए इतिहास का सृजन कर दिया गया।

१५३. 'दशाश्रुतस्कन्ध' आगम में आचार्य की आठ संपदाओं का उल्लेख है—

१. आचार संपदा	५. वाचना संपदा
२. श्रुत संपदा	६. मति संपदा
३. शरीर संपदा	७. प्रयोग संपदा
४. वचन संपदा	८. संग्रह-परिज्ञा संपदा

(दशाश्रुत स्कन्ध अ. ४ ।३)

१५४. उत्तराध्ययन सूत्र में बहुश्रुत मुनि के लिए सोलह उपमाओं की चर्चा है। आचार्यश्री कालूगणी का व्यक्तित्व सहज ही उन उपमाओं को अपने में समेटे हुए था। वे उपमाएं निम्नलिखित हैं—

१. शंख	५. इन्द्र	९. वृषभ	१३. जम्बूद्वीप
२. अश्व	६. सूर्य	१०. सिंह	१४. सीता नदी
३. सुभट	७. चन्द्र	११. वासुदेव	१५. मेरु पर्वत
४. हाथी	८. धान्यकोष्ठ	१२. चक्रवर्ती	१६. स्वयंभूरमण पर्वत

(उत्तरज्झयणं ११ ।१५-३०)

१५५. धर्मसंघ की धुरा के वाहक, जैनदर्शन की परंपरा के संवाहक आचार्य तीर्थंकरों के प्रतिनिधि होते हैं। उनके असीम गुणों को संख्या की सीमा में बांधना संभव नहीं है। फिर भी ससीम बुद्धि के द्वारा आचार्यों के गुणसमुद्र में अवगाहन करने का प्रयास किया गया है। पंचपरमेष्ठी के एक सौ आठ गुणों में आचार्य के छत्तीस गुण गिनाए गए हैं—

पांच महाव्रत	पांच समिति
चार कषाय वर्जन	तीन गुप्ति

पांच आचार पालन | नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्य

पांच इन्द्रिय-विजय

बृहत्कल्पभाष्य के अनुसार आचार्य के छत्तीस गुण निम्नलिखित हैं—

१. आर्य देश	१९. दर्शन आचार
२. प्रशस्त कुल	२०. चारित्र आचार
३. प्रशस्त जाति	२१. तप आचार
४. प्रशस्त रूप	२२. वीर्य आचार
५. दृढ़ संहनन	२३. सूत्र-विधिज्ञ
६. धैर्य	२४. अर्थ-विधिज्ञ
७. अनाशंसी	२५. तदुभय-विधिज्ञ
८. श्लाघानिरपेक्षता	२६. आहरण (उदाहरण)-निपुण
९. ऋजुता	२७. हेतु-निपुण
१०. स्थिर बुद्धि	२८. उपनय-निपुण
११. आदेय वचन	२९. नय-निपुण
१२. जितपरिषद	३०. शीघ्रग्राही
१३. जितनिद्रा	३१. स्व-समयज्ञ
१४. मध्यस्थ	३२. पर-समयज्ञ
१५. देशकालभावज्ञ	३३. गंभीर
१६. प्रत्युत्पन्नमति	३४. अनभिभवनीय
१७. अनेक देश भाषाविद	३५. कल्याणकारी
१८. ज्ञान आचार	३६. शांत दृष्टि

२. नामानुक्रम

व्यक्ति-नाम

अजीतसिंहजी ६४

अणचांजी (साध्वी) २४३

अभयदेव सूरि २३३

अमोलकचनजी बैंगाणी २१५, २४७

अर्जुनलालजी (मुनि) १२१

अश्विनीकुमार मुखर्जी (डॉक्टर) १६८-१७०, १८७-१९०, २१२

आनंद ८२

आशकरणजी बोथरा १५६

आशी बाई १५६

आषाढ़ (मुनि) १२६

इन्द्रूजी (साध्वी) ११९

ईशरचन्दजी चौपड़ा १२८, १५२, १६६, १७०, २५३

उगमराजजी (मुमि) १२०

उदयचंदजी (मुनि) १२१

उम्मेदराजजी भंडारी ९५

उम्मेदसिंहजी (जोधपुर नरेश) ९३

ऋषभ (तीर्थंकर) १९७

ऋषिराय/रायचन्द (आचार्य) १०७

कनकप्रभा (साध्वीप्रमुखा) ६४, २५५

कनकमलजी चौधरी १४६, १४९, १६६

कन्हैयालालजी कोठारी १३१, १३२

कमलूजी (साध्वी) ११९, १२१

कस्तूर बाई १५६

कानकंवरजी (साध्वीप्रमुखा) १८५, २१६, २३५, २४२

कान्ता बहन १५८

कालूगणी (आचार्य) छोगा-छावो, छोगां-जाया, छोगां-नंदन, छोगां-सुत, छौगेय, डालिम-पटधर, मघवा-शिष्य, मूल-नन्द, मूल-लाल, मूल-सूनु ६४, ६५, ७२, ७८, ८१, ९७, ९९-१०२, १०८, ११०, ११६, ११९, १२०, १२२, १२५, १२८, १३४, १४१, १४३, १४८, १४९, १५१, १५८, १६२, १६६, १७३, १७५, १७७, १७९, १८८, १८९, १९७, २००, २०३-२०६, २०९, २११, २१६, २२१, २२३, २२६, २२८-२३०, २३२-२३४, २३६-२४७, २४९, २५२-२५४, २५६

कालू-पटधर (तुलसी) २२६
कालूरामजी जम्मड़ १५६
कुंदनमलजी (मुनि) १६१, १८६, २११, २३८, २४१, २४२
कुंदनमलजी सेठिया ६७
केकसी २४८
केवलचंदजी (मुनि) २४२
केशरजी (साध्वी) १२१
केसर बाई गोठी १५६
केसर बाई रामपुरिया १६०
केसरसिंहजी (ठाकुर) १०२
केसरीचन्दजी (स्था-मु.) १५५
कोडा (कोडामलजी मुनि) ६६
कोडी बाई १५६
खूमांजी (साध्वी) १२१, १६५, २४३
खेतू (खेतसीजी मुनि) ७६
गंगासिंहजी (बीकानेर नरेश) २२५
गंभीरचन्दजी धारीवाल ६७
गट्टू बाई १५८
गणपतरामजी आंचलिया १५८
गणेशजी मथेरण २४७
गणेशदासजी गधैया १५७, २०४
गधियाजी (श्रीचन्दजी गधैया) २४४
गभीरी बाई १६०
गिल्की साहब २३८
गुलाबचन्दजी लूणिया २२३, २४८
गुलाबजी २४७
गुलाबांजी (साध्वीप्रमुखा) २५५
गुलाबांजी (साध्वी) १२१
गेन्दालालजी मोदी १५१
गोगांजी (साध्वी) १२०
गोरज्या बाई १५६
गोरांजी (साध्वी) १२०
गौतम (गणधर) ६६
घनश्याम (पंडित) २१५
चंदनमलजी कठौतिया १५८
चंदनमलजी (मुनि) २४१
चंदनमलजी सावणसुखा २४७
चतुर्भुजजी (मुनि) ८१
चन्दरभाणजी (मुनि) ८१
चन्द्रशेखर २४१
चम्पाजी (साध्वी) १२१
चम्पालालजी/चंपक/सेवाभावी (मुनि) १६३, १८६, १६२, २०२, २११, २३५
चम्पालालजी/चंपक (मुनि) १२०, २३६
चम्पालालजी नाहटा २१५
चम्पालाजी बैद १२८
चांदकंवरजी (साध्वी) १२१
चांदमलजी (मुनि) २४२, २४६
चिरंजीलालजी (मुनि) ७३, ८०
चूनांजी (साध्वी) ११६
चैनसिंह राठौड़ ६०
चौथमलजी (मुनि) १६१, १६३, १६७, १८६, १६२, २०१, २१०, २३५, २३७, २४५, २४६
छगनांजी (साध्वी) १२०, २३६
छोगजी (मुनि) ८१
छोगां (मातुश्री) १२१, १६५, २००, २२७-२३०
छोगां-छावो (कालूगणी) ६६
छोगां-जाया (") १७६, २०४
छोगां-नंदन (") १६२

छोगां-सुत (") ८५, २४६
छोगी बाई १५६
छोटूलालजी २४२
छौगेय (कालूगणी) २४६
जंवरीमलजी आंचलिया १५६
जंवरीमलजी (मुनि) ११६
जड़ावांजी (साध्वी) ७६
जबरमलजी भंडारी २१५
जमनी बाई सेठिया १५६
जय/जयजश (आचार्य) ७०, ८१, ११६, १३५, १४७, १४६, १५७, १६७, २००, २०३, २०६, २०७, २१०, २२६, २३६, २४७, २४८, २५२, २५५
जवाहरमलजी कोठारी १८०
जवाहरलालजी (स्था. आचार्य) १३८
जालीरामजी (मुनि) ७४, १२०
जिनपाल १४१
जिनरिख १४१
जुहारमलजी बोरदिया १२०
जुहारी बाई १५६
जेठांजी (साध्वीप्रमुखा) १८६, २४२
जेसराजजी कठौतिया १५८
जैतसिंहजी ६७
ज्ञानेश्वर ८६
झमकूजी (साध्वीप्रमुखा) १३४, १४७, १६३, २०३, २११, २१५, २३५, २४२, २५३
झींटूमलजी गोठी १५६
झूमरमलजी डोसी १५८
झूमरमलजी (मुनि) ६६
झूमरी बाई १५६
टोकरजी (मुनि) ७६
डायमलजी (मुनि) ७२
डालचंदजी/डालिम (आचार्य) १५१, २०३, २२६, २३२, २३४, २४२, २५२
डालिम-पटधर (कालूगणी) २३३
डूंगरमलजी सांखला १५५
तिलोकचंदजी (मुनि) ८१
तुलसी (आचार्य) ६४, ६६, ७२, ६३, ६७, ६६, १००, १०५, ११०, १२२, १३३, १३६, १४१, १५३, १६१, १७७, १८३, १६१-१६६, २०१, २०३, २१३, २१६, २२०, २२१, २२७, २२६, २३०, २३५, २३६, २४८, २५१, २५२, २५४, २५६
त्रिशला-नंदन (महावीर) १५२, १७६, २५१
त्रिशला-सुत (महावीर) २२३
त्रैशल (महावीर) १७६, १७७
दयारामजी (मुनि) ७३, ८०
दादू (संत) १८२
दानचंदजी चौपड़ा १५८
दीपां बाई २५१
दुलीचंदजी (मुनि) ६६
धनकंवरजी (साध्वी) ११६
धनराजजी बैद १२१, १५८
धनराजजी (मुनि) २४१
धन्नां रा जाया! (मंत्री मुनि) १६०
नंदलालजी (डॉक्टर)१६३, १६६, १६७
नगराजजी (मुनि) १२०
नत्थराजजी भंडारी ७८
नत्थू/नथमलजी (आचार्य) ६६, २०५, २४५

नरसिंहदासजी कोठारी २२८
नवलांजी (साध्वीप्रमुखा) १८६
नाथूसिंहजी १०२
नारसिंह (सरदार) २४५, २४७
नेमनाथजी सिद्ध २४७
नेमीचन्दजी मोदी १५३
नेमू (नेमीचंदजी मुनि) ६६, १२०
नेमूभाई १५८
नोजा बाई १५८
पटवा, विजयचन्दजी ८२
पन्नी बाई १५६
पन्नो (पन्नालालजी मुनि) ११६, १२१
पानकंवरजी (साध्वी) १२०, १२१
पूनमचंदजी कठोतिया १५८
पूनांजी (साध्वी) १२०
पूर्णचंदजी चौपड़ा १८२
पूस (पूसराजजी मुनि) ७२
पृथ्वीराजजी (मुनि) २४५
प्यारचंदजी सुराना १६३
प्रतापमलजी मेहता ७१, ६०
प्रद्योतन (चण्डप्रद्योत) १५१
प्रह्लाद ८६
फतेहलालजी मेहता १०८-११०, ११४
फतेहसिंहजी ११०, ११४
फत्तो (फतेचन्दजी मुनि) ७३, ८०, ८२
फूलचंदजी १२१
फूलांजी (साध्वी) २३४, २४८
बखतावरजी (साध्वी) १२०
बच्छराजजी (मुनि) २४८
बच्छराजजी सिंघी ७१
बरजी बाई १५६
बरजूजी (विजयश्रीजी साध्वी) ११६
बलि (राजा) ६६
बल्लू शाह २५१
बालचंदजी गोलछा १५६
बालचन्दजी बोकड़िया १५८
बालचन्दजी-सूरजमल दूगड़ १५६
बालू (बालचंदजी सेठिया) २४८
बिरधीचंदजी गधैया १५७, १६६, २४४
बिरधोजी जीरावला ७१
बीथम १२८
बुधमलजी (मुनि) ६६
ब्रह्मचारी (आचार्य रायचन्दजी) १६७
भंवरलालजी कठौतिया १५८
भंवरलालजी डोसी १६८
भंवरलालजी देवड़ा ६७
भत्तूजी (साध्वी) १२१
भार (री) मालजी (आचार्य) ११४, १६७, २०३, २३६, २५२
भीखण/भिक्षु/ (आचार्य) ७०, ७३, ७४, ८१, ६८, ११०, ११६, १४१ १७५, १६७, २०३, २३६, २३८, २५१, २५२
भीखणचन्दजी दफ्तरी १२०
भीखमचंदजी चोरड़िया १६०
भीमराजजी (मुनि) २४१
भीमसिंहजी (महाराणा) ११४
भोपालसिंहजी (महाराणा) १२८, १३३, २२७, २३८
भोज (राजा) २३२
मंगलचंदजी बोथरा १५६
मगनभाई १५७, १५८, १६६
मगनलालजी (मंत्री मुनि) १००, १०१,

१०७, १६१, १६३, १६७, १६६, १७६, १८४-१६२, १६६, १६६, २०१-२०६, २१०, २१४, २२१, २४३, २४५,
मगनांजी (साध्वी) १२०
मग्घूजी (साध्वी) १२०
मघराजजी/मघवा (आचार्य) ११४, १८६, १६७, २००, २०३, २१०, २१६, २२३, २२६, २३२, २३७, २५०, २५२
मघराजजी बोथरा १५६
मघवा-शिष्य (कालूगणी) १४३
मघी बाई १६०
मदनसिंहजी मुरड़िया १६३, १६७
मदारी खां २४५
मनोहरांजी (साध्वी) १२१
मलयगिरि (आचार्य) २३३
मलयज (चंदन मुनि) २११
महालचंदजी डागा १५६
महालचंदजी बैद १५६
महालचंदजी सेठिया १५६
महावीर (तीर्थंकर) त्रिशला-नंदन, त्रिशला-सुत, त्रैशल, वर्धमान ६६, १४१, २५०
मांगीलालजी मारू १४६
माणकचंदजी भंडारी ७१
माणकचन्दजी भूतोड़िया १५६
माणकलालजी (आचार्य) १८६, १६०, १६७, २००, २०३, २१०, २२६, २३२, २५२
मानकंवरजी (साध्वी) १२०
मानमलजी दूगड़ ७८
मानसिंहजी (जयपुर-नरेश) ६३
मालजी री मां १६०
मालमसिंहजी डोसी १६८
मालमसिंहजी मुरड़िया ६४
मालवी (आचार्य डालचंदजी) १६७
मिलापचन्दजी (मुनि) ११६
मीठालालजी (मुनि) १२१, १३०, १३१
मीरां १३१
मीरांजी (साध्वी) १२०
मुक्खांजी (साध्वी) २३८
मुलतानमलजी (मुनि) २४१
मूलचन्दजी कोठारी ११०, २१६
मूलचन्दजी सेठिया १५८
मूल-नंद (कालूगणी) १०४
मूल-लाल (कालूगणी) २१६, २१७
मूल-सूनु (कालूगणी) ६४, १७३
मोतीलालजी दूगड़ २४७
मोती (मोतीलालजी मुनि) १२०
मोदीलालजी (डॉक्टर) १६३
मोहन-मात १५६
मोहनलालजी कठौतिया १५८
मोहनलालजी बैद १६६
मोहनलालजी (मुनि) १२०
मोहनांजी (साध्वी) ११६, १२०
रंगलालजी हिरण १७७, २२४
रखिया २३४
रघुनंदनजी (आयुर्वेदाचार्य) १७६-१८३, १८५, १८८-१६०, २०८, २१२, २१५, २३७
रणजीतमलजी (मुनि) २३८
रणजीतसिंहजी पांचोली १२६
रतनकंवरजी (साध्वी) १२०

रतनी बाई १२१, २३६
रमण बहन १५८
राघव १०२
राजकंवरजी (साध्वी) ११६
राणाजी (हरिसिंह चौहान) २३८
राणाप्रताप ११०
रामदेई बाई १५६
रामधनजी जती २४७
रामलालजी आंचलिया १५६
रायकंवरजी (साध्वी) ११६, १२०
रायचन्दजी/ऋषिराय (आचार्य) १३५, २०३, २५२
रावण १४४
रावतमलजी (मुनि) २४६
रिखीरामजी (मुनि) ७०, ७४, ८०, १२१
रुक्मणी बहन १७६
रूपां जतणी २४७
रोहक १५१
रोहिणी २३४
रौहिणेय १४१
लक्ष्मीवल्लभाचार्य २३३
लच्छीरामजी (मुनि) ७१, ७६, ८०, ८१, १२१
लच्छीरामजी (राजवैद्य) १८२, १८३
लाडांजी (साध्वीप्रमुखा) २५३
लालांजी (साध्वी) १२१
लिछमणसिंहजी (आई. जी. पी.) १२६-१३३
लिछमांजी (साध्वी) १२०, १२१
लीलाधरजी ८१
वदनांजी (मातुश्री) २३०
वर्धमान (महावीर) १७५
वामनावतार ६६
विक्रमादित्य १५१
विभूतिभूषण (डॉक्टर) १६८
वीर (महावीर) ८५, ६५, २००, २११
वृद्धिचन्दजी गोठी १८२, १८३, २४७
वृद्धिचन्दजी नाजिम २४७
वृद्धिचन्दजी सेठिया १६०
शंकर (आदि शंकराचार्य) ८६
शिवराजजी बैंगानी १५८, २४२
शिवराजजी (मुनि) १६३, २०३, २१०, २३५, २४१, २४४
शीलांक (आचार्य) २३३
शुभ (शुभकरण दसाणी) ६६
शुभकरणजी सुराणा २१५
श्यामनारायण (डॉक्टर) १८३
श्रीलालजी (स्था. आचार्य) २४७
संतोकांजी (साध्वी) १२०
संतोकी बाई १५६
सज्जनसिंहजी ११४
सद्दू बाई १५६
समदा बाई (समदड़ी) १६०
समेरमलजी बोथरा २४८
सम्प्रति (राजा) १५१
सम्मन (कवि) २२६
सुंदरलालजी मुरड़िया २२७
सुंदरी बाई १६०
सुखदेई बाई १५६
सुखदेव सहाय (प्राइम मिनिस्टर, उदयपुर) १२८

सुखलालजी (मुनि) १६३, २११, २३५
सुजाणांजी (साध्वी) ११६
सुजानमलजी (खारड़) २४८
सुवटांजी (साध्वी) १२१
सुवटी बाई १६०
सूरजकंवरजी/सूर्यकुमारीजी (साध्वी) ११६, १२०
सूर्यमलजी चौधरी १४६, १६६
सोनांजी (साध्वी) २४३
सोवनमलजी-संपतमलजी भंडारी ८६
सोहनलालजी (मुनि) १६३, २११, २३५, २४२, २४५
सोहनांजी (साध्वी) ७१, १२१
सौमित्री (लक्ष्मण) १४४
हंसराजजी सिंघी ७१
हजारीमलजी बैद १५८
हजारीमलजी भंसाली १५६
हजारीमलजी रामपुरिया ६६
हणूतमलजी बैंगानी १६६
हमीरसिंहजी मुरड़िया १६२
हरखचन्दजी भादानी १६६
हरनाथजी (मुनि) ७६
हर्मन जेकोबी २३८
हस्तीमलजी (मुनि) १२०
हाथीमलजी (मुनि) २१०
हिरण्यकश्यप ८६
हीराचंदजी कातरेला ६६
हीरालालजी १५१
हीरालालजी (मुरड़िया) १०६, ११०, १२८, २२७
हुकमचन्दजी (हाबली-काबली) १५१, १५२
हुलासमलजी (गायक) २४७
हुलासांजी (साध्वी) १२१
हुलासी बाई आंचलिया १५८
हुलासी बाई भंसाली १५६
हुलासी बाई भूतोड़िया १५६
हुलासी बाई (सुजानगढ़) १६०
हेमराजजी (मुनि) ७२

ग्राम-नाम

अजबोजी का गुड़ा ६६
अम्बापुरी/आमेट १०६, १२१
असम १४७, २२६
असाड़ा ८४
आंगदूस १०१
आगरिया १०७
आबू २३८
आहेड़ १३३
इंदौर १५१-१५३
इलाहाबाद २३६
ईड़वा ७८, २१६
ईडर स्टेट १६८
उड़ीसा १४७
उज्जयिनी/उज्जैन १५१
उदयपुर १०८-११०, ११४, १२०-१२२, १२७, १२८, १३१, १६८, १७१, १७७, २२१, २२२, २३३, २४४
एदला ६५
कंटालिया ६६, १००, १०१
कच्छ १४७
कठार १०७
कमेड़ी १०६

करेणी १५६
कर्णाटक/करणाटी १४७
कलकत्ता १५२, १६८, २२६
कांकरोली १०७
कांठा ६५, ६६, १०२, १२२
कानोड़ १३४, १३५
काराई १०७
कारारी ६६
कारोई १७०
कालू ७८
किशनगढ़ १५६
कुवाथल १०६
कूचविहार २२६
केलवा/भिक्षुनगर १०७
केलवाज ६६
केसूर १५४
कोंकण १४७
कोठारिया १०७
कोरणा ८४
कोलिया ७८
खाटू ७८
खानदेश १४७, २३८
खारच्या ६६
खींवाड़ा ६६
खैरवा ५५, ६६
गंगापुर १५५, १६१, १६२, १७०, १७१, १७६, १७७, १७६, १८३, २१६, २१८, २२३, २२४, २३०, २३४, २३५, २५३
गंगाशहर/गंगाणा ११६, १२०, २३३, २४४, २५३
गाधाणा १०१
गिरिगढ़ (डूंगरगढ़) १२०
गुंदोच ६५
गुड़लां १७०
गुड़ली १३३
गुजरात १४७
गोगुन्दा १०७, १०८
गोड़वाड़ ६५
ग्वालियर १५१
घासा १३३
चंदेरी (लाडनूं) ११६-१२१, २१६, २२३, २३२, २४६
चतराजी का गुड़ा ६६, १००
चन्देसरा १३३
चांदारूण ७८
चाड़वास ६८, १२०
चाणोद ६५
चातुरगढ़/दुर्ग (सुजानगढ़) ६८, ८०, १२२
चिक्कलवास १०८
चित्तौड़ १६१, १६३
चिरपटिया १०१
चूरू २३३, २४२, २४५
चोगामड़ी १६३
चोबारयां ६६
छापर ६८, ७२, २३४, २४२
छोटी सादड़ी १३७
जब्बलपुर २३६
जयपुर ६४, ६२, ११६, १४७, १८२, २३४, २३८, २४८, २५५
जर्मन २३८
जसोल ८३
जाणुंदा ६६

जावद १६१, १६२, १७६, १८४
जावरो १३६, १४१, १४४, १६१
जेतपुर १०७
जेतारण ७६
जोजावर १०२
जोधपुर/जोधाणा ७१, ७३, ७८, ८४-८६, ६०-६३, ६५, ११६, १२२, १२७, २३३, २३७-२३६
झखनावद १५४
झाबुआ १५५
झालामंड ६५
टमकोर १२०
डाबड़ी १५६
डीडवाणा ७८, ११६
डूंगरगढ़ १६६, २३४, २४४
डेगाणा ७८
ढूंढाड़ २२३, २३३
तारखेड़ी १५४
तारानगर ७८
तुरक्या १३३
थली/थलवट ७०, १३८, १३६, १४७, १५६, २००, २३३
थामला १३३
थूर १०८
दाराखेड़ा १३३
दिल्ली १२८, २३६
दुवाला १७०
दूधोड़ ६६
देवदुर्ग १०६
देवरिया १२०
दोलाजी खेड़ा १०६
धराड़ १४६
धाकड़ी १०१
धीनावास १०१
धोइन्दा १०७
नमाणा १०७
नागदा १५४
नागपुर १४७
नाथद्वारा १०७, १२१
निमच १३७, १६१
निमच छावणी १३७
नीमली १०१
नोहर ११६, १२१
नौगांव २२६
पंजाब १४७, २२३, २३३
पंथपीपलाई १५१
पड़िहारा ६८, १२०, १२१
पचपदरा ७१, ८०
परवाल १०७
पलाणा १३३
पादू ७८
पाली ८२, ६५
पींपली १०६
पीपलाद ६६
पीपाड़ ८०
पुर १७०
पूठोली १६३
पूना २३८
पेटलावद १५४, १५५
पोखरण ६०
फाजिल्का २४७
फुलाद की चौकी १०२

फ्रीगंज १५१
बंगाल २२६
बंबई/बोम्बे १४७, १५८, १६६, २२६, २३८
बखतगढ़ १५४
बड़नगर १२१, १४६, १४७, १४६, १५०
बड़ा गुड़ा ६६, २१६
बड़ी खाटू ७८
बडू २३५
बणदार ६६
बम्बू १२१
बरवाड़ा १०७
बरार १४७
बलूंदा ७६
बाघाणा १३७
बालोतरा ८२
बिलपांक १४६
बिलियो १७०
बिहार १४७
बीकानेर (णो, यत) १४६, २२५, २२७, २३३, २३८, २४८
बीठोड़ा ६५
बीदासर (णो, यत) ६८, ८०, ११६, १२१, १६६, १६०, २००, २१६, २२३, २२७, २२६, २३२, २३३, २४२, २४६, २४७
बोहीड़ा १३६
ब्यावर १५५, २२६, २३८
भादविगुड़ो १०८
भिवाणी १४७
भीनासर २४२
भीलवाड़ा १६३, १६४, १६७, १७०, २२२
भैंसाणा ६६
मंडपिया १६३, १६४, १६७
मचींद १०७
मणास १५४
मद्रास १४७
मन्दसौर १३८, १६१
मरुधर ६६, ७०, ७३, ७६, ७८, ८३, ६३, १२२, १४७, १५७, २२३, २३३
महमदसिंह २२६
महाराष्ट्र ८६
महू छावणी १३७
मांढ़ा १०१
माधुनगर १५१
मारवाड़ १२७
मालवा १३३-१३७, १४१, १४४, १४६, १४६, १५२, १५३, १५५-१६०, १७१, २१८, २२३
मालाणी ८०
मुगलाई १४७, २३८
मुजरास १७०
मुसालिया १००, १०१
मेड़ता ७८,
मेवाड़/मेदपाट ८६, ६६, ६८, १०१, १०२, १०६, १०६, ११०, ११६, १२७, १४७, १५६, १५७, १६०, १६१, १७०, १७१, २००, २२३, २२७, २३३
मोखमपुर १०७
मोठ ७४
मोमासर ११६
मोलेरा १०७
रंगपुर २२६

रतनगढ़ (दुर्ग) ६८, १०१, १५५, २३३
रतलाम १४४, १४६, १५६, १५७, १६१
राजगढ़ १२०
राजनगर (समंद) १०७, १२०, १३४, १७१
राजलदेसर/राजाणा ६८, ८०, १२१, १२८, १८६, २१६, २३३
राणावास १०१
रातानाड़ा ६५
रामसिंहजी का गुड़ा ६६, १०१, १०२
रायपुर १४७
रावलिया १०७
रोयट ६५
लघु खरसोद १५०
लाडनूं ६८, ७३, ७५, ७६, १६८, २१६, २३३, २४४
लाल गुवाड़ी १५६
लूणदा १३६
वसुगढ़ (रतनगढ़) ११६, १६६
वासणी १०१
समंदड़ी ७१, ८०, ८४, १२०
सरदारगढ़ १०७
सरदारशहर ६४, ७६, १२०, १२१, १५५, १८३, २३३, २४२, २४७
सरसाणो १५०
साकेत १०२
सादड़ी १३६
सार्दुलपुर १२१
सावेर १५१
सिराजगंज २२६
सिरियारी ६६, १०२
सिवाणची ८०
सिवास ६६
सी.पी. १४७, २३८
सीरवाद १०१
सुजानगढ़ ६८, ७५, ११६, १२०, १५८, २३३
सुधरी ६५-६६, १२०
सूरत १५८
सेखाटी १४७, २३३
सेखावास १०१
सेला १०७
सेलाना १६१
सोजत १०१
सोजतरोड़ ६६, ६७, १००
सोरती १७०
हमीरगढ़ १६३
हरियाणा १२०, २३३
हांसी १२०, १४७
हिसार १४७
हैदराबाद १४७, २३८

ग्रन्थ-नाम

अभिधान राजेन्द्र कोश १४५
अष्टाध्यायी २३७
आराधना २०६
उत्तराध्ययन २३८
कालू-कल्याण मंदिर ६८
कालू-कौमुदी ७६, २३७, २४२
गीता (ज्ञानेश्वरी) ८६
गोम्मटसार ७८, ७६
चंद-चरित्र ६८
चरक १७६

डालिम-चरित्र २५५
दशवैकालिक २०७
नेमिचरित २३३
पाण्डव-चरित २३३
पार्श्व-चरित २३३
प्रमाणनयतत्त्व ६८, २४१
भक्तामर १६३
भगवती ६८, १७६, २३७, २३८, २४३
भगवती जोड़ २४३, २४८
भिक्षुशब्दानुशासन ७६, २३७, २४२, २४६
मगन-चरित्र १६०, २५५
माणक-महिमा २५५
रामचरित्र ८६, १००, १५४
वर्धमानदेशना १८४
व्यवहार-चूलिका २३८
षड्दर्शन ६८, २३७, २४१
सारकौमुदी २३३
सारस्वत-व्याकरण २३३, २४२
सिद्धांत-चन्द्रिका २३३, २४२
सिंदूरप्रकर २४४
सुश्रुत १७६
सूयगडांग ८६
हैम-व्याकरण ७६

३. ग्रन्थ में प्रयुक्त मूल रागिनियां

उल्लास/ढाळ

१/१ म्हारै रे पिछोकड़ बाह्यो रे कुसुम्भो,
जे कोइ चुगवा आवै रे, कुसुम्भो।।ध्रुवपद।
चुगती चुगाती जोयड़ होई रे तिसाई
जे कोइ पाणिड़ो पावै रे, कुसुम्भो।।

१/२ जय जय जय जिनजी नै नमूं रे नमूं।।
नमूं रे नमूं हूं तो घणी रे खमूं।। जय जय जय जिनजी नै...
पदम प्रभू जिनजी ने प्रणमूं, नीचो शीश नमाई।
कच्छ देश कोसम्बी नगरी, धर नरपति सुखदाई।।

१/३ कांय न मांगां, कांय न मांगां, कांय न मांगां जी,
राणाजी ! मांगां पूरण प्रीत, बीजूं कांय न मांगां जी।।ध्रुव.
हाथी न मांगां, घोड़ा न मांगां, नहिं मांगां राज-पाट।
उदियापुर रो वास न मांगां, मांगां पिछोला रो घाट।। म्है तो कांय...

१/४ जय जश गणपति वन में आया, राय सुणी हरसायो रा। सुगणा !
नृपति सेठ वीरदत्त जैवन्ती दरसण कर सुख पायो रा।
सुगणा स्वाम वंदीजै
सरस वाण सुणीजै रा, सुगणा ! स्वाम वंदीजै।
संवेगरस पीजै रा, सुगणा ! स्वाम वंदीजै।
पर्युपास तास कीजै रा, सुगणा ! स्वाम वंदीजै।।

अन्तर ढाळ

१/४ मतिमन्त मुणी ! सुकुलीणी श्रमणी ! गुरु-शिक्षा धारिये।
पश्चिम रयणी, ऊठ-ऊठ अक्षर-अक्षर संभारिये।। ध्रुव.
मुनि पंच महाव्रत आदरिया, तजि धण कण कंचन परिवरिया।
मनु कंचन गिरिवर कर धरिया।। मतिमन्त मुणी !

१/५ मूक म्हांरो केड़लो मैं ऊभी छूं हजूर रे।

१/६ डाभर नैणी रे। ध्रुव.
कोरो कळसो जल भर्‌यो कांइ धरती शोष्यां जाय।
बालु रे दिक्खण री चाकरी म्हांरो पिउ तिरसायो जाय।।

१/७ पुण्यसार सुख भोगवै रे, आठ नारी संघात।
कमी नहीं कोई बात नी रे, हर्ष मांही दिन जात। दुख गयो विलाई रे।।
देखो पुण्यसार नीं प्रबल पुन्याई सहु मन भाई रे।
भाई भाई भाई रे या लोक सराई रे। देखो...

१/८ राजिमती इम विनवै हो मुनिवर ! मन चलियो तूं घेर,
थोड़ा सुखां रे कारणे हो मुनि ! क्यूं हारे नर भव फेर हो।
सुण-सुण साधजी हो मुनिवर !
पांच महाव्रत आदर्‌या हो मुनिवर ! मेरू जितरो भार।
वमिया री बांछा करो हो मुनिवर ! लीधो संजम भार।। क सुण-सुण...

अन्तर ढाळ

१/८ गहरो जी ! फूल गुलाब रो...
सात सहेल्यां रै झूलरै, म्हारी गवरल गइ रे तळाव, राठोड़ !
गहरो जी फूल गुलाब रो।
और सहेल्यां पाछी बावड़ी, म्हारी गवरळ रही रे तळाव, राठोड !
गहरो जी फूल गुलाब रो

१/६ विनय ! निभालय निजभवनम्।
तनु-धन-सुत-सदन-स्वजनादिषु, किं निजमिह कुगतेरवनम्।
विनय! निभालय निजभवनम्।।ध्रुव.।।

येन सहाश्रयसेऽतिविमोहादिदमहमित्यविभेदम्
तदपि शरीरं नियतमधीरं त्यजति भवन्तं धृतखेदम्।। विनय!

१/१० भविकां ! मिथुन उपर दृष्टंत कहै जिन शान्ति जी रे लोय ! ध्रुव.
भविकां ! विषय न सेवो बिरुवो दुखदायी घणो रे लोय !
भविकां ! क्षेत्र भरत मां नलपुर नयर सुहामणो रे लोय ! भविकां...

अन्तर ढाळ

१/१० स्वामीजी ! थांरी बा मुद्रा जग ख्यात।
५/१५, ६/६ वज्रासन में बैठा दीपो, हो जोड़्यां जुग हाथ।।स्वामीजी ! ध्रुव.
शान्तमना अश्रान्त मनोबल, नत कंधर स्थिर गात।
मुद्रित-लोचन संकट-मोचन, मंगल परम प्रभात।। स्वामीजी !

अन्तर ढाळ

१/१०,१/१३ कीड़ी चाली सासरै रे, मण-मण काजल सार।
२/४ आधो काजल घूंघटे रे, आधो काजल बार।।
करेलण घड़ दै ए। तुं तो घड़ दै नी असल गिंवार, करेलण घड़ दै ए।।

१/११ वीरमती कहै चंद नै, वैसी नै एकत्र।
चिंता रखे धरतो किसी, हूं छूं तांहरै छत्र।। वीरमती कहै चंद नै...

१/१२ भूमीश्वर अलवेश्वर कानन फेरै तुषार।
वन श्वापद कस्या आकुला, तरु-तरु थया असवार।। भूमीश्वर...

१/१४ आज आनन्दा रे। ध्रुव.
शुभ वेळा शुभ मुहूर्त्त, आनन्दा रे, जायो सुत जयकार क। आज आनंदा रे!
नृप सुण तन मन हुलस्यो, आनन्दा रे, दीसे बधाई सार क।।
आज आनंदा रे।।

१/१५ सायर लहर स्यूं जाणै जी मींडक कूप नो,
कुबज्या सुपरिणामे जी गुण रती रूप नो।
नाळेरां नहिं दीठा जी थळिया बापड़ा,
तस दाढ़े लागै मीठा जी काचर चीबड़ा।।

१/१६ जिण मारग में धुर स्यूं आदि जिणंद क,
त्यां आदि काढी जिणधर्म री जी।
त्यांरी सेवा सारे सुर नर चौसठ इन्द्र क,
त्यां सारां पेली संजम लियो जी।।

२/१, २/११ म्हारी रस सेलड़ियां, आदीसर कीन्हो उत्तम पारणो।
१/५ ल्यो अखै तीज दिन, पोतो श्रेयांस कुमार उधारणो। म्हारी रस...ध्रुव.
गृह समाज अरु राजनीति तज, धर्मनीति पथ ध्यावै।
बारै माह री विकट तपस्या, सुण मन विस्मय पावै जी।। म्हारी रस...

२/२ तू तो पल-पल राम समर रे, सुख पासी रे जिवड़ा!

२/३ हेम ऋषी भजिए सदा रे। ध्रुव.
मुनिवर रे उपवास बेला बहुला किया रे,
तेला चोला तंत सार हो लाल।
पांच-पांच ना थोकड़ा रे, कीधा बहुली बार हो लाल।। हेम ऋषी...

२/४ हां रे हूं तो इचरज पामी स्वामी वचने ताम जो,
पूरब किहां ए आभा नगरी किम भणै रे लोय।
हां रे ए तो आया पश्चिम दिशि थी किहां नृप चंद जो,
जाण्यो मैं एह आगल कही होशे किणे रे लोय।।

२/५ पुण्य रा फल जोइजो। ध्रुव.
साधु श्रावक व्रत पाल नै रे, देव हुओ अभिराम।
महले देवी मोह्यो चिंतवै रे, रखे चवां इण ठाम रे।। पुण्य रा...

२/६ नमूं अनन्त चौबीसी ऋषभादिक महावीर।
आर्य क्षेत्र मां घाली धर्म नों सीर।।
महा अतुल बली नर शूर वीर नैं धीर।
तीरथ प्रव्रतावी पोंहता भव जल तीर।।

अन्तर ढाळ

२/६ सुमतिनाथ सुमता पथ दाता।

२/७ जंबू ! कह्यो मान लै रे जाया ! मत ले संयम भार। ध्रुव.
अै आठूं ही कामणी जंबू ! अपछर रै उणिहार।
परणी नै किम परिहरो, ज्यांरो किम निकलै जमवार।। जंबू !...

२/८ भजिये निशदिन कालु गणिंद। ध्रुव.
भिक्षू-शासन अधिक विकासन, अष्टम आसन धार।
कालु कलिमल-राशि-विनाशन प्रगट्या जगदाधार।। भजिये...

अन्तर ढाळ

२/८ एक दिवस विषे नृप सुत साथ चौगाने धन्नो आवै
अति रंग रसे, बहु जन-वृन्द सुपेखत मेष लड़ावै।। एक दिवस...ध्रुव.
उभय मेष तिहां आहुड़िया, जुद्ध करण सम्मुख जुड़िया।
कोई आपस में अति ही लड़िया।। एक दिवस...

अन्तर ढाळ

२/८ तावड़ा ! धीमो पड़ज्या रे २
म्हारी धण रो दूखै पेट सूरज बादल में छिपज्या रे, तावड़ा...ध्रुव.
राजन चाल्या चाकरी स रे, खांधे धरी बंदूक।
के तो सागे ले चलो, के कर डारो दो टूक।। तावड़ा...

अन्तर ढाळ

२/८ ऐसो जादूपति।
२/६ डाभ मुंजादिक नीं डोरी, बंधिया करै हेला नै सोरी।
सी तापादिक कर दुखिया, साता बांछै जाणै हुवा सुखिया।।

अन्तर ढाळ

२/६ कुंवर ! थांस्यूं मन लाग्यो, मन लाग्यो अंतर जाग्यो।
निरखूं अपलक नैण रे, कुंवर थांस्यूं मन लाग्यो। ध्रुव.

चकरी ज्यूं चितड़ो भमै रे २ खिण-खिण आठूं याम रे। कुंवर !
के जाणै कांई हुयो रे २ भूली सगला काम रे।। कुंवर !

अन्तर ढाळ

२/१०, ४/६ धन-धन भिक्षु स्वाम, दीपाई दान दया।
सावद्य निरवद्य छांट कृपानिधि कीधी मया।
कीधी मया जी बहु जीव तिर्‍या,
त्यांरी साची सरधा धार भविक बहु उद्धरिया।।

२/१०, ५/६ आदिनाथ मेरे आंगण आया देखो भाग्य सवाया जी।

अन्तर ढाळ

२/१०, ५/६ सुखपाल सिंहासण लाज्यो राज, सुगणजी !

२/११ बगीची निंबुवा की,
आतो झुक-झुक झोला खाय। बगीची निंबुवा की। ध्रुव.
जयपुर कै बाजार में, कांई पड़्यो पेमली बोर। बगीची...
नीची होय उठावतां, काई पड़्यो कमर में जोर।। बगीची...

अन्तर ढाळ

२/११, ६/८ चालो बाबाजी घर आपणे हो राज
थांने माताजी री आण, थांने दादीसा री आण।
अब थे करो न खींचाताण, चालो बाबाजी घर आपणे हो राज।।ध्रुव.
बोले बालक बोलड़ा रे, मण-मण मीठा बोल।
गळे लटुंबै मोद में दाढ़ी स्यूं करै किलोळ।। चालो...

२/१२ प्रीतमजी ! हिव तुम वेग पधारो। ध्रुव.
वन में तजी अकेली, मैं समझी नहीं पहेली हो। प्रीतमजी !...
नैणां स्यूं नीर बहावूं, मिरगली ज्यूं चक्कर खावूं हो।। प्रीतमजी!...

अन्तर ढाळ

२/१२ सीपय्या ! तेरी सांवरी सूरत पर वारी।
सासुजी रै जंवायां री मरोड़ लागै प्यारी।। ध्रुव.
टोपी राज नै सोहवै फेंटै री छबी न्यारी।
म्हांरी राजकुंवर रै ढ़ोलै री मरोड़ लागै प्यारी।
मरोड़ लागै प्यारी, थारी सूरत पर बलिहारी।
सासूजी रै जंवाया री मरोड़ लागै प्यारी।।

२/१३ जिण घर जाज्ये हे नींदड़ली, जे धाप-धाप अन खावै।
जे भांगां धणी घुटावै, ज्यांने राम नाम न सुहावै।। जिण घर...ध्रुव.
मैं तने निद्रा बरजियो, तूं संतन के मत जाय।
कोई क मोडो मारसी जद आसी मूंड फुड़ाय।। जिण घर...

२/१४ धीठा में धीठ म्हें कहा बिगाड़्या तेरा।
निरलज्ज नरेश्वर ! पला छोड़ दे मेरा।। धीठा में...ध्रुव.
परणी बिन पर तरुणी बांछ्या इह भव अपजस होवै।
जी... जन्म बिगोवै बलि अति रोवै मानव नो भव खोवै।। धीठा में...

अन्तर ढाळ

२/१४, ३/८ रूठ्योड़ा शिव शंकर म्हारै घरे पधारो जी।

२/१५ निमित नहिं भाखै गुरु ज्ञानी, हुवै जिम संयम की हानी।। ध्रुव.
जैन मुनि सावज नहिं भाखै, महाव्रत यतना सूं राखै,
सुधारस संयम को चाखै, मुक्ति के सुख की अभिलाखै।
निमत भाखणो साधु नै कलपै नहीं लिगार,
वीतराग भगवान परूप्यो अनरथ हुवै अपार,
सुणो मन थिर कर भवि प्राणी।। निमित नहिं...

३/१, ३/१२ चंडाली चोकड़िया हो टाळोकर चाळा चाळव्या,
दुर्मति कुमती कीयो रे प्रवेश।
क्रोध भुजंगी पेठो हो टाळोकर रा घट मझै,

समकित चारित्र खोवै करी कलेश।
दुर्गति केरी साई हो टाळोकर पक्की ले लीधी,
आल पंपाळज बोलै हो, टाळोकर लज्जा तज दीधी।।

* महिला रो मेवासी हो लसकरियो चाल्यो चाकरी।

३/२ पायल वाली पदमणी, हे नाजु म्हारी गलियन मत आव।
थारी पायल बाजणी, है म्हारे आलीजा रो बुरो स्वभाव।।

अन्तर ढाळ

३/२, ३/१३ सुणो भव्य प्राणी रे !
चंद नरिंद संबंध, सरस चित ठाणी रे।। ध्रुव.
राजा राणी रंग में रे खेलै अनोपम खेल।
नवली दीठी नारियां तिहां शशि वदनी गज गेल।। सुणो भव्य...

३/३ सहनाण पड़्यो हथलेवै रो हिंगळू माथे में दमकै ही,
रखड़ी फेरां री आण लिया गमगमाट करती चमकै ही।
कांकण डोरा पैरां मांही, चुड़लो सुहाग लै सुघड़ाई,
मैंहदी रो रंग न छूट्यो हो था बंध्या रह्या बिछिया पांही।।

अन्तर ढाळ

३/३ रूड़ै चन्द निहालै रे नवरंग नारी चेष्टा। ध्रुव.
राणी नव पल्लव नव कुसुमां निरखै तिहां वनराजी।
ते शोभाये सुरपति नो वन ऊर्ध्वलोक गयो लाजी।। रूड़ै...

अन्तर ढाळ

३/३ बायो गुलाबसाही केवड़ो।
केवड़े री छबी गुलजार, म्हांरा बनड़ा ! बायो गुलाबसाही केवड़ो।। ध्रुव.
नवल बनै रे व्याव में सूंखड़ला सराइजै,
सूंखड़ला में केवड़ो है तेज, म्हांरा बनड़ा ! बायो गुलाबसाही केवड़ो।।

अन्तर ढाळ

३/३ सैणां थइये जी रे। ध्रुव.
पूर्वे गणि आज्ञा थी धारया, पंच महाव्रत जाणी जी रे।
हिवड़ा पिण सिध अरिहंत गणि नी साख करी पहिछाणी रे।। सैणां—

३/४ वारू हे साधां री वाणी।

अन्तर ढाळ

३/४ रच रह्यो ज्ञान ज चरचा स्यूं।

अन्तर ढाळ

३/४ जय बोलो, जय बोलो, नेम जिनेश्वर की, अखिलेश्वर की।
जय बोलो...ध्रुव.
तोरण स्यूं ही पाछा मुड़ग्या, बात सुणी जद हिंसा री। जय बोलो...
मोह मार बणग्या वैरागी, छोड़ी राजिमती नारी।। जय बोलो...

अन्तर ढाळ

३/४ चालो सहेल्यां आंपां भैरूं नै मनास्यां हे।
भैरूं नै मनास्यां आपां मन रा कोड पुरास्यां हे।।

३/५ मत ना सिधारो पूरब की चाकरी जी, ध्रुव.
बाय चढ्या छा भंवरजी पीपली जी,
हो जी ढोला होय रही घेर घुमेर।
सींचण री रुत चाल्या चाकरी जी,
हो जी म्हारी सास सपूती रा पूत।। मत ना सिधारो...

अन्तर ढाळ

३/५, ५/१२ पिउ पदमण नै पूछै जी, हाथ लगाई मूंछै जी।
सुत नों कारण स्यूं छै जी,
हूं परदेशे गयो थो मुगधे। किम ए प्रसव्यो बाल?
पिउ षदमण नै पूछै जी।।

३/६ प्रभुवर ! आवी बेळा क्यारे आवशे,
क्यारे थइशुं बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथ जो।
सर्व संबंध नुं बंधन तीक्ष्ण तोड़ी ने
विचरशुं क्यारे महापुरुष ने पंथ जो।। प्रभुवर !

अन्तर ढाळ

३/६ आज म्हारै स्वामीजी रे वर्षी रो दिन आयो रे,
हो अंतर आलोयणा।
आज अपणै गुरुवरजी रो वर्षी रो दिन आयो रे,
देखां अंतर लोयणां।
राजनगर में भणतां धुर में उघड़ी अंतर आंख्यां रे,
'सीए दाहे' री रातड़ी।
सोजत बगड़ी बड़लू झांका जोधाणे री झांक्या रे,
बड़ी विलक्षण बातड़ी।।

* लाग्यो लाग्यो जेठ अषाढ़ कंवर तेजा रे,
लगतो तो आयो सावण भादवो।
मोटी-मोटी बूंद पड़ै है कुंवर तेजा रे,
जोड़ा निवाण पाणी स्यूं भरया,
जागो-जागो नींद रा निंदाल कंवर तेजा रे,
थारा साईना बौवे बाजरो।।

अन्तर ढाळ

३/६ म्हारा लाडला जंवाई कुत्ती पाळ लीज्यो जी
इण कुत्ती री पूंछ, जाणै सगोसा री मूंछ।
मूंछ मरोड़ लीज्यो जी, म्हांरा लाडला व्याहीसा कुत्ती पाळ लीज्यो जी।।

३/७, ४/७ आज्या आज्या हे नींद नैणां में घुळज्या,
५/२ लाडू जीमज्या ए नींद भूखी मत जा। आज्या...ध्रुव.
चंदा थारै च्यानणे जी कोई डागल घाली खाट।
गया ए न साजन बावड़्या कोई रात्यूं जोई बाट।। आज्या-आज्या हे...

अन्तर ढाळ

३/७ झड़ाकै छोड़ी हो बाला।
लाग्यो वचन रो तीर टूटग्या त्रटक मोह रा ताला।। झड़ाकै छोड़ी...ध्रुव.
सुण बालम री बात सुभद्रा बणी अणमणी बोली।
कीड़ी पर कटकी न करो पिऊ मैं तो अबला भोली।। झड़ाकै छोड़ी...

अन्तर ढाळ

३/७ कोरो काजळियो। (ध्रुव.) (खोटो लालचियो)
काजळ भरियो कूंपलो, कोई पड़्यो पलंग अध बीच। कोरो काजलियो।
म्हें थांने बरजूं साहिबा ! कोई उन्हालै मत आय। कोरो काजलियो।
उन्हालै री रुत बुरी, कांइ रात्यूं खटमल खाय। कोरो काजलियो।।

३/८ नींदड़ली हो वेरण होय रही। ध्रुव.
थाने सतगुरु देवै छै सीखड़ी, जागो जागो हो कोई भव जीव क।
निद्रा प्रमाद नै वश करी, जीव देवै हो नरकां नी नींव क।।
नींदड़ली हो वेरण होय रही।।

३/६, ४/७ दुलजी छोटो-सो। ध्रुव.
बड़ का पान बड़ाबड़ बाज्या,
म्हांरै दुलजी मांड्यो रे हिंडाळो रे, दुलजी छोटो-सो।।
आंवता बटाऊ और जांवता बटाऊ
म्हांरै दुलजी नै झोटो देता जाई रे, दुलजी छोटो-सो।।

अन्तर ढाळ

३/६ देखो रे भाई ! कलजुग आयो दुनिया पलटी जाय छै।।
आगे धोळा आयां पछै संयम स्यूं चित्त ल्याय छै।
अबै धोळा आयां पछै फेर परणवा ज्याय छै।। देखो रे भाई...

३/१०, ४/८ डाल गणी रै पाट विराज्या भान ज्यूं।
*सुण-सुण सौभागी
जगदम्बा गुरु-अंबा री गुण भम्भा बाजै रे।

कानकुंवर जी संगे छोगांजी सती रे,
विचरै परम उमंगे तन-मन रंगे रे। सुण...
मारवाड़, मेवाड़ मालवै देश में रे
नव-नव रंगी जंगी झंगी लंघे रे।। सुण...

३/११ बधज्यो रे चेजारा थारी बेल, चेजारा थारी बेल,
अनोखो माळियो तें चिण्यो जी म्हारा राज! ध्रुव.
माळिये पोढै सुसराजी रा सींव
छाजां पर सूरज ऊगियो जी, म्हारा राज!

अन्तर ढाळ

३/११ राम रट ले रे प्राणी! सुण संतां री अनुभव वाणी।
घट रह्यो जीवन खिण-खिण ज्यूं अंजलि रो पाणी रे।। राम रट ले...ध्रुव.
मिल्यो भाग स्यूं मिनख जमारो, बण्यो मोह में क्यूं मतवारो।
अठे रही नहीं कोई री भी अमर कहाणी रे।। राम रट ले...

३/१२, ३/१३ चंदन चोक्यां में सरस बखाण, म्हारा...

अन्तर ढाळ

३/१३ मुनिवर नै आपो झूंपड़ी आपां री
अै साधूजी है भारी उपकारी, मुनिवर नै...
वीनवै यूं बालिम नै कुम्हारी। मुनिवर नै...ध्रुव.
दुर्बल देह सनेह संत रो दीसै नस-नस न्यारी।
स्वेद झरै झरणां ज्यूं झर-झर भूखो पिण न भिखारी।। मुनिवर...

३/१४ केसर-वरणो हो काढ कुसुम्भो, म्हांरा राज।
* पभणे सासू हो बहु नै तेड़ी, म्हांरा लाल,
निरख तूं चंदे हो फिर मुझ छेड़ी, म्हांरा लाल
विमलपुरीये हो मनुष्य थयो छै, म्हांरा लाल
अमरस एहनों हो हजि न गयो छै, म्हांरा लाल

३/१५ खम्मा खम्मा खम्मा हो कंवर अजमाल रा।

४/१ दारू दाखां री, दारू दाखां री।
म्हारे छेल भंवर नै थोड़ी-थोड़ी प्याजे रे।। दारू दाखां री। ध्रुव.
ओ लै ओ लै मस्त कलाळी म्हारो टेवटो गिरवी रख लै रे।
आवै तो सासू रो जायो थोड़ी-थोड़ी प्याजे रे।। दारू दाखां री।

अन्तर ढाळ

४/१ घड़ि दोय आंवतां, पलक दोय जांवतां,
सारो दिन सहेल्यां में लागै ए मरवण,
लागै ए मिरगा नैणी, थां बिना घड़ी ए ना आवड़ै।
म्हांरे बाबोसा रै मांडी गणगौर हो रसिया, गणगौर बालम रसिया,
घडी दोय खेलबा ने जायबा द्यो।।

४/२ हठीला कानजी ! छल्लो मैं नहीं छोड़ूं।। ध्रुव.
ले गागर भरवां कूं बैठी छल्लो मेल किनारे,
छल्लो हमारो लिया सांवरा गूजर खड़ी पुकारे।
अपना लालजी! छल्लो मैं नहीं छोड़ूं।।

४/३ वीर पधार्‍या राजगृही में–
*साधुजी ने वंदना नित-नित कीजै, प्रह ऊगंते सूर रे, प्राणी !
नीच गती मां ते नवि जाये, पामै ऋद्धि भरपूर रे, प्राणी !

४/४ इक्षु रस हेतो रे ज्यांरा पाका खेतो रे।

अन्तर ढाळ

४/४ शहर में शहर में वैरागी संयम आदरे।
म्हांरै वैरागी रा तीखा परिणाम हो।। शहर में...

४/५ सहियां ! गावो हे बधावो ज्ञानी गुरु आपणा आया।
आपणा आया हे, मालक आपणा आया,
दरसण कर जन हरसाया। सहियां...ध्रुव.
सूरज-सा तेजस्वी, शीतळ चांदे-सी छाया।
मुळकारो, जीकारो पा है रोमांचित काया।। सहियां !

अन्तर ढाळ

४/५ घोर तपसी हो मुनि ! घोर तपसी !
थांरो नाम उठ-उठ जन भोर जपसी, हो मुनि...
घोर तपसी हो सुख! घोर तपसी!
थांरो जाप जप्यां करमां री कोड़ खपसी, हो मुनि...ध्रुव.
दो सौ बरसां री भारी ख्यात है बणी,
थांरो नाम मोटा तपस्यां रे साथ फबसी। हो मुनि...
ओ अनशन आ सहज समता,
लाखां लोगां रै दिलां में थांरी छाप छपसी।। हो मुनि...

अन्तर ढाळ

४/५ आवै वर लटकंतो
कनकध्वज कुमार गलिये अटकंतो, आवै...ध्रुव.
जोवै विमलपुरी नां वासी, गोखै-गोखै मृगाच्छी रे।
ओ आवै सिंहल नो छावो, परणवा प्रेमला लच्छी रे।।

अन्तर ढाळ

४/६ आवत मेरी गलियन में गिरधारी
* गावत मैं तो पूज तणां गुण भारी २।
ज्यांरी सूरत री बलिहारी, ज्यांरी करणी री बलिहारी।। ध्रुव.
भरतक्षेत्र में भिक्षु प्रगट्या, भारिमाल शिष्य भारी।
सुधरम वीर तणी पर जोड़ी, उत्तम पुरुष उपकारी।।
गावत मैं तो पूज तणां गुण भारी।।

अन्तर ढाळ

४/७ वीर विराज रह्या।
४/८ मनवा ! नांय विचारी रे।
थांरी म्हारी करतां बीती उमर सारी रे, मनवा !... ध्रुव.
गरभवास में रक्षा कीन्ही सदा विहारी रे।
बाहर काढो नाथ ! करस्यूं भगती थांरी रे।। मनवा...।।

४/९ पिओ नीं परदेशी
* कोई कब ही क्यूं पीवो भांग तमाखू।
आंको जीवन रो मोल, टांको घट-पट रो खोल,
झांको जहरीलो झोल।। कोई कब...ध्रुव.
भांगां बागां बिच घोटे मोटे सिल्लाड़े, छोटा-मोटा मिल संग।
पीवै अरु पावै मन की गोठ पुरावै, हो ज्यावै रंग विरंग।।

अन्तर ढाळ

४/९, ६/५ ठुमक-ठुमक पग धरती नखरा करती।
गीत प्रीत का गाती देखो,
आई बिरखा बीनणी हो बीनणी हो बीनणी।।

४/१० **भुवन सुन्दरी जय सुन्दरी,**
अति सोहै रे, मन मोहै रे मुनिवर को जांण।
मुनि मन मोह्यो माननी।। ध्रुव.
कर जोड़ी ऊभी रही रे, मुख बोलै रे अति मीठी बाण
मुनि मन मोह्यो माननी।।

४/११ जग बाल्हा, जग बाल्हा जिनेन्द्र पधारिया।।
* मुझ शरणो, मुझ शरणो थावो अरिहंत नौ।
सुख करणो, भव-तरण शरण भगवंत नौ।। ध्रुव.
चउतीस अतिशय युक्त ही अष्ट महाप्रतिहार्य हो
वर शोभा, अति शोभा अशोकादिक तणी।
समवसरण शोभे रह्या, ते देव जिनेन्द्र सुआर्य हो।। मुझ शरणो...

अन्तर ढाळ

४/११ जी कांइ वीरमती नारी तणां जी कांइ देखो चरित्र विरंग।। ध्रुव.
वीरमती तरु अम्ब नै कांइ दीधो कम्ब-प्रहार।
विमलपुरी देखाड़ तू जी कांइ, अमने अहो सहकार।
जी कांइ वीरमती नारी...

४/१२ म्हांरा सतगुरु करत विहार।
* मुश्किल जैन मुनी रो मारग वहणो है खांडै री धार।
है खांडै की धार, रहणो आजीवन इक सार।। ध्रुव.
जंगम स्थावर जीव जगत का आतम सम अवधार।
अपराधी नै भी न सतावै महाव्रती अणगार।। मुश्किल...

४/१३ भविकां ! नृप नी बेटी गुण नी पेटी गेह थी रे लोय,
बैठी दान नी शाला रे लोय।
भविकां ! जे जिम मांगै ते तिम आपै नेह थी रे लोय,
बाला परम कृपाला रे लोय।।

४/१४ जुग जीओ म्हांरी मूमल ! हालो नीं ले चालो जवायां रै देश।। ध्रुव.
काली-काली काजळिये री रेख ज्यूं, काजलिये री रेख ज्यूं।
भूरोड़े बादल में चमकै बीजळी, जुग जीओ...
सागै वाळा नै डेरा दिराय ओ,
कोई हरकी लै जंवायां रा डेरा बादळ महल में। जुग.

४/१५ आई थी पड़ोसण कह गई बात, थांरो ए परण्योड़ो परनारी रे जात।
नणदल रा वीर हंस बोलो।। ध्रुव.
इनै ऊभी गणगोरया, इनै ऊभा लोग।
सेन करूं तो पिया रस्तो छोड़। सासू सुगणी रा पूत हंस बोलो।।

५/१ दुनिया राम नाम नै भूली दुनिया झामर झोलै लागी।। ध्रुव.
ठाकुरजी पे बेढा मांगै अजिया-सुत रै साटे।
अपणा पूत खिलाया चावै, गळा पराया काटै।। हे जी हां...

५/२, ६/१४ डेरा आछा बाग में रे।
* ऊं जय-जय त्रिभुवन अभिनंदन त्रिशलानंदन तीर्थपते !
अयि त्रिशलानंदन तीर्थपते ! अयि कलुषनिकंदन विश्वपते ! ध्रुव.
तिमिराच्छादित भुवन में रे, दिव्य दिवाकर-सो उदयो,
सरण-सरण निज किरण पसारे, सारे जग जागरण हुयो।
निद्रा-घूर्णित जन बोध लह्यो।। ऊं जय-जय...

अन्तर ढाळ

५/२ म्हां नै चाकर राखो जी, गिरधारी म्हां नै चाकर राखो जी।।
चाकर रहस्यूं, बाग लगास्यूं नित उठ दर्शन पास्यूं।
वृंदावन की कुंज गलियन में, गोविन्द लीला गास्यूं।।
म्हांनै चाकर राखोजी।।

५/३ रात रा अमला में होको गहरो गूंजे जी राज !

५/४ सरणाट कुचामण बहग्यो, अणमणो देखतो रहग्यो जी।
सरपाट कुचामण बहग्यो।।
च्यारूं कुंटां में पाणी, आई आपद अणजाणी जी।
बह गया हजारूं प्राणी, आ बणगी एक कहाणी जी।।
सरणाट कुचामण बहग्यो।।

५/५, ५/१५ सभापति हमें मिले मतिमान।
६/५ नाम छोगमल, बी.ए.बी.एल. शासन में सम्मान।। सभापति...
गंगाशहर चोपड़ा नामी, संघ संघपति के अनुगामी।
रखते सबका ध्यान, सभापति हमें मिले मतिमान।।

५/७ मन मोहनगारो म्हांरो साधजी। ध्रुव.
मुनिवर वहरण पांगुरया सखि ! लहि सतगुरु आदेश,
छठ तणो छै पारणो सखि ! नगरी में कियो परवेश रे।
मुनिवर नव जोवन वेश रे, शोभै सिर लुंचित केश रे
चित लोभ नहीं लवलेश रे, मन मोहनगारो म्हांरो साधजी।।

अन्तर ढाळ

५/७ पनजी ! मूंढे बोल।
बोल-बोल हिवड़े रा जिवड़ा ! कांइ थारी मरजी रे। पनजी !...ध्रुव.
म्हें तो म्हांरै घर में बैठी, कांकरड़ी कुण मारी रे, २।
खड़ी-खड़ी कांकरड़ी लागी, घायल करगी रे।। पनजी !...

५/८ भलो दिन ऊग्यो दरसण पाया म्हे गुरु महाराज रा।

अन्तर ढाळ

५/९ चेतन चिदानन्द चरणां में...।
*वृन्दावन का कृष्ण कन्हैया सबकी आंखों का तारा।
मन ही मन क्यों जले राधिका मोहन तो है सबका प्यारा।। ध्रुव.
जमना तट पर नन्द का लाला जब-जब रास रचाए रे,
तन मन डोले कान्हा ऐसी बंशी मधुर बजाए रे,
सुधबुध खोए खड़ी गोपियां जाने कैसा जादू डाला।।

५/१० करमन की रेखा न्यारी, मैं किसविध लिखूं मुरारी।
वेश्या ओढै शाल दुशाला, पतिव्रता फिरत उघारी।। मैं किसविध....ध्रुव.
मूरख राजा राज करत है, पंडित फिरत भिखारी।। मैं किसविध...

अन्तर ढाळ

५/१० सुहाग मांगण आई अपणै दादोसा रै पास।।
दादोसा! द्यो नी सुहाग, आली भोली नै सुहाग, इकन कुंवारी नै सुहाग।
ए मां! मैं क्या जाणूं कामण ऐसा गुण लाग्या।।
कामण लाग्या ओ सूरजमल, कामण लाग्या ओ गायडमल,
नथली इनली बिन्दली स्यूं गुण लाग्या, मैण मेंहदी स्यूं गुण लाग्या।
बाई थारो बनड़ो छै नादान, छड़िया खेलैलो चोगान,
गोखा बैठ्यो चाबै पान, तोरण आयो करै सिलाम।
ए मां! मैं क्या जाणूं कामण ऐसा गुण लाग्या।। सुहाग...

५/११ भजन कर हे! भजन कर हे !
चामड़े री पूतळी भजन कर हे ! ध्रुव.
चामड़े रा हाथी घोड़ा, चामड़े रा ऊंट।
चामड़े रा बाजा बाजे चारूं ही कूंट।। भजन कर हे!

५/१२ रोको काया री चंचळता नै थे समण सती।
होसी जोगां पर काबू पायां ही नेड़ी मुगती।। रोको...ध्रुव.
काया री परवरती हरदम चालती ही रेवै।
संतां ! चंचळता नै रोकै माता काया गुपती।। रोको...

५/१३ सपना रे वैरी भंवर मिला दे रे। ध्रुव.
सूती थी रंग महल में, सूती नै आयो रे जंजाल।
टग-टग महलां ऊतरी, आई आई सासूजी पे चाल।। सपना रे...

अन्तर ढाळ

५/१३, ६/६ हरी गुण गाय लै रे, जब लग सुखी शरीर।
गइ जवानी न आवसी रे भाई! पिंजर व्याप्यां पीर।। हरी...
भाग भला सद्गुरु मिल्या रे, पड़्यो सबद में सीर।
हंसा होय चुग लीजिये रे नाम अमोलक हीर।। हरी...

५/१४ छेड़ो नांजी नांजी नांजी नांजी।

५/१६ खिम्यांवत जोय भगवन्त रो जी ज्ञान। ध्रुव.
देवै सतगुरु देसना रे ए संसार असार।
रोग सोग दुख अति घणो रे, देखो आंख उघार।।

६/१ नाहरगढ़ ले चालो। ध्रुव.
नाहरगढ़ ले चालो बनां सा अब कै जयपुर देखां सा।
जयपुरिये में ख्याल तमाशा बूंदी में डर मेणां को।
चालो बनी महलां में चालां थारो म्हारो कद को रूसणो।
महलां में नागोरी पेड़ा गोडे बैठ जिमावणो।। नाहरगढ़ ले चालो।

६/२ कुंयू जिनवर रे ! मनड़ो किम ही न लागै।
हठकत-हठकत मूळ न मानै।।

६/३ यह तेरापंथ महान,
धरा पर उतरा स्वर्ग विमान रे, गतिमान रे, यह...
निराला यह नंदन उद्यान रे, गतिमान रे, यह...ध्रुव.
निर्मित श्री भिक्षू के द्वारा, जयाचार्य ने इसे संवारा,
जैनधर्म का नया संस्करण, है एक नयां अभियान रे, गतिमान रे

६/४ संभव साहिब समरियै, ध्यायो है जिन निरमल ध्यान का
इक पुद्गल दृष्टि थाप नै, कीधो है मन मेर समान क।।
संभव साहिब समरियै।

अन्तर ढाळ

६/४ कहनी है इक बात हमें इस देश के पहरेदारों से,
संभल के रहना अपने घर में छिपे हुए गद्दारों से,
झांक रहे हैं अपने दुश्मन अपनी ही दीवारों से, संभल के रहना...
जनता से नेताओं से, फोजों की खड़ी कतारों से, संभल के रहना...ध्रुव.
हे भारत माता के बेटो ! सुनो समय की बोली को,
फैलाती है फूट यहां पर दूर करो उस टोली को।
कभी न जलने देना तुम उस भेदभाव की टोली को,
जो गांधी को चीर गई थी याद करो उस गोली को।
सारी पृथ्वी जल जाती है मुट्ठी भर अंगारों से।। संभल के रहना...

६/६ ओ जी हो गोरी रा लसकरिया,
ओळूयूंडी लगाय सिद्ध चाल्या जी ढ़ोला। ध्रुव.
ऊंची तो खींवै ढ़ोला बीजली, नीची खींवै रे निवाण जी ढोला।
होजी गोरी रा लसकरिया, घड़ी दोय लसकर थामो जी ढ़ोला।
पलक दोय लसकर थामो जी ढोला।।
म्हांरो तो थाम्यो लसकर नां थमै,
थांरै बापुसा रो थाम्यो लसकर थमसी ए गोरी। ओजी ओ...

६/८ म्हारा पूज्य परम गुरु चंगो सुयश जग लीज्यो जी।
म्हांनै स्हाज सदा ही दिज्यो जी।। म्हांरा... ध्रुव.
जय-जय नंदा, जय-जय भद्दा जय-विजय तुम वरज्यो।
अणजीत्या नै जीत जीत्यां री रक्षा रूड़ी करज्यो जी।।
म्हारा पूज्य परम गुरु चंगो सुयश जग लीज्यो जी।

६/१० सुगणा ! पाप पंक परहरिये।
पाप पंक परहरिये दिल स्यूं वोसिरावै अध भार,
इह विध निज आतम निस्तार।। सुगणा!...ध्रुव.
प्राणातिपात प्रथम अघ आख्यो, दूजो मिरषावाद।
अदत्तादान तीजो अघ कहियै, चौथो मिथुन विषाद।। सुगणा...

६/११ भावै भावना। ध्रुव.
पुण्य पाप पूरव कृत सुख-दुख नां कारण रे।
पिण अन्य जन नहीं इम करै विचारण रे।। भावै भावना।।

६/१२ म्हारो घणां मोल रो माणकियो, कुण पापी ले गयो रे।
* म्हारा छेल भंवर रो कांगसियो पणिहार्‌यां ले गई रे,
हां रे बैरणियां ले गई रे।। ध्रुव.
डोड मोहर रो कांगसियो मैं हटवाड़ा सूं ल्याई रे।
दांतै-दांतै मोती जड़िया, अधबिच हीरा जड़िया रे।
पाड़ोसण ले गई रे, म्हारा आलीजा भंवर रो कांगसियो...।।

६/१३ ज्यां शिर सोवता रे लोय !
उछंगे लीधो हो लाल, राणीये कूकड़ो हो राज।
गद-गद कंठे रे भाखै उत्तर मर्म नो।
जिण सिर बाल्हो हो लाल, मुकुट विराजतो हो राज।
दैवे कीधो रे छोगो राता चर्म नो।।

अन्तर ढाळ

६/१३ हो पिउ पंखीड़ा, नारी गुणावली ताम जो,
पिंजरियो कर लीधो झरते लोयणे रे लोय।
हो पिउ पंखीड़ा ! पभणे परिहरी मुझ आम जो
बिछड़वा मति कीधी अगणित जोयणे रे लोय।।

६/१४ संयममय जीवन हो।
नैतिकता की सुरसरिता में जन-जन मन पावन हो।।
संयममय जीवन हो। ध्रुव.
अपने से अपना अनुशासन अणुव्रत की परिभाषा,
वर्ण जाति या संप्रदाय से मुक्त धर्म की भाषा।
छोटे-छोटे संकल्पों से मानस परिवर्तन हो।। संयम...

६/१५ पदम प्रभू नित्य समरिये। ध्रुव.
निर्लेप पदम जिसा प्रभू, प्रभु पदम पिछाण।
संजम लीन्हो तिण समे, पाया चौथो नाण।। पदम...

६/१६ गुरांजी थे मनै गोडै न राख्यो।
मुगती जावा रो भेद न आख्यो।।

शिखा १ सुगणा ! खमाविये तज खार। ध्रुव.
सप्त लक्ष जाती पृथिवी नीं, सप्त लक्ष अपकाय।
इत्यादिक चउरासी लख जे जीवा योनि खमाय।।
सुगणा! खमाविये तज खार।

शिखा २ माढ—मरुधर म्हां रो देश म्हांनै प्यारो लागै जी।
गंगासिंह नरेश म्हांनै प्यारो लागै जी।। मरुधर... ध्रुव.
धोळा-धोळा धोरा म्हारै चांदी की सी रेत।
चम-चम चमकै चांदणी में ज्यूं सोने रा खेत।।
म्हांनै प्यारो लागै जी।

शिखा ३ राख नां रमकड़ा म्हारे रामे रमता राख्या रे।।

शिखा ४ लक्ष्मणजी इम वीनवै, राघव स्यूं कर जोड़।
कां ए ताड़ातोड़ नहिं सीता में खोड़, साच कढाऊं चोड़।। ध्रुव.
पाणी में पत्थर तिरै, पश्चिम दिशि दिनकार।
ऊगै तो सही जाणिये, सीता न लोपै कार।। लक्ष्मणजी।...

नोट—तारांकित पद्य उसी गीत के वैकल्पिक पद्य हैं।

४. विशेष शब्दकोश

अंग	शरीर
अंबरियो	आकाश
अकनकुमारी	जिसका कौमार्य व्रत अखण्ड हो, अविवाहित।
अकबक	व्यर्थ का प्रलाप, ऊलजलूल
अकलसरूपी	परमात्मा, जिसके स्वरूप का आकलन न हो।
अखरोट	डिंगल काव्य का एक शब्दालंकार।
अड़कवैद्य	नीम हकीम, अनाड़ी चिकित्सक।
अडीक	इंतजार, प्रतीक्षा
अणखावै	अप्रिय, असुहावना
अणतेड़ी	बिना बुलाई
अणां री	इनकी
अणी	अंश मात्र
अतिशय	अत्यधिक
अधृष्य	जिसका पराभव न हो सके।
अनपोहै	अकारण
अनयी	अन्यायी
अनागार	जिन नियमों के पालन में छूट न हो, साधु के व्रत।
अनिमेष	अपलक, देवता
अनुहार	समान
अपवाद	विशेष परिस्थिति में दी या ली जानेवाली छूट।
अप्रतिबद्ध	प्रतिबंध रहित, बेरोकटोक
अबखो	विकट, कष्टप्रद

अबीण	अक्षत
अबीह	निर्भय
अबोठो	परिपूर्ण, अखण्ड
अभ्र	बादल
अमारड़ै	हमारे
अमूझ	बेचैनी
अमोघ	सफल
अर/आरो	समय का एक परिमाण, कालचक्र का बारहवां हिस्सा।
अरोगणै	खाने के लिए
अर्क	सूर्य, आकड़ा
अलखावणो	अप्रिय, मन के प्रतिकूल
अलोल	अचंचल, स्थिर, दृढ़
अवज्ज	पाप
अस्यो	ऐसा
अहनाण	चिह्न
अहमहमिकया	मैं पहले-मैं पहले, ऐसी उत्कण्ठा
आईठाण	चिह्न, निशान
आऊखो	आयुष्य
आंक्यो-चांक्यो	जांचा-परखा हुआ
आखू	चूहा
आगूंच	पहले से ही
आघ	मूल्य, इज्जत
आड़ो	बालहठ, जिद्द
आण	आज्ञा
आथ	संपदा
आदित्य	सूर्य
आफळिया	हैरान
आफू	अफीम
आब	आभा
आमणदूमणी (णो)	आकुल-व्याकुल
आ'र	भोजन

आराधक	लक्ष्यसिद्धि के लिए सम्यक साधना करनेवाला।
आर्थिक	अर्थ के समालोचक
आलय	भवन
आला-आला	श्रेष्ठ, बढ़िया
आलोयणा	प्रायश्चित्त का एक प्रकार, गुरु के सम्मुख अपनी भूलों का निवेदन।
आसित	विराजित
आस्य	मुख
इकदाण	एक बार
इतरथा	अन्यथा
इयाणी	इस समय
उट्ठावणी	अनुशासनात्मक कार्यवाही, कड़ा उपालंभ
उडुगण	नक्षत्र-समूह
उडुपति	चन्द्रमा
उतराद	उत्तर दिशा
उत्कंधर	ऊंची ग्रीवा
उत्तर गुण	आचार के सहायक नियम, मूलगुण के संपोषक नियम।
उत्संगाश्रित	गोद में स्थित
उदक	पानी
उद्योतन	प्रकाश करना
उपकरण (र्ण)	जैन मुनि के लिए उपयोगी वस्त्र-पात्र, रजोहरण आदि सामग्री।
उपचर्या	सेवा
उपदरे	उपद्रव
उपाधी	बीमारी
उबाक	उबकाई
उमेद	उम्मीद
ऊंडिया	गहरा
ऊणायत	कमी
ऊणो	न्यून, कम
ऊर्णायु	कम्बल

ऋष्य	हरिण
एहड़ा	ऐसा
ऐन	बिल्कुल, कानून
ओक	भवन
ओखाणो	कहावत, दृष्टांत
ओछी (छो)	कम
ओपरी छाया	भूत-प्रेत का प्रभाव
ओरी-दोरी	इधर-उधर, चारों तरफ
ओळ	पंक्ति
ओळमो	उपालम्भ
ओसान	अवसर
औत्सर्गिक	सामान्य विधि
करणां	कान
करणाटी	कर्नाटक
करनाळी	बंदूक
करभी	उष्ट्रपालक
कर्णेजपता	चुगलखोरी
कर्म-विजित्रा	कर्मों को जीतनेवाली
कलदार	चांदी या किसी अन्य धातु से बना रुपए का सिक्का।
कलाण	मेघ-घटा
काची	कच्ची, अस्थिर
काण	कसर, मर्यादा
काथ	काढा, व्यक्तियों की भीड़
कामकलश	इच्छा पूर्ति करने वाला कलश।
कामदुघा	कामधेनु
कास	खांसी
किलबिललावै	कुलबुलाना
किसब	धंधा
कीकर	कैसे
कुमिणा	कमी
कूकै/कूकना	रुदन करना

कूका	लड़का
केड़े	पीछे
केथ	कहां
केलि	क्रीड़ा
केहड़ा	कैसा
केहरी (क्हेर)	केसरी सिंह
कोविद-कुल	विद्वद समूह
खंभ	स्तंभ
खक्खर	पलाश (ढाक)
खक्खराटी	पलाश के पत्तों का शब्द।
खड़क्कै	पत्थरों की खड़खड़ाहट।
खण्डोल	दीवार की चुनाई में काम आने वाले पत्थर।
खतीजी	अंकित हो गई।
खदिर	खैर वृक्ष
खमणी	क्षमाशील
खलपू	झाड़ू
खसोली	समाविष्ट की।
खातरी	सम्मान, आवभगत
खाहै	प्रकार
खिदमत खाटै	सेवा करना।
खिलक्कत	खिलखिलाहट
खुणस	खुनस, रीस
खेचल	परिश्रम
खेह	रजकण
खोगाळा	लंबी गुफा, मांद
खोड़ खुडातां	बराबरी करते
खोळियै	शरीर
ख्यात	इतिहास से संबंधित बात, प्रसिद्ध
गड़क्कना	लुढ़कना
गडारी	गाड़ी के चक्कों से बना रास्ता
गण-नभ-भाण	आचार्य

गणप	आचार्य
गणभृत	गणधर
गरणावै/गरणाना	गूंजित होना
गरिया	बड़ा
गळबा	घड़े का ऊपरी भाग
गवा	साक्षी
गहगी (गो)	भारी
गुणठाणो	आत्मविकास की क्रमिक भूमिका।
गुमासता	मुनीम
गुरु-गम	गुरु से प्राप्त
गुरु-तीर	गुरु के निकट
गृहयालू	ग्रहणशील
गोखै	झरोखा, वातायन
गोड़	समीप
गोडी	घुटने
घग्घराटी	निर्झर का शब्द
घणखरचू	अपव्ययी, अधिक खर्च करने वाला।
घाई	घात
घाम	गर्मी
घुग्घाट	उल्लू का शब्द
घुरया/घुरना	आना
घूक-संघाट	उल्लुओं का समूह
चंगिणि	श्रेष्ठ
चंगी	अच्छी
चंचरीकता	भ्रमर वृत्ति
चक्रबंधु	सूर्य
चबको	रह-रहकर उठने वाली पीड़ा, टीस।
चरूड़ी (ड़ो)	विस्फारित
चलचंचू	चकोर
चाढ	चढाई
चातक	पपीहा

चार्चिक	चर्चा में कुशल
चाल-ढाल	आचरण
चित्त-चोरटो	मन को चुराने वाला, मनोहर
चित्राबेलि	ऐसी लता, जिस पर रखा हुआ पदार्थ अखूट रहता है।
चुल्लपट्ट	जैन मुनियों का अधोवस्त्र।
चूंथी	धातु की दो लचीली फट्टियों को जोड़कर बनाया गया उपकरण।
चूंप	उत्साह
चोखलो	ग्राम-मण्डल, बहिर्विहारी साधु साध्वियों के लिए प्रतिवर्ष निर्धारित किया जाने वाला विहार-क्षेत्र।
चोलड़ी	चौगुनी
चोलो	साधुओं का बाना, मार्ग
चोसाल	चतुष्कोण
चोहटा	ऐसा चौक, जिसके चारों ओर मकान या दुकानें हों।
छक	ठाटबाट
छक्का	उत्साह, जोश, बहार
छद्म	माया, कपट
छपाण	प्रदर्शन
छाजां	छज्जा, छत का वह भाग, जो दीवार से बाहर निकला रहता है।
छाजै	सुशोभित होना
छाण	जांच-पड़ताल
छाब	टोकरी, बांस की छाबड़ी
छार	राख
छिति	पृथ्वी
छेक	दक्ष
छेह	धोखा, अन्त
छेहड़ो	किनारा
छोली	छोलदारी, छोटा तंबू
छोली/छोलना	छीलना, खरोंच लगना
जंगि (गी)	बड़ा, मजबूत

जग-जंबाल	संसार रूपी कीचड़
जग-जरता	संसार की जड़ता
जमारो	जीवन
जल-वीचिका	पानी की लहरें
जांच सांचवी	जांच करके
जानू	घुटना
जामण-जाया	मां की कोख से जनमा हुआ सा पवित्र।
जालमता	दुष्टता
जिल्लाबंधी	दलबंदी
जीकारड़ो	वंदना-स्वीकृति सूचक शब्द।
जीमूत	बादल
जेहड़ा	जैसा
जैर	जहर
जोड़ायत	पत्नी
झंगी	घना जंगल
झकोर	वायु का झौंका
झणंके	पानी का बहना
झळफळै	उफनना
झांझरकौ	पौ फटने का समय
झाकझमाला	चमक-दमकवाले
टणको	विशाल
टाळोकर	धर्म-संघ से अलग होने या कर दिए जाने के बाद उसी वेश में रहने वाले साधु-साध्वी।
टूंक	संक्षेप में
ठाढ़-ठाढं	बड़े-बड़े
ठाण	स्थान, करके
ठार	सर्दी
ठोर-ठोर	स्थान-स्थान पर
डावड़ो	बालक, लड़का
डूंगरिया	पहाड़
डो’लो	प्रबल इच्छा

ढकोसला	मतलब साधने के लिए किया जाने वाला पाखण्ड।
ढ़ांचूं	ढांचा
ढाळ	बिछाकर
ढिलक्कत	धॉय-धॉय की आवाज
ढील	विलम्ब
तकदीर-विहूणो	भाग्यहीन
तड़ाकै	शीघ्रता
तणी	संबंध
तरंग	लहर
तरषणा	प्यास, आकुलता
तर्पण	तृप्ति
ताढ	ठण्ड, सर्दी
ताणाबेजो	तानाबाना, मानसिक उलझन
तामझाम	पालकी विशेष
तावो	तपावो, परीक्षा करो
तिणकलो	तिनका
तुण्ड	मुख
तुरीय	चतुर्थ
तूद	मिथ्या अफवाह
तेड़/तेड़णा	बुलाना
तोरो	प्रभाव
त्रपा	लज्जा
त्रिस्रोता	गंगा
थरहर्यो/थरहरणा	कांपना
थर्पण	स्थापन, रचना
थाग	पार
थोभन/थोभना	रोकना, वश में करना
दंभोली	वज्र
दमाला	साफा, सिर पर बांधने का एक वस्त्र, जो पगड़ी से ज्यादा चौड़ा व कम लंबा होता है।
दरियाव	समुद्र

दाझ	जलन, दाह
दाना	वृद्ध
दारमदार	किसी कार्य का किसी पर अवलम्बित रहने का भाव
दावपेंच	कुटिल चाल, छल-कपट
दावो	मुकदमा
दिगंगना	दिशा सुंदरी
दिहाड़ै	दिन
दुचिताई	चिंता
दुधारी	दोहरी
दोभागी	मंद भाग्यवाला
दोली	निकट
दोहग	दुर्भग, दौर्भाग्यशाली
दोहड़ो	तीव्र अभिलाषा
दोहिलो	दुर्लभ
दौर्विध्य	दुर्भाग्य
द्रविण-विहूणो	निर्धन
धणियां	स्वामी
धणियाप	स्वामित्व
धमीड़ा लेना	मुक्का मारना
धरक्खन	सिंह की दहाड़
धर्मध्वज	रजोहरण
धहूड़ा	धववृक्ष
धांत (ध्वांत)	अंधकार
धाक	प्रभाव
धाको धिकासी	काम चलेगा
धाता	विधाता
धाम	मकान
धिंगाणै	बलपूर्वक
धींग	बलिष्ठ
धीज पतीजै/पतीजना	विश्वास करना
नांगला	जैनमुनि का एक उपकरण, जिसमें पुस्तक आदि डालकर

	कंधे पर लटकाया जाता है
नागेश	शेषनाग
नानड़िया	बालक
निजरबाज	पारखी
निजोरी	जहां किसी का बल न चले।
निर्जरा	तपस्या और उससे होने वाली आत्मा की आंशिक उज्ज्वलता।
निर्वृतिमाग	मोक्ष मार्ग
निवड़ी	फलीभूत हुई
निवाण	नीची भूमि, गड्ढा, तालाब
निवेर	अंत
निश्चय नय	द्रव्य के समग्र रूप, सब पर्यायों को ग्रहण करनेवाली नय दृष्टि।
निसत्त	बलहीन
निसुण	सुनकर
निस्त्रप	निर्लज्ज
नीठ-नीठ	बड़ी मुश्किल से
नीठा	नष्ट हो गए
नीरधि	समुद्र
नेड़ी	नजदीक
नेवर	नुपुर
नेहचो	धैर्य, तसल्ली
पंचशिख	सिंह
पंडितमाणी	अपने आपको पंडित मानने वाला
पगमंडा (करना)	पधारना (अतिथि के स्वागत में राह पर बिछाए वस्त्र पर चलने की क्रिया)
पड़छंदा	प्रतिध्वनि
पतीजै/पतीजना	विश्वास करना
पयोनिधि	समुद्र
परखद	परिषद
परजलिया/परजलणा	कुपित होना

परदरसणी	जैनदर्शन से अन्य दर्शनों में आस्थाशील
परिमोषी	चोर
पलिमंथ	अवश्यकरणीय कार्य में व्याघात पैदा करने वाला।
पवाड़ा	प्रवाद, मत-मतान्तर
पांगर्‌या/पांगरना	पधारना
पांतर्‌या/पांतरना	भूलना
पाणो	प्रण, मोर्चा
पाथ	पंथ, मार्ग
पायस	खीर
पारो	प्रभाव, क्रोध
पार्वतप्रदेश	पर्वतीय क्षेत्र
पाळा	पैदल
पिंजर	शरीर
पिंड	शरीर
पुरुषोत्तम	तीर्थंकर
पुहवी	पृथ्वी
पृच्छक	प्रश्नकर्ता
पोख	पोषण
पूठो	हस्तलिखित ग्रन्थों की सुरक्षा के लिए वस्त्र, कागज या प्लास्टिक से बनाया जाने वाला पेटीनुमा उपकरण।
प्रतिक्रमण	अतीत के दोषों से निवृत्त होने के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान।
प्रतिरव	प्रतिध्वनि
प्रतिवादी	विपक्षी
प्रत्यनीकता	विपक्षी
प्रद्योतन	सूर्य
प्रेखक	दर्शक
प्रेष्ठ	प्रिय
फफोलो	एक प्रकार का फोड़ा, व्रण
फबै/फबना	उचित प्रतीत होना, अच्छा लगना।
फरे	फलना, विकसित होना

फरोळो/फरोलना	टटोलना
फाड़ातोड़ी	तोड़फोड़
फुफ्फणारा	फुफकारना, फूत्कारना
फेतकारा	गीदड़ की आवाज
फेरू	गीदड़, सियार
बंको	जबरदस्त
बखाणां बखाणना	कहना, व्याख्या करना।
बजड़ानी	बाजा, दुन्दुभि आदि के बजने की क्रिया
बतक्कड़	बात का बड़ा रूप, बड़ी बात
बतास	हवा
बदबखत	बुरा समय
बनणा	वंदना, प्रणाम
बरड़ी	कठोर
बाजू	तरफ, ओर
बाट	मार्ग, राह
बाफ	मन की घुटन भावना
बालगोठिया	बाल सखा, बाल्यकाल का मित्र
बालिस	मूर्ख, नादान
बाल्हेश	प्रिय
बावन (वामन)	विष्णु भगवान के पांचवें अवतार का नाम, जो बलि राजा को छलने के लिए था।
बाहळा	जलस्रोत, बरसात में बहनेवाला पानी का नाला।
बाहोड़/बाहुड़ना	वापस आना
बिलखावै/बिलखना	व्याकुल होना, बेचैन होना
बूठो/बूठणा	बरसना
बूथा (ता)	योग्यता, हौसला, औकात
बोक	मूर्ख, अनजान
ब्हानो	बहाना
भंजनहार	नाश करनेवाला
भंवर	वह लड़का, जिसका पितामह जीवित हो।
भचीड़	आघात, टक्कर

भटभेड़ा	भटकाव
भणकारो	ध्वनि, आवाज
भसवाड़ा	संन्यास-विरुद्ध आचरण
भस्मनि हुत	व्यर्थ, राख में दी गई आहुति के समान।
भाखर	पहाड़
भाणो	भोजन का थाल
भानवी	किरण
भानू	सूर्य
भारती	वाणी
भासित	शोभित
भास्वर	तेजस्वी
भुरकी	वशीकरण मंत्र से मंत्रित भस्म या धूलि।
भृंगता	भ्रमण की तरह मंडराना।
भोंहर	तलघर
मंडाण	किसी आयोजन विशेष के प्रारंभ में किया जाने वाला प्रबंध, रचना।
मगरियो	मेला
मचकोड़ै	बिगाड़ना
मझम	मध्यम
मणकलो	माला में पिरोया जाने वाला मनका।
मधुधूली	शर्करा, खांड
मनोगत	मन के अनुकूल
मरुभूमिका	मरुधरा, मारवाड़ की धरती।
मसाण	श्मशान
माटे	लिए, वास्ते, निमित्त
माडाणी	जबरदस्ती, बलात
मातंग	इन्द्र का हाथी, चण्डाल
माधव	वैशाख
मावरो	आदत
मिष	बहाना
मुरतब	राज-लवाजमा

मूंघामोलो	बहुत कीमती
मूंढै	मुंह
मृन्मय-पिण्ड	मिट्टी का गोला
मेड़्यां	मकान के सबसे ऊपरी कमरे।
मेलावड़ो	एक स्थान पर सम्मिलित होने का भाव।
मेहड़ा	मेघ
मोघ	व्यर्थ
मोघम	सामान्यतः, विशेष नामोल्लेख बिना कही जाने वाली बात का भाव।
म्हातम	महत्ता, माहात्म्य
म्हालता	मस्त
यथेष्ट	इच्छानुसार, पर्याप्त
योजितपाणी	बद्धांजलि
रंगरळी	आनन्दोत्सव
रंगरोळ	मौज-मस्ती
रणकंकण	एक प्रकार का बाजा, जो राजा की सवारी के आगे बजता था।
रणतूर	युद्ध के समय बजने वाला वाद्य विशेष।
रति-हीण	भाग्यहीन
रयणराशि	समुद्र
रश्मि-रमण	सूर्य
रसज्ञा	जिह्वा
रांगडरासे (सो)	अड़ियल लोगों की लड़ाई।
रांठा	अरहट के कुएं
रामत	क्रीड़ा, खेल
रूंखरे	वृक्ष
रूपाळा	सुंदर, मनोहर
रेस	रहस्य
रोचि	किरण
लख	देखकर, जानकर
लघुवय	छोटी उम्रवाला

लवाजम	राजा महाराजा की शोभा बढ़ाने हेतु सवारी के साथ रहने वाला ठाटबाट व साज-सज्जा का सामान।
लहताण	ऊपर खींचने या तानने की क्रिया का भाव।
लहुड़ा	लघु, छोटा
लाछ	लक्ष्मी, सम्बद्ध
लास्य	नृत्य
लिखत (तां)	प्रामाणिक दस्तावेज, विशेष परिस्थिति में किसी व्यक्ति या संघ पर लागू किए गए नियम का लिखित रूप।
लिपळी	लचीली
लिवल्या	एकाग्रचित्त से एक बात पर ध्यान केन्द्रित करना
लूपरी	गुड़, आटा आदि गर्म करके फोड़े पर बांधी जाने वाली दवा।
लेखा	गणना
लोक-बोक	नादान लोग
वन्ध्या	बांझ, बच्चा पैदा करने में अक्षम
वाच	वचन
वाचंयम	मुनि, मौनी
विरंग	खेद-खिन्न
विराधक	लक्ष्यसिद्धि के लिए सम्यक साधना न करनेवाला।
विरुद	किसी के यश, गुण, प्रताप आदि का वर्णन।
विलमाणो	विलम्ब करना
व्यवहार नय	भेद को ग्रहण करने वाला दृष्टिकोण।
व्याकर्णी	व्याकरण शास्त्र का ज्ञाता।
व्याज	बहाना, मिष
व्रती-व्रात	साधुओं का समूह
शंकर	शिव, सुखकर
शतपत्र	कमल
शशक	खरगोश
शशार	खरगोश
शाब्दिक	शब्द के समालोचक
शाल	मकान का वह हिस्सा जिसमें रोशनदान, खिड़की आदि न हो।

शिखरी	वृक्ष, पर्वत
शिलोच्चय	पहाड़
शिवपुर	मोक्ष
शृंग	सींग
श्रुत-शतांग	शास्त्र रूप रथ
श्वपच	चंडाल
श्वयथु	शोथ, सूजन
संथवणा	गुणगान, स्तुति
संपज्जै	उत्पन्न होना
संभोग	आहार-पानी का संबंध
संवर	कर्म-निरोध करने वाले आत्म-परिणाम।
संवित	जानकारी, स्मृति
सकाज	सकारण
सखम	सक्षम
सगाई	संबंध, रिश्ता
सगोत	समान
सज्ज	तैयार
सणण्णार	सन-सन की ध्वनि
सतंत	सारपूर्ण
सताब	शीघ्र, जल्दी
सत्र	जंगल
सपदि	शीघ्र
सबूरी	संतोष
समंदा	समुद्र
समचै	विभागीय पांती और कार्यों से मुक्त रहने की व्यवस्था।
समय	आगम, सिद्धांत
समी	समतल
सवर्णी	समान
सवार	प्रातःकाल
सविता	सूर्य
सव्यास	सविस्तार

सव्येष्ठ	सारथी
सहल	सरल, आसान
सांतरो	श्रेष्ठ
सांभर	बारहसिंगा
सांवठा	अधिक, बहुत
साकूत	अभिप्राय सहित
साखी	साक्षी
सागार	जिन नियमों के पालन में एक सीमा तक छूट हो, श्रावक के व्रत।
साटण-घटिया	बढ़िया रेशमी वस्त्र से निर्मित।
साद	शब्द
सामठो	सामूहिक, अधिक
सामेळो	अगवानी
सायर	सागर
सारंग	चातक
सारणा-वारणा	स्याबासी और उपालंभ
सारू	अनुरूप
सारू	करूं
सालै/सालना	खटकना
साविध्य	सामीप्य
सावो	विवाह का शुभ मुहूर्त
सिकल	सूरत
सिततम	एकदम सफेद
सिल्लक्कत	सरसराहट
सुघड़	चतुर, निपुण
सुरभि	बसंत
सुरभी	सुगंध
सूंडिया	ऐसा कुआं, जिसका पानी सूंडदार चरस से निकाला जाता हो।
सेरि	गली
सोरठियो	सोरठा नामक छंद

सौमित्री	लक्ष्मण
स्तोक	थोड़ा
स्वत्व	अस्तित्व
हजारी	हजारों की सख्या में एक
हलफलित	आतुर
हळफळिया	व्याकुल हो गए
हसिया	घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज
हाकम	शासक, किसी प्रांत या जिले का सबसे बड़ा अधिकारी।
हारद	अभिप्राय, मन की बात।
हाल्या/हालना	चलना
हिचकै	हिचकना, कठिन कार्य के लिए कोशिश करना।
हिलोळो	आनंद की लहर, भय का संचार।
हिल्ली	चस्का लगी हुई।
हुंकार	किसी वीर पुरुष की जोशपूर्ण आवाज।
हुंडी	साहूकारों द्वारा लिखा जानेवाला भुगतान पत्र।
हूंस	प्रबल इच्छा
हृद्य	मनोहर
हेली	हवेली, मकान
होबरड़ा	उबकाई
होरी-होरी	धीरे-धीरे

❑❑❑

लेखक-परिचय

जन्म	:	२० अक्टूबर १६१४, लाडनूं (राजस्थान) वि. सं. १६७१, कार्तिक शुक्ला द्वितीया
दीक्षा	:	५ दिसम्बर १६२५, लाडनूं (राजस्थान) वि. सं. १६८२, पौष कृष्णा पंचमी
आचार्य	:	२६ अगस्त १६३६, गंगापुर (राजस्थान)
अणुव्रत-प्रवर्तन	:	१ मार्च १६४६, सरदारशहर, (राजस्थान) वि. सं. २००५, फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
युगप्रधान	:	२ फरवरी १६७१, बीदासर (राजस्थान) वि. सं. २०२७, माघ शुक्ला सप्तमी
भारत ज्योति	:	१२ फरवरी १६८६, उदयपुर (राजस्थान) वि. सं. २०४२, माघ शुक्ला पंचमी
वाक्पति	:	१४ जून १६६३, लाडनूं (राजस्थान) वि. सं. २०५०, आषाढ कृष्णा दशमी
राष्ट्रीय एकता पुरस्कार	:	३१ अक्टूबर १६६३, नई दिल्ली वि. सं. २०५०, कार्तिक कृष्णा एकम
महाप्रयाण	:	२३ जून १६६७, गंगाशहर (राजस्थान) वि. सं. २०५४, आषाढ़ कृष्णा तृतीया

प्रमुख कृतियां

- कालूयशोविलास
- डालिमचरित्र
- माणकमहिमा
- मगनचरित्र
- सेवाभावी
- मां वदना
- चन्दन की चुटकी भली
- मैं तिरूं म्हारी नाव तिरै
- भरतमुक्ति
- पानी में मीन पियासी
- अग्निपरीक्षा
- सोमरस
- सुधारस
- नन्दन निकुंज
- शासन-सुषमा
- अणुव्रत-गीत
- तेरापंथ-प्रबोध
- आत्मा के आसपास
- सम्बोध
- श्रावक-संबोध
- मेरा जीवन : मेरा दर्शन
- सन्मति का मतितंत्र
- चेतना का आकाश : अध्यात्म का सूर्य
- नया समाज : नया दर्शन
- मुखड़ा क्या देखे दरपन में
- जब जागे तभी सबेरा
- लघुता से प्रभुता मिले
- दीया जले अगम का
- मनहंसा मोती चुगे
- दीये से दीया जले
- कुहासे में उगता सूरज
- बैसाखियां विश्वास की
- सफर आधी शताब्दी का
- जीवन की सार्थक दिशाएं
- जो सुख में सुमिरण करे
- बिन पानी सब सून
- राजपथ की खोज
- अणुव्रत : गति-प्रगति
- अनैतिकता की धूप अणुव्रत की छतरी
- अणुव्रत के आलोक में